ऋषि, देवता, छन्दः और स्वर के अन्त में पूर्णविराम के स्थान पर (ङ्क) छप गया है। कृपया इसे पूर्णविराम पढ़ें।

अथ सप्तमं मण्डलम्

षष्ठ मण्डल की समाप्ति पर ब्रह्म को अन्तर कवच बनाने का उपदेश है। इस कवच को धारण करनेवाला किन्हीं भी अदिव्य भावों से आक्रान्त नहीं होता। यह इन्द्रियों को पूर्ण रूप से वश में करनेवाला व अपने निवास को उत्तम बनानेवाला 'वसिष्ठ' सप्तम मण्डल का ऋषि है। यह 'अग्नि' नाम से प्रभु का उपासन करता है। यज्ञाग्नि को दीप्त कर यज्ञ द्वारा उस महान् अग्नि की उपासना करता हुआ कहता है—

[१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

यज्ञाग्नि का प्रादुर्भाव

अ॒ग्निं नरो॒ दीधि॑तिभिर॒रण्यो॒र्हस्त॑च्युती जनयन्त प्रश॒स्तम्। दू॒रे॒दृशं॑ गृ॒हप॑तिमथ॒र्युम्॥ १ ॥

(१) **नरः**=उन्नति पथ पर अपने को ले चलनेवाले मनुष्य **हस्तच्युती**=(हस्तप्रच्युत्या-हस्तगत्या) हाथों की गति से **दीधितिभिः**=(धीयन्ते कर्मसु) अंगुलियों के द्वारा **अरण्योः**=दो अरणियों में—काष्ठविशेषों में **अग्निम्**=यज्ञाग्नि को **जनयन्त**=प्रादुर्भूत करते हैं। (२) उस अग्नि को प्रादुर्भूत करते हैं जो **प्रशस्तम्**=प्रशस्त है। सब रोगकृमियों के संहार का साधन होने से तथा वर्षा आदि का हेतु बनने से प्रशंसनीय है। **दूरेदृशम्**=दूर से दिखता है, ऊँची-ऊँची ज्वालाओंवाला होने के कारण दूर से दिखाई देता है। **गृहपतिम्**=घर का रक्षक है, नीरोगता का कारण बनकर घर को सुरक्षित करता है। **अथर्युम्**=(अतनयन्तम्) निरन्तर गतिवाला है।

भावार्थ—हम प्रतिदिन दो अरणियों की रगड़ से यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करें। यह यज्ञाग्नि प्रशस्त है, यह घर का रक्षण करती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'दक्षाय्य-नित्य' अग्नि

तम॒ग्निमस्ते॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन्त्सुप्रति॒चक्ष॒मव॑से॒ कुत॑श्चित्। द॒क्षाय्यो॒ यो दम॒ आस॒ नित्यः॑ ॥ २ ॥

(१) **तं अग्निम्**=उस यज्ञाग्नि को **अस्ते**=गृह में **वसवः**=वसु=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले लोग **न्यृण्वन्**=(न्यदधुः) स्थापित करते हैं। **सुप्रतिचक्षम्**=जो अग्नि हम सबका पूरा ध्यान करती है (Looks after) यह अग्नि **कुतश्चित्**=जहाँ कहीं से प्राप्त होनेवाले भय से **अवसे**=रक्षण के लिये होती है। (२) **दक्षाय्यः**=जो अग्नि हवियों द्वारा संवर्धनीय होता है। **यः**=जो **दमे**=गृह में **नित्यः आस**=सदा रहनेवाला होता है। वस्तुतः यज्ञाग्नि को कभी बुझने नहीं देना होता है। यह सदा प्रज्वलित रहती है।

भावार्थ—वसु इस अग्नि को आहित करते हैं। यह उनका ध्यान करती है, यह हवियों द्वारा वर्धनीय है और इसे कभी घर में बुझने नहीं देना चाहिए।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

अक्षीण यज्ञाग्नि

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्त्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=यज्ञाग्नि! **प्रेद्धः**=खूब दीप्त हुआ-हुआ तू **नः पुरः**=हमारे सामने **दीदिहि**=दीप्त हो, हे **यविष्ठ**=गृहों से सब अशुभ रोगकृमि आदि को दूर करनेवाले तथा शुद्ध वायु को प्राप्त करानेवाले (यु मिश्रणामिश्रणयोः) अग्ने! तू **अजस्त्रया**=न क्षीण होनेवाली **सूर्म्या**=ज्वाला से दीप्त हो। (२) **त्वाम्**=तुझे **शश्वन्तः**=बहुत प्रकार के **वाजाः**=हवि के अन्न **उपयन्ति**=प्राप्त होते हैं। तेरे में विविध अन्नों की आहुतियाँ डाली जाती हैं। इन्हें ही सूक्ष्मकणों में विभक्त करके तूने सर्वत्र वायुमण्डल में फैलाना है।

भावार्थ-हे यज्ञाग्ने! तू हमारे घरों में सदा दीप्त हो, तेरे में हम बहुत आहुतियों को देनेवाले हों।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

मिलकर यज्ञ करना

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः। यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥

(१) गार्हपत्य अग्नि से आह्वनीय अग्नि का प्रणयन होता है। सो कहते हैं कि **ते**=तेरी **अग्निभ्यः**=गार्हपत्य अग्नियों से **अग्नयः**=यज्ञाग्नियाँ **प्र निः शोशुचन्त**=प्रकर्षेण नितरां दीप्त हों। ये यज्ञाग्नियाँ **वरम्**=अच्छी प्रकार **द्युमन्तः**=ज्योतिर्मय होती हुईं **सुवीरासः**=(सुवि ईरासः) अच्छी प्रकार रोगकृमियों को कम्पित करनेवाली हैं। 'अग्नेर्होत्रेण प्रणुदा सपत्नान्', इस अग्निहोत्र के द्वारा अपने सपत्न (शत्रु) भूत इन रोगकृमियों को परे धकेल दे। (२) ये यज्ञाग्नियाँ वे हैं **यत्रा**=जहाँ-जिनके समीप **सुजाताः**=उत्तम जन्मवाले कुलीन **नरः**=लोग **सं आसते**=मिलकर प्रेम से आसीन होते हैं। 'सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः'=नाभि के चारों ओर अरों के समान मिलकर गति करते हुए तुम इस यज्ञाग्नि का पूजन करो-यज्ञाग्नि में उत्तम घृत व हवि को डालो।

भावार्थ-कुलीन लोग घरों में मिलकर बैठते हैं। गार्हपत्य अग्नि से यज्ञाग्नि को दीप्त करके उसमें सम्यक् आहुतियों को डालते हैं। इन यज्ञों के द्वारा वे उस महान् अग्नि (=प्रभु) का पूजन करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

प्रशस्त धन की प्राप्ति

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम्। न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार यज्ञाग्नि के समीप बैठे हुए परिवार के लोग यज्ञ की समाप्ति पर प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे **अग्ने**=हमें आगे ले चलनेवाले प्रभो! **नः**=हमें **धिया**=बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मों के द्वारा **रयिं दाः**=धन को दीजिये। हे **सहस्य**=हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का अभिभव करनेवाले प्रभो! उस धन को दीजिये जो **सुवीरम्**=उत्तम वीर जनों को जन्म देता है, अर्थात् हम सबको वीर बनाता है। **स्वपत्यम्**=उत्तम सन्तानवाला है तथा **प्रशस्तम्**=प्रशंसनीय है, अर्थात् प्रशस्त साधनों से ही जिसका अर्जन हुआ है। (२) हमारे लिये उस धन को दीजिये

यम्=जिसको **यातुमावान्**=हिंसा की भावना से युक्त **यावा**=आक्रान्ता शत्रु **न तरति**=बाधित नहीं कर पाता।

भावार्थ—प्रभु हम यज्ञशील पुरुषों को वह धन दें जो हमें वीर बनाये, उत्तम सन्तानवाला करे, प्रशस्त जीवनवाला बनाये और चोर आदि से चुराया न जाये।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रातः-सायं अग्निहोत्र

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची। उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥ ६ ॥

(१) **यम्**=जिस **सुदक्षम्**=उत्तम बल की कारणभूत अग्नि को **दोषा वस्तोः**=प्रातः-सायं **हविष्मती**=प्रशस्त हविवाली **घृताची**=(घृतम् अञ्चति) घृत से युक्त **युवतिः**=अग्नि के साथ घृत को सम्पृक्त करनेवाली जुहू (चम्मच) **उप एति**=समीपता से प्राप्त होती है। **एनम्**=इस अग्नि को **स्वा**=अपनी **अरमतिः**=दीप्ति उप (एति) प्राप्त होती है। जुहू से घृत को प्राप्त करके अग्नि चमक उठती है। (२) **वसूयुः**=ये अग्नि की दीप्ति यज्ञशील पुरुषों के लिये वसुओं की कामनावाली होती है, अर्थात् यज्ञशील पुरुष सब वसुओं को प्राप्त करता है।

भावार्थ—यज्ञाग्नि में प्रशस्त हवि व घृत का सम्पर्क होने पर यह यज्ञाग्नि होता के लिये वसुओं को प्राप्त करानेवाली होती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

रोग विध्वंस

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्। प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥ ७ ॥

(१) हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! तू **विश्वाः**=सब **अरातीः**=शत्रुओं को **तपोभिः**=अपनी तापक शक्तियों से **अपदह**=सुदूर भस्म कर दे, **येभिः**=जिन तापक शक्तियों से **जरूथं अदहः**=मांस को दग्ध कर देता है। रोगकृमियों को यह अग्नि भून-सा डाले, उन्हें जला ही दे। (२) **अमीवाम्**=रोगों को **निस्वरम्**=(न्यक्कृतोपतापं) तापक शक्ति से रहित करके **प्रचातयस्व**=प्रकर्षेण नष्ट कर डाल। अग्निहोत्र से रोग की प्रबलता दूर होती है। धीरे-धीरे वह रोग ही जाता रहता है।

भावार्थ—अज्ञाग्नि द्वारा रोगकृमि भस्म कर दिये जाते हैं। रोगों की उपतापक शक्ति कम होकर रोग का ही विध्वंस हो जाता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

'वसिष्ठ-शुक्र-दीदिवः-पावक'

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक। उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥

(१) हे **वसिष्ठ**=अतिशयेन वसुमत्तम-सब वसुओं से सम्पन्न! **शुक्र**=अत्यन्त पवित्र! **दीदिवः**=दीप्त! **पावक**=पवित्र करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **यः ते**=जो आपका बनता है वह **अनीकम्**=बल व तेज को **आ इधते**=सर्वथा दीप्त करता है। वस्तुतः वह आपके तेज से तेजस्वी बनता है। (२) **उत**=और **उ**=निश्चय से **नः**=हमारे से किये जानेवाले **एभिः**=इन **स्तवथैः**=स्तोत्रों के द्वारा **इह स्याः**=यहाँ हमारे जीवन में आप होइये। जितना-जितना हम अपने जीवन में आपका

धारण कर सकेंगे उतना-उतना ही आपके तेज से तेजस्वी बनेंगे। तभी हम वसुमान् पवित्र व दीप्त बनेंगे, औरों को पवित्र करनेवाले होंगे। सो हमारी तो यही कामना है कि आपका स्तवन करते हुए आपको अपने में धारण करें।

भावार्थ–प्रभु का उपासक प्रभु के तेज से तेजस्वी होता है। वसुमान् पवित्र दीप्त बनकर पवित्र करनेवाला होता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सुमनाः

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा। उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **ये मर्ताः ते**=जो मनुष्य आपके बनते हैं, वे **पित्र्यासः**=बड़ों के, पितरों के अनुकूल चलते हुए, उनके कहने में चलते हुए **नरः**=मनुष्य **अनीकम्**=बल व तेज को **पुरुत्रा**=शरीर के अंग-प्रत्यंग में, बहुत प्रदेशों में **विभेजिरे**=विशेषरूप से धारण करते हैं। (२) **उत उ**=और निश्चय से **नः**=हमारे **एभिः**=इन स्तोत्रों के द्वारा **इह**=यहाँ इस जीवन में **सुमनाः**=उत्तम मनवाले **स्याः**=होइये। आपकी उपासना से हम उत्तम मनवाले बन पायें।

भावार्थ–प्रभु का उपासक बड़ों का कहना मानता है। बड़ों की शुश्रूषा करता हुआ यह तेजस्वी बनता है। प्रभु का स्तवन करता हुआ उत्तम मनवाला होता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

आसुरी माया का अभिभव

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः। ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥

(१) प्रभु कहते हैं कि **ये**=जो भी जीव **मे**=मेरी **प्रशस्ताम्**=प्रशस्त **धियम्**=ज्ञानपूर्वक की गई स्तुति को **पनयन्त**=(स्तुवन्ति=कुर्वन्ति) उच्चरित करते हैं, **इमे नरः**=ये नर **वृत्रहत्येषु**=संग्रामों में **शूराः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले होते हैं और **विश्वाः**=सब **अदेवीः**=आसुरी **मायाः**=मायाओं को, छलछिद्र आदि को **अभिसन्तु**=अभिभूत कर लेते हैं। (२) वस्तुतः प्रभुस्तवन से ये प्रभु के तेज से तेजस्वी बनते हैं और सब आसुरभावों का विनाश करके पवित्र जीवनवाले होते हैं।

भावार्थ–प्रभु का स्तवन करते हुए हम अध्यात्म संग्राम में विजयी बनें और आसुरभावों को दूर करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

प्रजावतीषु दुर्यासु

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा। प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥ ११ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वा**=आपको **परि** (चरन्तः)=उपासित करते हुए हम **नृणाम्**=अन्य मनुष्यों के घरों में ही **मा निषदाम**=मत बैठे रहें। दूसरों पर ही बोझ न बने रहें। **मा शूने**=शून्य घरों में, दरिद्रता से व्याप्त घरों में हमारा निवास न हो, और इन अपने भी सम्पन्न घरों में **अशेषसः** (शेष=पुत्र)=पुत्ररहित **मा**=न हों। **अवीरता**=तथा अवीरता से युक्त न हों। (२) हे **दुर्य**=हमारे घरों के रक्षक प्रभो! आपकी उपासना करते हुए हम **प्रजावतीषु दुर्यासु**=उत्तम सन्तानोंवाले घरों में निवास करें।

भावार्थ–हम प्रभु के उपासक बनें। औरों पर बोझ न बने रहें। अपने घरों में दरिद्रता से

रहित होकर, उत्तम सन्तानोंवाले व वीरता से युक्त होकर निवास करें।

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

औरस सन्तान से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ घर

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः । स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥ १२ ॥

(१) **यम्**=जिस **यज्ञम्**=पूजनीय प्रभु को **अश्वी**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वोंवाला पुरुष **नित्यम्**=सदा **उपयाति**=प्रातः-सायं उपासना के समय उपस्थित होता है। वे प्रभु **नः**=हमारे लिये **क्षयम्**=उस गृह को दें जो **प्रजावन्तम्**=उत्तम मनुष्यों से युक्त है तथा **स्वपत्यम्**=उत्तम सन्तानोंवाला है। अर्थात् जिस घर में माता-पिता आदि बड़े व्यक्ति भी उत्तम जीवनवाले हैं तथा जिसमें सब सन्तान भी उत्तम हैं। (२) प्रभु उपासना से हम वह घर प्राप्त हो जो **स्वजन्मना**=अपने से उत्पन्न हुए-हुए, अर्थात् औरस **शेषसा**=सन्तानों से **वावृधानम्**=वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

भावार्थ—हम प्रशस्तेन्द्रिय बनकर सदा घरों में प्रभु का उपासन करें। हमारे घर प्रशस्त प्रजाओंवाले व उत्तम सन्तानोंवाले हों। औरस सन्तानों से वृद्धि को प्राप्त हों।

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

उत्तम संग

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः । त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **अजुष्टात्**=जो कभी भी प्रीतिपूर्वक प्रभु के उपासन में नहीं प्रवृत्त होता उस **रक्षसः**=राक्षसीभाव से **नः पाहि**=हमारा रक्षण करिये। **धूर्तेः**=हिंसक, **अररुषः**=अ-दाता, **अघायोः**=पाप की कामनावाले पुरुष से भी **पाहि**=हमें बचाइये। हम ऐसे पुरुषों के संग में न पड़े रह जायें। (२) हे प्रभो! मैं **त्वा युजा**=आप साथी से, आपको मित्र रूप में पाकर **पृतनायून्**=हमारे पर आक्रमण करनेवाले शत्रु-सैन्यों को, आसुरभावों को **अभिष्याम्**=अभिभूत करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—राक्षसीभावों से हम दूर हों। हमारा संग हिंसक अदाता पापेच्छु पुरुषों के साथ न हो। प्रभु को साथी बनाकर आक्रमण करनेवाले शत्रु-सैन्यों को हम पराभूत करनेवाले हों।

ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

'अग्नि' का लक्षण (प्रगतिशील पुरुष का)

सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः । सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ १४ ॥

(१) **सः इत् अग्निः**=अपने को आगे प्राप्त करानेवाला प्रगतिशील पुरुष तो वही है, जो (क) **अन्यान्**=दूसरे **अग्नीन्**=प्रगतिशील पुरुषों को **अत्यस्तु**=लाँघ जाता है, जो वेद के 'अति समं क्राम' इस उपदेश को क्रियान्वित करता है। (ख) **यत्र**=जिसके घर में **तनयः**=सन्तान **वाजी**=शक्तिशाली होती है तथा **वीळुपाणिः**=दृढ़हस्त होता है, अर्थात् जो सन्तानों को शक्तिशाली व दृढ़ता से कार्यों को करनेवाला बनाता है। (२) (ग) **सहस्रपाथाः**=बहुतों का-सहस्रों का रक्षक होता हुआ, अर्थात् केवल अपने लिये न जीता हुआ **अक्षरा**=न नष्ट होने देनेवाले स्तोत्रों के **समेति**=साथ गति करता है, अर्थात् प्रभु-स्तवन करता हुआ कार्यों में तत्पर होता है। यह प्रभु-स्तवन उसे क्षीणशक्ति नहीं होने देता।

भावार्थ—अग्नि वह है जो (क) अपने बराबरवालों से आगे लाँघ जाता है। (ख) जो

शक्तिशाली दृढ़हस्त सन्तानोंवाला होता है। (ग) जो केवल अपने लिये न जीकर औरों के लिये जीता है और प्रभु स्तवन से शक्ति को प्राप्त करता है।

सूचना—यहाँ प्रथम लक्षण निजू जीवन की प्रगति का सूचक है। दूसरा लक्षण पारिवारिक सौन्दर्य का संकेत कर रहा है तथा तीसरा लक्षण सामाजिक कर्तव्यपरायणता का प्रतिपादक है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

सुजात+वीर

सेद॒ग्निर्यो व॑नुष्य॒तो नि॒पाति॑ स॒मे॒द्धार॒मंह॑स उरु॒ष्यात्। सु॒जा॒तास॒: परि॑ चरन्ति वी॒राः ॥ १५ ॥

(१) **अग्निः स इत्**=अग्रणी प्रभु निश्चय से वे हैं, **यः**=जो **समेद्धारम्**=अपने हृदयों में प्रभु के प्रकाश को दीप्त करनेवालों को, प्रबोधकों को **वनुष्यतः**=हिंसकों से **निपाति**=बचाता है। काम-क्रोध-लोभरूप हिंसकभावों से यह अपने प्रबोधक को रक्षित करता है। **उरुष्यात्**=महान् **अंहसः**=पापों से भी बचाता है। (२) इसी कारण **सुजातासः**=उत्तम जन्मवाले, कुलीन, **वीराः**=वीर पुरुष **परिचरन्ति**=इस प्रभु की परिचर्या करते हैं। वस्तुतः यह उपासना ही उन्हें 'सुजात व वीर' बनाती है।

भावार्थ—प्रभु अपने उपासक को हिंसकों से बचाते हैं वे महान् पापों से रक्षित करते हैं। प्रभु की उपासना उपासक को सुजात व वीर बनाती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ईशानः हविष्मान्

अ॒यं सो अ॒ग्निराहु॑तः पुरु॒त्रा यमीशा॑न॒: समिदि॒न्धे ह॒विष्मा॑न्। परि॒ यमेत्य॑ध्व॒रेषु॒ होता॑ ॥ १६ ॥

(१) **अयम्**=यह **सः**=वह **अग्निः**=अग्नि **पुरुत्रा**=बहुत से यज्ञदेशों में **आहुतः**=आहुत होता है। **यम्**=जिस अग्नि को **ईशानः**=ऐश्वर्यशाली **हविष्मान्**=प्रशस्त हविवाला **इत्**=निश्चय से **समिन्धे**=सम्यक् दीप्त करता है। दरिद्रता यज्ञों को प्रोत्साहित नहीं करती। त्यागवृत्ति से रहित ऐश्वर्य भी यज्ञों का प्रवर्तक नहीं बनता। ऐश्वर्य व त्यागवृत्ति के मेल के होने पर यज्ञों का खूब प्रवर्तन होता है। (२) **यम्**=जिस अग्नि को **अध्वरेषु**=हिंसारहित कर्मों में **होता**=दानपूर्वक अदन की वृत्तिवाला पुरुष **परि एति**=समन्तात् प्राप्त होता है, अर्थात् होतृवृत्तिवाला पुरुष सदा यज्ञों में अग्नि की परिचर्या करता है।

भावार्थ—हम ऐश्वर्यशाली व त्यागवृत्तिवाले बनकर सदा यज्ञों में अग्नि की परिचर्या करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

नित्य यज्ञ व इन्द्रियों का पवित्रीकरण

त्वे अ॑ग्न आ॒हव॑नानि॒ भूरी॑शा॒नास॒ आ जु॑हुया॒म नित्या॑। उ॒भा कृ॒ण्वन्तो॑ वह॒तू मि॒येधे॑ ॥ १७ ॥

(१) हे **अग्ने**=यज्ञ की अग्नि! **ईशानासः**=ऐश्वर्यशाली होते हुए हम **नित्या**=सदा **त्वे**=तेरे में **आहवनानि**=आहुतियों को **भूरि**=बहुत **आजुहुयाम**=आहुत किया करें। (२) इस प्रकार **मियेधे**=इस नित्य के यज्ञ में **उभा वहतू**=इन दोनों इन्द्रियाश्वों को **कृण्वन्तः**=(कृणोति to kill) मार लेनेवाले हों। 'इन्द्रियों को मार लेने' का भाव यह है कि इन्हें सब विषय-वासनाओं से पृथक् कर लें, इन्हें कोई चस्का न लगा रह जाये। इस प्रकार ये इन्द्रियाश्व पवित्र बन जायें।

भावार्थ—हम सदा यज्ञों को करनेवाले हों और इस प्रकार इन्द्रियाश्वों को विषयव्यावृत्त कर,

पवित्र बना लें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

नित्य यज्ञ द्वारा सुरभि पदार्थों का सब देवों में पहुँचना

इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ। प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु॥ १८॥

(१) हे **अग्ने**=यज्ञ की अग्नि! तू **अजस्रः**=अनवरत हुआ-हुआ, कभी न बुझता हुआ, **उ**=निश्चय से **इमा**=इन **वीततमानि**=अतिशयेन कान्त (सुन्दर) **हव्यानि**=हव्य पदार्थों को **देवतातिम् अच्छ**=देवसमूह के प्रति **वक्षि**=ले जा। इन हव्य पदार्थों को तू वायु आदि देवों में पहुँचानेवाला हो। 'अग्नौ प्रास्ता दुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते' अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य तक पहुँचती है। अग्नि से सूक्ष्मकणों में विभक्त हुए-हुए ये हव्य पदार्थ सर्वत्र आकाश में फैल जाते हैं और सारे वायुमण्डल का शोधन करते हैं। (२) **नः**=हमारे इन **सुरभीणि**=सुगन्धित हव्य पदार्थों को **ईम्**=निश्चय से **प्रति व्यन्तु**=प्रति दिन ये सब देव चाहें, अर्थात् प्रतिदिन यज्ञ के द्वारा ये उन सब देवों में पहुँचें।

भावार्थ—नियमित अग्निहोत्र के द्वारा सुगन्धित हव्य पदार्थ सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर सारे वायुमण्डल में पहुँचते रहें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दुर्गति से दूर

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः॥ १९॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **नः**=हमें **अवीरते**=अपुत्रत्व के लिये **मा परादाः**=मत दे डालिये, हम निःसन्तान न हों। **दुर्वाससे**=मैले कुचैले कपड़ों के लिये मत दे डालिये। **नः**=हमें **अस्यै**=इस **अमतये** (want)=निर्धनता व दुर्बुद्धि के लिये (evil mindedness) मत दे डालिये। (२) **नः**=हमें **क्षुधे**=भूख के लिये **मा**=मत दे डालिये और **रक्षसे**=राक्षसीभावों के लिये **मा**=मत दे डालिये। हे **ऋतावः**=ऋतवाले अग्ने, सत्य का रक्षण करनेवाले अग्ने! **नः**=हमें **मा दमे**=न तो घर में और **मा वने**=न ही वन में **आजुहूर्थाः**=हिंसित करिये। आप का उपासन करते हुए हम सर्वत्र सुरक्षित रहें।

भावार्थ—हम उत्तम सन्तान, शुभ वस्त्र, शुभ बुद्धि, तृप्ति व दिव्यभावों को प्राप्त करें। प्रभु हमारे में ऋत का रक्षण करें। क्या तो घर में और क्या वन में हम सर्वत्र सुरक्षित रहें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उभयासः

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ २०॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **नू**=अब **मे**=मेरे लिये **ब्रह्माणि**=ज्ञान की वाणियों को **उच्छशाधि**=उत्कर्षेण उपदिष्ट करिये। हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **त्वम्**=आप **मघवद्भ्यः**=यज्ञशील पुरुषों के लिये **सुषूदः**=उत्तम प्रेरणा को प्राप्त करानेवाले होइये (persuade) अथवा दुःखों को दूर करनेवाले होइये। (२) **ते आ रातौ**=आपके सब ओर दानों में हम **उभयासः स्याम**=अभ्युदय व निःश्रेयस

दोनों को सिद्ध करनेवाले हों। **यूयम्**=आप अपने इन सब देवों के साथ **स्वस्तिभिः**=अविनाशी मंगलों के द्वारा **नः पात**=हमारा रक्षण करिये। आपकी कृपा से सदा शुभ मार्ग पर चलते हुए हम कल्याण को प्राप्त करें।

भावार्थ–प्रभु से हम ज्ञानोपदेश को प्राप्त करें। हम यज्ञशीलों के कष्टों को प्रभु दूर करें। अभ्युदय व निःश्रेयस को सिद्ध करते हुए हम सदा शुभ मार्ग पर चलें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

'उत्तम सुशील योग्य व दीर्घायु' सन्तान

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि।

मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत्॥ २१ ॥

हे **सहसः सूनोः**=बल के पुत्र, अत्यन्त बलवन् **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **सुहवः**=हमारे लिये सुगमता से पुकारने योग्य होइये। **रण्वसन्दृक्**=रमणीय सन्दर्शनवाले आप **सुदीती**=उत्तम दीप्ति से **दिदीहि**=दीप्त होइये। हम अपने हृदयों में सदा आपके प्रकाश को देखें। (२) **सचा**=सहायभूत हुए-हुए **त्वे**=आप (त्वम् सा०) **नित्ये तनये**=औरस पुत्र के विषय में **मा आधक्**=हमें दग्ध न करिये। न तो हम औरस सन्तान के अभाव के कारण दग्ध हों और न ही उसके विकृत आचरण के कारण परेशान हों। हमारे औरस सन्तान 'सुशील, सदाचारी व योग्य' हों। तथा **अस्मत्**=हमारे से **नर्यः**=नरहितकारी **वीरः**=यह वीर सन्तान **मा विदासीत्**=मत उपक्षीण हो जाये। यह अल्पायु होकर हमारे से छिन न जाये।

भावार्थ–हम अपने हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखें। हमारे औरस पुत्र अपने आचरण से हमें सुखी करें तथा ये दीर्घायु हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दुर्भृति व दुर्मति से दूर होते हुए सदा यज्ञशील बनें

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः।

मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त॥ २२ ॥

(१) **अग्ने**=हे परमात्मन्! **नः**=हमें **दुर्भृतये मा**=दुर्भृति के लिये मत दे डालिये, हम अपने भरण के लिये कभी कष्ट में न पड़ जायें। **सचा**=सहायभूत आप **एषु**=इन **देवेद्धेषु**=देवों से दीप्त की जानेवाली **अग्निषु**=अग्नियों के विषय में **प्रवोचः**=प्रकर्षेण उपदेश करिये। हम भी देवों की तरह यज्ञाग्नियों को दीप्त करनेवाले बनें। (२) हे **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज प्रभो! **देवस्य ते**=प्रकाशमय आपके जो हम हैं, उन **अस्मान्**=हम को **भृमात् चित्**=भ्रम से भी **दुर्मतयः**=दुर्मतियाँ कभी भी **मा नशन्त**=मत व्याप्त करें। हम सदा सुमतिवाले होते हुए यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ–हम कभी भरण-पोषण के लिये कष्ट में न पड़ें। देवों की तरह यज्ञाग्नियों को दीप्त करनेवाले हों। कभी भी दुर्मति से न घिर जायें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञशीलता व ऐश्वर्यशालिता

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३ ॥

(१) हे **स्वनीक**=उत्तम तेजवाले **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **स मर्तः**=वह मनुष्य **रेवान्**=ऐश्वर्यशाली होता है, **यः**=जो **अमर्त्ये**=कभी नष्ट न होनेवाले, प्रतिदिन प्रज्वलित होनेवाले तुझमें **हव्यं आजुहोति**=हव्य पदार्थों की आहुति देता है। यज्ञशीलता ऐश्वर्यशालिता का कारण बनती है। (२) **सः**=वह **देवता**=सब कुछ देनेवाला अग्नि **वसुवनिं दधाति**=धन का संविभाग करनेवाले यज्ञशील पुरुष को धारण करता है। वह अग्नि उसका धारण करता है, **यम्**=जिसको कि **सूरिः**=ज्ञानी **अर्थी**=चाहनेवाला पुरुष **पृच्छमानः**=जानने की कामनावाला होता हुआ, पूछता हुआ **एति**=प्राप्त होता है। ज्ञानी जिज्ञासु यज्ञाग्नि के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की कामनावाला होता है। यह यज्ञाग्नि ही तो सब ऐश्वर्य वृद्धि का कारण बनती है।

भावार्थ—जो नित्य प्रति यज्ञ करता है, वह ऐश्वर्यशाली बनता है। यह यज्ञाग्नि दानशील पुरुष का धारण करती है। समझदार जिज्ञासु यज्ञाग्नि के विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अक्षीण आयु व उत्तम सन्तान

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम्।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **नः**=हमारे **महः सुवितस्य**=महान् सुवित को—कल्याण कर्म को **विद्वान्**=जानते हुए आप **सूरिभ्यः**=हम समझदार पुरुषों के लिये **बृहन्तम्**=वृद्धि के कारणभूत **रयिम्**=ऐश्वर्य को **आवहा**=प्राप्त कराइये। इस ऐश्वर्य के द्वारा हम सदा शुभ कर्मों को करने में समर्थ बने रहें। (२) हे **सहसावन्**=बलवाले प्रभो! सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभो! हमारे लिये उस धन को दीजिये **येन**=जिससे **वयम्**=हम **आयुषा अविक्षितासः**=आयु से अक्षीण हुए-हुए, **सुवीराः**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले होते हुए **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—शुभ कर्म करते हुए हम प्रभु के अनुग्रह से उस धन को प्राप्त करें, जो ठीक उपयुक्त हुआ-हुआ हमारे दीर्घ जीवन का कारण बने और हमें वीर सन्तानोंवाला बनाये।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान की वाणियों का उपदेश

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

१.२० पर अर्थ द्रष्टव्य है।

सूचना—पहिले मन्त्र में उस धन के लिये प्रार्थना थी जो हमें अक्षीण आयुवाला व उत्तम वीर सन्तानोंवाला बनाये। सो वह धन यही है कि (क) प्रभु मेरे लिये उत्तम ज्ञान की वाणियों का उपदेश करें, (ख) वे देव प्रभु हम यज्ञशील पुरुषों को उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराये। (ग) हम

प्रभु के दानों को प्राप्त करके अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों को सिद्ध करें। (घ) सब देवों के साथ प्रभु द्वारा शुभ मार्ग में प्रेरित होकर रक्षित हों। इस प्रकार देखने पर मन्त्र के दुबारा आने का उद्देश्य स्पष्ट है।

अगला सूक्त 'आप्री' सूक्त है। इन सूक्तों में यज्ञसम्बद्ध सब पदार्थों का उल्लेख होता है। इन सब पदार्थों के ठीक संग्रह से यह होता 'देवान् आप्रीणाति' देवों को प्रीणित करता है—

अथ पञ्चमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—आप्रियः ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इध्मः, समिद्धः अग्निः वा

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन्।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **अद्य**=आज **नः**=हमारी **समिधम्**=समिधा को **जुषस्व**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाला हो **यजतम्**=संगतिकरण योग्य-प्रशस्त **धूमम्**=धूयें को **ऋण्वन्**=प्रेरित करता हुआ तू **बृहत् शोच**=खूब दीप्त हो। अग्निहोत्र का धूंआ सचमुच 'यजत' है, यह सब रोगकृमियों का संहार करनेवाला है। (२) हे अग्ने! तू **स्तूपैः**=अपनी सन्तप्त रश्मियों से **दिव्यं सानु**=आकाश के समुच्छ्रित (उन्नत) प्रदेश को **उपस्पृश**=छूनेवाला हो। और **सूर्यस्य रश्मिभिः**=सूर्य की किरणों के साथ **संततनः**=सम्यक् विस्तारवाला हो। अर्थात् सूर्योदय होने पर अग्निकुण्डों में तेरा आधान किया जाये। सूर्य-किरणें जब वृक्ष के हरे पत्तों पर पड़ती हैं तो ये पत्ते अग्नि के जलने से उत्पन्न कार्बानिक ऐसिड गैस (Co^2) को फाड़ के कार्बन को अपने पास रख लेते हैं और ऑक्सिजन को फिर वायुमण्डल में भेज देते हैं। सो अग्निहोत्र सूर्योदय के होने पर ही होता है।

भावार्थ—हम यज्ञाग्नि में समिधा को डालें। अग्नि प्रशस्त धूम को प्रेरित करता हुआ चमके। इस की सन्तप्त रश्मियाँ आकाश के शिखर को छूएँ। हम सूर्योदय होने पर यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—आप्रियः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नराशंसः

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या॥ २ ॥

(१) **ये**=जो **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष हैं, वे **सुक्रतवः**=उत्तम प्रज्ञान व शक्तिवाले होते हैं, **शुचयः**=पवित्र जीवनवाले होते हैं तथा **धियन्धाः**=बुद्धिपूर्वक उत्तम कर्मों का धारण करनेवाले होते हैं। ये देव **उभयानि हव्या**=अग्निहोत्र के समान दोनों समयों में हव्य पदार्थों को ही **स्वदन्ति**=खाते हैं। (२) **एषाम्**=इन देववृत्ति के पुरुषों की **यज्ञैः यजतस्य**=यज्ञों से **यजनीय**= उपासनीय **नराशंसस्य**=यज्ञाग्नि की **महिमानम्**=महिमा को **उपस्तोषाम**=उपस्तुत करते हैं। देववृत्ति के पुरुष ही यज्ञशील होते हैं। सो यह यज्ञाग्नि इन देवों की ही है। यह यज्ञाग्नि यज्ञों के द्वारा ही उपासनीय होती है। यह नराशंस है, नरों से शंसनीय है। सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली होने से यह शंसनीय तो होती ही है।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष सदा यज्ञशील होते हैं। ये यज्ञाग्नि इन्हें उत्तम प्रज्ञानवाला, पवित्र, पवित्र बुद्धि व कर्मोंवाला तथा हव्य पदार्थों का दोनों काल सेवन करनेवाला बनाती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इडः

ईळेन्यं॑ वो॒ असु॑रं सु॒दक्ष॑म॒न्तर्दू॒तं रोद॑सी स॒त्यवा॑चम्।
म॒नु॒ष्वद॒ग्निं मनु॑ना॒ समि॑द्धं॒ सम॑ध्व॒राय॒ सद॒मिन्म॑हेम॥ ३॥

(१) **मनुना समिद्धम्**=विचारशील पुरुष के द्वारा दीप्त किये गये **अग्निम्**=अग्नि को **मनुष्वत्**=एक विचारशील पुरुष की तरह, अर्थात् विचारशील बनते हुए हम **अध्वराय**=यज्ञ के लिये **सदं इत्**=सदा ही **संमहेम**=पूजित करते हैं। (२) उस अग्नि को हम पूजित करते हैं जो **वः ईडेभ्यम्**=तुम्हारे से स्तुति किये जाने योग्य है **असुरम्**=बल का संचार करनेवाला है, **सुदक्षम्**=उत्तम उन्नति व विकास (दक्ष) का कारण है, **रोदसी अन्तः**=द्यावापृथिवी के बीच में दूत के समान है, सब हव्य पदार्थों को द्यावापृथिवी के अन्तर्गत सब देवों में पहुँचानेवाला है। **सत्यवाचम्**=हमें सत्य वाणीवाला बनाता है। 'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि'=यहाँ अग्नि साक्षिक ही सत्य का व्रत लिया जाता है। अग्नि सत्य पर दृढ़ है, हम भी सत्य पर दृढ़ हों।

भावार्थ—अग्नि उपासनीय है। यह हमें सबल बनाती है, हमारी शक्तियों का विकास करती है। हव्य पदार्थों को सब देवों में पहुँचाती है। हमें सत्यवाक् बनाती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

बर्हिः

स॒प॒र्यवो॒ भर॑माणा अ॒भि॒ज्ञु प्र वृ॑ञ्जते॒ नम॑सा ब॒र्हिर॒ग्नौ।
आ॒जु॒ह्वा॑ना घृ॒तपृ॑ष्ठं॒ पृष॑द्व॒दध्व॑र्यवो ह॒विषा॑ मर्जयध्वम्॥ ४॥

(१) **सपर्यवः**=पूजा की कामनावाले लोग, **अभिज्ञु**=अभिगतजानुक होकर, घुटने जिसमें जुड़े हैं, उस आसन विशेष पर बैठकर, **बर्हिः**=हृदयान्तरिक्ष को **नमसा भरमाणाः**=नमन की भावना से भरते हुए **अग्नौ**=यज्ञाग्नि में **प्रवृञ्जते**=हव्य पदार्थों को छोड़ते हैं। हव्य पदार्थों की अग्नि में आहुति देते हैं। (२) **अध्वर्यवः**=हे यज्ञ को करनेवाले लोगो! **घृतपृष्ठम्**=घृत संसिक्त पृष्ठवाले इस अग्नि को **पृषद्वत्**=घृत के स्थूल बिन्दुओं से युक्त रूप में **हविषा**=हवि से **आजुह्वानाः**=आहुत करते हुए **मर्जयध्वम्**=अपने जीवन को शुद्ध बनाओ। वस्तुतः जितना-जितना यज्ञ अधिक करते हैं, उतना-उतना ही जीवन अधिक पवित्र होता जाता है।

भावार्थ—हृदय में नम्रता को धारण करके हम अग्नि में हव्य पदार्थों की आहुतियाँ दें। जितना अधिक यज्ञ होगा, उतना ही अधिक जीवन पवित्र बनेगा।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**आप्रियः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

देवीर्द्वारः

स्वा॒ध्यो॒३॒॑ वि दुरो॑ देव॒यन्तोऽशि॑श्रयू रथ॒युर्दे॒वता॑ता।
पू॒र्वी शिशुं॒ न मा॒तरा॑ रिहा॒णे सम॒ग्रुवो॒ न सम॑नेष्वञ्जन्॥ ५॥

(१) **स्वाध्यः**=उत्तम कर्मोंवाले, **देवयन्तः**=दिव्यगुणों को अपनाने की कामनावाले, **रथयुः**=

शरीररूप रथ को उत्तम बनानेवाले लोग **देवताता**-यज्ञों के निमित्त **दुरः**=यज्ञगृह द्वारों को **वि अशिश्रयुः**=विशेषरूप से आश्रित करते हैं। यज्ञ ही जीवन में हमें 'सुकर्मा, दिव्यगुणयुक्त व प्रशस्त शरीर रथ-सम्पन्न' बनाते हैं। (२) **न**=जिस प्रकार **पूर्वी**=पालन व पूरण करनेवाले **मातरा**-माता-पिता **रिहाणे**=आस्वाद लेते हुए **शिशुम्**-बच्चे को **समञ्ज्ञन्**=अलंकृत करते हैं, गौवें बछड़े को चाटकर साफ़ कर डालती हैं-उसी प्रकार ये द्वार **समनेषु**-यज्ञों में यज्ञकर्त्ता को अलंकृत करनेवाले होते हैं। अथवा **न**=जैसे **अग्रुवः**=नदियाँ जलों से क्षेत्रों को सिक्त करती हैं, उसी प्रकार ये यज्ञभूमि के दिव्य द्वार अग्नि को घृत से सिंचवाने का कारण बनते हैं, इन द्वारों से यज्ञभूमि में आकर अध्वर्यु अग्नि को घृत सिक्त करते हैं।

भावार्थ-यज्ञगृह के द्वारों से यज्ञभूमि में आकर यज्ञ करते हुए लोग 'सुकर्मा, दिव्यगुण-सम्पन्न व उत्तम शरीर-रथवाले' बनते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आप्रियः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

उषासानक्ता

उ॒त योष॑णे दि॒व्ये म॒हि न॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः ।
ब॒र्हि॒षदा॑ पुरुहू॒ते म॒घोनी॒ आ य॒ज्ञिये॑ सुवि॒ताय॑ श्रयेताम् ॥ ६ ॥

(१) **उत**=और **उषासानक्ता**=ये उषाकाल व रात्रि-प्रातः व सायं-दोनों अग्निहोत्र के समय हैं। इन्हीं दोनों समयों पर अग्निहोत्र का विधान है। ये प्रातः-सायं **नः**-हमारे लिये **योषणे**=बुराई को दूर करनेवाले तथा अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले हों। **दिव्ये**=ये हमारे लिये दिव्य हों, प्रकाशमय हों अथवा हमारे जीवनों में दिव्यगुणों को जन्म देनेवाले हों। ये **सुदुघा धेनुः इव**-सुख-सन्दोह्य गौ के समान हों। जैसे वह गौ प्रातः-सायं दूध को देती है, इसी प्रकार ये हमारे लिये ज्ञानदुग्ध को देनेवाले हों। (२) **बर्हिषदा**=ये यज्ञ के कुशासन पर बैठनेवाले हों, हम प्रातः-सायं दर्भासन पर स्थित होकर अग्निहोत्र को करनेवाले हों। **पुरुहूते**-ये बहुतों से पुकारे गये उषासानक्ता (प्रातः-सायं) **मघोनी**=हमारे लिये प्रशस्त धनों को प्राप्त करायें। **यज्ञिये**=यज्ञ के लिये उत्तम ये उषासानक्ता **सुविताय**=सुवित के लिये, सदाचरण के लिये **आश्रयेताम्**-आश्रय करें। हम प्रातः सायं यज्ञ करते हुए दिनभर शुभ कर्मों को ही करनेवाले बनें।

भावार्थ-हमारे प्रातः व सायंकाल यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में बीतें। प्रातः-सायं यज्ञ करते हुए हम अवशिष्ट दिन को भी सदाचरण से ही (सुवित से ही) बितायें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आप्रियः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दैव्या होतारा प्रचेतसा

विप्रा॑ य॒ज्ञेषु॒ मानु॑षेषु का॒रू मन्ये॑ वां जा॒तवे॑दसा॒ यज॑ध्यै ।
ऊ॒र्ध्वं नो॑ अध्व॒रं कृ॒तं हवे॑षु॒ ता दे॒वेषु॑ वनथो॒ वार्या॑णि ॥ ७ ॥

(१) गृहस्थ में पति पत्नी ही मुख्य पात्र हैं। ये दोनों **विप्रा**=(वि+प्रा) अपना विशेषरूप से पूरण करनेवाले हैं। **मानुषेषु**=मानवहितकारी **यज्ञेषु**=यज्ञों में ये **कारू**=बड़ी कुशलता से कार्यों को करनेवाले हैं। अर्थात् कलापूर्ण ढंग से कार्यों को करते हैं। **जातवेदसा**=(जात धनौ) उत्पन्न किये हुए धनवाले **वाम्**=आप दोनों को **यजध्यै** यज्ञ करने के लिये **मन्ये**-स्तुत करता हूँ। 'धन कमा करके आप यज्ञ करते हो' इसलिए मैं आपका शंसन करता हूँ। (२) प्रभु कहते हैं कि **हवेषु**=प्रार्थनाओं के होने पर **नः**=हमारे से उपदिष्ट **अध्वरम्**=इस यज्ञ को **ऊर्ध्वं कृतम्**=सब

से ऊपर–मुख्य करो। अर्थात् प्रभु प्रार्थना के साथ तुम सदा यज्ञ करनेवाले बनो। **ता**=वे आप दोनों **देवेषु**=सब देवों में **वार्याणि**=जो वरणीय बातें हैं उन्हें **वनथः**=सेवन करते हो। सूर्य की तरह आप ज्योतिर्मय जीवनवाले बनते हो तो वायु के समान क्रियाशील होते हो। चन्द्रमा के समान आप आह्लादमय होते हो तो अग्नि के समान दोषों का दहन करनेवाले बनते हो। इस प्रकार सब देवों में जो वरणीयवाले हैं, उन्हें आप अपनाने का प्रयत्न करते हो।

भावार्थ–घर में पति–पत्नी विप्र बने, यज्ञशील हों। धनोत्पादन करके सदा धनों का उपयोग यज्ञों में करें। सब देवों के गुणों को अपने में धारण करो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आप्रियः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

भारती इडा सरस्वती

आ भार॑ती॒ भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः।

सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक्ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स॑दन्तु॥ ८ ॥

३.४.८ पर अर्थ द्रष्टव्य है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आप्रियः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

त्वष्टा

तन्न॑स्तु॒रीप॒मध॑ पोषयि॒त्नु देव॑ त्वष्ट॒र्वि र॑रा॒णः स्य॑स्व।

यतो॑ वी॒रः क॑र्म॒ण्यः॑ सु॒दक्षो॑ यु॒क्तग्रा॑वा॒ जाय॑ते दे॒वका॑मः॥ ९ ॥

३.४.९ पर अर्थ द्रष्टव्य है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आप्रियः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वनस्पतिः

वन॑स्प॒तेऽव॑ सृ॒जोप॑ दे॒वान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति।

सेदु॒ होता॑ स॒त्यत॑रो यजाति॒ यथा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मानि॒ वेद॑॥ १० ॥

३.४.१० पर अर्थ द्रष्टव्य है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आप्रियः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

स्वाहाकृतयः

आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑।

ब॒र्हिर्न॑ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम्॥ ११ ॥

३.४.११ पर अर्थ द्रष्टव्य है।

अगले सूक्त में 'अग्नि' नाम से प्रभु का उपासन है–

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

घृतान्नः पावकः

अ॒ग्निं वो॑ दे॒वम॒ग्निभिः॑ स॒जोषा॒ यजि॑ष्ठं दू॒तम॑ध्व॒रे कृ॑णुध्वम्।

यो मर्त्ये॑षु॒ निध्रु॑विर्ऋ॒तावा॒ तपु॑र्मूर्धा घृ॒तान्नः॑ पाव॒कः॥ १ ॥

(१) **अग्निम्**=उस अग्रेणी **वः देवम्**=तुम्हारे जीवनों को प्रकाशित करनेवाले प्रभु को **अध्वरे**-इस जीवनयज्ञ में **अग्निभिः**-अग्नियों के साथ **सजोषाः**-समानरूप से प्रीतिपूर्वक उपासना करनेवाले होते हुए **यजिष्ठं दूतम्**=अत्यन्त संगतिकरण योग्य व पूज्य **दूतम्**-ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाला **कृणुध्वम्**=करो। प्रभु के ज्ञान-सन्देश को तुम सुननेवाले बनो। इसके लिये तुम सदा अग्नियों के साथ समानरूप से प्रीतिपूर्वक उपासना करनेवाले बनो। माता-पिता, आचार्य ही अग्नि हैं। इनके समीप रहते हुए सदा उपासनामय जीवनवाले बनो। (२) यही उस प्रभु की प्राप्ति का मार्ग है **यः**-जो **मर्त्येषु**=मरणधर्मा प्राणियों में **निध्रुविः**-नितरां ध्रुव हैं। **ऋतावा**=ऋत का रक्षण करनेवाले हैं। **तपुर्मूर्धा**=तपस्वियों के शिरोमणि हैं। **घृतान्नः**-ज्ञानरूप अन्न को प्राप्त करानेवाले हैं (घृतं=दीप्ति) और इस ज्ञानरूप अन्न के द्वारा **पावकः**=हमारे जीवनों को पवित्र बनानेवाले हैं।

भावार्थ-हम 'माता-पिता व आचार्य' रूप अग्नियों के साथ प्रभु की उपासना करते हुए प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें ज्ञानरूप अन्न देकर पवित्र जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** स्वरः-**पञ्चमः** ॥

महान् संवरण का हटना

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद् व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति॥ २ ॥

(१) उस सत्यस्वरूप प्रभु का स्वरूप इस प्रकृति के हिरण्यपात्र से छिपा हुआ है 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'। यह हिरण्मय पात्र ही यहाँ 'महान् संवरण' कहा गया है। जब कभी यह संवरण हटता है तो उस प्रभु का दर्शन होता है, उसकी ज्ञान वाणी सुन पड़ती है। **यदा**=जब **महः संवरणात्**=इस महान् संवरण से **व्यस्थात्**=प्रभु हमारे लिये अलग हो जाते हैं तो **अविष्यन्**=हमारे रक्षण की कामना करते हुए **यवसे**=बुराइयों को हमारे से पृथक् करने के लिये **अश्वः न**=अश्व के समान **प्रोथत्**=गर्जना करते हुए होते हैं वे प्रभु घोड़े की तरह गर्जना करते हुए आते हैं और 'ऋग् यजु साम' रूप त्रिविध वाणी का उच्चारण करते हैं। यह वाणी ही हमारे से बुराइयों को दूर करने का साधन बनती है। (२) **आत्**=अब **अस्य शोचिः अनु**-इस प्रभु की ज्ञानदीप्ति की अनुसार **वातः वाति**=हमें प्रेरणा प्राप्त होती है (वा गतौ)। **अध**=अब इस प्रभु की प्रेरणा के प्राप्त होने पर **ते व्रजनम्**=हे उपासक तेरा गमन **कृष्णम्**=बड़ा आकर्षक **अस्ति**-होता है। प्रभु प्रेरणा के अनुसार चलते हुए उपासक के सब कार्य उत्तम होते हैं।

भावार्थ-प्रकृति के आवरण के हटने पर प्रभु का दर्शन होता है। इस समय प्रभु की ओर से ज्ञान व प्रेरणा प्राप्त होती है। इस प्रेरणा के अनुसार चलते हुए उपासक का जीवन बड़ा सुन्दर होता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** स्वरः-**पञ्चमः** ॥

'नवजात' वृषा प्रभु

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्॥ ३ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार महान् संवरण के हटने पर हे **अग्नि**=परमात्मन्! **नवजातस्य**=(नु स्तुतौ) स्तुत्य प्रादुर्भाववाले **यस्य**-जिस **वृष्णः**-शक्तिशाली **ते**-तेरे **अजराः**-जीर्ण न होनेवाले **इधानाः**=प्रकाश **उच्चरन्ति**=उद्गत होते हैं। (२) तब हे प्रभो! **द्यां अच्छा**-मस्तिष्करूप द्युलोक

की ओर **अरुषः धूमः एति**=आरोचमान वासनाओं का कम्पक (धू कम्पने) यह ज्ञान प्राप्त होता है। हे **अग्ने**=प्रभो! आप **दूतः**=ज्ञान-सन्देश को देनेवाले होते हुए **हि**=निश्चय से **देवान्**=इन देववृत्ति के पुरुषों को समीप से=सम्यक् प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–प्रभु का प्रादुर्भाव होते ही वह ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है जो सब वासनाओं को कम्पित करके दूर कर देता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रभु का तेज व ज्ञान ज्वाला

वि यस्यं ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः।
सेनैव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि॥ ४॥

(१) हे प्रभो! **यस्य ते**=जिन आपका **पाजः**=बल **पृथिव्याम्**=इस शरीररूप पृथिवी में **तृषु**=शीघ्र ही **अश्रेत्**=आश्रय करता है, **यद्**=जब कि यह उपासक **जम्भैः**=अपने दाँतों से **अन्ना**=अन्नों को ही **सं अवृक्त**=(खादति) खाता है। शरीर-पोषण के लिये अन्नों का ही प्रयोग करनेवाला यह उपासक अपने में प्रभु की शक्ति का अनुभव करने लगता है। (२) हे प्रभो! उस समय **ते**=आपकी **प्रसितिः**=ज्ञान की ज्वाला, **सृष्टा सेना इव**=शत्रु के प्रति आक्रमण के लिये आज्ञा दी गयी सेना के समान **एति**=काम-क्रोध-लोभ आदि पर आक्रमण करती है। हे **दस्म**=दर्शनीय प्रभो! **यवं न**=यव के समान-बुराई को दूर करनेवाले व अच्छाई को हमारे साथ मिलानेवाले के समान **जुह्वा**=अपनी ज्ञान-ज्वाला से **विवेक्षि**=हमारे हृदयों को व्याप्त करते हैं। आपका प्रादुर्भाव होते ही सब वासना समूह विलीन हो जाती हैं।

भावार्थ–हम सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करते हैं तो प्रभु का तेज हमारे शरीर में आश्रय करता है। उस समय प्रभु की ज्ञान-ज्वाला में सब वासनाएँ भस्म हो जाती हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दिन-रात प्रभु का स्मरण

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः॥ ५॥

(१) **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **तं अग्निम् इत्**=उस अग्रेणी प्रभु को ही **दोषा**=रात्रि में तथा **तम्**=उसको ही **उषसि**=दिन के प्रारम्भ में **मर्जयन्त**=अपने अन्दर दीप्त करते हैं। जो प्रभु **यविष्ठम्**–अधिक से अधिक हमारे से बुराइयों को दूर करनेवाले हैं (यु अमिक्षणे)। **अत्यं न**=जो हमारे लिये सततगामी अश्व के समान हैं–हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचानेवाले हैं। (२) ये नर पुरुष इस **अतिथिम्**=निरन्तर गतिवाले प्रभु को **अस्य योनौ**=इसके मूल प्रादुर्भाव स्थान हृदय में **निशिशानाः**=दीप्त करनेवाले होते हैं। इस **आहुतस्य**=समन्तात् जिसके दान विद्यमान हैं, उस **वृष्णः**=शक्तिशाली प्रभु की **शोचिः**=दीप्ति **दीदाय**=चमकती है। जितना-जितना हम प्रभु का ध्यान करते हैं, उतना-उतना ही प्रभु की दीप्ति को अनुभव करते हैं। प्रभु की महिमा सर्वत्र दिखती है, पर प्रभु का प्रकाश हृदयों में ही होता है। सो यह हृदय ही प्रभु की योनि है–प्रादुर्भाव का स्थल है।

भावार्थ–दिन के व रात्रि के प्रारम्भ में सदा प्रभु का स्मरण करें। हृदय में प्रभु के दर्शन का यत्न करें। प्रभु की दीप्ति सर्वत्र दीप्त हो रही हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वह अद्भुत प्रकाशमय रूप!

सुसंदृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम्॥ ६ ॥

(१) हे **स्वनीक**=उत्तम तेजवाले प्रभो! **यद्**=जब आप **रुक्मः न**=इस देदीप्यमान सूर्य के समान **उपाके**=हमारे समीप ही **विरोचसे**=चमकते हैं तो **ते प्रतीकम्**-आपका रूप **सुसन्दृक्**-अत्यन्त ही दर्शनीय होता है। प्रभु आदित्यवर्ण हैं, हजारों सूर्यों की दीप्ति के समान प्रभु की दीप्ति है। अद्भुत ही वह प्रकाशमयरूप है। (२) हे प्रभो! **ते शुष्मः**=आपका शत्रुशोषक बल इस प्रकार उपासक को **एति**-प्राप्त होता है, **न**-जैसे कि **दिवः तन्यतुः**=आकाश से विद्युत् (अशनि)। आकाश से गिरती हुई विद्युत् वृक्षों को छिन्न-भिन्न कर देती है, इसी प्रकार प्रभु की शक्ति वासनाओं को छिन्न-भिन्न कर देती है। हे प्रभो! **सूरः न**=सूर्य के समान **चित्रः**-अद्भुत दीप्तिवाले आप **भानुम्**=अपनी दीप्ति को **प्रति चक्षि**-उपासक के लिए प्रदर्शित करते हैं।

भावार्थ–सूर्य के समान दीप्तिवाले प्रकाशमय वे प्रभु हैं। उपासक प्रभु के प्रकाश को देखता है और अन्दर विद्युत् के समान शक्ति को अनुभव करता है। यह शक्ति उसे वासनारूप शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ करती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

अग्निहोत्र तथा 'स्वस्थ दीर्घ जीवन'

यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि॥ ७ ॥

(१) हे प्रभो! **यथा**=जिस प्रकार हम **वः**=आपकी **अग्नये**=इस आह्वनीय अग्नि के लिए **इडाभिः**=इन वेद-वाणियों के उच्चारण के साथ **च**-तथा **घृतवद्भिः**=उत्तम घृतोंवाले **हव्यैः**=हव्य पदार्थों के द्वारा **परिदाशेम**=आहुतियों को सर्वथा देनेवाले हों, उसी प्रकार आप हे **अग्ने**-प्राणो! **नः**=हमें **तेभिः**=उन **अमितैः**=बहुत अधिक (अ+मित) **महोभिः**=तेजों से तथा **शतम्**-शतवर्ष पर्यन्त चलनेवाले **आयसीभिः पूर्भिः**=लोहनिर्मित शरीरों से **निपाहि**=नितरां रक्षित करिये। (२) अग्निहोत्र के द्वारा सब रोगकृमियों का तथा जात व अज्ञात सब व्याधियों का विनाश होकर हमारा तेज बढ़े तथा हमारे शरीर स्वस्थ लोहनिर्मित से बनें। हम सौ वर्ष तक तो अवस्य ही जीनेवाले हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

अधर्षणीय तेजस्विता व ज्ञान-वाणियाँ

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः॥ ८ ॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुत्र-शक्ति के पुञ्ज प्रभो! **याः**=जो **दाशुषे**-आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले के **ते**=आपकी **अधृष्टाः**-शत्रुओं से अधर्षणीय तेज की ज्वालायें हैं, **वा**=या आपकी जो **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ हैं। **याभिः**-जिनके द्वारा आप **नृवतीः**=प्रशस्त पुत्रोंवाली प्रजाओं को **उरुष्यः**=रक्षित करते हैं। प्रजाओं का रक्षण 'तेज व ज्ञान' के द्वारा ही तो

होता है। हे शक्ति के स्वामिन्! **ताभिः**=उन तेजो-ज्वालाओं व ज्ञानवाणियों से **नः**=हमारा **निपाहि**=रक्षण करिये। (२) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! आप **स्मत्**=प्रशस्त **सूरीन्**=ज्ञानी **जरितॄन्**=स्तोताओं को भी नितरां रक्षित करिये। तेजस्विता के कारण ये रोगों से आक्रान्त न हों तथा ज्ञान इन्हें वासनाओं के आक्रमण से बचानेवाला हो।

भावार्थ—हे प्रभो! आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले पुरुष के लिये आपकी अधर्षणीय तेजस्विता व ज्ञान की वाणियाँ हैं। इनके द्वारा आप हमारा भी रक्षण करिये। ज्ञानी स्तोताओं को आपकी यह तेजस्विता व ज्ञानवाणी रक्षित करनेवाली हो।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पूता स्वधितिः इव

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः।

आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

(१) **यत्**=जब **पूता स्वधितिः इव**=पवित्र परशु के समान, खूब तीक्ष्ण परशु के समान, **शुचिः**=वे पवित्र प्रभु **निर्गात्**—प्रकृति के महान् संवरण से बाहिर आ जाते हैं, अर्थात् जब एक उपासक इस हिरण्मय पात्र के आवरण को हटाकर प्रभु का दर्शन करता है तो प्रभु उसके जीवन में **स्वया**=अपनी कृपा-शक्ति से, सामर्थ्य से तथा **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार से **रोचमानः**=दीप्त होते हैं। यह उपासक प्रभु की शक्ति से दीप्त होता हुआ विस्तृत सामर्थ्यवाला होता है और यह सब वासनाओं को कुल्हाड़े से काट डालता है। (२) **यः**=जो **उशेन्यः**=कमनीय प्रभु हैं, वे **सुक्रतुः**=उत्तम शक्ति व प्रज्ञानवाले हैं, **पावकः**=हमें पवित्र करनेवाले हैं। **मात्रोः**=ये प्रभु 'विद्या व श्रद्धा' रूप दो माताओं से **आजनिष्ट**=सर्वत्र प्रादुर्भूत होते हैं। **देवयज्याय**=ये प्रभु देववृत्ति के व्यक्तियों के साथ संगतिकरणवाले होते हैं। अर्थात् देववृत्ति के व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं। वस्तुतःप्रभु सम्पर्क में ही दिव्यगुणों की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—प्रभु 'पवित्र परशु' के समान हैं। उपासक के अन्दर शक्ति व गुणों के विस्तार से दीप्त होते हैं। विद्या व श्रद्धा के मेल से प्रभु का प्रकाश होता है। ये उत्तम शक्ति व प्रज्ञानवाले पावक प्रभु हमारे साथ दिव्यगुणों का सम्पर्क करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीप्त सौभाग्य

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।

विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **नः**=हमारे लिये **एता**=इन **सौभगा**=उत्तम ऐश्वर्यों को **दिदीहि**=दीप्त करिये। हम **क्रतुम्**=यज्ञों का तथा **सुचेतसम्**=उत्तम प्रज्ञानवाले पुरुषों का **अपि वतेम**=सम्भजन करनेवाले हों उत्तम संग में रहते हुए हम सदा यज्ञशील हों। (२) हे प्रभो! **गृणते**=ज्ञानोपदेष्टा के लिये **च**=तथा **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये ही **विश्वा**=हमारे सब धन **सन्तु**=हों। हम सदा धनों को इन गुरुओं व प्रभु भक्तों को अर्पित करनेवाले हों जिससे लोकहित के कार्यों में इनका विनियोग हो। हे देवो! **यूयम्**=आप **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा **नः पात**=हमारा रक्षण करिये।

भावार्थ—हमारे सौभाग्य दीप्त हों। हम यज्ञों व ज्ञानियों के सम्पर्क में रहें। धनों को ज्ञानियों

व स्तोताओं के लिये देनेवाले हों। सब देव सदा हमारा कल्याण करें।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'वसिष्ठ' व 'अग्नि' ही हैं–

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

हव्य+मति

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम्।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

(१) **वः**=तुम्हारे **शुक्राय**–(शुच्) दीप्त करनेवाले **भानवे**-प्रकाशस्वरूप प्रभु की प्राप्ति के लिये **सुपूतं हव्यं प्रभरध्वम्**=पवित्र हव्य का भरण करो, दानपूर्वक अदन करनेवाले बनो (हु दानादनयोः)। **च**=और उस **अग्नये**=अग्रणी प्रभु की प्राप्ति के लिये **मतिम्**=मननपूर्वक की गयी स्तुति का भरण करो। (२) **यः**=जो प्रभु **दैव्यानि**=दिव्यगुणों की सम्पत्ति को अपनानेवाले **मानुषा**=विचारपूर्वक कर्मों के करनेवाले **जनूंषि अन्तः**=मनुष्यों के अन्दर **विद्मना**=प्रज्ञान के साथ **जिगाति**–प्राप्त होता है। हृदयस्थ प्रभु इन व्यक्तियों के लिये ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ–हम प्रभु की प्राप्ति के लिये दानपूर्वक अदनवाले, यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनें तथा मननपूर्वक प्रभु का स्तवन किया करें। देववृत्ति के विचारशील पुरुषों के अन्दर प्रभु ज्ञान के साथ प्राप्त होते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तुरणः यविष्ठः

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥

(१) **सः**=वह **गृत्सः** (गृणाति)=सृष्टि के प्रारम्भ में वेदज्ञान का उपदेश देनेवाला **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **चित्**=निश्चय से **तरुणः**=हमें काम आदि शत्रुओं से तरानेवाला **अस्तु**=हो। **यतः**–(यदा) जब **यविष्ठः**=सब बुराइयों को हमारे से पृथक् करनेवाला यह प्रभु **मातुः**–इस वेद माता के द्वारा, इसके नियमित स्वाध्याय से **अजनिष्ट**=हमारे हृदयों में प्रादुर्भूत होता है। तब यह प्रभु हमारे लिये 'यविष्ठ' हो, 'तरुण' हो। (२) ये प्रभु वे हैं **यः**=जो **वना**=सम्भजनीय धनों को **संयुवते**=हमारे साथ जोड़ते हैं और **शुचिदन्**=पवित्र दाँतोंवाले होते हुए **चित्**=निश्चय से **भूरि अन्ना**=पालन व पोषण करनेवाले अन्नों को **इत्**=ही **सद्यः**–शीघ्र **सं अत्ति**–सम्यक् खाते हैं। प्रभु-भक्त खाने की क्रिया को भी प्रभु के ही अर्पित करता है। एवं प्रभु-भक्त को चाहिए कि पवित्र दाँतोंवाला होता हुआ पौष्टिक अन्नों का ही सेवन करे। इस क्रिया को भी प्रभु से होता हुआ जाने।

भावार्थ–जब वेद के निरन्तर स्वाध्याय से प्रभु का प्रकाश होता है तो ये प्रभु हमें तरानेवाले व वासनाओं से पृथक् करनेवाले होते हैं। प्रभु प्राप्ति के लिये हम सात्त्विक अन्नों का सेवन करें। प्रभु हमें सम्भजनीय धनों को प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु की उपासना व पवित्रता

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच॥ ३॥

(१) **अस्य देवस्य**=इस प्रकाशमय प्रभु के **संसदि**=साथ (सं) स्थित होने पर (सद्), **अनीके**=इस प्रभु के बल में, अर्थात् प्रभु की शक्ति को प्राप्त करने पर **मर्तासः**=मनुष्य **यम्**=जिस **श्येतम्**=श्वेत शुभ्र जीवन को **जगृभ्रे**=ग्रहण करते हैं, अर्थात् प्रभु की उपासना से जीवन शुद्ध बनता है। (२) **यः**-जो **पौरुषेयीम्**=पुरुषों के लिये हितकर **गृभम्**=ग्रहणीय बातों का **नि उवोच**=नितरां प्रतिपादन करता है, वह **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **आयवे**=गतिशील मनुष्य के लिये **दुरोकम्**=इस अपवित्र हुए-हुए शरीरगृह को **शुशोच**=पुनः शुचि (पवित्र) कर देते हैं। प्रभु की ज्योति से यह दीप्त हो उठता है।

भावार्थ—प्रभु के सान्निध्य में जीवन शुभ्र बनता है। प्रभु पुरुषों से ग्रहणीय बातों का उपदेश करते हुए अपवित्र जीवन को पवित्र कर डालते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उपासना से 'ज्ञान अमृतत्व व सौमनस्य'

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम॥ ४॥

(१) **अयम्**=यह **कविः**=क्रान्तदर्शी **प्रचेताः**=प्रकृष्ट-चेतनावाला **मृतः**=अविनाशी प्रभु इन **अकविषु**=अल्पज्ञ **मर्तेषु**=मनुष्यों में **निधायि**—स्थापित होता है, प्रभु प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्थित होकर ज्ञान दे रहे हैं, वे प्रभु ही इस ज्ञान के द्वारा अमृतत्व प्राप्त कराते हैं। (२) **सहस्वः**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! **सः**=वे आप **अत्र**=इस जीवन में **नः**=हमें **मा**=मत **जुहुरः**=हिंसित करिये। हम आपसे कभी पृथक् होकर अपने को नष्ट न कर लें। **सदा**=सर्वदा **त्वे**=आपकी उपासना में स्थित होते हुए **सुमनसः**=उत्तम मनवाले **स्याम**=हों।

भावार्थ—हम प्रभु की उपासना करते हुए 'ज्ञान अमृतत्व व सौमनस्य' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'तरानेवाले' प्रभु

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत्।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति॥ ५॥

(१) प्रभु वे हैं **यः**-जो **देवकृतम्**=देववृत्ति के पुरुषों से परिष्कृत किये गये **योनिम्**=हृदयरूप स्थान में **आससाद**=आसीन होते हैं और **हि**=निश्चय से **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **क्रत्वा**—प्रज्ञान व शक्ति के द्वारा **अमृतान्**=विषय वासनाओं के पीछे न मरनेवाले इन देवों को **अतारीत्**=तैरा देते हैं। प्रभु के हृदयस्थ होने पर ये देव उस प्रभु के द्वारा ही जीवन यज्ञ को चलवाते हैं—सो भटकते नहीं। (२) **तम्**=उस **विश्वधायसम्**=सब के धारण करनेवाले प्रभु को ही **ओषधीः च**=ओषधियाँ **वनिनः च**=वृक्ष **च**=तथा **भूमिः**=यह भूमि **गर्भम्**=गर्भरूप से अपने अन्दर **बिभर्ति**=धारण करती है। उस प्रभु की स्थिति के कारण ही ओषधियों में ओषधित्व, वृक्षों में वृक्षत्व भूमि में भूमित्व

है वस्तुतः पिण्डमात्र में जो विभूति, श्री व ऊर्ज् है वह सब उस अन्तःस्थित प्रभु के कारण है। देवों को देवत्व प्राप्त करानेवाले भी वे प्रभु ही हैं।

भावार्थ—हम अपना हृदय परिष्कृत करें, उसे प्रभु का स्थिति स्थान बनायें। प्रभु ही हमें भवसागर से पार करेंगे। सब ओषधि वनस्पति व भूमि में प्रभु ही उस-उस विभूति को रखते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'वीर-तेजस्वी-परिचरणशील' उपासक

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

(१) **हि**=निश्चय से **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **भूरेः**=उस महान् **अमृतस्य**=अमृतत्व के **दातोः** **ईशे**=देने के लिये ईश हैं—समर्थ हैं। प्रभु ही अमृतत्व को प्राप्त कराते हैं। वे प्रभु ही **सुवीर्यस्य**=उत्तम वीर्यवाले **रायः**=धन के देने के ईश हैं। प्रभु इहलोक के कल्याण के लिये 'सुवीर्य रयि' को देते हैं, तथा पारलौकिक कल्याण के लिये अमृतत्व को प्राप्त कराते हैं। (२) हे **सहसावन्**=शक्ति के पुञ्ज प्रभो! **वयम्**=हम **अवीराः**=अवीर होते हुए **त्वा मा परिषदाम**=आपकी उपासना में न बैठें। **मा अप्सवः**=(अ+प्सु) न उत्तम रूपवाले, निस्तेज से होते हुए आपके उपासक न हों। **मा अदुवः**=परिचरण रहित होते हुए, माता-पिता, आचार्य व बड़ों की सेवा न करते हुए हम आपके उपासक न हों। अर्थात् वीर, तेजस्वी व परिचरणशील बनकर हम आपकी उपासना में स्थित हों।

भावार्थ—प्रभु उपासक को अमृतत्व, ऐश्वर्य व सुवीर्य प्राप्त कराते हैं। हम वीर, तेजस्वी व परिचरणशील बनकर प्रभु के उपासक बनें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋणग्रस्ता का दोष

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥

(१) **अरणस्य** (अपार्णस्य नि०)=ऋणरहित का **रेक्णः**=धन **हि**=निश्चय से **परिषद्यम्**-पर्याप्त होता है। (परिषद्यं: पर्याप्तं सा०) अर्थात् संसारीधन इतना ही ठीक है कि हम ऋण-ग्रस्त न हों। 'आवश्यकताएँ पूर्ण होती जाएँ' यही धन हमें प्राप्त हो। हम उसी **रायः**=धन के **पतयः स्याम**= स्वामी हों, जो **नित्यस्य**=नित्य है, ऋण लेकर नहीं प्राप्त किया गया। ऋण प्राप्त धन को तो फिर लौटाना पड़ेगा। (२) हे **अग्ने**=प्रभो! हम यह समझकर चलें कि **अन्यजातं शेष- न अस्ति**=(शेषः) दूसरे से उत्पन्न हुई-हुई मृत्यु नहीं होती, अर्थात् मनुष्य ऋण लेकर इस ऋणभार से अपने जीवन को असमय में मृत्युग्रस्त कर लेता है। हे मनुष्य! तू **अचेतानस्य**=अपने अगले अबोध बच्चों के **पथः**=मार्गों को **मा विदुक्षः**=मत दूषित कर। वे प्रारम्भ से ही ऋण के बोझ से दबे हुए जीवन को न प्रारम्भ करें। पिता का ऋण बालकों की परेशानी का कारण न बने।

भावार्थ—धनाभाव संसार-यात्रा का सर्वमहान् विघ्न है, अत्यधिक धन विलास का कारण बनता है। प्रभु इतना धन दें कि हम ऋणी न हो जाएँ। ऋण को मृत्यु समझें। अपने बच्चों के लिए ऋणभार को न छोड़ जाएँ।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

अन्योदर्य सन्तान ऋण प्राप्त धन

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः॥ ८॥

(१) जैसे **अरणः**=अपगत ऋणवाला पुरुष ही **सुशेवः**=सुखी होता है, इसी प्रकार अपना सन्तानवाला पुरुष ही सुखी होता है। **अन्योदर्यः**=दूसरे के उदर से उत्पन्न हुआ-हुआ तो **मनसा उ**=मन से भी **ग्रभाय**=ग्रहण के लिये **नहि मन्तव वा उ**=सोचने योग्य नहीं होता। अन्योदर्य को ग्रहण करने का कभी सोचना ही नहीं चाहिए। क्योंकि **सः**-वह **अधा धुनः इत्**=अब फिर निश्चय से **ओकः एति**=अपने घर को चला जाता है। (२) इसलिए हमारी तो यही आराधना है कि **नः**=हमें तो **वाजी**=शक्तिशाली **अभीषाट्**=सब ओर शत्रुओं का पराभव करनेवाला **नव्यः**=प्रभु-स्तवन में प्रशस्त सन्तान **इत्**=ही **आ एतु**=सर्वथा प्राप्त हो।

भावार्थ—अन्योदर्य को सन्तानरूपेण ग्रहण करना तो ऐसा ही कि ऋण लेकर धन प्राप्त करना। हमें अपना औरस 'शक्तिशाली, शत्रुओं का अभिभव करनेवाला, स्तवन की वृत्तिवाला सन्तान प्राप्त हो।'

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'वनुष्यतः-अवद्यात्' निपाहि

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री॥ ९॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **त्वम्**=आप **वनुष्यतः**=हमारा हिंसन करनेवाले काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं से **निपाहि**=हमें बचाइये। हे **सहसावन्**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले बलवाले प्रभो! **त्वं उ**=आप ही **नः**=हमें **अवद्यात्**=पाप से, निन्दनीय कर्मों से बचाइये। (२) हे प्रभो! **त्वा**=आपके द्वारा, आपके अनुग्रह से **ध्वस्मन्वत्**=ध्वस्तदोष **पाथः**=अन्न **सं अभिएतु**=हमें सम्यक् प्राप्त हो, अर्थात् सात्त्विक अन्नों का ही प्रयोग करते हुए हम सात्त्विक मनवाले बनकर निर्दोष जीवनवाले हों। हमें वह **रयिः**=धन **सम्**=प्राप्त हो जो **स्पृहयाय्यः**=स्पृहणीय है तथा **सहस्री**=सहस्र संख्यावाला है, अर्थात् वह धन जो प्रशस्त मार्ग से कमाया गया है और पर्याप्त है।

भावार्थ—हे परमात्मन्! आप हिंसक काम-क्रोध आदि शत्रुओं से हमें बचाएँ। पाप से हमारा रक्षण करें। आपके अनुग्रह से हमें ध्वस्तदोष सात्त्विक अन्न प्राप्त हो तथा स्पृहणीय पर्याप्त धन के हम स्वामी हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'क्रतुं-सुचेतसम्' (वतेम)

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १०॥

३.१० पर अर्थ द्रष्टव्य है।

अगले सूक्त में वसिष्ठ 'वैश्वानर' नाम से प्रभु का स्तवन करते हैं—

[५] पञ्चमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः

प्राग्नये॑ त॒वसे॑ भरध्वं॒ गिरं॑ दि॒वो अ॑र॒तये॑ पृथि॒व्याः।

यो विश्वे॑षाम॒मृता॑नामु॒पस्थे॑ वैश्वान॒रो वा॑वृ॒धे जा॑गृ॒वद्भिः॑ ॥ १ ॥

(१) **तवसे**=उस प्रवृद्ध **अग्नये**=अग्रेणी प्रभु के लिये **गिरं प्रभरध्वम्**=स्तुतिवाणी को धारण करो। उस प्रभु का स्तवन करो जो **दिवः पृथिव्याः**=द्युलोक व पृथिवीलोक के प्रति **अरतये**=गमनवाले हैं। जिस प्रभु की द्युलोक व पृथिवीलोक में सर्वत्र अव्याहत गति है, उस प्रभु का हम स्तवन करें। प्रभु सर्वदा सर्वत्र प्राप्त हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **विश्वेषाम्**=सब **अमृतानाम्**-विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले व्यक्तियों के **उपस्थे**=उपस्थान में, समीपता में होते हैं, अर्थात् प्रभु इन अमृत पुरुषों को ही प्राप्त होते हैं। **वैश्वानरः**-ये सब नरों का हित करनेवाले प्रभु **जागृवद्भिः**-इस संसार-यात्रा में जागनेवाले मनुष्यों से **वावृधे**=अपने हृदयों में बढ़ाये जाते हैं। सावधान पुरुष ही, अपने को वासनाओं के आक्रमण से आक्रान्त न होने देते हुए, अपने हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखते हैं।

भावार्थ—उस प्रभु का हम स्तवन करें जो सदा प्रवृद्ध हैं, द्युलोक व पृथिवीलोक में गतिवाले हैं, विषयों से अनाक्रान्त पुरुषों को प्राप्त होते हैं और सदा जागरित पुरुषों से अपने हृदयों में जिनका प्रकाश देखा जाता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

नेता सिन्धूनां, वृषभः स्तियानाम्

पृ॒ष्टो दि॒वि धाय्य॒ग्निः पृ॑थि॒व्यां ने॒ता सिन्धू॑नां वृ॒ष॒भः स्तिया॑नाम्।

स मानु॑षीर॒भि विशो॒ वि भा॑ति वैश्वान॒रो वा॑वृधा॒नो वरे॑ण ॥ २ ॥

(१) **पृष्टः** (प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्) **ज्ञातुम् इष्ट**=जिसके विषय में हमारे अन्दर जानने की उत्सुकता है, वह **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **दिवि पृथिव्याम्**-द्युलोक में व पृथिवीलोक में सर्वत्र **धायि**=स्थापित हैं। पृथिवी व द्युलोक का यह सारा प्रदेश प्रभु से व्याप्त है, वास्तव में प्रभु इन सबको अपनी गोद में लिये हुए हैं। ये प्रभु ही **सिन्धूनां नेता**=सब नदियों का प्रणयन करनेवाले हैं, उन्हीं के प्रशासन में ये सब नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं। प्रभु ही **स्तियानाम्**=जलों के **वृषभः**=वर्षानेवाले हैं। (स्तियाः आपः नि० ६।१७)। (२) **सः**=वे प्रभु ही **मानुषीः**=मनुष्य मात्र का हित करनेवाली, अथवा मननपूर्वक सब कार्यों को करनेवाली **विशः**=प्रजाओं के **अभिविभाति**-प्रति दीप्त होते हैं। मानव प्रजाओं में इस प्रभु का प्रकाश दिखता है। ये **वैश्वानरः**-सब नरों का हित करनेवाले प्रभु **वरेण**=श्रेष्ठ बातों से **वावृधानः**=हमारे हृदयों में प्रवृद्ध होते हैं। जितना-जितना हम उत्तम बातों का धारण करते हैं, उतना-उतना प्रभु के प्रकाश को हृदयों में देखते हैं।

भावार्थ—द्यावापृथिवी में ये प्रभु ही सर्वत्र व्याप्त हैं। ये जलों के वर्षक व नदियों के सञ्चालक हैं। विचारशील प्रजाओं में प्रभु का प्रकाश होता है। ये प्रभु उत्तम बातों के धारण के अनुपात में हमें प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु का भय

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

(१) हे **वैश्वानर**=विश्वनर हित—सब मनुष्यों का कल्याण करनेवाले प्रभो! **असिक्नीः**=(असिक्नी=night रात्रि) रात्रि के समान अन्धकारमय जीवनवाली **असमनाः**=भ्रान्त चित्तवाली, विषयों में भटकती हुई **विशः**=प्रजाएँ **त्वद् भिया**=आपके भय से **भोजनानि जहतीः**=भोगों का परित्याग करती हुई **आयन्**=आपके समीप प्राप्त होती हैं। प्रभु का स्मरण उनके लिये अंकुश के समान हो जाता है, वे असिक्नी न रहकर सित (शुभ्र) जीवनवाली बनती हैं, विषयों में भटकना छोड़कर प्रभु उपासन में प्रवृत्त होती हैं। (२) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **पूरवे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले पुरुष के लिये **शोशुचानः**=दीप्त होते हुए, पवित्रता को करते हुए **यत्**=जब **पुरः**=काम-क्रोध-लोभ की वृत्तियों को **दरयन्**=विदीर्ण करते हैं तो **अदीदेः**=चमक उठते हैं। 'पूरु' का हृदय आपके प्रकाश से प्रकाशित हो उठता है।

भावार्थ—प्रभु का स्मरण हमारे लिये अंकुश का काम करता है और हम भोगों को परे फेंककर विषयों में भटकने को छोड़कर शुभ्र जीवनवाले बन जाते हैं। काम—क्रोध—लोभ का विध्वंस होकर हमारा हृदय प्रकाशित हो उठता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु का 'त्रिधातु व्रतम्'

तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥ ४ ॥

(१) हे वैश्वानर **अग्ने**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले अग्रणी प्रभो! **तव**=आपके **त्रिधातु**='देव मनुष्य पशु' तीनों का धारण करनेवाले **व्रतम्**=कर्म का **पृथिवी उत द्यौः**=यह पृथिवी और द्युलोक **सचन्त**=सेवन करते हैं। अर्थात् आपकी व्यवस्था में ये द्यावापृथिवी 'देव, मनुष्य व पशु' सभी का धारण करते हैं। (२) **त्वम्**=आप **रोदसी**=द्यावापृथिवी को **भासा**=दीप्ति से **आततन्थ**=विस्तृत करते हैं। सर्वत्र द्युलोक व पृथिवीलोक में प्रकाश को आप फैलाते हैं और **अजस्रेण**=न क्षीण होनेवाली **शोचिषा**=ज्ञानदीप्ति से जीवों के हृदयों को **शोशुचानः**=दीप्त व पवित्र करते हैं।

भावार्थ—द्युलोक व पृथिवीलोक प्रभु की व्यवस्था के अनुसार 'देव, मनुष्य व पशु' तीनों का धारण करते हैं। प्रभु द्यावापृथिवी को सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं और उपासकों के हृदयों को अक्षीण ज्ञान ज्योति से पवित्र करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

इरितः-गिरः

त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! हमारे **हरितः**=ये इन्द्रियरूप अश्व **वावशानाः**=प्रबल कामनावाले होते हुए **त्वां सचन्ते**=आपका सेवन करते हैं। तथा **धुनयः**=शत्रुओं को कम्पित करनेवाली

घृताचीः–ज्ञानदीप्ति के साथ सम्पर्कवाली **गिरः**=स्तुतिवाणियाँ भी आपका ही सेवन करती हैं। (२) उन आपका सेवन करती हैं, जो आप **कृष्टीनाम्**=श्रमशील मानव प्रजाओं के **पतिम्**–रक्षक हैं। **रयीणाम्**=धनों के **रथ्यम्**=प्रापक हैं। **वैश्वानरम्**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले हैं तथा **उषसाम्**=उषाओं के तथा **अह्नाम्**=दिनों के **केतुम्**=प्रज्ञापक हैं।

भावार्थ–हमारी इन्द्रियाँ व हमारी वाणियाँ प्रभु का ही उपासन करती हैं। प्रभु ही हमारे स्वामी, धनों के प्रापक व हित करनेवाले हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

असुर्यं-क्रतुम् (दस्यु व आर्य)

त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय॥ ६ ॥

(१) हे **मित्रमहः**–सब के प्रति स्नेह करनेवालों से महनीय–पूजनीय प्रभो! **वसवः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले देव, नीरोग दीर्घ जीवनवाले ज्ञानी **त्वे**=आप में ही, अर्थात् आपकी उपासना के द्वारा **असुर्यम्**=बल को **न्यृण्वन्**=प्राप्त करते हैं। और **हि**=निश्चय से **त्वे**=आपके **क्रतुम्**=प्रज्ञान बल (शक्ति) का **स जुषन्त**=सेवन करते हैं। (२) हे **अग्ने**–अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **दस्यून्**=अकर्मा लोगों को (अकर्मा दस्युः०) **ओकसः**–घर से, स्थान से **आजः**–निर्गत कर देते हैं। और **आर्याय**=कर्मशील पुरुष के लिये **उरु ज्योतिः**–विशाल प्रकाश को **जनयन्**=प्रकट करते हैं।

भावार्थ–प्रभु की उपासना ही हमें शक्ति व प्रज्ञान को प्राप्त कराती है। प्रभु अकर्मा लोगों को गृहहीन करते हैं और पुरुषार्थियों के लिये प्रकाश को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सोमरक्षण व ज्ञान-प्राप्ति

स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन्॥ ७ ॥

(१) **वायुः न**=(वा गतौ) सर्वत्र गतिशील वायु के समान हे प्रभो! **सः**=वे आप **परमे व्योमन्**=इस उत्कृष्ट हृदयाकाश में **जायमानः**=प्रादुर्भूत होते हुए **सद्यः**=शीघ्र ही **पाथः**=हमारे सोमरूप जल का **परिपासि**=पान करते हैं। जिस समय हृदयों में आपका प्रादुर्भाव होता है, उस समय ही वासनाओं का अभाव होकर सोमरक्षण सम्भव होता है। (२) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! **त्वम्**=आप **भुवना**=सब लोकों को **जनयन्**=उत्पन्न करते हुए तथा **अपत्याय**=अपने इन सन्तानरूप उपासकों के लिए **दशस्यन्**=सब काम्य पदार्थों को देते हुए **अभिक्रन्**=ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करते हैं।

भावार्थ–हृदयों में प्रादुर्भूत हुए–हुए प्रभु वासनाविनाश के द्वारा हमारे सोम का रक्षण करते हैं। और ज्ञान की वाणियों का हमारे लिये उपदेश करते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

द्युमती इष्

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय॥ ८ ॥

(१) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ **वैश्वानर**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले, **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **अस्मे**=हमारे लिये **ताम्**=उस **द्युमतीम्**=प्रकाशवाली **इषम्**=प्रेरणा को **एरयस्व** (आ ईरयस्व)=सर्वथा प्राप्त कराइये। **यया**=जिसके द्वारा आप **राधः**=सब कार्यसाधक धनों को **पिन्वसि**=प्राप्त कराते हैं। (२) हे **विश्ववार**=सब से वरणीय प्रभो! आप **दाशुषे मर्त्याय**=दाश्वान् मनुष्य के लिये, आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिए **पृथुश्रवः**=विशाल ज्ञान व यश को प्राप्त कराते हैं। जो भी प्रभु के प्रति अपना अर्पण करता है, प्रभु उसे ज्ञानी व यशस्वी बनाते हैं।

भावार्थ—हमें प्रभु की प्रकाशमयी प्रेरणा प्राप्त हो। इस प्रेरणा के अनुसार चलते हुए हम कार्यसाधक धनों को प्राप्त करें और त्यागवृत्तिवाले बनकर ज्ञान व यश को प्राप्त करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'पुरुक्षु रयि' न 'श्रुत्य वाज'

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥

(१) हे **अग्ने**—अग्रेणी प्रभो! **नः मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) हमारे यज्ञशील पुरुषों **तम्**=उस **पुरुक्षम्**=पालन व पूरक अन्नों को प्राप्त करानेवाले अथवा बहुत यशवाले, दान आदि में विनियुक्त होकर यश को प्राप्त करानेवाले, **रयिम्**=धन को तथा **श्रुत्यम्**=यशस्वी अथवा ज्ञानयुक्त **वाजम्**=बल को **नियुवस्व**=निश्चय से प्राप्त कराइये। (२) हे **वैश्वानर**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभो! **नः**=हमारे लिये **महि**=महान् **शर्म**=रक्षण को **यच्छ**=प्राप्त कराइये। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **रुद्रेभिः**=(रुत्) ज्ञानोपदेष्टा **वसुभिः**=उत्तम निवासवाले पुरुषों के साथ **सजोषाः**=समानरूप से प्रीतिवाले होते हैं। आपके रक्षण में हम भी 'रुद्र वसु' बनें और आपके प्रिय बन पायें।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। प्रभु हमारे लिये यशस्वी धन व ज्ञानयुक्त बल को प्राप्त करायें। प्रभु के रक्षण में हम स्वयं उत्तम जीवनवाले होते हुए (वसु) ज्ञान का उपदेश करनेवाले हों (रुद्र) और प्रभु के प्रिय हों।

अगले सूक्त में भी ऋषि व देवता 'वसिष्ठ' और 'वैश्वानर' ही हैं—

[६] षष्ठं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'दारुं' वन्दे

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥ १ ॥

(१) मैं **दारुम्**=असुरों की पुरियों का विदारण करनेवाले प्रभु को **वन्दे**=वन्दित करता हूँ और **वन्दमानः**=वन्दना करता हुआ **कृतानि प्रविवक्मि**=उस वैश्वानर के कर्मों का प्रतिपादन करता हूँ। (२) उस प्रभु की **प्रशस्तिम्**=प्रशस्ति का, स्तुति का प्रतिपादन करता हूँ जो **सम्राजः**=सारे संसार के सम्राट् हैं। **असुरस्य**=(असून् राति) सर्वत्र प्राणशक्ति का संचार करनेवाले हैं। **पुंसः**=वीर हैं (पौंस्यं वीर्यम्)। **कृष्टीनाम्**=श्रमशील मनुष्यों के **अनुमाद्यस्य**=स्तुत्य हैं अथवा हर्ष के जनक हैं। **इन्द्रस्य इव**=इन्द्र के समान **प्रतवसः**=प्रकृष्ट बलवाले हैं। 'इन्द्र' व 'वैश्वानर' दोनों उस प्रभु के ही नाम हैं। सो जो 'इन्द्र' का बल है, वही 'वैश्वानर' का बल है। इस प्रभु की प्रशस्ति का मैं प्रतिपादन करता हूँ।

भावार्थ–वे प्रभु 'सम्राट्, असुर, पुमान, स्तुत्य व बलवान्' हैं। प्रभु के कर्मों का व प्रशस्ति का मैं उच्चारण करता हूँ। प्रभु ही तो मेरे आसुरभावों को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

'कविं केषुम्' आविवासे

क॒विं के॒तुं धा॒सिं भा॒नुमद्रे॑र्हि॒न्वन्ति॒ शं रा॒ज्यं रोद॑स्योः।
पु॒र॒न्द॒रस्य॑ गी॒र्भिरा वि॑वासे॒ऽग्नेर्व्र॒तानि॒ पू॒र्व्या म॒हानि॑॥ २॥

(१) **कविम्**=उस क्रान्तप्रज्ञ **केतुम्**=सब ज्ञानों के प्रज्ञापक **धासिम्**=धारक, **अद्रेः**– (आदर्तुः) स्तोता के **भानुम्**=हृदय को दीप्त करनेवाले, **रोदस्योः राज्यम्**=द्यावापृथिवी के सम्राट्, **शम्**=शान्त व सुखकर प्रभु को **हिन्वन्ति**=ये सब वेदवाणियाँ ही प्राप्त होती हैं, उसी का प्रतिपादन करती हैं 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्'। (२) मैं **गीर्भिः**=इन वेदवाणियों के द्वारा **पुरन्दरस्य**=आसुर पुरियों का विदारण करनेवाले **अग्नेः**=अग्रेणी प्रभु के **पूर्व्या**–पालन व पूरण करनेवालों में उत्तम अथवा पुरातन (सदा से चले आ रहे) **महानि व्रतानि**=महान व्रतों को **आविवासे**=परिचरित करता हूँ, पूजता हूँ।

भावार्थ–सब वेदवाणियाँ उस प्रज्ञाधारक-दीपक प्रभु के महान् कर्मों का प्रतिपादन करती हैं। मैं इनके द्वारा प्रभु की उपासना करता हूँ।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

अयज्ञशीलता व जघन्यता

न्य॑क्र॒तून्ग्र॒थिनो॑ मृ॒ध्रवा॑चः प॒णीँर॑श्र॒द्धाँ अ॑वृ॒धाँ अ॑य॒ज्ञान्।
प्रप्र॒ तान्दस्यूँ॑र॒ग्निर्वि॑वाय॒ पूर्व॑श्चका॒राप॑राँ॒ अय॑ज्यून्॥ ३॥

(१) **अक्रतून्**=कर्मरहित, **ग्रथिनः**=इधर की उधर गूँथनेवाले–गप्पी, **मृध्रवाचः**=हिंसित वाणीवाले **पणीन्**=वार्धुषिक–सूदखूर, **अश्रद्धान्**–श्रद्धा से रहित, **अवृधान्**–किसी का वर्धन न करनेवाले, **अयज्ञान्**=यज्ञरहित **तान्**=उन **दस्यून्**=दस्युवृत्ति के मनुष्यों को **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **प्र प्र**–(अत्यन्तं) बहुत **नि**=नीचे **विवाय**–(गमयेत्) पहुँचाते हैं। इन पुरुषों की बहुत ही अधोगति होती है। (२) **पूर्वः**=वे पूर्व (मुख्य) अग्नि नामक प्रभु इन **अयज्यून्**=अयज्ञशील पुरुषों को **अपरान्**=अपर जघन्य **चकार**=करते हैं। यह सारा संसार यज्ञ पर ही आधारित है। अयज्ञशील पुरुष न इस लोक में कल्याण को प्राप्त करता है, न अगले लोक में। वस्तुतः इन यज्ञों के द्वारा ही प्रभु का उपासन होता है।

भावार्थ–यज्ञ उन्नतियों का मूल है, अयज्ञशीलता अवनति का।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

घोर अन्धकार में 'प्रकाश'

यो अ॑पा॒चीने॒ तम॑सि॒ मद॑न्तीः॒ प्राची॑श्च॒कार॒ नृत॑मः॒ शची॑भिः।
तमीशा॑नं॒ वस्वो॑ अ॒ग्निं गृ॑णी॒षेऽना॑नतं॒ द॒मय॑न्तं पृत॒न्यून्॥ ४॥

(१) **यः**=जो **नृतमः**–सर्वोत्तम नेता प्रभु **अपाचीने**–अत्यन्त अप्रकाशमान–घने, **तमसि**–अन्धकार में पड़ जाने के कारण **मदन्तीः**=प्रभु का स्तवन करती हुई–अन्धकार की परेशानी में प्रभु को याद करती हुई प्रजाओं को **शचीभिः**–प्रज्ञानों के द्वारा **प्राचीः चकार**= अग्रगतिवाला

करता है। **तम्**=उस **वसः ईशानम्**=सब धनों के ईशान **अग्निम्**=अग्नि की **गृणीषे**=मैं स्तुत करता हूँ। प्रभु ज्ञान को देकर मार्ग दिखाते हैं, और हमें अग्रगति के योग्य करते हैं। (२) वे प्रभु **अनानतम्**=कभी किसी से आनत नहीं किये जा सकते। **पृतन्यून् दमयन्तम्**=हमारे पर सेनाओं के द्वारा आक्रमण करनेवाले इन आसुरभावों का वे प्रभु दमन करते हैं। वस्तुतः जब हम अपने हृदयों में प्रभु को स्थापित करते हैं तो इन आसुरभावों के आक्रमण का सम्भव ही नहीं रहता।

भावार्थ—घोर अन्धकार में भी हम प्रभु का स्मरण करते हैं तो प्रभु हमें प्रज्ञान (प्रकाश) देते हैं और मार्ग पर आगे बढ़ाते हैं। वे प्रभु ही हमारे आसुरभावों का विनाश करते हैं। हमारे लिये सब वसुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राकार-भेदन

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ५ ॥

(१) **यः**=जो **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **वधस्नैः**=वधसाधन आयुधों के द्वारा **देह्याः**=(देही Rampart) असुरपुरियों की चारदीवारियों को **अनमयत्**=झुका देते हैं, अर्थात् असुरपुरियों का विध्वंस कर देते हैं और **यः**=जो **अर्यपत्नीः**=जितेन्द्रिय पुरुष की पत्नी तुल्य बुद्धियों को **उषसः** (उष दाहे)=दोषों का दहन करनेवाला बनाता है। **सः**=वे **यह्वः**=महान् प्रभु **विशः**=प्रजाओं को **निरुध्य**=संयतेन्द्रिय बनाकर **नहुषः**=(णह बन्धने) औरों के साथ अपने को बाँधनेवाला **चक्रे**=बनाते हैं। इन्हें प्रभु केवल अपने लिये जीनेवाला नहीं रखते। स्वार्थ ही सब आसुरवृत्तियों का मूल था। (२) ये प्रभु इन प्रजाओं को **सहोभिः**=शत्रुमर्षक बलों के द्वारा **बलिहृतः**=बलि को देनेवाला (चक्रे) कहते हैं। ये प्रभु के उपासक सहस् (बल) को प्राप्त करके लोभ आदि को जीतकर यज्ञशील बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु शत्रुओं के प्राकार का भेदन करके हमारी बुद्धियों को दोषों का दहन करनेवाली बनाते हैं। हमें संयतेन्द्रिय बना के औरों के लिये जीना सिखाते हैं। ये प्रभु हमें यज्ञशील बनाते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुमति की भिक्षा

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥

(१) **एवैः**=कर्मों के द्वारा **सुमतिम्**=कल्याणीमति की **भिक्षमाणाः**=याचना करते हुए **विश्वे जनासः**=सब लोग **यस्य शर्मन्**=जिसकी शरण में **उपतस्थुः**=उपस्थित होते हैं। वे **वैश्वानरः**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **पित्रोः**=पिता माता के समान **रोदस्योः**=द्यावापृथिवी के—मस्तिष्क व शरीर के **वरम्**=उत्कृष्ट **उपस्थम्**=गोदरूप—मध्यभागभूत अन्तरिक्ष में—हृदयान्तरिक्ष में **आससाद**=आसीन होते हैं। (२) उस सर्वव्यापक प्रभु के दर्शन का स्थान हृदयदेश ही है। सर्वत्र द्यावापृथिवी में प्रभु की महिमा का दर्शन होता है। इस हृदयदेश में समाधि अवस्था में प्रभु का साक्षात्कार होता है इसी से यह हृदय यहाँ 'वर उपस्थ'=उत्कृष्ट मध्यभाग कहा गया है। बाहिर जो द्यावापृथिवी है, शरीर में वे मस्तिष्क व स्थूल शरीर हैं। इनका मध्यभाग ही हृदयदेश है। आधिदैविक जगत् में 'द्यावा' पिता है 'पृथिवी' माता। 'द्यौष्पिता, पृथिवी माता'।

इस हृदयासीन प्रभु से ही क्रियाशील पुरुष सुमति की भिक्षा माँगते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु की शरण में जाएँ। क्रियाशील बनकर प्रभु से सुमति का भिक्षण करें। हृदयदेश में प्रभु की स्थिति का अनुभव करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वसु-दान

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥ ७ ॥

(१) **देवः**=वे प्रकाशमय **वैश्वानरः**—सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु **सूर्यस्य उदिता**—ज्ञान सूर्य का उदय होने पर **बुध्न्या**=हृदयान्तरिक्ष के **वसूनि**—वसुओं को **आददे**-हमारे लिये सब प्रकार से देते हैं। हृदयान्तरिक्ष का वसु 'मनः प्रसाद व निर्मलता' ही है। प्रभु के अनुग्रह से ही इसकी प्राप्ति होती है। (२) **अवरात् समुद्रात् आ**—अवर समुद्र से लेकर **परस्मात् आ**=पर समुद्र तक **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु, **दिवः आ**—द्युलोक से लेकर **पृथिव्याः आ**=पृथिवीलोक तक सम्पूर्ण वसुओं को वे प्रभु उपासक के लिये **ददे**=सर्वथा प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही उपासक के लिये हृदयान्तरिक्ष के महान् वसु 'मनःप्रसाद' को प्राप्त कराते हैं। प्रभु ही ब्रह्माण्ड के सब वसुओं के देनेवाले हैं।

अगले सूक्त में वसिष्ठ 'अग्नि' नाम से प्रभु का स्मरण करते हैं—

[७] सप्तमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

मितद्रुः

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥ १ ॥

(१) मैं **नमोभिः**=नमनों के द्वारा **अग्निम्**=उस अग्रणी प्रभु को **प्रहिषे**=अपने हृदय में (प्रहिणोमि) प्राप्त करता हूँ। उस अग्नि को जो **वः देवम्**=तुम सबके प्रकाशक हैं। **सहसानम्**=शत्रुओं का पराभव करनेवाले हैं। **चित्**=निश्चय से **अश्वं न वाजिनम्**=शीघ्रता से मार्ग का व्यापन करनेवाले घोड़े के समान शक्तिशाली हैं। अर्थात् जो मुझे शीघ्र ही लक्ष्यस्थान पर पहुँचानेवाले हैं। (२) हे प्रभो! **अध्वरस्य**=सब यज्ञों के **विद्वान्**=ज्ञाता होते हुए आप **नः**=हमारे लिये **दूतः भव**=दूत होइये, ज्ञान-सन्देश को प्राप्त कराइये। वे **मितद्रुः**=नपी-तुली गतिवाले प्रभु—सर्वत्र जितनी उचित है उतनी ही क्रिया करनेवाले प्रभु **त्मना**=स्वयं किसी और की सहायता को न लेते हुए **देवेषु**=सूर्य आदि देवों में **विविदे**=उस-उस शक्ति को प्राप्त कराते हैं। पृथिवी में पुण्यगन्ध को, जलों में रस को, अग्नि में तेज को, वायु में गति को, आकाश में शब्द को तथा सूर्य-चन्द्र आदि में प्रभा को स्थापित करनेवाले प्रभु ही हैं।

भावार्थ—मैं हृदय में नमन द्वारा प्रभु दर्शन के लिये यत्नशील होता हूँ। प्रभु ही मेरे शत्रुओं का पराभव करते हैं। वे मुझे ज्ञान का सन्देश देनेवाले प्रभु ही सब सूर्य आदि देवों में नपी-तुली गतिवाले हो रहे हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु प्राप्ति का मार्ग

आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि॥ २॥

(१) प्रभु जीव से कहते हैं कि—हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **स्वाः पथ्याः अनु**=अपने कर्तव्य मार्गों के अनुसार, अर्थात् अपने कर्तव्य मार्गों पर चलता हुआ तू **आयाहि**=हमारे समीप प्राप्त होनेवाला हो। **मन्द्रः**=सदा प्रसन्न मनोवृत्तिवाला बन। **देवानां सख्यं जुषाणः**=देववृत्ति के पुरुषों की मित्रता का सेवन करनेवाला बन। (२) **शुष्मैः**=शत्रुशोषक बलों के साथ **पृथिव्याः**=इस शरीररूप पृथिवी के **सानु**=मस्तिष्करूप शिखर को **आनदयन्**=समन्तात् ज्ञान की वाणियों से अनुनादित करनेवाला बन तथा **जम्भेभिः**=दाँतों से **विश्वं वनानि**=सब वानस्पतिक पदार्थों की ही **उशधक्**=कामनावाला हो।

भावार्थ—प्रभु प्राप्ति का मार्ग यह है—(क) स्वकर्तव्य पालन, (ख) मनः प्रसाद, (ग) सत्संग, (घ) बल व ज्ञान का संचय, (ङ) वानस्पतिक पदार्थों से शरीर का पोषण।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सुख प्राप्ति का मार्ग

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः॥ ३॥

(१) हमारे जीवनों में **यज्ञः**=यज्ञ (श्रेष्ठतम कर्म) **प्राचीनः**=(प्र अञ्च्) आगे और आगे गतिवाला हुआ है। अर्थात् जीवन में यज्ञों की वृद्धि हुई है। **हि**=निश्चय से **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय **सुधितम्**=सम्यक् स्थापित हुआ है। **अग्निः प्रीणीते**=वे अग्रेणी प्रभु हमारे प्रति प्रीतिवाले होते हैं—हम प्रभु की प्रीति के पात्र बनते हैं। मैं **न**=जैसे **ईडितः**=स्तुतिवाला होता हूँ उसी प्रकार **होता**=यज्ञों को करनेवाला बनता हूँ। (२) **विश्ववारे**=सब से वरणे के योग्य **मातरा**=द्यावापृथिवी को, मस्तिष्क व शरीर को **आहुवानः**=मैं पुकारनेवाला होता हूँ। अर्थात् मस्तिष्क व शरीर को उत्तम बनाने का प्रयत्न करता हूँ। हे **यविष्ठ**=युवतम—हमारी सब बुराइयों को दूर करनेवाले व अच्छाइयों को हमारे साथ मिलानेवाले प्रभो! ये उपर्युक्त बातें वे हैं **यतः**=जिनके द्वारा आप **सुशेवः**=हमें उत्तम सुख प्राप्त करानेवाले **जज्ञिषे**=होते हैं।

भावार्थ—सुख-प्राप्ति का मार्ग यही है कि—(क) हम यज्ञशील बनें, (ख) हृदय को पवित्र बनायें, (ग) प्रभु की प्रीति के पात्र बनें, (घ) स्तोता व होता हों, (ङ) मस्तिष्क व शरीर दोनों को उत्तम बनायें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु को सारथि बनाना

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम्।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा॥ ४॥

(१) **विचेतसः**=विशिष्ट चेतनावाले **मानुषासः**=विचारशील लोग **सद्यः**=शीघ्र ही **अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में उस प्रभु को **रथिरं जनन्त**=शरीररूप रथ का संचालक बनाते हैं। **यः**=जो प्रभु

एषाम्-इन **विशाम्**=प्रजाओं के **दुरोणे**=इस शरीररूप गृह में **अधायि**=स्थापित हैं। हम सब के हृदयों में स्थित हुए हुए प्रभु ही वस्तुतः हमारे जीवन यज्ञ को चलाते हैं। इस शरीर-रथ के सारथि प्रभु ही हैं। प्रभु को अपने रथ की बागडोर सौंपनेवाला व्यक्ति भटकता नहीं। (२) ये प्रभु ही **विश्पतिः**=सब प्रजाओं के रक्षक हैं। **अग्निः**-अग्रणी हैं। **मन्द्रः**-स्तुत्य व सदा प्रसन्न हैं। **मधुवचाः**=अत्यन्त मधुर वचनोंवाले हैं और **ऋतावा**=यज्ञोंवाले व ऋत (सत्य) वाले हैं। प्रभु के उपासक का जीवन भी अनृत शून्य हो जाता है।

भावार्थ-समझदार व्यक्ति प्रभु को ही अपने रथ का सारथि बनाते हैं। प्रभु इनका रक्षण करते हैं। इनको 'प्रगतिशील, प्रसन्न, मधुर व ऋतवाला' बनाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ब्रह्मा

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता।

द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम्॥ ५ ॥

(१) गतमन्त्र के अनुसार जब हम प्रभु को अपने रथ का सारथि बनाते हैं, तो **वृतः**=वरण किये हुए प्रभु **असादि**=इस रथ पर स्थित होते हैं और **वह्निः**=इस रथ को लक्ष्य की ओर ले चलनेवाले होते हैं। **आजगन्वान्**-आये हुए वे **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **ब्रह्मा**-इस जीवन यज्ञ के ब्रह्मा होते हैं-वर्धन करनेवाले होते हैं। **नृषदने**-इस मनुष्यों के शरीररूप सदन में **विधर्ता**=वे विशेषरूप से धारण करनेवाले होते हैं। (२) **यम्**-जिस प्रभु को **द्यौः च**=यह द्युलोक और **पृथिवी**=पृथिवीलोक **वावृधाते**-खूब ही बढ़ाते हैं, अर्थात् जिसकी महिमा का प्रतिपादन करते हैं और **यम्**=जिस **विश्ववारम्**-सब से वरणीय व सब वरणीय वस्तुओंवाले प्रभु को **होता**=यह दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति-यज्ञशील व्यक्ति **आयजति**=उपासित करता है। इस प्रभु का ही हम वरण करें। ये हमें आगे ले चलेंगे।

भावार्थ-हम प्रभु का वरण करें, जीवन यज्ञ का ब्रह्मा प्रभु को ही बनायें। वे ही हमारा धारण करनेवाले हैं। ये द्युलोक व पृथिवीलोक प्रभु की ही महिमा का प्रतिपादन कर रहे हैं। यज्ञशील पुरुष ही प्रभु का उपासक होता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

लोकहित व यशस्वी जीवन

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन्।

प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य॥ ६ ॥

(१) **एते**=ये लोग **द्युम्नेभिः**-यशों से **विश्वम्**-सम्पूर्ण जगत् को **आतिरन्त**=(अभ्यगच्छन्) प्राप्त होते हैं, अर्थात् इनका यश सम्पूर्ण जगत् में फैल जाता है। **ये**=जो लोग **नर्या**=नरहितकारी कर्मों में प्रवृत्त हुए-हुए, **वा**=निश्चय से **मन्त्रम्**-मननपूर्वक किये गये स्तवन को **अरं अतक्षन्**-पर्याप्त संस्कृत (परिष्कृत) कर लेते हैं। यह स्तवन ही तो वस्तुतः उन्हें शक्ति देता है जिससे कि वे अधिक से अधिक इन नरहितकारी कार्यों को कर पाते हैं। (२) **ये**-जो **श्रोषमाणाः**-ज्ञान के सदा श्रवण करने की कामनावाले होते हुए **विशः प्रतिरन्त**=सब प्रजाओं का वर्धन करते हैं। और **ये**=जो **मे**-मेरे **अस्य ऋतस्य**=इस सत्य वेदज्ञान का **आदीधयन्**=आदीपन करते हैं।

भावार्थ—प्रभुस्तवन व ज्ञान, श्रवण करते हुए हम लोकहित के कार्यों को करनेवाले बनें और संसार में यशस्वी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु प्रेरणा के अनुसार

नू त्वाम॑ग्न ईमहे॒ वसि॑ष्ठा ईशा॒नं सू॑नो सहसो॒ वसू॑नाम्।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य आनड्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ७ ॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुत्र, बल के पुञ्ज **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **वसिष्ठाः**=अपनी इन्द्रियों को वश में करनेवाले अथवा उत्तम निवासवाले हम **नू**=अब **हवाम्**=आपसे **ईमहे**=याचना करते हैं। आप ही **वसूनां ईशानम्**=सब वसुओं के ईशान हैं। (२) आप **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिये **च**=और **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **इषम्**=प्रेरणा को **आनट्**=(प्रापयेः) प्राप्त कराते हैं। **यूयम्**=आप **सदा**=हमेशा **नः**=हमें **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा, शुभमार्गों के द्वारा **पात**=रक्षित करें। आप से सदा शुभमार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करते हुए हम कल्याण को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम वसिष्ठ बनकर प्रभु का उपासन करें। प्रभु यज्ञशील स्तोताओं को सदा उत्तम प्रेरणा प्राप्त कराते हैं। हे प्रभो! आपके अनुग्रह से शुभमार्ग पर चलते हुए हम कल्याणभाक् हों।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ 'अग्नि' नाम से ही प्रभु का स्मरण करते हैं—

[८] अष्टमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

प्रभु नमन व हवन

इ॒न्धे राजा॒ सम॒र्यो नमो॑भि॒र्यस्य॒ प्रती॑क॒माहु॑तं घृ॒तेन॑।
नरो॑ ह॒व्येभि॑रीळते स॒बाध॒ आग्निरग्र॑ उ॒षसा॑मशोचि ॥ १ ॥

(१) वह **राजा**=दीप्त, **अर्यः**=स्वामी प्रभु **नमोभिः**=नमन के द्वारा **समिन्धे**=हृदय देश में दीप्त किया जाता है। हम नम्रता को धारण करके प्रभु का ध्यान करते हैं। **यस्य**=जिस प्रभु का **प्रतीकम्**=स्वरूप **घृतेन आहुतम्**=दीप्ति से आहुत है—जो प्रभु प्रकाश ही प्रकाश के रूप में हैं। (२) **सबाधः**=बाधाओं (पीड़ाओं) से युक्त **नरः**=मनुष्य **हव्येभिः**=हव्य पदार्थों के द्वारा **ईडते**=इस अग्नि का पूजन करते हैं। अग्नि का पूजन यही है कि हम उस-उस रोग को शान्त करनेवाले ओषध द्रव्यों का अग्नि में हवन करें। ये द्रव्य सूक्ष्म कणों में विभक्त होकर श्वास के साथ अन्दर जाते हुए, उन बाधाओं को दूर करेंगे। यह **अग्निः**=यज्ञाग्नि **उषसां अग्रे**=उषाकालों के अग्रभाग में **आ आशोचि**=दीप्त होता है। हम प्रातः प्रबुद्ध होकर अग्निहोत्र आदि पवित्र कार्यों को करने का उपक्रम करें।

भावार्थ—हम प्रातः प्रबुद्ध हों। नमन द्वारा हृदयदेश में प्रभु के प्रकाश को, तेजोमयरूप को देखने का प्रयत्न करें और अग्निहोत्र द्वारा सब रागात्मक बाधाओं को अपने से दूर रखने के लिये यत्नशील हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ओषधीभिः ववक्षे

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥

(१) **अयम्**-ये **उ**=निश्चय से **स्यः**-वे प्रभु **सुमहान्**-अत्यन्त महान् **अवेदि**=माने जाते हैं। प्रभु के समान ही कोई और सत्ता नहीं, उससे बढ़कर के किसी के होने का तो प्रश्न ही नहीं। **होता**=ये प्रभु ही सब पदार्थों के देनेवाले हैं। **मन्द्रः**-आनन्दस्वरूप हैं। **मनुषः**-विचारशील पुरुष के ये **यह्वः** (यातः हूतश्च)=जाने योग्य व पुकारने योग्य हैं। **अग्निः**=अग्रणी हैं। (२) **ससृजानः**-(सृज्यमानः) ध्यान द्वारा हृदयदेश में उत्पन्न (अविर्भूत) किये जाते हुए ये प्रभु **पृथिव्याम्**=इस पृथिवीरूप शरीर में **भाः**=दीप्तियों को **वि अकः**-विशेषरूप से करते हैं। प्रभु का ध्यान होते ही सारा शरीर प्रकाशमय हो उठता है। ये **कृष्णपविः** (पवि speech)-अत्यन्त आकर्षक अथवा पापों को क्षीण करनेवाली वाणीवाले प्रभु **ओषधीभिः**=ओषधियों से **ववक्षे**-हमारे अन्दर बढ़ते हैं। अर्थात् वानस्पतिक भोजन प्रभु की भावना को हमारे अन्दर बढ़ाने का कारण बनता है।

भावार्थ-प्रभु महान् हैं। हृदय में प्रभु का ध्यान होते ही प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है। प्रभु प्रवणता की वृद्धि में ओषधि भोजन सहायक होता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्वधा

कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **नः**=हमारी इस **सुवृक्तिम्**-दोषवर्जन की साधनभूत स्तुति को **कया**=किस अद्भुत (स्वधया-) आत्मधारणशक्ति से **विवसः**=आच्छादित करते हैं। **उ**=निश्चय से **शस्यमानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **कां स्वधाम्**-आनन्दप्रद आत्मधारणशक्ति को **ऋणश**=प्राप्त कराते हैं। अर्थात् जितना-जितना हम प्रभु का स्तवन व शंसन करते हैं, उतना उतना आत्मधारणशक्ति को प्राप्त करते हैं। (२) हे **सुदत्र**-शोभनदानवाले प्रभो! **कदा**=कब हम **रायः**=उस धन के **पतयः**=स्वामी तथा **वन्तारः**-सम्भजन करनेवाले **भवेम**=होंगे, जो **दुष्टरस्य**=शत्रुओं से हिंसित नहीं होता तथा **साधोः**-सब इष्ट कार्यों का साधक है। हम उस 'दुष्टर साधु' सम्पत्ति को प्राप्त करें तथा उसका संविभाग करनेवाले हों।

भावार्थ-हम प्रभु-स्तवन करते हुए आत्मधारणशक्ति को प्राप्त करें। और उस धन को प्राप्त करें जो हमें काम-क्रोध-लोभ आदि का शिकार न होने दे तथा जो हमारे इष्ट कार्यों का साधक हो। हम इस धन का संविभाग करनेवाले हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'भरत व पूरुम्'

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥ ४ ॥

(१) **अयं अग्निः**-यह अग्रणी प्रभु **भरतस्य**-लोगों का भरण करनेवाले की प्रार्थना को **प्र**

प्रशृण्वे=खूब ही सुनते हैं **यत्**=जब इस भक्त के हृदय में वे **बृहद्भाः**=बहुत प्रवृद्ध-दीप्तिवाले प्रभु **सूर्यः न**=सूर्य के समान **विरोचते**=विशेषरूप से दीप्त होते हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **पृतनासु**=संग्रामों में **पूरुम् अभि**=अपना पालन व पूरण करनेवाले की ओर **तस्थौ**=स्थित होते हैं। वस्तुतः 'पूरु' प्रभु के साहाय्य से ही संग्राम में विजयी हो पाता है। ये **द्युतानः**=ज्योति का विस्तार करनेवाले, **दैव्यः**=देवों के हितकर **अतिथिः**=निरन्तर गतिवाले प्रभु **शुशोच**=पर्याप्त ही दीप्त होते हैं।

भावार्थ-प्रभु औरों का भरण करनेवाले की प्रार्थना को सुनते हैं, उसके हृदय में दीप्त होते हैं। इस पालन व पूरण करनेवाले व्यक्ति को संग्राम में विजयी बनाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

बल-सौमनस्य

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वे इत्**=आप में ही **आहवनानि**=पुकारें-प्रार्थनाएँ **भूरि सन्ति**=खूब होती हैं। सब आपकी ही प्रार्थनाएँ करते हैं। आप इन प्रार्थनाओं को सुनकर **विश्वेभिः**=सब **अनीकैः**=बलों के द्वारा **सुमनाः भुवः**=उत्तम मनवाले होते हैं। आप बल सौमनस्य को प्राप्त कराते हैं। (२) हे अग्ने! आप **स्तुतः**=(स्तौति इति स्तुत्) स्तवन करनेवाले की **चित्**=निश्चय से **शृण्विषे**=प्रार्थना को सुनते हैं। और हे **सुजात**=उत्तम विकास के कारणभूत प्रभो! **गृणानः**=ज्ञानोपदेश देते हुए आप **स्वयम्**=अपने आप **तन्वम्**=हमारे शरीरों को **वर्धस्व**=बढ़ाइये। आपके ज्ञानोपदेश से तदनुसार आचरण करते हुए हम अपने शरीर की सब शक्तियों को बढ़ानेवाले बनें।

भावार्थ-हम सदा प्रभु को ही पुकारें। प्रभु हमें बल सौमनस्य को प्राप्त करायें। प्रभु स्तोता की पुकार को सुनते हैं, उसे ज्ञानोपदेश देते हुए उसकी शक्तियों का वर्धन करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

'द्युमत् अमीवचातन रक्षोहा' स्तुतिवचन

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥

(१) **शतसाः**-शतवर्षपर्यन्त इन्द्रियशक्तियों का संभजन करनेवाला **सहस्त्रम्**-सहस्रों ज्ञान की वाणियों से **सम्**=संयुत हुआ-हुआ यह स्तोता **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **इदं वचः**=इस स्तुतिवचन को **उत् जनिषीष्ट**=उत्कर्षेण प्रादुर्भूत करता है। परिणामतः **द्विबर्हाः**=शरीर व मस्तिष्क प्रवृद्ध शक्ति व ज्ञानवाला होता है। (२) उस स्तुतिवचन का यह उच्चारण करता है **यत्**=जो **स्तोतृभ्यः**=स्तोताओं के लिए और **आपये**=बन्धुओं के लिए **शं भवाति**=शान्ति को देनेवाला होता है। **द्युमत्**=मस्तिष्क में ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करानेवाला होता है। **अमीवचातनम्**=शरीर में रोगों का विध्वंस करनेवाला व **रक्षोहा**=मनों में राक्षसी वृत्तियों को नष्ट करनेवाला होता है।

भावार्थ-प्रभु का स्तवन हमारी शक्ति व ज्ञान को बढ़ाता है। यह मानस शान्ति को प्राप्त कराता है 'द्युमत्-अमीवचातन व रक्षोहा' है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वसिष्ठ का 'प्रभु-उपासन'

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

७.७ पर व्याख्या द्रष्टव्य है।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ ही अग्नि की आराधना करते हैं—

[९] नवमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जार उषसाम् अबोधि

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥

(१) वह **जारः**=वासनाओं को जीर्ण करनेवाला प्रभु **उषसाम्**=(उष दाहे) वासनाओं को भस्म करनेवाले पुरुषों की **उपस्थात्**=उपासना से **अबोधि**=जाना जाता है। प्रभु दर्शन उन्हीं को होता है जो अपनी वासनाओं को जीर्ण करने के लिये यत्नशील होते हैं। इनके समीप उठने-बैठने से सामान्य मनुष्य भी परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करता है। वे प्रभु **होता**=सब कुछ देनेवाले हैं, **मन्द्रः**=आनन्दमय हैं, **कवितयः**=अत्यन्त क्रान्तप्रज्ञ हैं **पावकः**=पवित्र करनेवाले हैं। (२) ये प्रभु **उभयस्य जन्तोः**=दोनों प्रकार के प्राणियों, पशु-पक्षियों व मनुष्यों के **केतुम्**=ज्ञान को **दधाति**=स्थापित करते हैं। पशुओं में भी कुछ वासना के रूप में ज्ञान की स्थापना होती है। मनुष्यों को प्रभु बुद्धि (Intelligence) देते हैं। ये प्रभु ही **देवेषु**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **हव्या**=हव्य पदार्थों को तथा **सुकृत्सु**=पुण्यशालियों में **द्रविणम्**=धन को धारण करते हैं। देववृत्ति के व्यक्ति सदा हव्य पदार्थों को ही ग्रहण करते हैं।

भावार्थ—प्रभु वासनाशून्य हृदयों में प्रकाशित होते हैं। ये प्राज्ञ प्रभु ही हमें पवित्र बनाते हैं। सभी को ये ही ज्ञान देते हैं। हव्यों व द्रविणों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ज्ञान का प्रकाश

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

(१) **सः**=वे प्रभु **सुक्रतुः**=शोभनकर्मा व शोभनप्रज्ञ हैं, **यः**—जो **पणीनाम्**=(पण व्यवहारे स्तुतौ च) प्रभु-स्मरणपूर्वक व्यवहार करनेवालों के **दुरः**=इन्द्रिय द्वारों को **वि**=खोल देते हैं, विषय-वासनाओं से मुक्त करके इन्हें स्वकर्तव्य में प्रेरित करते हैं। ये प्रभु **नः**—हमारे **पुरुभोजसम्**=खूब ही पालन करनेवाले **अर्कम्**=ज्ञानसूर्य को **पुनानः**=पवित्र करते हैं, वासनारूप बादलों के आवरण से इसे रहित करते हैं। वासनामेघ के विलीन होने से ज्ञानसूर्य दीप्त हो उठता है। (२) **होता**—वे प्रभु सब कुछ देनेवाले हैं। **मन्द्रः**=आनन्दमय हैं। **दमूनाः**=दान के मनवाले हैं। **राम्याणां विशाम्**=रात्रि के अन्धकार में फँसी अथवा रमण प्रवृत प्रजाओं के **तमः**—अन्धकार को **तिरः ददृशे**=तिरोहित कर देते हैं, नष्ट कर देते हैं। प्रभु की उपासना के होने स अज्ञानान्धकार नष्ट हो

जाता है।

भावार्थ–प्रभु उपासकों के इन्द्रिय द्वारों को विजयवज्र से मुक्त कर देते हैं और इनके ज्ञान को वे दीप्त करते हैं। उपासना से विषयों में रमण करनेवाली प्रजाओं का भी अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

प्रस्वः आविवेश

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व आ विवेश ॥ ३ ॥

(१) वे प्रभु **अमूरः**=सब प्रकार की मूढ़ताओं से दूर, **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ, **अदितिः**= खण्डनरहित, **विवस्वान्**=ज्ञान की किरणोंवाले हैं। **सुसंसत्**=पवित्र हृदय में आसीन होनेवाले, **मित्रः**=मृत्यु से बचानेवाले, **अतिथिः**=निरन्तर गतिशील, **नः शिवः**=हमारे लिये कल्याण को करनेवाले हैं। (२) **चित्रभानुः**=अद्भुत दीप्तिवाले वे प्रभु **उषसां अग्रे**=उषाकालों के अग्रभाग में **भाति**=हमारे हृदयों में दीप्त होते हैं। **अपां गर्भः**=जलों के मध्य में होते हुए ये **प्रस्वः आविवेश**=सब ओषधियों में प्रवेश करते हैं। ओषधियों के अन्दर उस-उस प्राणशक्ति को प्रभु ही तो स्थापित करते हैं। जलों में ये प्रभु ही रस के रूप में होते हैं। हम प्रातः प्रभु स्मरण करते हुए हृदयदेश में प्रभु को देखने का प्रयत्न करें।

भावार्थ–प्रभु ज्ञान की किरणोंवाले हैं, पवित्र हृदय में प्रकाशित होते हैं। ये प्रभु जलों के गर्भ में रहते हुए सभी ओषधियों में प्रवेश कर रहे हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

'दम्पतियों से मिलकर उपास्य' प्रभु

ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥ ४ ॥

(१) **वः**=हमारे **मनुषः युगेषु**=मानव जोड़ों में, दम्पतियों में, पति-पत्नी में **ईडेन्यः**=वह प्रभु स्तुत्य हैं। पति-पत्नी को मिलकर प्रातः प्रभु स्मरण अवश्य करना ही चाहिये। ये पति-पत्नी ही आदर्शगृह का निर्माण कर पाते हैं। यह **जातवेदाः**=सर्वज्ञ प्रभु **समनगाः**=संग्राम में संगत होता है। अर्थात् हम काम-क्रोध आदि से संग्राम करते हैं। तो ये प्रभु हमारे सहायक होते हैं। **अशुधत्**= हृदयदेश में दीप्त होते हैं। (२) **सुसन्दृशा**=उत्तम दर्शनीय **भानुना**=दीप्ति से **यः विभाति**=जो प्रभु विशिष्ट दीप्तिवाले हैं, उस **समिधानम्**=सम्यक् देदीप्यमान प्रभु को **गावः**=सब वेदवाणियाँ **प्रतिबुधन्त**=ज्ञापित करती हैं, ये सब वाणियाँ प्रभु का ही ज्ञान देती हैं।

भावार्थ–दम्पती मिलकर प्रातः प्रभुस्तवन करें। काम-क्रोध आदि से संग्राम में ये प्रभु ही हमारे सहायक होते हैं। सब वेद-वाणियाँ इस प्रकाशमय प्रभु का प्रतिपादन करती हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

रमणीयता का आधान

अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥ ५ ॥

(१) **अग्ने**=हे अग्रणी प्रभो! **दूत्यं याहि**-आप हमारे लिये दूतकर्म को प्राप्त होइये, हमारे लिये ज्ञानसन्देश को देनेवाले होइये। **मा रिषण्यः**-हमें हिंसित न करिये। **ब्रह्मकृता**=ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले (ब्रह्म करोति) **गणेन**-प्राणों के गण से आप हमें **देवान् अच्छ**=दिव्य गुणों की ओर ले चलिये। (२) हमारे साथ **यक्षि**=संगत करिये। **सरस्वतीम्**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती से हमारा मेल हो। **मरुतः**=प्राणों का हमारे से मेल हो। **अश्विना**=द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का हमारे साथ मेल हो। तथा **अपः**=शरीरस्थ रेतःकणों का हमारे साथ मेल हो।

भावार्थ-प्रभु हमें ज्ञानसन्देश प्राप्त कराके हिंसित होने से बचायें। ज्ञानोत्पादक प्राणगण के द्वारा हमें दिव्यगुणों की ओर ले चलें। इन देवों के द्वारा हमारे जीवन रमणीय हों। हमारे साथ **'सरस्वती, मरुत्, अश्विना व आपः'** का सम्पर्क हो।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

'जरूथ-जरण'

त्वाम॑ग्ने समिधा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न्यक्षि॑ रा॒ये पुर॑न्धिम्।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ६ ॥

(१) हे **अग्ने**-अग्रणी प्रभो! **वसिष्ठः**-उत्तम वसुओंवाला व वशियों में श्रेष्ठ यह स्तोता **त्वां समिधानः**=आपको दीप्त करता हुआ **जरूथम्**-इस परुषभाषी व जरणीय (नष्ट करने योग्य) कटुभाषणरूप राक्षसी वृत्ति को **हन्**=नष्ट करता है। आप **पुरन्धिम्**-पालक बुद्धिवाले इस स्तोता को **राये**=ऐश्वर्य के लिये **यक्षि**=संगत करिये। (२) हे **जातवेदः**-सर्वज्ञ प्रभो! आप **पुरुणीथा**-इन अनेक मार्गोंवाले, मायामय विविध छलछिद्रान्वित मार्गों से गति करनेवाले राक्षसी भावों को **जरस्व**=जीर्ण करिये। और इस प्रकार **अयम्**=आप **स्वस्तिभिः**=कल्याणमार्गों के द्वारा **नः**=हमारा **सदा पात**=सर्वदा रक्षण करिये। हमें शुभमार्गों पर ले चलते हुए आप हमारा कल्याण करिये।

भावार्थ-वशी स्तोता प्रभु का स्मरण करता है। प्रभु ही वस्तुतः उसे राक्षसीभावों के आक्रमण से बचाते हैं।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ द्वारा अग्नि का उपासन है-

[१०] दशमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दविद्युतत्-दीद्यत्-शोशुचानः

उ॒षो न जा॒रः पृ॒थु पाजो॑ अश्रे॒द्दवि॑द्युत॒द्दीद्य॒च्छोशु॑चानः।
वृषा॒ हरि॒ः शुचि॒रा भा॑ति भा॒सा धियो॑ हिन्वा॒न उ॑श॒तीर॑जीगः ॥ १ ॥

(१) **उषः जारः न**=उषा के जीर्ण करनेवाले सूर्य के समान ये प्रभु **पृथु पाजः**=विशाल तेज का **अश्रेत्**=आश्रय करते हैं। वे प्रभु **दविद्युतत्**=ज्योतिर्मय हैं, **दीद्यत्**=सब अन्धकारों का खण्डन करनेवाले हैं। **शोशुचानः**-खूब ही शुचिता व पवित्रता को करनेवाले हैं। (२) **वृषा**-सब सुखों का सेचन करनेवाले **हरिः**=दुःखहर्ता **शुचिः**=पवित्र वे प्रभु **भासा**=दीप्ति से **आभाति**=समन्तात् दीप्त हो रहे हैं। **धियः**=बुद्धियों को **हिन्वानः**=प्रेरित करते हुए वे प्रभु **उशतीः**=(कामयमानाः) उन्नति की कामनावाली प्रजाओं के **अजीगः**=(जागरयति) जागरित करते हैं। जैसे एक अध्यापक

कामयमान विद्यार्थी को ऊँची शिक्षा देनेवाले होते हैं, उसी प्रकार इन कामयमान प्रजाओं को प्रभु प्रबुद्ध करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सूर्य के समान दीप्त हैं। ज्योतिर्मय-अन्धकार को दूर करनेवाले व पवित्रता को करनेवाले हैं। वे बुद्धियों को प्रेरित करते हुए हमें उद्‌बुद्ध करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

यज्ञं+मन्म

स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म।

अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥ २ ॥

(१) **वस्तोः**=दिन में **स्वः न**=सूर्य के समान **उषसाम्**=(उष दाहे) वासनाओं को भस्म करनेवालों के हृदयों में **अरोचि**=वे प्रभु दीप्त होते हैं। इसीलिए **उशिजः**=मेधावी पुरुष **मन्म न**=मननीय स्तोत्रों की तरह **यज्ञं तन्वानाः**=यज्ञ को विस्तृत करते हैं। सदा पवित्र हृदयोंवाले बनते हुए प्रभु दर्शन के लिये यत्नशील होते हैं। (२) **देवः**=वह प्रकाशमय **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **जन्मानि**=सब उत्पन्न प्राणियों को **विद्वान्**=जानता हुआ **वि आद्रवत्**=विविध दिशाओं में सर्वत्र गतिवाला होता है। **दूतः**=ये प्रभु ज्ञान का सन्देश देनेवाले, **देवयावा**=देवों को प्राप्त होनेवाले व **वनिष्ठः**=सम्भजनीयतम हैं।

भावार्थ—प्रभु सूर्यवत् दीप्त हैं। स्तोत्रों व यज्ञों के द्वारा पवित्र हृदय बनकर हम प्रभु को हृदय में देख पाते हैं। ये प्रभु ही हमारे लिये ज्ञान के सन्देश को देते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'गिरः मतयः' अग्निम् अच्छ

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः।

सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

(१) **देवयन्तीः**=दिव्यगुणों की कामना करती हुई **गिरः**=ज्ञान की वाणियाँ तथा **मतयः**=मननपूर्वक की गई स्तुतियाँ **अग्निं अच्छा**=उस अग्रेणी प्रभु की ओर **यन्ति**=प्राप्त होती हैं। उस प्रभु से ही **द्रविणं भिक्षमाणाः**=धन का भिक्षण करती हैं। (२) उस प्रभु की ओर हमारी स्तुति-वाणियाँ जाती हैं जो **सुसन्दृशम्**=कल्याण संदर्शनवाले हैं। **सुप्रतीकम्**=उत्तम तेजस्वी रूपवाले हैं। **स्वञ्चम्**=उत्तम गतिवाले **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं। **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **अरतिम्**=स्वामी हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का ज्ञान प्राप्त करें, प्रभु का स्तवन करें। प्रभु ही सब धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'इन्द्र (वसु) रुद्र व आदित्यों' के सम्पर्क में

इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम्।

आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥ ४ ॥

(१) हे **अग्ने**=परमात्मन्! **वसुभिः**=वसुओं के साथ **सजोषाः**=संगत हुए-हुए आप **नः**=हमारे लिये **इन्द्रम्**=इन्द्र को **आवहा**=प्राप्त कराइये। इस जितेन्द्रिय पुरुष के सम्पर्क में हम भी इन्द्र व

जितेन्द्रिय बनें। **रुद्रेभिः**-(रुत्+र अथवा रुत्+द्र) ज्ञानोपदेश देनेवाले अथवा रोगों को दूर भगानेवाले इन रुद्रों के साथ संगत हुए-हुए आप **बृहन्तम्**-वृद्धि के कारणभूत अथवा खूब वृद्ध (बढ़े हुए) **रुद्रम्**=इस ज्ञानोपदेष्टा व रोगहर्ता को हमारे साथ मिलाइये। (२) **आदित्येभिः**=सब ज्ञानों का आदान करनेवाले इन विद्वानों के द्वारा आप **विश्वजन्याम्**-सब मनुष्यों का हित करनेवाली **अदितिम्**=वेदवाणी (नि० १।११) को हमें प्राप्त कराइये। **ऋक्वभिः**=स्तुत्य जीवनवाले अथर्वाङ्गिरसों के द्वारा **विश्ववारम्**=सब से वरने के योग्य अथवा सब वरणीय ज्ञानोंवाले **बृहस्पतिम्**-सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी को हमें प्राप्त कराइये।

भावार्थ-हम 'इन्द्र (वसु), रुद्र व आदित्य' विद्वानों के सम्पर्क में आयें। ये हमें इस वेदवाणी का ज्ञान दें तथा बृहस्पति (सर्वज्ञ प्रभु) को प्राप्त करायें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान्॥ ५ ॥

(१) **उशिजः विशः**=मेधावी प्रजायें **अध्वरेषु**-यज्ञों में **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु का **ईडते**-उपासना करती हैं। जो प्रभु **मन्द्रम्**=आनन्दमय व स्तुत्य हैं। **होतारम्**=सब कुछ देनेवाले हैं। **यविष्ठम्**=हमारे से बुराइयों को अधिक से अधिक दूर करनेवाले हैं। यज्ञों के द्वारा ही इस प्रभु का उपासन होता है 'यज्ञेन यज्ञमयन्त देवाः'। (२) **स हि**-वे प्रभु ही **क्षपावान्**=शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं। ये प्रभु **रयीणाम्**=ज्ञानैश्वर्यों के **अतन्द्रः**=आलस्य शून्य-अप्रमत्त **दूतः**=प्राप्त करानेवाले **अभवत्**=हैं। तथा **देवान् यजथाय**=दिव्यगुणों के साथ हमारे सम्पर्क के लिये होते हैं।

भावार्थ-हम यज्ञों द्वारा उस स्तुत्य प्रभु का उपासन करें। ये प्रभु शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं तथा देवों (दिव्यगुणों) के साथ हमारा सम्पर्क करनेवाले हैं।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ 'अग्नि' का उपासन करते हैं-

[११] एकादशं सूक्तम्

ऋषिः **वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

'महान् यज्ञों के प्रज्ञापक' प्रभु

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ १ ॥

(१) हे प्रभो! **महान् असि**=आप महान् हैं। **अध्वरस्य**=हिंसारहित यज्ञों के **प्रकेतः**=प्रज्ञापक हैं। **त्वद् ऋते**=आपके बिना **अमृताः**=ये नीरोग जीवनोंवाले देव **न मादयन्ते**=आनन्द का अनुभव नहीं करते, आपकी उपासना में ही आनन्द लेते हैं। (२) आप **विश्वेभिः देवैः**=सब दिव्यगुणों के साथ **सरथं आयाहि**=इस समान शरीररूप रथ पर प्राप्त होइये। हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **प्रथमः होता**=मुख्य होता होते हुए **इह**=यहाँ हमारे वासनाशून्य हृदयों में **निसद**=विराजमान होइये।

भावार्थ-प्रभु महान् हैं, यज्ञों के प्रज्ञापक हैं। देव प्रभु उपासन में ही आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रभु हमें सब दिव्यगुणों के साथ प्राप्त हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

शुभ दिन

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति॥ २॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **हविष्मन्तः**=हविवाले—त्यागपूर्वक अदनवाले **मानुषासः**=विचारशील लोग **सदम् इत्**—सदा ही **दूत्याय**=दूत कर्म के लिये, ज्ञान का सन्देश प्राप्त कराने के लिये **अजिरम्**=गति के द्वारा सब बुराइयों को परे फेंकनेवाले **त्वाम्**=आपको **ईडते**=उपासित करते हैं। हम ज्ञान सन्देश प्राप्त करने के लिये उस अजिर अग्नि का उपासन करें उससे ज्ञान-सन्देश प्राप्त करें। सदा विचारशील बनकर हविवाले हों। मस्तिष्क के लिये ज्ञान, हाथों से यज्ञ। (२) हे प्रभो! **यस्य**=जिस भी उपासक के **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय में आप **देवैः**=देवों के साथ **आसदः**=आसीन होते हैं **अस्मै**=इसके लिये **अहानि**=सब दिन **सुदिना**=शुभ दिन **भवन्ति**—हो जाते हैं।

भावार्थ—हम त्यागपूर्वक अदनवाले विचारशील उपासक बनें। हमारे हृदयों में देवों के साथ प्रभु का वास हो। इस प्रकार हमारे सब दिन शुभ दिन हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अभिशस्तिपावा

त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा॥ ३॥

(१) **अक्तोः**=इस जीवन रात्रि के **त्रिः चित्**=तीनों सवनों में **दाशुषे मर्त्याय**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिये **त्वे अन्तः**=आप में **वसूनि**=वसुओं को **प्रचिकितुः**=ज्ञानी लोग जताते हैं (प्रवेदयन्ति)। ज्ञानी पुरुषों से ऐसा सुनते हैं कि जीवन के प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन व तृतीय सवन में जो भी आपके प्रति अपना अर्पण करता है, उसके लिये आप सब आवश्यक वस्तुओं को (धनों को) देते हैं। (२) हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **इह**=इस जीवन में, **मनुष्वत्**—जिस प्रकार विचारशील पुरुष के जीवन में **देवान् यक्षि**=दिव्यगुणों को संगत करिये। **नः**=हमारे लिये **दूतः भव**=ज्ञान का सन्देश देनेवाले होइये। **अभिशस्तिपावा**=हिंसा से हमारा रक्षण करिये, हम काम-क्रोध-लोभ आदि से हिंसित न हो जायें।

भावार्थ—अपने प्रति अर्पण करनेवाले के लिये प्रभु सब धनों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु हमें ज्ञान का सन्देश दें और शत्रुओं के हिंसन से हमें बचायें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'महान् अध्वर के ईश' प्रभु

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥ ४॥

(१) **अग्निः**=ये अग्रणी प्रभु **बृहतो अध्वरस्य**=इस महान् जीवनयज्ञ के **ईशे**=ईश हैं। **अग्निः**—ये प्रभु ही **विश्वस्य**=सब **कृतस्य हविषः**—संस्कृत हवियों के ईश हैं। प्रभु द्वारा ही जीवन यज्ञ चलता है। जीवन-यज्ञ को चलाने के लिये प्रभु ही परिष्कृत हव्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। (२) **वसवः**=अपने इस जीवन में निवास को उत्तम बतानेवाले लोग **अस्य**=इस प्रभु की

हि-ही **क्रतुम्**-शक्ति व प्रज्ञान को **जुषन्त**-सेवन करते हैं। **अथा**-अब **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति **हव्यवाहम्**-उन सब हव्य पदार्थों के प्राप्त करानेवाले प्रभु को **दधिरे**=धारण करते हैं।

भावार्थ-प्रभु ही जीवन-यज्ञ के ईश हैं, वे ही इसके लिये आवश्यक हवियों को प्राप्त कराते हैं। इस की शक्ति व प्रज्ञान को धारण करके ही वसु उत्तम जीवनवाले बनते हैं, और अन्ततः प्रभु को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-अग्निः ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दिव्यजीवन

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **देवान्**=देववृत्ति के व्यक्तियों को **हविरद्याय**-हव्य पदार्थों के ही सेवन के लिये तथा दानपूर्वक अदन के लिये ही (हु दानादनयोः) **आवह**-प्राप्त कराइये। देव सदा हवि का ग्रहण करनेवाले हों, दानपूर्वक अदन करें। **इह**=इस हमारे जीवन में **इन्द्रज्येष्ठासः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु जिनमें ज्येष्ठ हैं वे सब देव **मादयन्ताम्**-आनन्दित करनेवाले हों, अर्थात् हमारे जीवन में प्रभु का भी धारण हो और हम सब दिव्यगुणों को धारण करनेवाले बनें। (२) **इयं यज्ञम्**-इस यज्ञ को **दिवि**-ज्ञान के प्रकाश के होने पर **देवेषु**=इन देववृत्ति के व्यक्तियों में **धेहि**=धारण करिये। देववृत्ति के व्यक्ति ज्ञान व यज्ञ को अपनाते हैं। **यूयम्**=आप **नः**=हमें **सदा**-सदा **स्वस्तिभिः**-कल्याणों के द्वारा **पात**=सुरक्षित करो। शुभ मार्ग पर चलते हुए हम कल्याणभाक् हों।

भावार्थ-देव प्रभु को व दिव्यगुणों को धारण करते हैं। वे ज्ञान व यज्ञ को अपनाते हैं। सदा शुभ मार्ग का आक्रमण करते हैं।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ अग्नि का उपासन करते हैं-

[१२] द्वादशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-अग्निः ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

महा नमसा अगन्म

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम्॥ १ ॥

(१) हम **महा नमसा**=महान् नमन के द्वारा **यविष्ठम्**=उस युवतम-बुराइयों को अधिक से अधिक दूर करनेवाले प्रभु को **अगन्म**=प्राप्त हों। प्रातः-सायं नमन के द्वारा प्रभु की प्रभूत ही परिचर्या करें। **यः**=जो प्रभु **स्वे दुरोणे**=अपने ही इस शरीररूप गृह में **समिद्धः**-दीप्त हुए हुए **दीदाय**=चमकते हैं। प्रभु का हृदय में ही तो प्रकाश होता है। (२) उस प्रभु को हम पूजते हैं, जो **उर्वी रोदसी अन्तः**=इन विशाल द्यावापृथिवी के बीच में **चित्रभानुम्**-अद्भुत दीप्तिवाले हैं। **स्वाहुतम्**=समन्तात् उत्तम दानोंवाले हैं और **विश्वतः**=सब ओर **प्रत्यञ्चम्**-हमारे अभिमुख हैं अथवा सर्वत्र गतिवाले हैं।

भावार्थ-नमन के द्वारा हम उस प्रकाशमय प्रभु का पूजन करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'दुरित व अवद्य' से दूर

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।

स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

(१) **सः**=वह **अग्निः**=अग्रणी प्रभु **मह्ना**=अपनी महिमा से **विश्वा दुरितानि**=सब बुराइयों को **साह्वान्**=पराभूत करता है। अतएव **जातवेदाः**=ये सर्वज्ञ प्रभु **दमे**=इस शरीर-गृह में **आ स्तवे**=समन्तात् स्तुति किये जाते हैं। (२) **सः**=वे प्रभु **नः**=हमें **दुरितात्**=दुराचरण से व **अवद्यात्**=निन्दित कर्मों से **रक्षिषत्**=रक्षित करें। **अस्मान्**—हम **गृणतः**=स्तुति करते हुओं को प्रभु रक्षित करें, **उत**=और **नः**=हमारे **मघोनः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों का रक्षण करें।

भावार्थ—प्रभु स्तुति करनेवाले यज्ञशील पुरुषों के सब पापों को दूर करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

निर्द्वेषता-स्नेह-सम्भजनीय धन

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।

त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**—अग्रणी प्रभो! **त्वम्**—आप **वरुणः**=हमारे से द्वेषों का निवारण करनेवाले हैं। **उत**=और **मित्रः**=(प्रमीतेः त्रायकः) मृत्यु से बचानेवाले हैं। **त्वाम्**=आपको **वसिष्ठाः**=अपने निवास को उत्तम बनानेवाले लोग **मतिभिः**=मननीय स्तुतियों के द्वारा **वर्धन्ति**=बढ़ाते हैं। (२) **त्वे**=आप में **वसु**=धन **सुषणनानि**=(सुभजनानि) उत्तमता से सेवनीय **सन्तु**=हों, अर्थात् आपकी उपासना करते हुए हम सम्भजनीय धनों को प्राप्त करें। **यूयम्**=आप **स्वस्तिभिः**=कल्याण के मार्गों के द्वारा **नः**=हमारा **सदा**=सदा **पात**=रक्षण करो।

भावार्थ—प्रभु अपने उपासक को निर्द्वेष व स्नेहवाला व मृत्यु से बचानेवाला बनाते हैं। उसके लिये सम्भजनीय धनों को प्राप्त कराते हैं।

अगले सूक्त में वसिष्ठ 'वैश्वानर' नाम से प्रभु का स्तवन करते हैं—

[१३] त्रयोदशं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वैश्वानरः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विश्वशुचे धियन्धे

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।

भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥

(१) **विश्वशुचे**=सारे संसार को दीप्त करनेवाले दीप्ति के लिये ही **धियन्धे**=बुद्धि को धारण करनेवाले, बुद्धि धारण के द्वारा **असुरघ्ने**=आसुर वृत्तियों का विनाश करनेवाले **अग्नये**=उस अग्रणी प्रभु के लिये **मन्म**=मननीय स्तोत्र को तथा **धीति**=उत्तम यज्ञ आदि कर्म को **प्रभरध्वम्**=प्रकर्षेण धारण करो। (२) मैं **मतीनां यतये**=बुद्धियों के देनेवाले **वैश्वानराय**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु के लिये **बर्हिषि**=यज्ञ में **हविः न**=हवि के समान, **प्रीणानः**=(प्रीणयन्) प्रीणित करता हुआ **भरे**=स्तुति का भरण करता हूँ। मैं यज्ञों में हवि को देता हुआ तथा स्तुति करता हुआ प्रभु की प्रीति का कारण बनता हूँ।

भावार्थ–प्रभु को हम यज्ञों व स्तुति द्वारा प्रीणित करें। प्रभु हमारे जीवनों को दीप्त करते हैं, बुद्धि को देते हैं और आसुरभावों का विनाश करते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

अभिशस्ति-मोचन

त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**-आप **शोचिषा**=दीप्ति से **शोशुचानः**=अत्यन्त ही दीप्त होते हुए, **जायमानः**=प्रादुर्भूत होते हुए **रोदसी**-द्यावापृथिवी को **आ अपृणाः**=पूरित करते हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आप दीप्त करते हैं। (२) हे **जातवेदः**–सर्वज्ञ **वैश्वानर**=विश्व-नर-हित प्रभो! **त्वम्**=आप **महित्वा**=अपनी महिमा से **देवान्**=देववृत्ति के पुरुषों को **अभिशस्तेः**=हिंसक शत्रु से **अमुञ्चः**–मुक्त करते हैं। आपकी कृपा से ही देव काम–क्रोध–लोभ आदि हिंसक शत्रुओं का शिकार नहीं होते।

भावार्थ–प्रभु सारे संसार को दीप्ति दे रहे हैं। प्रभु ही देवों को काम-क्रोध आदि हिंसक शत्रुओं से बचाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वैश्वानरः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

उस महान् गोप का पशुपालन

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्माः।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **यद्**=जब **जातः**=हृदयदेश में प्रादुर्भूत होते हैं, तो **भुवना**=सब प्राणियों का **व्यख्यः**=विशेषरूप से ध्यान करते हैं, **न**-जैसे कि **गोपाः**=एक ग्वाला **पशून्**=पशुओं का ध्यान करता है। **इर्यः**=आप ही प्रेरित करनेवाले हैं, **परिज्मा**=परितः **गन्ता**=सब ओर गतिवाले हैं। (२) हे **वैश्वानर**=सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभो! **ब्रह्मणे**-ज्ञान प्राप्ति के लिये **गातुं विन्द**=हमें मार्ग प्राप्त कराइये। आप से उपदिष्ट मार्ग पर चलते हुए हम निरन्तर अपने ज्ञान में वृद्धि के करनेवाले हों। **यूयम्**=आप **स्वस्तिभिः**=कल्याण के मार्गों के द्वारा **नः**=हमें **सदा**=सदा **पात**=रक्षित करिये।

भावार्थ–प्रभु हमारा इस प्रकार रक्षण करते हैं जैसे कि एक ग्वाला अपने पशुओं का। प्रभु हमें ज्ञान प्राप्ति के मार्ग का उपदेश करें। उस मार्ग से चलते हुए हम कल्याण को प्राप्त करें।

अगले सूक्त में वसिष्ठ 'अग्नि' नाम से ही प्रभु का स्तवन करते हैं–

[१४] चतुर्दशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

प्रभु के प्रति अर्पण

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥ १ ॥

(१) **नमस्विनः**=नमनवाले होते हुए **वयम्**=हम **अग्नये**=उस अग्रेणी प्रभु के लिये **दाशेम**=अपने को दे डालें। 'भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम'=नमन के द्वारा ही तो प्रभु का पूजन

होता है। हम उस **जातवेदसे**=सर्वज्ञ प्रभु के लिये **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के हेतु से अपने को अर्पित करनेवाले हों। प्रभु ही तो सब प्रकाश प्राप्त कराते हैं। (२) **देवाय**=उस दिव्य गुणों के पुञ्ज प्रभु के लिये **देवहूतिभिः**=दिव्य गुणों की पुकारों से, दिव्य गुणों को प्राप्त करने के लिये आराधनाओं से हम अपने को अर्पित करें तथा **शुक्रशोचिषे**=उस दीप्त ज्ञान-ज्योतिवाले प्रभु के लिये **हविर्भिः**=हवियों के द्वारा त्यागपूर्वक अदन के द्वारा हम अपना अर्पण करें। हवि का सेवन करते हुए हम भी 'शुक्रशोचि' बनेंगे।

भावार्थ—प्रभु 'जातवेदस्-देव-शुक्रशोचि व अग्नि' हैं। हम 'ज्ञान-दीप्ति, देवहूति, हवि व नमन्' के द्वारा उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'समिधा-सुष्टुती-घृतेन-हविषा'

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र।

व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ॥ २ ॥

(१) हे **अग्ने**=प्रकाशस्वरूप प्रभो! **वयम्**=हम **समिधा**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा, स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को बढ़ाते हुए, **ते**=आपका **विधेम**=पूजन करें। हे **यजत्र**=पूजनीय प्रभो! **वयम्**=हम **सुष्टुती**=उत्तम स्तुति के द्वारा **दशेम**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले बनें। (२) हे **अध्वरस्य होतः**—इस जीवनयज्ञ के होता (प्रवर्तक) प्रभो! **वयम्**=हम **घृतेन**=(घृ क्षरणे) मलों के क्षरण के द्वारा—नैर्मल्य की दीप्ति को प्राप्त करने के द्वारा आपके प्रति अपना अर्पण करें। हे **देव**=प्रकाशमय! **भद्रशोचे**=कल्याणकर दीप्तिवाले प्रभो! **वयम्**=हम **हविषा**=हवि के द्वारा, त्यागपूर्वक अदन के द्वारा आपके प्रति अपना अर्पण करें।

भावार्थ—हम 'ज्ञानदीप्ति, उत्तम स्तुति, मलक्षरण द्वारा नैर्मल्य प्राप्ति तथा दानपूर्वक अदन' के द्वारा प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

देवहूति-वषट्कृति

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः।

तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नः**=हमारी **देवहूतिम्**=दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये की गयी आराधना को सुनकर **देवेभिः**=दिव्य गुणों के साथ **उप आयाहि**=हमें समीपता से प्राप्त होइये। आप हमारी इस **वषट्कृतिम्**=स्वाहाकृति को, हवि को **जुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले होइये। हमारी यह हवि-दानपूर्वक अदन की वृत्ति हमें आपका प्रिय बनाये। (२) हे प्रभो! हम **तुभ्यं देवाय**=सब कुछ देनेवाले आपके लिये **दाशतः स्याम**=अपना अर्पण करनेवाले हों। आपकी इच्छा में अपनी इच्छा को मिला दें, हमारी स्वतन्त्र इच्छा ही न हो। **यूयम्**=आप **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा **नः**=हमारा **सदा**=सदा **पात**=रक्षण करिये। आपकी प्रेरणा से शुभ मार्ग पर चलते हुए हम सदा कल्याण को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम दिव्य गुणों के लिये आराधना करें। हवि का सेवन करनेवाले हों। प्रभु के प्रति अपने को अर्पित करें।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ 'अग्नि' का आराधन करते हैं–

[१५] पञ्चदशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

नेदिष्ठ आप्य (निकटतम बन्धु)

उपसद्याय मीळ्हुषं आस्यें जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥ १ ॥

(१) **उपसद्याय**–उपसदनीय–उपासनीय, **मीढुषे**=सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु के लिये, अर्थात् उस प्रभु की प्राप्ति के लिये **आस्ये**=अपने मुखों में **हविः जुहुत**=हवि को ही आहुत करो। सदा त्यागपूर्वक ही अदन करनेवाले बनो। (२) उस प्रभु की प्राप्ति के लिये हवि को स्वीकार करो **यः**–जो **नः**–हमारे **नेदिष्ठम्**=अन्तिकतम **आप्यम्**–बन्धु हैं। (आपि से स्वार्थ में तद्धित प्रत्यय होकर 'आप्यं' बना है)। इस अन्तिकतम बन्धु की प्राप्ति त्यागपूर्वक अदन से ही होती है।

भावार्थ–प्रभु हमारे समीपतम सखा हैं। इनकी प्राप्ति का साधन यही है कि हम त्यागपूर्वक अदन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

दमे दमे निषसाद

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे। कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥

(१) **यः**=जो प्रभु **पञ्च चर्षणीः**=पाँच भागों में विभक्त (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र व निषाद) मनुष्यों के **अभि**=अभिमुख **दमे दमे**=प्रत्येक शरीर गृह में **निषसाद**=अधिष्ठातृरूपेण निषण्ण हैं। वे प्रभु **कवि**=क्रान्तप्रज्ञ हैं, **गृहपतिः**=इस शरीररूप गृह के रक्षक हैं, **युवा**=सब बुराइयों को दूर करनेवाले व अच्छाइयों को मिलानेवाले हैं। ज्ञान को देकर वे हमारे जीवनों को पवित्र करते हैं। (२) प्रभु जैसे ब्राह्मणों का ध्यान करते हैं, उसी प्रकार इन निषादों का भी। इनको भी विविध प्रकार से प्रेरणा देते हुए प्रभु सन्मार्ग पर लाने की व्यवस्था करते हैं। कष्टों का आना भी उसी व्यवस्था का एक भाग होता है।

भावार्थ–प्रभु प्रत्येक शरीर गृह में स्थित हैं। वे क्रान्तप्रज्ञ प्रभु ज्ञान को प्राप्त कराते हुए हमारे इन गृहों का रक्षण व पवित्रीकरण करते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

अमात्यं वेदः

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

(१) **सः अग्निः**=वे प्रभु **नः**=हमारे **अमात्यम्**=(अमा+त्य) साथ होनेवाले (अन्तिके भव=सहभूत) **वेदः**=ज्ञानधन का **विश्वतः रक्षतु**=सब ओर से रक्षण करें। यह धन काम-क्रोध-लोभ के आक्रमण से विनष्ट न हो जाये। (२) **उत**=और इस प्रकार इस ज्ञानधन के द्वारा **अस्मान्**=हमें **अंहसः**=पाप से **पातु**=बचाये। ज्ञान ही पापों से हमारा रक्षण करता है।

भावार्थ–प्रभु हमारे साथ रहनेवाले ज्ञानधन का रक्षण करें। इसके रक्षण के द्वारा हमें पाप से बचायें।

सूचना–ज्ञानधन को 'अमात्यं' कहा है। यह धन चोर आदि द्वारा वरणीय नहीं। हमारे साथ ही रहता है। मृत्यु के समय भी इसे यहीं नहीं छोड़ जाना पड़ता।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दिवः श्येनाय

नवं नु स्तोमम॒ग्नये॑ दि॒वः श्ये॒नाय॑ जीजनम्। वस्वः॑ कु॒विद्व॒नाति॑ नः ॥ ४ ॥

(१) मैं **अग्नये**=उस प्रभु के लिये **नु**=अब **नवं स्तोमम्**=इस प्रशंसनीय स्तुति समूह को **जीजनम्**=उत्पन्न करता हूँ जिससे **दिवः श्येनाय**=ज्ञान के द्वारा शंसनीय गतिवाला बन सकूँ। ज्ञान को प्राप्त करके शंसनीय गतिवाला बनने के लिये मैं प्रभु का स्तवन करता हूँ। (२) ये प्रभु **नः**=हमारे लिये **वस्वः**=धनों को **कुविद्**=खूब ही **वनाति**=देते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तवन से उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करके मैं उत्तम गतिवाला बनूँ। प्रभु ही तो हमारे लिये सब प्रशस्त धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

प्रभु-प्रदत्त धन का सुन्दर विनियोग

स्पा॒र्हा यस्य॒ श्रियो॑ दृ॒शे र॒यिर्वी॒रव॑तो यथा। अग्रे॑ य॒ज्ञस्य॒ शोच॑तः ॥ ५ ॥

(१) **यस्य**=जिस प्रभु की—प्रभु से दी हुई **श्रियः**=लक्ष्मियाँ (धन) **स्पार्हाः**=स्पृहणीय होती हैं। पुरुषार्थ प्राप्त धन सब प्रभु-प्रदत्त होते हैं। अन्य धन चुराये हुए होते हैं। प्रभु-प्रदत्त धन हमारी **दृशे**—शोभा के लिये होते हैं, ये धन दर्शनीय होते हैं। उसी प्रकार दर्शनीय होते हैं **यथा**=जैसे कि **वीरवतः**=प्रशस्त सन्तानोंवाले पुरुष का **रयिः**=धन। कुसन्ततिवाले का धन तो व्यर्थ विषय-विलास में फुँक जाता है। (२) ये प्रभु-प्रदत्त धन तो **यज्ञस्य अग्रे**=यज्ञों के अग्रभाग में **शोचतः**=दीप्यमान पुरुष के होते हैं। अर्थात् इन धनों को वह उपासक यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में ही विनियुक्त करता है।

भावार्थ—प्रभु-प्रदत्त धन (पुरुषार्थ से प्राप्त धन) सदा यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में विनियुक्त होते हैं और स्पृहणीय व दर्शनीय होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

ध्यान व अग्निहोत्र

सेमां वे॑तु॒ वष॑ट्कृतिम॒ग्निर्जु॑षत नो॒ गिरः॑। यजि॑ष्ठो हव्य॒वाह॑नः ॥ ६ ॥

(१) **सः**=वे **अग्निः**=अग्रेणी प्रभु **नः**=हमारी—हमारे से की जानेवाली, **इमाम्**=इस **वषट्-कृतिम्**=स्वाहाकृति को, यज्ञों को **वेतु**=चाहे, अर्थात् हम प्रभु प्रेरणा से सदा यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में लगे रहें। वह अग्नि **नः गिरः**=हमारी इन स्तुतिवाणियों को **जुषत**=प्रीतिपूर्वक सेवन करे, अर्थात् हम प्रभु का प्रीतिपूर्वक उपासन करें। (२) वे प्रभु **यजिष्ठः**=अधिक से अधिक उपासनीय हैं। **हव्यवाहनः**=सब अग्निकुण्ड में डाले गये इन हव्यों को अग्नि के द्वारा सब देवों में पहुँचानेवाले हैं।

भावार्थ—हम प्रातः प्रबुद्ध होकर उस यजिष्ठ प्रभु का स्तवन करें तथा हव्यवाहन प्रभु की प्रीति के लिये हवन करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

नक्ष्य देव

नि त्वा॑ नक्ष्य विश्पते द्यु॒मन्तं॑ देव धीमहि। सु॒वीर॑मग्न आहुत ॥ ७ ॥

(१) हे **नक्ष्य**=उपगन्तव्य-सबको प्राप्त होनेवाले अतिथे! **विश्पते**=सब प्रजाओं के रक्षक प्रभो! हम **द्युमन्तम्** ज्योतिर्मय **त्वा**=आपको **निधीमहि**=अपने हृदयों में धारण करें-हृदयों में आपका ध्यान करें। (२) हे **देव**=प्रकाशमय, **अग्ने**-अग्रेणी, **आहुत**=समन्तात् दानोंवाले (आ हुत यस्य) प्रभो! हम **सुवीरम्**=उत्तम वीर सन्तानों को प्राप्त करानेवाले आपका ध्यान करें।

भावार्थ-हम प्रभु का ध्यान करें। प्रभु हमें अतिथिवद् प्राप्त होते हैं हम ब्राह्ममुहूर्त में उनके स्वागत के लिये तैयार हों। वे ही हमारे रक्षक हैं, प्रकाशमय हैं, अग्रेणी हैं। ये प्रभु हमारे लिये समन्तात् दानों को प्राप्त करानेवाले हैं। प्रभु कृपा से ही हमारे सन्तान उत्तम होते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

सदा प्रभु के प्रकाश में

क्षप॑ उ॒स्रश्च॑ दीदिहि स्व॒ग्नय॒स्त्वया॑ व॒यम्। सु॒वीर॒स्त्वम॑स्म॒युः ॥ ८ ॥

(१) हे प्रभो! **क्षपः उस्रः च**=रात्रियों में व दिनों में सदा ही आप **दीदिहि**=हमारे हृदयों में दीप्त होइये। **वयम्**=हम **त्वया**-आपके द्वारा **स्वग्नयः**-उत्तम यज्ञ की अग्नियोंवाले हों, अर्थात् आपकी प्रेरणा से सदा यज्ञ आदि उत्तम कार्यों में प्रवृत्त रहें। (२) **त्वम्**-आप **सुवीरः**-उत्तम वीर सन्तानों को प्राप्त करानेवाले हैं तथा **अस्मयुः**-सदा हमारे हित की कामनावाले हैं। सदा हृदयस्थरूपेण उत्तम प्रेरणा को देते हुए आप हमारा हित चाहते हैं।

भावार्थ-हमारे हृदयों में सदा प्रभु का प्रकाश हो और हम सदा ही यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें। प्रभु हमारे हित की कामनावाले हैं और हमें उत्तम वीर सन्तानों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

ध्यान व स्वाध्याय

उप॑ त्वा सा॒तये॒ नरो॒ विप्रा॑सो यन्ति धी॒तिभिः॑। उपाक्ष॑रा सह॒स्रिणी॑ ॥ ९ ॥

(१) हे प्रभो! **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले **विप्रासः**=ज्ञानी पुरुष **सातये**=उत्तम ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये **धीतिभिः**=यज्ञ आदि कर्मों के द्वारा **त्वा उपयन्ति**=आपके समीप प्राप्त होते हैं। यज्ञ आदि कर्मों से आपकी उपासना करते हुए उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं। (२) यह **अक्षरा**-कभी नष्ट न होनेवाली **सहस्रिणी**=(स हस्) आमोद-प्रमोद को प्राप्त करानेवाली ज्ञान की वाणी **उप**=सदा हमें समीपता से प्राप्त हो। यह ज्ञान की वाणी ही वस्तुतः हमारे जीवनों को निर्दोष व सानन्द बनायेगी।

भावार्थ-ज्ञानी लोग ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्रभु का उपासन करते हैं। यह ज्ञान की वाणी सदा उनके समीप रहती है, अर्थात् ये स्वाध्याय प्रवृत्त रहते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

रक्षो-बाधन

अ॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति शु॒क्रशो॑चि॒रम॑र्त्यः। शुचिः॑ पाव॒क ईड्यः॑ ॥ १० ॥

(१) **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **रक्षांसि**=हमारे राक्षसीभावों को **सेधति**-बाधित करते हैं, हमारे से दूर करते हैं। **शुक्रशोचिः**-वे प्रभु दीप्त ज्ञान-ज्योतिवाले हैं, **अमर्त्यः**=अविनाशी हैं। उपासक के लिये भी इस ज्ञान-ज्योति को प्राप्त कराके ये उसे विषय वासनाओं के पीछे मरते रहने से दूर करते हैं। (२) **शुचिः**-वे प्रभु पवित्र हैं। **पावकः**=पवित्र करनेवाले हैं। **ईड्यः**-एतएव स्तुति के योग्य हैं। प्रभु का स्तवन करता हुआ ही तो मैं पवित्र जीवनवाला बनूँगा।

भावार्थ—प्रभु ज्ञान देकर हमारे राक्षसीभावों को दूर करते हैं। प्रभु पवित्र हैं, हमें पवित्र करते हैं। अतएव उपास्य हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

'वरणीय कार्यसाधक' धन

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो। भगश्च दातु वार्यम्॥ ११ ॥

(१) **सहसः यहो**=हे बल के पुत्र—बल के पुञ्ज प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिये **राधांसि**=कार्यसाधक धनों को **आभर**=समन्तात् प्राप्त कराइये। **ईशानः**=आप ही तो सब धनों के स्वामी हैं। (२) **च**=और **भगः**=सब ऐश्वर्यों के स्वामी प्रभु **वार्यम्**=वरणीय धनों को **दातु**=देनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति दें जिससे हम चाहने योग्य (वरणीय) कार्यसाधक धनों को प्राप्त कर सकें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वीरवद् यशः+वार्यम्

त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः। दितिश्च दाति वार्यम्॥ १२ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वम्**=आप **वीरवत्**=उत्तम वीर सन्तानोंवाले **यशः**=यश को—यशस्वी जीवन को हमारे लिये **दाति**=देते हैं। (२) **च**=और **सविता देवः**=वे प्रेरक सर्वोत्पादक (सविता) प्रकाशमय प्रभु हमारे लिये **वार्यम्**=वरणीय धनों को प्राप्त कराते हैं। **भगः**=ऐश्वर्य के पुञ्ज प्रभु हमारे लिये ऐश्वर्य को देते हैं। **च**=तथा **दितिः**=उदारता हमें ऐश्वर्य के देनेवाली हो। जितने हम उदार बनेंगे, उतना अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे।

भावार्थ—हम अग्नि की उपासना करते हुए—प्रगतिशील बनकर—उत्तम वीर सन्तानोंवाले यशस्वी जीवन को प्राप्त करें। उत्पादक कार्यों में प्रवृत्त होकर वरणीय धनों को प्राप्त करें। उदारता हमारे धनों की वृद्धि का हेतु बने।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शत्रु दहन

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः। तपिष्ठैरजरो दह॥ १३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **नः**=हमें **अंहसः**=पाप से **रक्ष**=बचाइये। सदा प्रगतिशील बनते हुए हम पापों से दूर रहें। **देव**=हे प्रकाशमय प्रभो! **रीषतः**=हिंसक शत्रु से प्रति (रक्ष) **स्म**=हमें बचाइये। काम-क्रोध-लोभ आदि हमें खा जानेवाले शत्रुओं से प्रभु हमारा रक्षण करें। (२) **अजरः**=कभी जीर्ण न होनेवाले आप **तपिष्ठैः**=अत्यन्त तापक तेजों से **दह**=इन्हें भस्म कर दीजिये। इन शत्रुओं की नगरियों का विध्वंस आपने ही तो करना है।

भावार्थ—प्रभु हमें पापों से बचाएँ। हमारे हिंसक शत्रुओं को अपने तेज से भस्म कर दें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

आयसी पूः

अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये। पूर्भवा शतभुजिः॥ १४ ॥

(१) **अधा**=अब **अनाधृष्टः**=किसी भी शत्रुओं से धर्षणीय न होते हुए आप **नः**=हमारे

नृपीतये=सब मनुष्यों के रक्षण के लिये **आयसीः पूः**-लोहे की नगरी के समान **भवा**-होइये। जैसे लोह निर्मित प्राकार से वेष्टित नगरी में एक व्यक्ति सुरक्षित रहता है, इसी प्रकार आप हमारे लिये लोह-निर्मित पुरी के समान हों। हम आपके अन्दर निवास करते हुए सब शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित हों। (२) वह 'आयसी पूः' **मही**-अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा **शतभुजिः** शतवर्षपर्यन्त हमारा पालन करनेवाली है। इस नगरी में रहते हुए हम शत्रुओं से आक्रान्त नहीं होते।

भावार्थ-उपासक के लिये प्रभु लोहपुरी के समान बनते हैं। उसमें निवास करता हुआ उपासक शत्रुओं से धर्षणीय नहीं होता।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः-**ऋषभः** ॥

अंहसः-अघायतः पाहि

त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः। दिवा नक्तमदाभ्य॥ १५॥

(१) हे **दोषावस्तः**-अज्ञानरात्रि के अन्धकारों को आच्छादित करनेवाले, अज्ञानान्धकार के निवारक प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**-हमें **अंहसः**-पाप से **पाहि**=बचाइये। अज्ञान ही तो पाप का कारण होता है। अज्ञान दूर हुआ और पाप दूर हुआ। (२) हे **अदाभ्य**=अहिंसित-किन्हीं भी शत्रुओं से हिंसित न होनेवाले प्रभो! आप **दिवानक्तम्**=दिन-रात **अघायतः**=अघ की कामनावाले-हमारे अशुभ को चाहते हुए पुरुष से हमें बचाइये।

भावार्थ-प्रभु हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करके पाप से व अशुभ चाहनेवाले पुरुष से बचायें।

अगले सूक्त में भी वसिष्ठ 'अग्नि' का उपासन करते हैं-

[१६] षोडशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

नमन के द्वारा अग्नि का उपासन

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे। प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥ १॥

(१) **एना नमसा**=इस नमन के द्वारा **वः**=तुम्हारे **अग्निम्**=अग्रेणी, **ऊर्जः न पातम्**=शक्ति को न गिरने देनेवाले प्रभु को **आहुवे**-पुकारता हूँ। **प्रियम्**-जो प्रीति के जनक हैं, **चेतिष्ठम्**=अधिक से अधिक चेतानेवाले हैं। **अरतिम्**=सर्वत्र गतिवाले हैं अथवा (अ-रतिं)=अनासक्त हैं। 'असक्त सर्वमृञ्चैव'। (२) उस प्रभु को मैं नमन के द्वारा आराधित करता हूँ, जो **स्वध्वरम्**=उत्तम अध्वरोंवाले हैं। **विश्वस्य दूतम्**=सब के लिए ज्ञान-सन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं और **अमृतम्**=(न मृतं यस्मात्) अमरता को प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ-नम्रतापूर्वक अग्रेणी प्रभु का उपासन करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनते हैं। वे प्रभु हमारे लिये ज्ञान-सन्देश को प्राप्त कराते हुए हमें अमर बनाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

अरुषा-विश्वभोजसा (हरी)

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम्॥ २॥

(१) **सः**=वे प्रभु हमारे शरीर-रथों में **अरुषा**=आरोचमान तथा **विश्वभोजसा**=सबका

पालन करनेवाले इन्द्रियाश्वों को **योजते**=जोड़ते हैं। प्रभु के उपासक की ज्ञानेन्द्रियाँ आरोचमान होती हैं तथा कर्मेन्द्रियाँ यज्ञ आदि पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त होती हैं। **सः दुद्रवत्**=वे प्रभु सर्व प्राणिहित के लिये निरन्तर गतिशील हैं, **स्वाहुतः**-चारों ओर उत्तम दानोंवाले हैं। प्रभु ने हमारे लिये उत्तमोत्तम वस्तुओं को प्रदान किया है। (२) **सुब्रह्मा**=हमारे इस जीवनयज्ञ के उत्कृष्ट ब्रह्मा प्रभु ही हैं। हम भूल करते हैं, तो वे ठीक करने की प्रेरणा देते ही हैं। जितने अंश में हम प्रेरणा को सुनते हैं यज्ञ ठीक चलता ही है। **यज्ञः**=वे प्रभु ही उपासनीय हैं, **सुशमी**=उत्तम कर्मोंवाले हैं। इन **वसूनाम्**=सब वसुओं के **देवम्**-देनेवाले, **जनानाम्**=लोगों के **राधः**=सच्चे ऐश्वर्यभूत प्रभु को (आहुवे)=पुकारता हूँ। (गत मन्त्र से यह 'आहुवे' क्रिया अनुवृत्त हुई है)। इन प्रभु को ही हम अपना वास्तविक धन जानें।

भावार्थ–प्रभु उत्तम इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं। हमारे हित के लिये सतत प्रवृत्त हैं। हमारे जीवन-यज्ञ के 'ब्रह्मा' है। सब धनों के देनेवाले व सच्चे ऐश्वर्य हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखना

उद॑स्य शो॒चिर॑स्थादाजुह्वा॒नस्य॑ मी॒ळ्हुषः॑। उद्धू॒मासो॑ अरु॒षासो॑ दिवि॒स्पृशः॒ सम॒ग्निमि॑न्धते॒ नरः॑ ॥ ३ ॥

(१) **अस्य**=इस **आजुह्वानस्य**-जिसके प्रति हम अपने को दे रहे हैं या जिसकी प्राप्ति के लिये यज्ञों को कर रहे हैं, उस **मीढुषः**=सुखों का सेचन करनेवाले प्रभु की **शोचिः**=ज्ञानदीप्ति **उद् अस्थात्**-हमारे हृदयों में उठती है। हम निर्मल हृदयों में उस प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। (२) इस प्रभु के **अरुषासः**=आरोचमान, **दिविस्पृशः**=द्युलोक का स्पर्श करानेवाली-देवलोक में जन्म को प्राप्त करानेवाली **धूमासः**=ज्ञानाग्नि द्वारा वासनाओं को कम्पित करने की शक्तियाँ **उत्**=ऊपर उठती हैं हम सब वासनाओं को कम्पित करके दूर करनेवाले होते हैं। इसीलिए **नरः**=उन्नतिपथ पर चलनेवाले मनुष्य **अग्निम्**=उस अग्रेणी प्रभु को **समिन्धते**=समिद्ध करते हैं। अपने हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखने के लिये यत्नशील होना ही वह उपाय है जिससे कि हम जीवन में उन्नत होते हैं और पथभ्रष्ट नहीं होते।

भावार्थ–हम प्रभु प्राप्ति के लिये यज्ञशील बनें। प्रभु सब सुखों का वर्षण करेंगे। प्रभु की ज्ञानदीप्तियाँ हमारी वासनाओं का विध्वंस करेंगी। हमारा कर्त्तव्य है कि प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ज्ञान+धन

तं त्वा॑ दू॒तं कृ॑ण्महे य॒शस्त॑मं दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह।
विश्वा॑ सूनो सहसो मर्त॒भोज॑ना॒ रास्व॒ तद्यत्त्वेम॑हे ॥ ४ ॥

(१) हे **सहसः सूनो**=बल के पुत्र-बल के पुञ्ज प्रभो! **यशस्तमम्**=अत्यन्त यशस्वी **तं त्वा**=उन आपको **दूतम्**-ज्ञान सन्देश को प्राप्त करानेवाला **कृण्महे**=करते हैं, आपके द्वारा ज्ञान को प्राप्त करते हैं। आप **वीतये**=अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिये **देवान्**=देवों को **आवह**=हमें प्राप्त कराइये। ज्ञानी देववृत्ति के पुरुषों के साथ हमारा सम्पर्क हो जिससे हमारे लिये वे उत्कृष्ट ज्ञान के देनेवाले हों। (२) हे प्रभो! आप **विश्वा**=सब **मर्तभोजना**=मानव के लिये उपभोग्य वस्तुओं को **रास्व**=दीजिए। **तद्**=उस-उस धन को (रास्व) दीजिए **यत्**=जिसे **त्वा ईमहे**=हम आप से

माँगते हैं।

भावार्थ–प्रभु हमें ज्ञान प्राप्त कराएँ। अज्ञानान्धकार के ध्वंस के लिए देवों का संग प्राप्त करायें। मनुष्य के लिए आवश्यक धनों को प्राप्त करायें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

'गृहपति-होता व पोता' प्रभु

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम्॥ ५ ॥

(१) हे **अग्ने**–परमात्मन्! **त्वं गृहपतिः**=आप ही इस शरीर गृह के पति (स्वामी) हैं। मुझे तो केवल उपभोक्ता का अधिकार ही प्राप्त है। इस गृह को न बिगड़ने देना मेरा मौलिक कर्त्तव्य हो जाता है। **नः**=हमारे **अध्वरे**=इस जीवनयज्ञ में **त्वं होता**=आप ही होता हैं। आप ही इस जीवनयज्ञ को चलानेवाले हैं। **त्वं पोता**=आप ही सब पवित्रता के करनेवाले हैं। (२) हे **विश्ववार**=सब वरणीय वस्तुओंवाले प्रभो! आप ही **प्रचेताः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले हैं। आप **वार्यम्**–सब आवश्यक वरणीय धनों को **यक्षि**–हमारे साथ संगत करते हैं **च**=और **वेषि**=हमारे लिये इन वरणीय धनों की कामना करते हैं आप उन धनों की प्राप्ति के लिये हमें मार्ग दिखाते हैं और उन मार्गों पर चलने की शक्ति देते हैं।

भावार्थ–हे प्रभो! आप ही इस शरीर गृह के पति हैं। आप ही इस जीवनयज्ञ के होता व पवित्र करनेवाले (पोता) हैं। आप ही हमें सब वरणीय वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

ऋत्विजों का तीक्ष्णीकरण

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते॥ ६ ॥

(१) हे **सुक्रतो**–उत्तम शक्ति व प्रज्ञानवाले प्रभो! आप **यजमानाय**=इस यज्ञशील परुष के लिये **रत्नं कृधि**=रमणीय धनों को करनेवाले होइये। **त्वम्**–आप **हि**–ही **रत्नधाः**=सब रमणीय धनों के धारण करनेवाले **असि**-हैं। (२) **नः**=हमारे **ऋते**=इस जीवनयज्ञ में **विश्वम्**=सब **ऋत्विजम्**='इन्द्रिय, मन व बुद्धि' रूप ऋत्विजों को **आशिशीहि**=समन्तात् तीक्ष्ण करिये–ये सब ऋत्विज् अपने-अपने कार्य को सुचारुरूपेण करनेवाले हों और आप हमें उस सन्तान को प्राप्त कराइये जो **सुशंसः**=उत्तम स्तवनवाला होता हुआ **दक्षते**-(वर्धते) वृद्धि को प्राप्त होता है अथवा उन ऋत्विजों को ही प्राप्त कराइये जो उत्तम शंसनवाला होते हुए दिन व दिन वृद्धि को प्राप्त होनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु यज्ञशील व्यक्तियों के लिये रमणीय रत्नों का धारण करते हैं। वे जीवनयज्ञ के संचालक इन्द्रियरूप ऋत्विजों को अपने-अपने कार्य में तीक्ष्ण करते हैं। मन को सुशंस व बुद्धि को वृद्धि का कारण बनाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

'ज्ञानी भक्त, दानशील धनी, जितेन्द्रिय'

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम्॥ ७ ॥

(१) हे **स्वाहुत**=समन्तात् उत्तम दानोंवाले **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **त्वे**=आप में **सूरयः**=ज्ञानी पुरुष **प्रियासः सन्तु**=प्रिय हों, अर्थात् ज्ञानी भक्त आपको आत्मतुल्य प्रतीत हों-आपको वे प्रिय हों **ये**-जो **जनानाम्**=लोगों में **मघवानः**=ऐश्वर्यशाली होते हुए **यन्तारः**=दानशील होते हैं। (२) आपको वे प्रिय हों जो **गोनां ऊर्वान् दयन्त**=इन्द्रिय समूहों का रक्षण करते हैं-इन्द्रियों को विषय-वासना में भटकने से बचाते हुए 'जितेन्द्रिय' बनते हैं।

भावार्थ-प्रभु के प्रिय वे व्यक्ति होते हैं जो (१) प्रभु के ज्ञानी भक्त बनते हैं, (२) धनी होते हुए दानशील होते हैं तथा (३) इन्द्रियों का रक्षण करते हैं-इन्द्रियों को विषयों में भटकने नहीं देते।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

दीर्घश्रुत् शर्म

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥

(१) **येषाम्**=जिनके **दुरोणे**=गृह में **घृतहस्ता**=ज्ञानदीप्ति को हाथों में लिए हुए ये **इडा**=वाग्देवी **आनिषीदति**=आसीन होती है, वह वाग्देवी **अपि**=बहुत करके **प्राता**=पूर्णता को करनेवाली होती है। यह वाग्देवी उस घर के लोगों की कमियों को दूर करके उनके जीवन को बहुत करके पूर्ण बनानेवाली होती है। (२) हे **सहस्य**=शत्रुमर्षक बल के लिये हितकर अग्ने! **तान्**=उन इडा युक्त गृहवालों को **द्रुहः**=द्रोह की वृत्ति से तथा **निदः**=निन्दनीय कर्मों से **त्रायस्व**=बचाइये। ज्ञान पवित्र करनेवाला तो होता ही है। हे प्रभो! **नः**=हमारे लिये **दीर्घश्रुत्**=जिसमें अति दीर्घकाल तक ज्ञान का श्रवण चलता है, उस **शर्म**=गृह को **यच्छा**=दीजिए। वस्तुतः पवित्र गृह वही है जो ज्ञानचर्चा का आधार बनता है।

भावार्थ-हमारे गृहों में वाग्देवी का निवास हो। यह हमारे गृहों का पूरण करनेवाली हो। हमें द्रोह व निन्दनीय कर्मों से बचाये।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

'मधुरवाणी-ज्ञान-यज्ञ'

स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥

(१) **सः**=वह, गतमन्त्र के अनुसार 'दीर्घश्रुत् शर्म' में निवास करनेवाला व्यक्ति **मन्द्रया जिह्वया**=प्रसन्नता को उत्पन्न करनेवाले शब्दों को बोलनेवाली जिह्वा से **वह्निः**=सब कार्यों का वहन करनेवाला होता है। **च**=और **आसा**=मुख से **विदुष्टरः**=उत्कृष्ट विद्वान् बनता है। मुख से ज्ञान की वाणियों का ही उच्चारण करता हुआ उत्तरोत्तर अपने ज्ञान को बढ़ाता है। (२) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **नः**-हमारे **मघवद्भ्यः**=(मघ=मख) यज्ञशील पुरुषों के लिये **रयिम्**=यज्ञसाधक ऐश्वर्यों को **आवह**=प्राप्त कराइये, **च**=और **हव्यदातिम्**=हव्यों के देने को और यज्ञों को **सूदय**=प्रेरित करिये। हमारे ये यज्ञशील लोग ऐश्वर्य को प्राप्त करें और उन ऐश्वर्यों के द्वारा और अधिक यज्ञों को करनेवाले बनें।

भावार्थ-प्रभु के अनुग्रह से हम (क) मधुर शब्दों से सब व्यवहारों को सिद्ध करें। (ख) मुख को ज्ञानवृद्धि में ही व्यापृत करें। (ग) धन को प्राप्त करते हुए अधिकाधिक यज्ञशील हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

दान के तीन लाभ

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य॥ १०॥

(१) हे प्रभो! **ये**-जो **महः श्रवसः कामेन**=महान् यश की इच्छा से **राधांसि**-कार्यसाधक धनों को तथा **अश्व्या**-इन्द्रियाश्वों को उत्तम बनानेवाले **मघा**=धनों को **ददति**-दान करते हैं, अर्थात् जो धन का इस प्रकार दान करते हैं कि उस धन से इन्द्रियों की पवित्रता में वृद्धि ही हो। **तान्**=उन लोगों को **अंहसः**-पाप से **पिपृहि**-बचाइये। दान उनके जीवन को पवित्र करनेवाला हो। यह पात्रता का विचार करके दिया गया सात्त्विक दान उनके यश को बढ़ाये तथा उनके जीवन को पवित्र करनेवाला हो। (२) हे **यविष्ठ्य**-बुराइयों को दूर करनेवालों में सर्वोत्तम प्रभो! **त्वम्**-आप **पर्तृभिः**-पालन साधनों से तथा **शतं पूर्भिः**-शतवर्षपर्यन्त चलनेवाली इन शरीर नगरियों से इन सात्त्विक दानियों का पालन करिये।

भावार्थ—हम दानशील बनें। सुपात्र में दत्त दान से हमारा (क) यश बढ़ेगा, (ख) हमें पवित्रता प्राप्त होगी, (ग) दीर्घजीवन व नीरोग जीवन प्राप्त होगा।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः—**गान्धारः** ॥

दान व प्रभु प्राप्ति

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते॥ ११॥

(१) **देवः**-वह देनेवाला प्रभु 'देवो दानात्' **वः**-तुम्हारे लिये **द्रविणोदाः**-सब धनों का देनेवाला है। वह हमारे से भी **पूर्णाम् आसिचम्**=पूर्ण आसेचन को **विवष्टि**-चाहता है। वह चाहता है कि हम भी दिल खोलकर, दोनों हाथों को भरकर, देनेवाले बनें। (२) तुम **वा**-निश्चय से प्राजापत्य यज्ञ में, लोक कल्याण के कर्मों में **उत् सिञ्चध्वम्**-इस धन का उत्कर्षेण सेचन करनेवाले बनो और **वा**=निश्चय से **उपपृणध्वम्**-सुख को बढ़ाओ व लोक रक्षण करो। **आत् इत्**-ऐसा करने के बाद ही **देवः**=वे प्रकाशमय प्रभु **वः**=तुम्हें **ओहते**-अपने को प्राप्त कराते हैं। धन का त्याग ही हमें प्रभु के समीप ले जाता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे से सम्पूर्ण धन के दान की कामना करते हैं। हम धन के दान से लोक रक्षण करनेवाले बनें। तभी हम प्रभु प्राप्ति के पात्र बनेंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

रत्नम्-सुवीर्यम्

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे॥ १२॥

(१) **देवाः**-देववृत्ति के लोग **तम्**-उस **प्रचेतसम्**=प्रकृष्ट ज्ञानवाले **वह्निम्**-सब कार्यों के साधक प्रभु को **अध्वरस्य**-इस जीवन यज्ञ का **होतारम्**=होता **अकृण्वत**=करते हैं। प्रभु को ही इस शरीर रथ का सारथि बनाते हैं। प्रभु इस यात्रा को पूर्ण करानेवाले होते हैं। (२) **अग्निः**=वे अग्रेणी प्रभु **विधते**-प्रभु का पूजन करनेवाले **दाशुषे**=दानशील **जनाय**=व्यक्ति के लिये **रत्नम्**=रमणीय

धनों को तथा **सुवीर्यम्**=उत्तम शक्ति को **दधाति**=धारण करते हैं।

भावार्थ–हम इस जीवनयज्ञ का होता प्रभु को ही जानें। दान द्वारा प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें 'रत्न व सुवीर्य' प्राप्त करायेंगे।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी 'वसिष्ठ' व 'अग्नि' हैं–

[१७] सप्तदशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः–**ऋषभः** ॥

ज्ञान व पवित्र हृदय

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम्॥ १ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! आप **सुषमिधा**=उत्तम ज्ञानदीप्तियों के द्वारा **समिद्धः भव**=हमारे हृदयों में सम्यक् दीप्त होइये। पार्थिव पदार्थों का ज्ञान ही पहली समिधा है, द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान दूसरी समिधा है तथा अन्तरिक्ष लोक के पदार्थों का ज्ञान ही तीसरी समिधा है। 'इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति'। (२) **उत**=और यह उपासक **बर्हिः**=अपने वासनाशून्य हृदयरूप आसन को **उर्विया**=खूब विस्तार से **विस्तृणीताम्**=बिछाये। इस हृदयासन पर वह प्रभु को आसीन करने का प्रयत्न करे।

भावार्थ–प्रभु प्राप्ति के लिये हम ज्ञानाग्नि को खूब दीप्त करें और पवित्र हृदयरूप आसन को बिछायें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दिव्यगुणों के प्रवेशक इन्द्रियद्वार

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥

(१) **उत**=और **उशतीः**=दिव्यगुणों की कामना करते हुए **द्वारः**=ये शरीररूप यज्ञवेदि के इन्द्रियद्वार **विश्रयन्ताम्**=विशेषरूप से इस यज्ञ-मन्दिर का आश्रय करें। (२) **उत**=और **उशतः**=हमारा हित चाहनेवाले **देवान्**=देववृत्ति के पुरुषों को **इह**=हमारे इस जीवन यज्ञ में **आवह**=प्राप्त कराइये।

भावार्थ–हमारे इन्द्रियद्वार दिव्यगुणों के प्रवेश का साधन बनें। हमें जीवनयज्ञ में देववृत्ति के पुरुषों का सम्पर्क प्राप्त हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः–**ऋषभः** ॥

दान-देवसंग-यज्ञ

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **हविषा**=हवि के द्वारा **वीहि**=हमें प्राप्त हो, अर्थात् हम दानपूर्वक अदन करते हुए आपको प्राप्त हों। **देवान्**=देववृत्ति के पुरुषों को **यक्षि**=हमारे साथ संगत करिये– हम आपकी कृपा से देव पुरुषों का साथ प्राप्त करें। (२) हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! आप हमें **स्वध्वरा**=(स्वध्वरान्) शोभन यज्ञोंवाला **कृणुहि**=करिये।

भावार्थ–प्रभु प्रेरणा से हम (क) दान देकर बचे हुए को खानेवाले बनें। (ख) देववृत्ति के पुरुषों के साथ हमारा उठना-बैठना हो। (ग) सदा उत्तम यज्ञों में हम प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

यज्ञ-देवसंग-अमृतत्व

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥

(१) वह **जातवेदाः**=सर्वधनों को देनेवाला प्रभु इन धनों के द्वारा हमें **स्वध्वरा**=उत्तम यज्ञोंवाला **करति**-करता है और **देवान्**-देववृत्ति के पुरुषों को **यक्षत्**=हमारे साथ संगत करते हैं। इस सत्संग के द्वारा यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में हमारी वृत्ति बढ़ती है। (२) **च**=और वे प्रभु **अमृतान्**=विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले और अतएव नीरोग जीवनवाले हम सबको **पिप्रयत्**=प्रभु प्रीणित करते हैं—प्रीति का अनुभव कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु की प्रेरणा हमें यज्ञों में प्रवृत्त करती है—हमें देवसंग प्राप्त कराती है। और इस प्रकार नीरोग जीवनवाले हम सबको प्रीति का अनुभव कराती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**साम्नीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

वार्य वस्तु लाभ तथा सत्य इच्छायें

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥ ५ ॥

(१) हे **प्रचेतः**=प्रकृष्ट चेतना को प्राप्त करानेवाले प्रभो! आप **विश्वा**-सब **वार्याणि**=वरणीय धनों को **वंस्व**=प्राप्त कराइये। वस्तुतः ज्ञानपूर्वक सब व्यवहारों को करते हुए हम उत्कृष्ट धनों को प्राप्त करें। (२) **अद्य**-आज **नः**=हमारी **आशिषः**-इच्छायें **सत्याः भवन्तु**-सत्य हों। हमारे मनों में कोई अशुभ इच्छा उठे ही नहीं।

भावार्थ—हम 'प्रचेता' प्रभु के उपासक होते हुए वरणीय धनों को प्राप्त करें और सदा शुभ इच्छाओंवाले हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

दिव्यता व शक्ति रक्षण

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥

(१) हे **अग्ने**=अग्रेणी प्रभो! **हव्यवाहम्**=सब हव्य पदार्थों के प्राप्त करानेवाले **त्वाम् उ**=आपको ही **ते देवासः**=वे देववृत्ति के पुरुष **दधिरे**=धारण करते हैं। वस्तुतः आपको हृदयदेश में धारण करने के द्वारा—हृदय में सदा आपके स्मरण के द्वारा ही वे देव बनते हैं। (२) आप ही **आ**=सब प्रकार से **ऊर्जः**=बल व प्राणशक्ति के **नपातम्**=न गिरने देनेवाले हैं। जहाँ प्रभु का वास है वहाँ वासना का विनाश होने से शक्ति का रक्षण होता है एवं प्रभु 'ऊर्जो नपात्' हैं।

भावार्थ—प्रभु का हृदय में धारण करने से हमारी वृत्ति दिव्य बनती है—शक्ति का विनाश नहीं होता।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

प्रभु के प्रति अर्पण व रत्न प्राप्ति

ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥ ७ ॥

(१) **ते**=वे हम सब, हे प्रभो! **देवाय**=सब कुछ देनेवाले प्रकाशस्वरूप **ते**-आपके लिये **दाशतः**=अपना अर्पण करते हुए **स्याम**=हों। हम अपनी इच्छाओं को आपकी इच्छा में मिला दें। हमारी कोई स्वतन्त्र इच्छा न रहे। (२) **इयानः**=उपगम्यमान होते हुए आप **नः**=हमारे लिये **महः**-

महनीय **रत्ना**=रमणीय पदार्थों को **विदधः**=(विधत्स्व) धारण कराइये। प्रभु के उपासक को प्रभु सब रत्नों को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें। प्रभु हमारे लिये सब रमणीय रत्नों को धारण करायेंगे।

अगले सूक्त में वसिष्ठ ऋषि 'इन्द्र' नाम से प्रभु का स्तवन करते हैं—

द्वितीयोऽनुवाकः **[१८] अष्टादशं सूक्तम्**

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

गौ-अश्व-वसु

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः॥ १॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जब **नः**=हमारे में से जो कोई भी **त्वे ह**=आप में ही निवास करते हैं, वे **चित्**=निश्चय से **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में लगनेवाले होते हैं, अर्थात् आपका ध्यान करनेवाले लोग अवश्य 'पितर' बनते हैं। ये **जरितारः**=आपका सच्चा स्तवन करनेवाले लोग **विश्वा**=सब **वामा**=सुन्दर धनों को **असन्वन्**=प्राप्त करते हैं। (२) **त्वे**=आपकी उपासना में ही **सुदुघाः**=सुख सन्दोह्य **गावः**=गौवें हैं, **त्वे हि**=आपकी उपासना में ही **अश्वाः**=उत्तम अश्व हैं। **त्वम्**=आप ही **देवयते**-दिव्यगुणों की प्राप्ति की कामनावाले पुरुष के लिये **वसु**=धन के **वनिष्ठः**=दातृतम होते हैं। सब वसुओं को आप ही प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—प्रभु में निवास करनेवाला व्यक्ति रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है। प्रभु के स्तोता सब वननीय धनों को प्राप्त करते हैं। प्रभु उत्तम गौवों, अश्वों व धनों को प्राप्त करानेवाले हैं।

सूचना—यहाँ 'गावः' से ज्ञानेन्द्रियों का तथा 'अश्वाः' से कर्मेन्द्रियों का भाव लेना भी उचित ही है। प्रभु उपासक को उत्तम ज्ञानदुग्ध देनेवाली ज्ञानेन्द्रियरूप गौवों को प्राप्त कराते हैं। तथा कर्मों में व्याप्त होनेवाली कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराते हैं, ये ही 'अश्व' हैं 'अश्नुवते कर्मसु'।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

द्युभिः-पिशा-गोभिः-अश्वैः (अव)

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन्।
पिशा गिरो मघवन्गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान्॥ २॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **राजा जनिभिः इव**=राजा जैसे अपनी प्रजा रूप पत्नियों के साथ रहता है इसी प्रकार आप हम प्रजाओं के साथ **क्षेषि एव**=रहते ही हैं। आप सदा हमारा रक्षण इस प्रकार कर रहे हैं, जैसे कि राजा को प्रजा का रक्षण करना चाहिए। हे प्रभो! **विदुः**=ज्ञानी, **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ **सन्**=होते हुए आप **गिरः**=हम स्तोताओं को **द्युभिः**=ज्ञान-ज्योतियों से **पिशा**=हिरण्य (Gold) से, **गोभिः**=उत्तम ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा तथा **अश्वैः**=उत्तम कर्मेन्द्रियों द्वारा **अभि अव**=समन्तात् रक्षित करिये। जीवन-यात्रा के लिये धन तथा इन्द्रियरूप साधनों को आप हमारे लिये प्राप्त कराइये। हम ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान का अर्जन करें और कर्मेन्द्रियों द्वारा जीवन-यात्रा के लिये धन का अर्जन कर सकें। (२) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन् प्रभो! **त्वायतः**=आपको प्राप्त करने की कामनावाले **अस्मान्**=हम लोगों को **राये**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये **शिशीहि**=तीक्ष्ण

बुद्धिवाला करिये। हम आपको प्राप्त करने की कामनावाले हों। परन्तु साथ ही जीवन यात्रा के लिये आवश्यक धन को प्राप्त करने के लिये परिष्कृत बुद्धिवाले हों।

भावार्थ–प्रभु इस प्रकार हमारे साथ हैं, जैसे राजा प्रजा के। ये प्रभु हमें ज्ञान तथा धन देते हैं। उत्तम ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को प्राप्त कराके हमारा रक्षण करते हैं। हम प्रभु की कामनावाले हों। प्रभु हमें जीवन-यात्रा के लिये आवश्यक धन की प्राप्ति के लिये संस्कृत बुद्धि करते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सुमति व सुख

इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन्॥ ३॥

(१) हे प्रभो! **इमाः**=ये **पस्पृधानासः**=एक दूसरे से बढ़कर स्तुति की कामनावाली होती हुई, **मन्द्राः**=मोद (हर्ष) की कारणभूत **देवयन्तीः**=देव प्रभु की कामना करती हुईं **गिरः**=वाणियाँ **उ**–निश्चय से **अत्र**–यहाँ इस जीवन में **त्वा उप अस्थुः**=आपको उपासित करती हैं। इन सब वेदवाणियों के द्वारा आपका ही स्तवन होता है। (२) हे प्रभो! **ते**–आपकी **पथ्या**=ऐश्वर्य प्रापक नीति मार्ग **राये**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये **अर्वाची एतु**=हमें आभिमुख्येन प्राप्त हो। हे **इन्द्र**–सब ऐश्वर्यों के स्वामिन् प्रभो! **ते सुमतौ**–आपकी कल्याणी मति में चलते हुए हम **शर्मन् स्याम**–सुख में निवास करनेवाले हों। शुभ मार्ग हमें शुभ को प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ–हमारी सब स्तुतिवाणियाँ उस प्रभु के लिये हों। प्रभु से उपदिष्ट नीति मार्ग से हम धनार्जन करें और प्रभु की कल्याणी मति में चलते हुए हम सदा सुख में रहें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

गोपति से सुमति का भिक्षण

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ॥ ४॥

(१) **सूयवसे**–उत्तम तृणादिक के होने पर **न**=जैसे **धेनुम्**=गौ को दोहते हैं, उसी प्रकार **त्वा**=आपके **दुदुक्षन्**–दोहन की कामनावाला होता हुआ **वसिष्ठः**–यह उत्तम निवासवाला, शत्रुओं को वश में करनेवाला वसिष्ठ **ब्रह्माणि**=इन स्तोत्रों को **उपससृजे**=उपसृष्ट (उच्चरित) करता है। स्तोत्रों को करता हुआ आपका प्रिय बनता है और सब उन्नति साधक पदार्थों का दोहन करता है। **विश्वः**=सब **मे**–मेरे लिये **त्वां इत्**=आपको ही **गोपतिं**=सब गौओं के स्वामी के रूप में **आह**=कहता है। आपकी उपासना करता हुआ ही मैं गौवों का स्वामी बन पाऊँगा। गौएँ इन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों का वशीकरण आपकी उपासना से ही होता है। इसलिए हमारी यही कामना है कि **इन्द्रः**=वे परमैश्वर्यशाली प्रभु, सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभु **नः अच्छ**=हमारे लिये–हमारी ओर **सुमतिं गन्तु**=सुमति को प्राप्त करायें। कल्याणी मति को प्राप्त करके शुभ मार्ग पर चलते हुए हम शुभ को ही प्राप्त करें।

भावार्थ–स्तवन द्वारा प्रभु के प्रिय बनकर हम प्रभु से सब शुभों को प्राप्त करें। प्रभु का उपासन हमें इन्द्रियों का स्वामी बनायेगा। प्रभु हमें सुमति प्राप्त करायेंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'शर्धन्-शिम्यु व शाप' का विनाश

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥

(१) **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान् प्रभु—ज्ञानरूप परमैश्वर्यवाला प्रभु **सिन्धूनाम्**=ज्ञान नदियों के **पप्रथाना**=अतिशयेन विस्तृत **चित्**=भी **अर्णांसि**=ज्ञानजलों को **सुदासे**=प्रभु के प्रति अपने को दे डालनेवाले व्यक्ति के लिये **गाधानि**—न गहरे व **सुपारा**=(सुखेन तर्तुं योग्य) सुख से तरणीय **अकृणोत्**=कर देते हैं। 'सुदास्' का ज्ञान गहरा न हो, सो नहीं, पर उसके लिए अगाध भी ये ज्ञान-जल गाध व तरणीय हो जाते हैं। (२) वह **नव्यः**=स्तुत्य प्रभु **उचथस्य**=स्तोता को **अशस्तीः**=सब अशस्तियों को—अशुभ बातों को **अकृणोत्**=हिंसित कर देते हैं। **शर्धन्तम्**=हिंसित करनेवाली काम-वासना को विनष्ट करते हैं। **शिम्युम्**=हर समय धन प्राप्ति के कार्यों की कामना करनेवाली लोभवृत्ति को विनष्ट करते हैं। **शापम्**=क्रोध में उच्चरित आक्रोश वचनों को नष्ट कर देते हैं।

भावार्थ—प्रभु-प्रभु के प्रति अर्पण करनेवाले के लिये ज्ञान-जलों को सुतर कर देते हैं, अर्थात् उनके लिये ज्ञान प्राप्ति को सुलभ कर देते हैं। स्तोता के 'काम-क्रोध व लोभ' को विनष्ट करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुरोडा का 'तुर्वश व यक्षु' होना

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥ ६ ॥

(१) **पुरोडाः इत्**=प्रथम दानशील ही दान देकर बचे हुए को ही खानेवाला व्यक्ति **तुर्वशः**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाला तथा **यक्षुः**=यज्ञशील **आसीत्**=होता है। ये यज्ञशील व्यक्ति ही **राये**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये **निशिताः**=खूब तीक्ष्ण (तीव्र गतिवाले) होते हुए **अपि**=भी **मत्स्यासः इव**=जल में मछलियों के समान होते हैं, सदा इन धन के जलों में रहते हुए भी इन जलों में गल नहीं जाते। इन पर धन का घातक प्रभाव नहीं होता। (२) **भृगवः**=ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले **द्रुह्यवः च**=और सब निन्दनीय बातों की जिघांसा करनेवाले उपासक **श्रुष्टिम्**=आशु प्राप्ति को—ऐश्वर्य को (Prosperity) **चक्रुः**=करनेवाले होते हैं। **सखा**=वे सर्वमित्र प्रभु **सखायम्**=अपने इस सखा जीव को **विषूचोः अतरत्**=(विषूचु) से विविध खूब गतियों के करानेवाले लोभ से—गतमन्त्र के 'शिम्यु' से तरा देते हैं (अतारयत्)। ये लोग धन को तो प्राप्त करते हैं, परन्तु लोभवृत्ति से सदा दूर रहते हैं।

भावार्थ—देने की वृत्तिवाला पुरुष शत्रुओं को वश में करनेवाला व यज्ञशील बनता है। यह धन प्राप्ति में लगा हुआ भी धन में ही नहीं गल जाता ज्ञानी शत्रुहिंसक उपासक आवश्यक धन को प्राप्त करते हैं, प्रभु इन्हें लोभ से दूर रखते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

उपासक के लक्षण

आ प॒क्थासो॑ भला॒नसो॑ भन॒न्तालि॑नासो विषा॒णिनः॑ शि॒वासः॑ ।
आ योऽन॑यत्सध॒मा आर्य॑स्य ग॒व्या तृत्सु॑भ्यो अजगन्यु॒धा नॄन् ॥ ७ ॥

(१) **आभनन्त**-वे परमात्मा का स्तवन करते हैं, जो **पक्थासः**-परिपक्व ज्ञानवाले हैं, ज्ञानाग्नि में अपना परिपाक करते हैं। **भलानसः**-भद्रमुख हैं, जिनके मुख से कभी अशिव वाणी उच्चरित नहीं होती। **अलिनासः**-जो किसी भी विषय में लीन (आसक्त) नहीं होते। **विषाणिनः**-(विष् To encounter) शत्रुओं के साथ संघर्ष करते हैं-काम क्रोध-लोभ के विजय में सदा तत्पर रहते हैं। और **शिवासः**=लोक कल्याण में प्रवृत्त होते हैं। उपासक के जीवन में इन बातों का होना आवश्यक है। (२) उस प्रभु का ये स्तवन करते हैं **यः**-जो **आर्यस्य**=श्रेष्ठ पुरुष के **सधमाः**=(सधमाध) साथ आनन्दित होनेवाले होते हुए, उसके **गव्या**-इन्द्रियसमूह को **तृत्सुभ्यः**=काम आदि हिंसक शत्रुओं से बचाकर **आनयत्**-उसे प्राप्त करानेवाले होते हैं। और **युधा**=युद्ध के द्वारा **नॄन्**=इन काम आदि शत्रुओं के साथ युद्ध करनेवाले वीर पुरुषों को **अजगन्**=प्राप्त होते हैं।

भावार्थ-उपासक अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व करता है, भद्र ही शब्द बोलता है, कहीं सांसारिक विषयों में लीन नहीं होता, काम आदि शत्रुओं के साथ युद्ध करता है और सदा कल्याण करनेवाला होता है। प्रभु इस श्रेष्ठ पुरुष के प्रति प्रीतिवाले होकर इसके इन्द्रिय समूह को नाशक शत्रुओं से बचाते हैं। प्रभु उसे ही प्राप्त होते हैं, जो काम आदि शत्रुओं के साथ युद्ध करता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

अचेतस् द्वारा परुष्णी के कूल का भेदन

दु॒रा॒ध्यो॒३॒॑ अदि॑तिं स्रे॒वय॑न्तोऽचे॒तसो॒ वि ज॑गृभ्रे परु॑ष्णीम् ।
म॒ह्नावि॑व्यक्पृथि॒वीं पत्य॑मानः प॒शुष्क॒विर॑शय॒च्चाय॑मानः ॥ ८ ॥

(१) **दुराध्यः**=(दुष्टाभिसन्धयः) दुष्ट अभिसन्धिवाले लोग, जो व्यक्ति शुभ इच्छाओं को लेकर कार्यों में नहीं प्रवृत्त होते, **अदितिं स्त्रेवयन्तः**-(स्रेव् To shakedry) अदीना देवमाता को शुष्क करते हुए, अर्थात् दिव्यगुणों को समाप्त करते हुए, ये **अचेतसः**=मूर्ख लोग **परुष्णीम्**=(पॄ नी) पालक व पूरक नीतिरूप नदी को **विजगृभ्रे**=भिन्न कूल करते हैं। ये पालक व पूरक नीति मार्ग का उल्लंघन करते हैं। समझदारी यही है कि हम (क) शुभ भावनाओं से सब कार्यों में प्रवृत्त हों (ख) दिव्यगुणों को पनपाने का प्रयत्न करें, (ग) नीति मार्ग का उल्लंघन न करें। (२) इसके विपरीत **पत्यमानः**=सतत नीति मार्ग पर चलता हुआ पुरुष **मह्ना**-अपनी महिमा से **पृथिवीम्**-सम्पूर्ण पृथिवी को **अविव्यक्**=(व्याप्नोत्) व्याप्त करता है, अर्थात् बड़े यशस्वी जीवनवाला होता है। यह **पशुः**=(पश्यति) द्रष्टा बनकर, **कविः**=क्रान्तप्रज्ञ (Piercing sight वाला) होता हुआ **चायमानः**=सदा प्रभु का पूजन करता हुआ **अशयत्**=इस शरीररूप नगरी में निवास करता है (परिशेते)। 'चीज को उसके ठीक रूप में देखना, सूक्ष्म बुद्धि से विचार करना व प्रभु का उपासन' ये सब बातें जीवन में प्रगति के लिये व संसार में न आसक्त हो जाने के लिये आवश्यक हैं।

भावार्थ-हम शुभ भावनाओंवाले बनें। दिव्यगुणों का वर्धन करें। नीति मार्ग पर चलें। हमारा जीवन यशस्वी हो। द्रष्टा चिन्तनशील व उपासक बनकर इस शरीर नगरी में निवास करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अर्थं, नकि न्यर्थम् (ईयुः)

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः॥ ९ ॥

(१) **अर्थम् ईयुः**=सप्तम मन्त्र के उपासक लोग गन्तव्य मार्ग की ओर ही जाते हैं। **न्यर्थम्**=निम्न मार्ग की ओर **न** (ईयुः)=नहीं जाते। **परुष्णीम्**=पालक नीति मार्ग को **आशुः**—(अश्नुते) व्याप्त करनेवाला यह उपासक **चन इत्**=ही निश्चय से **अभिपित्वम्**=अभिप्राप्तव्य स्थान की ओर **जगाम**=जाता है। हमें सदा उत्कृष्ट मार्ग की ओर चलना है, निम्न मार्ग की ओर नहीं जाना। नीति मार्ग का आक्रमण करते हुए हम सदा लक्ष्य-स्थान की ओर आगे बढ़ें। (२) ऐसे **सुदासे**=सम्यक्तया काम-क्रोध आदि का उपक्षय करनेवाले उपासक के लिये **इन्द्रः**=वे शत्रुविनाशक प्रभु **सुतुकान्**=अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त भी **अमित्रान्**=शत्रुओं को **अरन्धयत्**=विनष्ट करते हैं। प्रभु इस **मानुषे**=मानुष लोक में **वध्रिवाचः**=व्यर्थ की वाणीवालों को—जल्पकों को विनष्ट कर देते हैं।

भावार्थ—हम मार्ग पर चलें, अमार्ग पर नहीं। पालक नीति मार्ग का ही व्यापन करें। प्रभु हमारे लिये प्रबल शत्रुओं को भी विनष्ट करेंगे। प्रभु जल्पकों को कभी नहीं चाहते।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञानी की प्रभु की ओर गति

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च॥ १० ॥

(१) **नः**=जैसे **अगोपाः**=विना ग्वालेवाली **गावः**=गौवें **यवसात्**=घास के उद्देश्य से **ईयुः**=गतिवाली होती हैं, अर्थात् घास की ओर चल देती हैं, इसी प्रकार **चितासः**=(चित् संज्ञाने) संज्ञानवाले पुरुष **यथाकृतम्**=अपने पुण्य के अनुसार **मित्रम् अभि** (ईयुः)=उस महान् मित्र प्रभु की ओर गतिवाले होते हैं। इन ज्ञानी पुरुषों की अपने पुण्य के सौभाग्य से प्रभु की ओर गति स्वाभाविक होती है। (२) ये ज्ञानी **पृश्निगावः**=(पृश्नि=ray of light) प्रकाश किरणों से युक्त इन्द्रियोंवाले होते हैं। **पृश्नि-निप्रेषितासः**=प्रकाश की किरणों से ही अपने कर्त्तव्य कर्मों में प्रेषित होते हैं। इस प्रकार ये **श्रुष्टिं चक्रुः**=ऐश्वर्य व आनन्द को सिद्ध करते हैं, **च**=और **नियुतः**=इनके इन्द्रियाश्व **रन्तयः**=सदा कर्त्तव्य कर्मों में रमण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष प्रभु की ओर चलता है। प्रकाश से कर्त्तव्य मार्ग पर प्रेरित होता है। इसके इन्द्रियाश्व कर्तव्य कर्मों में रमण करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वैकर्णयोः राजा

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम्॥ ११ ॥

(१) **यः**=जो **वैकर्णयोः**=(वि+कृ विक्षेपे) इधर-उधर विक्षिप्त होनेवाली दोनों इन्द्रियों का **राजा**=शासक बनता है, मन को तथा बाह्य इन्द्रियों को अपने वश में करता है, यह **जनान् न्यस्त**=अन्य जनों का पराभव करनेवाला होता है, अर्थात् अन्य लोगों से बहुत आगे बढ़ जाता

है। यह **एकं च विंशतिञ्च**-एक और बीस, अर्थात् २१ शक्तियों को **श्रवस्या**-ज्ञान व यश की प्राप्ति की कामना से **निशिशाति** खूब तीक्ष्ण करता है। (ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः) शरीरस्थ सब शक्तियों का विकास करता हुआ ज्ञान-सम्पन्न व यशस्वी बनता है। (२) यह **दस्मः न**=सबके दुःखों के दूर करनेवाले के समान होता हुआ **सद्मन्**-इस शरीरगृह में **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय को भी **निशिशाति** बड़ा तीव्र बनाता है। इसके हृदय में सर्वहित की भावना प्रबल हो उठती है। अब **एषाम्**-इन लोगों के **इन्द्रः**-वे परमैश्वर्यशाली प्रभु **सर्गम्**-दृढ़ निश्चय को **अकृणोत्**-करनेवाले होते हैं। प्रभु ही **शूरः**-इनके शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले बनते हैं। प्रभु के साहाय्य से ये अपने मार्ग पर आगे बढ़ते हैं मार्ग में विघ्नरूप से आये शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले होते हैं।

भावार्थ-हम इन्द्रियों के शासक बनकर शरीरस्थ २१ शक्तियों को ज्ञान व यश की प्राप्ति के हेतु से तीव्र करनेवाले हों। हृदय में सर्वहित की भावना को तीव्र करें। प्रभु हमारे दृढ़ निश्चय में सहायक होंगे और हमारे शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले होंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

'श्रुत-कवष-अप्सुवृद्ध-द्रुह्यु'

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्यं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥

(१) **अध**-अब **श्रुतम्**-जिसने गहन शास्त्र श्रवण किया है, **कवषम्**=जो प्रभु के गुण स्तवन को करता है (कु शब्दे), **अप्सु वृद्धम्**-जो कर्मों में खूब बढ़ा हुआ है और **अनु**=कर्मों के अनुपात में ही **द्रुह्युम्**-वासनाओं की जिघांसावाला है, वासनाओं को समाप्त करनेवाला है। ऐसे व्यक्ति को **वज्रबाहुः**-वे वज्रहस्त प्रभु **निवृणक्**-सब पापों से पृथक् कर देते हैं, पवित्र जीवनवाला बना देते हैं। (२) **अत्र**=यहाँ इस जीवन में **सख्यम्**=आपकी मित्रता का **वृणानाः**-वरण करते हुए **सख्याय**-मित्रता के लिये **ये**-जो **त्वायन्तः**-आपकी ओर आने की कामनावाले होते हैं, वे **त्वा अनु**-आपकी अनुकूलता में **अमदन्**-हर्ष का अनुभव करते हैं। संसार में अन्ततः प्रभु की मैत्री ही आनन्द प्राप्ति का साधन होती है। प्रकृति में लगाव अन्ततः ह्रास की ओर ले जाता है। प्रभु की मित्रता का मार्ग 'श्रुत, कवष, अप्सु, वृद्ध व द्रुह्यु' बनना ही है।

भावार्थ-हम शास्त्र श्रवण करें, प्रभु स्तवन में प्रवृत्त हों, कर्मों में सदा बढ़े हुए व वासनाओं की जिघांसावाले बनें। इस प्रकार प्रभु की मित्रता का वरण करते हुए आनन्द का अनुभव करें। (श्रुतं=ब्रह्मचर्य, कवषं-गृहस्थ, वृद्धं अप्सु-वानप्रस्थ, द्रुह्यु-संन्यास)।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

सप्त पुरियों का विदारण

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥ १३ ॥

(१) **इन्द्रः**-वह शत्रुविद्रावक प्रभु **एषाम्**-गतमन्त्र में वर्णित 'श्रुत, कवष, अप्सु वृद्ध व द्रुह्यु' के जीवन में असुरों के बने हुए **विश्वा**=सब **दृंहितानि**-अतिशयेन दृढ़ **सप्त पुरः**=सात मर्यादाओं के भंगरूप सात नगरों को **सद्यः**-शीघ्र ही **सहसा**=शत्रुनाशक बल के द्वारा **विदर्दः**=विदीर्ण कर देता है। ('सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः०' (२) **तृत्सवे**=शत्रुओं को कुचलनेवाले पुरुष के लिये

आनवस्य-(अन प्राणने) प्राणशक्तिसम्पन्न पुरुष के **गयम्**=शरीरगृह को **विभाक्**=विशेषरूप से प्राप्त कराता है। अर्थात् वासना को कुचलनेवाला पुरुष खूब प्राणशक्तिसम्पन्न शरीरवाला होता है। हम **विदथे**-ज्ञानयज्ञ में **मृध्रवाचम्**=हिंसक वाणीवाले **पूरुम्**=मनुष्य को **जेष्म**=जीतनेवाले बनें। अर्थात् ज्ञानयज्ञ में प्रवृत्त हुए हुए हम कभी भी हिंसक वाणी का प्रयोग न करें।

भावार्थ-प्रभु सात मर्यादाओं के भंग रूप सात दोषों को दूर करते हैं। वासनाओं को कुचलनेवाले के लिये प्राणशक्तिसम्पन्न शरीरगृह को प्राप्त कराते हैं। हम ज्ञान के प्रचार में मधुर वाणी का ही प्रयोग करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रः**॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः-**पञ्चमः**॥

३३(१/३)+६६(२/३)=१००

नि ग॒व्यवो॒ऽन॑वो द्रु॒ह्यव॑श्च ष॒ष्टिः श॒ता सु॑षुपुः॒ षट् स॒हस्रा॑।
ष॒ष्टिर्वी॒रासो॒ अधि॒ षड् दु॑वो॒यु विश्वेदिन्द्र॑स्य वी॒र्या॑ कृ॒तानि॑॥ १४॥

(१) **गव्यवः**=ज्ञान की वाणियों की कामनावाले, **अनवः**=(अन प्राणने) प्राणसाधना में प्रवृत्त होनेवाले, **च**=और इस प्रकार **द्रुह्यवः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं की जिघांसावाले पुरुष **षष्टिः शता**=छह सौ और **षट् सहस्रा**=छह सहस्र, अर्थात् जीवन के-१०० वर्ष के आयुष्य के १२०० दिन तो, अर्थात् लगभग ३३ वर्ष तो **निसुषुपुः**=निश्चय से सोते हैं। १०० वर्ष के जीवन में ३३ के लगभग वर्ष निद्रा में व्यतीत हो जाते हैं। अवशिष्ट **षट् अधि षष्टिः**=छह अधिक साठ, अर्थात् छयासठ (६६) वर्ष ये **दुवोयु**=स्वकर्तव्य कर्मों के करने के द्वारा प्रभु की परिचर्या की कामना वाले होते हैं। (२) इस प्रकार जीवन में जागृति के सारे काल को कर्तव्य कर्मों के करने में बिताने के द्वारा प्रभु-पूजन करते हुए ये व्यक्ति ही **वीरासः**=वीर होते हैं। वस्तुतः **इन्द्रस्य**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के **विश्वा कृतानि**-सब कर्म **वीर्या**=शक्तिशाली होते हैं। श्रद्धा और विद्या से कर्मों को करता हुआ यह उन्हें शक्तिसम्पन्न बनाता है।

भावार्थ-जीवन में ३३ वर्ष के निद्रा काल के अतिरिक्त ६६ वर्ष हमारे कर्तव्यपालन द्वारा प्रभु-पूजन में ही बीतने चाहिएँ। यही वीर बनना है। यही इन्द्र बनकर शक्तिशाली कर्मों को करना है। इसके लिये हमारा मार्ग 'ज्ञान प्राप्ति+आराधना व काम-क्रोध आदि की जिघांसा' का होना चाहिए।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

तृत्सवः दुर्मित्रासः

इन्द्रे॑णै॒ते तृत्स॑वो॒ वेवि॑षाणा॒ आपो॒ न सृ॒ष्टा अ॑धवन्त॒ नीचीः॑।
दु॒र्मि॒त्रासः॑ प्रकल॒विन्मिमा॑ना ज॒हुर्विश्वा॑नि॒ भोज॑ना सु॒दासे॑॥ १५॥

(१) **एते**=ये **तृत्सवः**=काम-क्रोध आदि को कुचलनेवाले व्यक्ति **इन्द्रेण**=उस शत्रुविद्रावक प्रभु से **वेविषाणाः**=अपने को व्याप्त करते हुए, अर्थात् सदा प्रभु का स्मरण करते हुए, **सृष्टाः आपः न**=उत्पन्न हुए-हुए जलों की तरह **नीचीः**=निम्न मार्ग से-विनम्रता के मार्ग से **अधवन्त**=तीव्र गतिवाले होते हैं। जैसे जल निम्न मार्ग से गति करते हुए आगे और आगे बढ़ते हैं और अन्ततः समुद्र में आ मिलते हैं, इसी प्रकार ये **तृत्सु**=नम्रता से आगे बढ़ते हुए उस आनन्द के समुद्र प्रभु में जा मिलते हैं। (२) इसके विपरीत **दुर्मित्रासः**=दुष्ट भावों से मित्रतावाले, अर्थात् राक्षसीभावों में सदा निवास करनेवाले, **प्रकलवित्**-(Lgnorant, प्रकला-Aminute portion, अजानन्तः

सा०) अल्पज्ञ-मूर्ख, **मिमाना:**=हिंसा करते हुए-अपनी मौज के लिये औरों के हिंसन में प्रवृत्त हुए-हुए पुरुष, **सुदासे**-सम्यक् काम-क्रोध आदि का उपक्षय करनेवाले पुरुष में होनेवाले **विश्वानि**=सब **भोजना**=पालनात्मक कर्मों को (भुज=पालने) **जहु:**-परित्यक्त करते हैं। ये पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त न होकर सदा हिंसात्मक कर्मों में ही प्रवृत्त रहते हैं।

भावार्थ-प्रभु का सतत स्मरण करते हुए हम काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कुचलनेवाले बने और नम्रतापूर्वक कर्तव्य मार्ग का आक्रमण करते हुए प्रभु से मिलने के लिये यत्नशील हों। दुष्टभावों को अपनाकर, मूर्खता से हिंसात्मक कर्मों में ही प्रवृत्त न रह जायें।

ऋषि:-**वसिष्ठ:** ॥ देवता-**इन्द्र:** ॥ छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:-**धैवत:** ॥

'वीर के वर्धक व अजितेन्द्रिय के विनाशक' प्रभु

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥ १६ ॥

(१) **वीरस्य**-काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कम्पित करके दूर करनेवाले (वि+ईर्) पुरुष के **अर्धम्**=(वर्धकम् द०) बढ़ानेवाले, **शृत पाम्**-भोजन के ठीक परिपाक से उत्पन्न वीर्य शक्ति के रक्षक, **अमिन्द्रम्**=अजितेन्द्रिय पुरुष को **परा शर्धन्तम्**=सुदूर हिंसित करते हुए उस प्रभु का यह उपासक **क्षाम् अभि**=इस पृथिवीरूप शरीर की ओर **नुनुदे**=प्रेरित करता है। अर्थात् अपने अन्दर प्रभु का इसी रूप में स्मरण करता है कि वे प्रभु वीर के वर्धक, वीर्य के रक्षक व अजितेन्द्रिय के विनाशक हैं। (२) **इन्द्र:**-यह जितेन्द्रिय पुरुष **मन्युम्य:**-क्रोध से हिंसित करनेवाले पुरुष के **मन्युम्**-क्रोध को **मिमाय**=नष्ट करता है। अपने अक्रोध के द्वारा दूसरे के क्रोध को जीतता है। **पत्यमान:**=इन्द्रियों व मन के पति के समान आचरण करता हुआ **पथ:**=मार्गों को व **वर्तनिम्**=(hymns) स्तोत्र को **भेजे**=सेवित करता है, अर्थात् प्रभु स्मरणपूर्वक मार्ग पर आगे बढ़ता है।

भावार्थ-प्रभु वीरों के वर्धक हैं, सोम के रक्षक हैं, अजितेन्द्रिय के विनाशक हैं। इसी रूप में हम प्रभु का स्मरण करें और अपने कर्तव्य का बोध लें। एक जितेन्द्रिय पुरुष अक्रोध से क्रोधी के क्रोध को जीतता है, प्रभु का स्मरण करता है और मार्ग पर आगे बढ़ता है।

ऋषि:-**वसिष्ठ:** ॥ देवता-**इन्द्र:** ॥ छन्द:-**पङ्क्ति:** ॥ स्वर:-**पञ्चम:** ॥

पंगुं लङ्घयते गिरिम्

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्याऽवृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥

(१) **आध्रेण**=आधार देने योग्य, अर्थात् लंगड़े (लूले) पुरुष से **चित्**=भी **तद् उ**=उस विलक्षण ही **एकम्**-अद्वितीय कर्म को पर्वत लंघन आदि असंभावनीय कर्मों को **चकार**-वे प्रभु करा देते हैं। **सिंह्यं चित्**=प्रकृष्ट वय (बड़ी उमर) के शेर को भी **पेत्वेन**=(पेत्व=A Ram) मेढ़े से **आजघान**=मरवा देते हैं। (२) वह **इन्द्र:**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **वेश्या**=सूई के द्वारा ही **स्रक्ती:**=(यूपादे: अश्रीन्) बड़े-बड़े स्तम्भों के कोनों को (अश्रि=Corner) **अव अवृश्चत्**=छिन्न कवा देते हैं। ये प्रभु ही **सुदासे**=सम्यक् शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले पुरुष के लिये **विश्वा भोजना**-सब भोजनों को **प्रायच्छत्**=प्राप्त कराते हैं। प्रभु के उपासक में एक अद्भुत शक्ति आ जाती है। उस अद्भुत शक्ति से वह उन कार्यों को करता दिखता है जो असम्भव से प्रतीत होते हैं। इन्हीं को सामान्य भाषा में miracles (आश्चर्यजनक कर्म) कहते हैं।

भावार्थ—प्रभु लंगड़े को यदि पर्वत लंघा देते हैं तो शेर को मेढ़े से मरवा देते हैं और सूई से बड़े-बड़े स्तम्भों के कोनों को छिन्न करवा देते हैं। ये प्रभु ही काम-क्रोध आदि का उपक्षय करनेवाले सुदास के लिये सब भोजनों को देते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

उपासना व शत्रुशातकशक्ति लाभ

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र॥ १८॥

(१) **शश्वन्तः**=बड़ी प्लुतगतिवाले व संख्या में बहुत (बहवः) भी **शत्रवः**=शत्रु **ते**=तेरे **रारधुः हि**=निश्चय से वश में हो जाते हैं। उपासना के होने पर उपासक प्रभु के बल से बल-सम्पन्न होता है और इन काम-क्रोध आदि प्रबल शत्रुओं को भी जीत पाता है। इस प्रभु की उपासना से तू **शर्धतः**=हिंसन करते हुए **भेदस्य**=विदारक शत्रु के **रन्धिम्**=वशीकरण को **विन्द**=प्राप्त कर। प्रभु का अनुग्रह तुझे इस भेद के-विदारक शत्रु के वश करने में समर्थ करे। (२) हे **इन्द्र**=शत्रु विदारक प्रभो! **यः**-जो भी **स्तुवतः मर्तान्**=स्तुति करते हुए मनुष्यों के प्रति **एनः**=पाप को **कृणोति**=करता है, **तस्मिन्**=उस पर तू **तिग्मं वज्रम्**=तीव्र वज्र को **निजहि**=आहत कर, वज्र के द्वारा उसका विनाश करनेवाला हो। प्रभु अपने स्तोता के शत्रु को विनष्ट करते हैं। हम प्रभु के अनुग्रह से ही काम-क्रोध-लोभ आदि आन्तर शत्रुओं को शीर्ण कर पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु की उपासना ही हमें काम-क्रोध-लोभ आदि आन्तर शत्रुओं को शीर्ण करने में समर्थ करती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'अजासः-शिग्रवः-यक्षवः'

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि॥ १९॥

(१) **इन्द्रम्**=जितेन्द्रिय पुरुष को **यमुना**=संयम की वृत्ति, **च**=तथा **तृत्सवः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं का हिंसन (Treading upon) **आवत्**=रक्षित करता है। **अत्र**-यहाँ इस जीवन में **सर्वताता**-सब सद्गुणों के विस्तार के निमित्त **भेदम्**=काम-क्रोध आदि विदारक शत्रुओं को यह उपासक **प्रमुषायत्**=प्रमुषित करता है, समाप्त करता है। (२) **अजासः**=(अज गतिक्षेपणयोः) गतिशीलता के द्वारा सब बुराइयों को परे फेंकनेवाले **च**=तथा **शिग्रवः**=उपांशुरूपेण प्रभु के नाम का उच्चारण करनेवाले, प्रभु का नाम-स्मरण करनेवाले **च**=और **यक्षवः**=यज्ञों को करने की कामनावाले ये उपासक **अश्व्यानि शीर्षाणि**=इन्द्रियाश्व सम्बन्धी सिरों को उस प्रभु के लिये **बलिम्**=उपहार के रूप में **जभ्रुः**=संभृत करते हैं, अर्थात् अपनी सब इन्द्रियों को प्रभु के ध्यान में लगाने का प्रयत्न करते हैं, इन सब इन्द्रियों के द्वारा प्रभु की उपासना में प्रवृत्त होते हैं। इनके कान प्रभु स्तोत्रों का श्रवण करते हैं, आँखें प्राकृतिक सौन्दर्य में उस स्वयिता की महिमा को देखती है, नासिका फूलों के निर्हारी (मधुर गन्धों में) प्रभु की कुशलता को सूंघती है तो वाणी प्रभु के गुणगान करती है। वस्तुतः यह उपासन ही उन्हें सब गुणों के विस्तार में समर्थ करता है।

भावार्थ—संयम व शत्रुसंहार ही हमारा रक्षक है, इसी से हम विदारक शत्रुओं को समाप्त करके सब इन्द्रियों को प्रभु की उपासना में प्रवृत्त कर पाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

न 'देवक' नांही 'मान्यमान'

न त॑ इन्द्र सुम॒तयो॒ न रायः॑ सं॒चक्षे॒ पूर्वा॑ उ॒षसो॒ न नूत्नाः॑ ।
देव॑कं चिन्मान्यमा॒नं ज॑घ॒न्थाव॒ त्मना॑ बृह॒तः शम्ब॑रं भेत् ॥ २० ॥

(१) हे **इन्द्र**–परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते**–आपकी **न**=न तो **सुमतमः**=कल्याणी मतियाँ और **न रायः**=न ही आपके ऐश्वर्य **पूर्वाः उषसः न**–पूर्व उषाकालों की तरह **नूत्नाः**–नवीन उषाकालों में भी **संचक्षे**=(To abondon, leave) छोड़ने के लिये होते हैं, अर्थात् पहले की तरह आगे भी, अर्थात् सदा ही आपकी सुमतियाँ व ऐश्वर्य हमारे लिये ग्रहण के योग्य हैं। हमें चाहिए कि सुमति का सम्पादन करते हुए ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये यत्नशील हों। (२) हे प्रभो! आप **देवकम्**=जूआ खेलनेवाले, सट्टेबाज, एक ही रात्रि में धनी बन जानेवाले **मान्यमानम्**–इस अभिमानी पुरुष को **जघन्थ**=आप नष्ट करते हैं। **त्मना**=आप स्वयं **बृहतः**–उपासक के विशाल हृदय से **शम्बरम्**=शान्ति पर परदा डाल देनेवाले ईर्ष्या नामक आसुरभाव को **अवभेत्**–सुदूर विनष्ट (विदीर्ण) करते हैं।

भावार्थ–हमें सदा प्रभु की सुमति व ऐश्वर्य प्राप्त हों। न हम जूआ खेलें, न धन का घमण्ड करने लगें। प्रभु के अनुग्रह से हमारे विशाल हृदय में ईर्ष्या का स्थान न हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

पराशरः-शतयातुः-वसिष्ठः

प्र ये गृ॒हादम॑मदुस्त्वा॒या प॑राश॒रः श॒तया॑तु॒र्वसि॑ष्ठः ।
न ते॑ भो॒जस्य॑ स॒ख्यं मृ॑ष॒न्ताधा॑ सू॒रिभ्यः॑ सु॒दिना॒ व्यु॑च्छान् ॥ २१ ॥

(१) **ये**–जो **गृहात्**=(गृहं प्राप्य सा०) इस शरीररूप गृह को प्राप्त करके, इस शरीर के द्वारा, **त्वाया**=आपकी प्राप्ति की कामना से **प्र अममदुः**=प्रकर्षेण आपका स्तवन करते हैं। वे **पराशरः**–शत्रुओं को सुदूर शीर्ण करनेवाले बनते हैं, **शतयातुः**–शतवर्षपर्यन्त जीवन के मार्ग पर गमनवाले होते हैं, तथा **वसिष्ठः**=उत्तम निवासवाले होते हैं। प्रभु-स्तवन इन्हें शत्रुओं को शीर्ण करने में समर्थ करता है। शत्रुशीर्णता इनके दीर्घ व उत्तम जीवन का कारण बनती है। (२) **ते**=वे व्यक्ति **भोजस्य**=सबका पालन करनेवाले आपके **सख्यम्**–मित्रभाव को **न मृषन्त**=नहीं विस्मृत करते हैं। ये सदा प्रभु का स्मरण करते हुए चलते हैं। **अधा**=अब इन **सूरिभ्यः**=ज्ञानी स्तोताओं के लिये **सुदिना**=उत्तम दिन **व्युच्छान्**=उदित होते हैं, प्राप्त होते हैं (उपगच्छन्ति सा०)।

भावार्थ–इस शरीर को प्राप्त करके हम प्रभु का स्तवन करें। इससे हम शत्रुओं को शीर्ण करके दीर्घ उत्तम जीवन को प्राप्त करेंगे। प्रभु की मित्रता को कभी न भूलें। इस प्रकार हमारे लिये सदा सुदिन सुलभ होंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सुदासः पैजवनस्य दानुस्तुतिः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

'नप्तः देववान् सुदास्'

द्वे नप्तु॒र्देव॑वतः श॒ते गोर्द्वा रथा॑ व॒धूम॑न्ता सु॒दासः॑ ।
अर्ह॑न्नग्ने पैजव॒नस्य॒ दानं॒ होते॑व॒ सद्म॒ पर्ये॑मि॒ रेभ॑न् ॥ २२ ॥

(१) **नप्तुः**–धर्ममार्ग से न पतित होनेवाले, **देववतः**–दिव्यगुणोंवाले **सुदासः**=उत्तम दानशील

व काम-क्रोध आदि का अच्छी प्रकार उपक्षय करनेवाले (दाश् दाने, दसु उपक्षये) इस उपासक के **गोः**-इन्द्रिय समूह के **द्वेशते**=प्रतिवर्ष उत्तरायण व दक्षिणायन के रूप में दो सौ अयनों होते हैं तथा **द्वा रथा**=सूक्ष्म तथा स्थूल शरीररूप दोनों रथ **वधूमन्ता**=प्रशस्त बुद्धि रूप वधूवाले होते हैं। इस सुदास् की इन्द्रियाँ दो सौ अयनों तक बड़ा ठीक कार्य करनेवाली होती हैं और इसके स्थूल व सूक्ष्म दोनों शरीर भी पूर्ण स्वस्थ होते हुए प्रशस्त बुद्धि सम्पन्न होते हैं। (२) **पैजवनस्य**=इस कर्तव्य कर्मों में वेगवान् पुरुष के **दानम्**=शत्रु विनाश (दाप् लवने) रूप कार्य को **अर्हन्**=पूजता हुआ, उस कार्य को आदर की दृष्टि से देखता हुआ हे **अग्रे**=प्रभो! मैं भी **होता इव**=एक यज्ञशील पुरुष की तरह **रेभन्**=स्तुति करता हुआ **सद्म**=इस गृह में **पर्येभि**=कर्तव्य कर्मों में विचरण करता हूँ। इस प्रकार ही तो मैं भी काम-क्रोध आदि का विनाश कर पाऊँगा।

भावार्थ-हम धर्म मार्ग से न पतित होनेवाले, दिव्यगुणों को अपनानेवाले बुराइयों का उपक्षय करनेवाले बनें। तभी हमारे इन्द्रियाँ दो सौ अयनों (सौ वर्ष) तक ठीक कार्य करेंगी व स्थूल व सूक्ष्म शरीर प्रशस्त बुद्धि सम्पन्न होंगे। हम यज्ञशील स्तोता व कर्तव्यरत बनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

चार वेद (ज्ञान)

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥

(१) स्वाभाविक ज्ञान बल व क्रियावाले वे प्रभु पैजवन हैं-अत्यन्त वेगवान् 'मनसो जवीयः' मन से भी अधिक वेगवान् हैं। इस **पैजवनस्य**=वेग के पुञ्ज प्रभु के **मा**=मेरे लिये **चत्वारः**=चार **दानाः**=वासनाओं का विनाश (दाप् लवने) करनेवाले ये वेद (ज्ञान) हैं। **स्मद् दिष्टयः**=ये मेरे जीवन के लिये अतिशयेन प्रशस्त निर्देशोंवाले हैं। **निरेके**=सब दोषों के विरेचन के लिये **कृशनिनः**=ये स्वर्णसम देदीप्यमान ज्ञान ज्योतिवाले हैं। इस ज्ञान-ज्योति में सब वासनान्धकार में विलीन हो जाता है। (२) **मा**=मेरे लिये **ऋज्रासः**-ऋजुमार्ग की प्रेरणा देनेवाले, **पृथिविष्ठाः**=इस शरीररूप पृथिवी में मुझे स्थित करनेवाले, अर्थात् मुझे पूर्ण स्वस्थ बनानेवाले, ये वेदज्ञान **सुदासः तोकम्**=सुदास् के पुत्र-अतिशयेन शत्रुओं का उपक्षय (दसु उपक्षये) करनेवाले मुझको **तोकाय**=उत्तम सन्तानों की प्राप्ति के लिये अथवा वृद्धि (तु वृद्धौ) के लिये तथा **श्रवसे**=ज्ञान-ज्योति की प्राप्ति के लिये अथवा यशस्वी जीवन के लिये **वहन्ति**=ले चलते हैं।

भावार्थ-प्रभु से दिया गया चार भागों में विभक्त वेदज्ञान, मेरे लिये वासनाओं को विनष्ट करनेवाला है, यह मुझे उत्तम सन्तति व यशस्वी जीवन को देनेवाला है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

युध्यामधि का तनूकरण (विच्छेद)

यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥ २४ ॥

(१) **यस्य**=जिस प्रभु का **श्रवः**=यश **ऊर्वी रोदसी अन्तः**=इन विशाल द्यावापृथिवी के बीच में है, जिसकी महिमा इन द्यावापृथिवी में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। जो प्रभु **शीर्ष्णे शीर्ष्णे**=प्रत्येक व्यक्ति के लिए **विबभाज**=धनों का विभाग करते हैं, जो सभी को भोजन प्राप्त कराते हैं 'अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति' कट्टर नास्तिकों को भी तो वे भोजन द्वारा जीवन में निवास करानेवाले

हैं। **विभक्ता**-वे प्रभु ही सर्वमहान् विभाग करनेवाले हैं। (२) **स्त्रवतः**-बहते हुए **सप्त इत्**-मेरे ये सातों ही 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' कान, नाक, आँख व मुख से होनेवाले ज्ञान प्रवाह उस प्रभु को **इन्द्रं न**=परमैश्वर्यशाली के समान **गृणन्ति**=स्तुत करते हैं। वस्तुतः मेरे से स्तुति किये गये ये प्रभु ही **युध्यामधिम्** (युधि+आम+धि)=जीवन संग्राम में रोगों का आधान करनेवाले वासनारूप शत्रु को **अभीके**=संग्राम में **नि अशिशात्**-निश्चय से छिन्न करते हैं। मैं प्रभु-स्तवन करता हूँ। प्रभु मेरे शत्रुओं को छिन्न करते हैं।

भावार्थ-प्रभु का यश सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रभु ही सबको भोजन देनेवाले हैं। मेरे सातों (दो कान, दो नासिकाछिद्र, दो आँख और मुख) ज्ञान-प्रवाह प्रभु का ही स्तवन करते हैं। प्रभु ही मेरे वासनारूप शत्रु को शीर्ण करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

प्राणों द्वारा प्रभु की उपासना

इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु॥ २५॥

(१) हे **नरः**-मुझे उन्नति-पथ पर ले चलनेवाले **मरुतः**-मेरे प्राणो! **इमम्**=इस **दिवोदासम्**=ज्ञान के देनेवाले के समान, **सुदासः पितरम्**-सम्यक् शत्रुओं का उपक्षय करनेवाले उपासक के रक्षक प्रभु को **अनुसश्चात**-प्रतिदिन सेवित करो। मेरे प्राण चित्तवृत्ति के निरोध के द्वारा प्रभु का ध्यान करनेवाले हों। (२) हे प्राणो! आप **पैजवनस्य**-स्वाभाविक वेगवाले-वेग के पुञ्ज-प्रभु के **केतम्**=ज्ञान का **अविष्टन**=रक्षण करो। प्रभु से दिये जानेवाले ज्ञान को मेरे में ये प्राण सुरक्षित करें। प्राणायाम से दग्ध दोष निर्मल हृदय में प्रभु का संकेत (प्रेरण) सुनाई पड़ता है। इस प्रकार होने पर इस उपासक का **क्षत्रम्**-बल **दूणाशम्**-सब बुराइयों को नष्ट करनेवाला, **अजरम्**-कभी न जीर्ण होनेवाला व **दुवोयु**=प्रभु की परिचर्या की कामनावाला होता है। अपनी शक्ति से मानव की सेवा करना ही प्रभु की परिचर्या है। एवं, उपासक अपने बल के द्वारा रक्षणात्मक कार्यों में ही प्रवृत्त होता है।

भावार्थ-हम प्राणायाम करते हुए चित्तवृत्ति का निरोध करके प्रभु का उपासन करें। प्रभु के संकेत को समझें। हमारा बल न जीर्ण होनेवाला हो व लोकहित में विनियुक्त हो।

अगले सूक्त के भी ऋषि देवता 'वसिष्ठ व इन्द्र' ही है-

[१९] एकोनविंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

'प्रयन्ता' प्रभु

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः॥ १॥

(१) **यः**=जो **तिग्मशृङ्गः वृषभः न**=तेज सींगोंवाले बैल के समान **भीमः**=शत्रुओं के लिये भयङ्कर हैं। वे **एकः**=अकेले ही **विश्वाः**-सब **कृष्टीः**=शत्रुभूत मनुष्यों को **प्रच्यावयति**-स्थान से प्रच्युत करनेवाले हैं। हम जब अपने हृदयों में इन प्रभु का स्थापन करते हैं, तो ये हमारे सब काम-क्रोध आदि शत्रुओं का विनाश करनेवाले होते हैं। (२) **यः**=जो प्रभु **अदाशुषः**=अदाश्वान्-

अदाता–अयज्ञशील पुरुष के **शश्वतः**=बहुत भी **गयस्य**=धन के **प्रयन्ता असि**=नियमन करनेवाले, अपहरण कर लेनेवाले हैं, वे ही प्रभु **सुष्वि-तराय**=खूब ही सवन करनेवाले यज्ञशील पुरुष के लिये **वेदः**=धन को **प्रयन्तासि असि**=देनेवाले हैं।

भावार्थ–प्रभु उपासक के शत्रुओं को नष्ट करनेवाले हैं। अयज्ञशील के धन का अपहरण करनेवाले हैं तथा यज्ञशील के लिये धन को देनेवाले हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

'दास-शुष्ण व कुयव' का विनाश

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्॥ २ ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुसंहारक प्रभो! **त्वम्**=आप ह=निश्चय से **कुत्सम्**=वासनाओं का संहार करनेवाले पुरुष को **आवः**=रक्षित करते हैं। **त्यद्**=तब वह **समर्ये**=इस जीवन संग्राम में **तत्वा**=शक्तियों के विस्तार के साथ **शुश्रूषमाणः**=विद्या के श्रवण की कामनावाला होता है तथा गुरुजनों की सेवा की कामनावाला होता है। (२) **यत्**=जब **अस्मै**=इस कुत्स के लिये आप **दासम्**=उपक्षय करनेवाले क्रोध को, **शुष्णम्**=सुखा देनेवाली काम–वासना को **तथा** कुयम्=सब बुराइयों का हमारे साथ मिश्रण करनेवाले लोभ को **नि अरन्धयः**=निश्चय से विनष्ट करते हैं, तो **आर्जुनेयाय**=इस अर्जुनी (श्वेता=शुद्धा) के पुत्र के लिये, अर्थात् अतिशयेन शुद्ध जीवनवाले के लिये **शिक्षन्**=धनों के देने की कामनावाले होते हैं। आप से प्रदत्त इन धनों से यज्ञ आदि को सिद्ध करता हुआ यह अपने जीवन को धन्य बना पाता है।

भावार्थ–शरीर की शक्तियों के विस्तार के साथ वासनाओं का संहार करनेवाला कुत्स जीवन संग्राम में विद्या का श्रवण करता है, बड़ों की सेवा करता है। प्रभु इसके क्रोध, काम व लोभ को विनष्ट करते हैं और इस शुद्ध जीवनवाले पुरुष के लिये धनों को देते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

'वीतहव्य-सुदास पौरुकुत्सि त्रसदस्यु व पूरु' का रक्षण

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम्॥ ३ ॥

(१) हे **धृष्णो**=शत्रुधर्षक इन्द्र! **त्वम्**=आप **धृषता**=शत्रुधर्षक बल के द्वारा **वीतहव्यम्**=जिसने हव्यों का ही भक्षण किया है, उस यज्ञशील सात्त्विक अन्न के सेवी पुरुष को **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षणों के साथ **प्रावः**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं। आप इस 'वीत हव्य' का रक्षण करते हैं, जो **सुदासम्**=सब वासनाओं का उपक्षय करके 'सुदास' बनता है (दसु उपक्षये)। (२) आप **वृत्रहत्येषु**=संग्रामों में **क्षेत्रसाता**=उत्तम शरीर–क्षेत्र की प्राप्ति के निमित्त आप **पौरुकुत्सिम्**=खूब ही वासनाओं का संहार करनेवाले, **त्रसदस्युम्**=जिससे वासनाएँ भयभीत होती हैं और **पूरुम्**=जो ठीक से अपना पालन व पूरण करता है उस मनुष्य को **प्र आवः**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं।

भावार्थ–प्रभु यज्ञशील–वासना विनाशक–खूब ही वासनाओं का संहार करनेवाले, दास्यवभावों को भयभीत करनेवाले, पालक व पूरक मनुष्य को रक्षित करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

'दस्यु चुमुरि धुनि' का विनाश

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु॥ ४॥

(१) हे **नृमणः**=उन्नति पथ पर चलनेवालों से मननीय (नृभिः मननीय) प्रभो! **त्वम्**=आप **देववीतौ**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के निमित्त **नृभिः**=इन मनुष्यों के द्वारा **भूरीणि**=बहुत भी **वृत्रा**=वासनारूप शत्रुओं को **हंसि**=नष्ट करते हैं। वृत्र विनाश ही 'देव वीति' का (दिव्यगुणों की प्राप्ति का) कारण बनता है। (२) हे **हर्यश्व**=कमनीय इन्द्रियरूप अश्वोंवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **दभीतये**=वासनाओं का विनाश करनेवाले इस पुरुष के लिये **सुहन्तु**=सम्यक् हनन साधन वज्र के द्वारा—क्रियाशीलता के द्वारा **दस्युम्**=विनाशक लोभ को, **चुमुरिम्**=शक्ति को पी जानेवाली (शक्ति का आचमन कर जानेवाली) काम-वासना को, **धुनिं च**=कम्पित करनेवाले क्रोध को **नि अस्वापयः**=निश्चय से सुला देते हैं।

भावार्थ—प्रभु उपासक की वासनाओं को विनष्ट करके उसे दिव्यगुण सम्पन्न बनाते हैं। लोभ काम व क्रोध को समाप्त करके उसे सुन्दर जीवन प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः **वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वासना व अहंकार से शून्य दीर्घ जीवन

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन्॥ ५॥

(१) हे **वज्रहस्त**=हाथ में वज्र को धारण किये हुए प्रभो! **तानि**=वे सब **च्यौत्नानि**=शत्रुओं को च्युत करनेवाले बल **तव**=आपके ही हैं **यत्**=जो **सद्यः**=शीघ्र ही **नवतिं नव च**=नव्वे और नौ अथात् निन्यानवे **पुरः**—शत्रुओं की नगरियों को **अहन्**—नष्ट करते हैं। (२) आसुरभावों की निन्यानवे नगरियों का विध्वंस करके **निवेशने**—निवेश के निमित्त—उत्तमता से निवास के निमित्त **शततमा**=सौवीं नगरी में **अविवेषीः**=व्याप्त होते हैं। शरीर को वर्ष तक ले चलते हैं **च**—और **वृत्रम्**=ज्ञान की आवरणभूत वासना को **उत** और **नमुचिम्**=अहंकार को **अहन्**—नष्ट करते हैं। प्रभु कृपा से दीर्घजीवन प्राप्त होता है, यह जीवन वासना व अहंकार से शून्य होता है।

भावार्थ—यह सब प्रभु की ही शक्ति है कि वे असुरों की निन्यानवे नगरियों को ध्वस्त करके हमें सौवीं नगरी में प्राप्त कराते हैं तथा वासना व अहंकार से हमें रहित करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भोजनानि-ब्रह्माणि-वाजम्

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम्॥ ६॥

(१) हे **इन्द्र**—परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ता**—वे **ते**—आपके **भोजनानि**=पालन करनेवाले धन (भुज पालने) **रातहव्याय**=दत्तहविष्क, अर्थात् यज्ञशील पुरुष के लिये **सना**=सदा से हैं। आपके ये धन **दाशुषे**=दानशील पुरुष के लिये हैं और **सुदासे**—सम्यक् वासनाओं का उपक्षय करनेवाले के लिये हैं। (२) **वृष्णे**—सब सुखों का वर्षण करनेवाले व शक्तिशाली **ते**=तेरे लिये, अर्थात् आपकी

प्राप्ति के लिये **वृषणा हरी**=शक्तिशाली इन्द्रियाश्वों को **युनज्मि**=इस शरीर-रथ में जोड़ता हूँ। इन इन्द्रियों को सदा कर्त्तव्य कर्म में लगाये रखता हूँ। हे **पुरुशाक**=बहुत शक्तिवाले, अनन्त शक्ति-सम्पन्न प्रभो! कर्त्तव्य कर्मों को करने के द्वारा आपकी उपासना करनेवाले ये लोग **ब्रह्माणि**=ज्ञान की वाणियों को व **वाजम्**=बल को **व्यन्तु**=विशेषरूप से प्राप्त हों।

भावार्थ-प्रभु त्यागी के लिये धनों को देते हैं। जो भी प्रभु प्राप्ति के उद्देश्य से अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करते हैं वे ज्ञान व शक्ति को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

मा अघाय-मा परादै

मा ते॑ अ॒स्यां स॑हसाव॒न्परि॑ष्टाव॒घाय॑ भूम हरिवः परा॒दै।
त्राय॑स्व नोऽवृ॒केभि॒र्वरू॑थै॒स्तव॑ प्रि॒यासः॑ सू॒रिषु॑ स्याम॥ ७॥

(१) हे **सहसावन्**=शत्रुओं को कुचलनेवाले बल से सम्पन्न, **हरिवः**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! हम **ते**=आपकी **अस्याम्**=इस **परिष्टौ**=अन्वेषणा में **अघाय**=पाप के लिये **मा भूम**=मत हों। **परादै**=परादान के लिये, आप से त्यागे जाने के लिये मत हों। आपकी खोज में लगे हुए हम न आप से परित्यक्त हों और न ही पाप में फँसें। (२) आप **नः**=हमें **अवृकेभिः**=बाधा से शून्य (अबाधैः सा०) **वरूथैः**=रक्षणों के द्वारा **त्रायस्व**=बचाइये। हम **सूरिषु**=ज्ञानी पुरुषों में **तव प्रियासः**=आपके प्रिय **स्याम**=हों। उत्तम कर्मों को करते हुए हम क्यों आपके प्रिय न होंगे?

भावार्थ-प्रभु की खोज में लगे हुए हम प्रभु से परित्यक्त न हों, पाप में न फँसें। प्रभु से रक्षित होकर कर्तव्य कर्मों को करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

'तुर्वश, याद्व, अतिथिग्व'

प्रि॒यास॒ इत्ते॑ मघवन्न॒भिष्टौ॒ नरो॑ मदेम श॒रणे॒ सखा॑यः।
नि तु॒र्वशं॒ नि याद्वं॑ शिशीह्यतिथि॒ग्वाय॒ शंस्यं॑ करि॒ष्यन्॥ ८॥

(१) हे **मघवन्**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते अभिष्टौ**=आपकी अभ्येषणा में, प्रार्थना व आराधना में **ते**-आपके **प्रियासः इत्**=प्रिय ही हों। **नरः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले हम (ते) **सखायः**=आपके मित्र बनकर आपकी **शरणे**=शरण में **मदेम**=आनन्द का अनुभव करें। (२) हे प्रभो! आप **तुर्वशम्**=त्वरा से शत्रुओं को वश में करनेवाले इस उपासक को **निशिशीहि**=खूब तीक्ष्ण करिये, यह बड़ा तीक्ष्णबुद्धि बने। **याद्वम्**=इस यत्नशील मनुष्य को **नि** (शिशीहि)=तीक्ष्ण करिये, काम-क्रोध आदि शत्रुओं के लिये भयंकर बनाइये। **अतिथिग्वाय**=अतिथियों के सत्कार के लिये उनके प्रति जानेवाले इस उपासक के लिये आप सदा **शंस्यम्**=प्रशंसनीय बातों को ही **करिष्यन्**=करनेवाले होते हैं।

भावार्थ-प्रभु की आराधना करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें। प्रभु के मित्र बनकर प्रभु की शरण में आनन्द का अनुभव करें। शत्रुओं को वश करनेवाले, यत्नशील व अतिथि सेवी बनें प्रभु अवश्य हमारा कल्याण करेंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

पणीन् वि अदाशत्

स॒द्यश्चि॒न्नु ते॑ मघवन्न॒भिष्टौ॒ नरः॑ शंसन्त्युक्थ॒शास॑ उ॒क्था ।
ये ते॒ हवे॑भि॒र्वि प॒णीँरदा॑शन्न॒स्मान्वृ॑णीष्व॒ युज्या॑य॒ तस्मै॑ ॥ ९ ॥

(१) हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **ते अभिष्टौ**=आपकी अभ्येषणा (प्रार्थना) में **उक्थशासः**=स्तोत्रों का शंसन करनेवाले ये **नरः**=स्तोता लोग **सद्य चित्**=शीघ्र ही **नु**=निश्चय से **उक्था**=स्तोत्रों को **शंसन्ति**=उच्चरित करते हैं। (२) **ये**=जो **ते हवेभिः**=आपकी पुकारों से-आराधनाओं से **पणीन्**=वणिक् वृत्तिवालों को भी **वि अदाशन्**=विशेषरूप से दानवृत्तिवाला बना देते हैं, उन **अस्मान्**=हमें **तस्मै यज्याय**=उस अपनी मित्रता के लिये **वृणीष्व**=करिये। हम आपकी मित्रता में चलें। आपकी आराधना करते हुए कृपणों को दानशील बनाने का यत्न करें।

भावार्थ-प्रभु की आराधना में हम स्तोत्रों का उच्चारण करें। प्रभु की आराधना में पवित्र जीवनवाले बनते हुए हम कृपणों को भी दानशील बना पायें। प्रभु की मित्रता को प्राप्त करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः- **धैवतः** ॥

शिवः-सखा-अविता

ए॒ते स्तोमा॑ न॒रां नृ॑तम॒ तुभ्य॑मस्म॒द्र्य॑ञ्चो॒ दद॑तो म॒घानि॑ ।
तेषा॑मिन्द्र वृत्र॒हत्ये॑ शि॒वो भूः॒ सखा॑ च॒ शूरो॑ऽवि॒ता च॑ नृ॒णाम् ॥ १० ॥

(१) हे **नरां नृतम्**=नायकों में सर्वोत्तम नायक प्रभो! **एते स्तोमाः**=ये स्तुतिसमूह **तुभ्यम्**-आपकी प्राप्ति के लिये हैं। **अस्मद्र्यञ्चः**-हमारे अभिमुख होते हुए ये स्तोम **मघानि**-ऐश्वर्यों को **ददतः**-देते हुए होते हैं। अर्थात् हम आपका स्तवन करते हैं और सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं। (२) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **वृत्रहत्ये**=संग्राम में **तेषां नृणाम्**=उन उन्नति-पथ पर चलनेवाले मनुष्यों का **शिवः भूः**=कल्याण करनेवाले होइये। **च**=और **सखा**-उनके मित्र होते हुए **शूरः**=उनके शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले होइये **च**=और **अविता**=रक्षक होइये।

भावार्थ-प्रभु-स्तवन करनेवाला सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है। प्रभु इनके शत्रुओं को शीर्ण करके इनका कल्याण करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

वाजान्+स्तीन् (उपमिमीहि)

नू इ॑न्द्र शूर॒ स्तव॑मान ऊ॒ती ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधस्व ।
उप॑ नो॒ वाजा॑न्मिमी॒ह्युप॒ स्तीन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ११ ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक, **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! **स्तवमानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **ऊती**=रक्षा के हेतु से **नु**=अब **वावृधस्व**=हमारा खूब ही वर्धन कीजिये। **ब्रह्मजूतः**=ज्ञान की वाणियों द्वारा हृदयों में प्रेरित हुए-हुए आप **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार के हेतु से (वावृधस्व०) हमारा खूब वर्धन करिये। (२) **नः**=हमारे लिये **वाजान्**=शक्तियों को **उपमिमीहि**-समीपता से निर्मित कीजिये-हमारे समीप होते हुए हमारे लिये शक्तियों का निर्माण करिये तथा **स्तीन्**=ज्ञान की वाणीरूप शब्द समूहों का **उप** (निमीहि)=निर्माण करिये। **यूयम्**=आप **सदा**=सदा **नः**=हमें **स्वस्तिभिः**-कल्याणों के द्वारा **पात**=रक्षित करिये।

भावार्थ—स्तुति किये जाते हुए प्रभु हमारा रक्षण करें, हमारी शक्तियों का विस्तार करें। हमें बलों को व ज्ञानवाणियों को प्राप्त कराएँ।

अगले सूक्त के ऋषि देवता भी वसिष्ठ व इन्द्र हैं—

अथ पञ्चमाष्टके तृतीयोऽध्यायः

[२०] विंशं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

उग्र-स्वधावान्

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित्॥ १ ॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **उग्रः**=तेजस्वी होता हुआ **वीर्याय जज्ञे**=शक्तिशाली कर्मों के लिये प्रादुर्भूत होता है। **स्वधावान्**=यह आत्मधारण शक्ति से युक्त होता है। **नर्यः**=नरहितकारी होता हुआ **यत् करिष्यन्**=जो करता है सो **अपः**=व्यापक कर्मों को ही **चक्रिः**=करनेवाला होता है इसके ये महान् कर्म अधिक से अधिक लोगों का हित करनेवाले ही होते हैं। (२) यह **युवा**=बुराइयों को अपने से दूर करनेवाला व अच्छाइयों को अपने से मिलानेवाला व्यक्ति **अवोभिः**—रक्षणों के हेतु से, वासनाओं से अपने को बचाने के हेतु से **नृषदनम्**=यज्ञगृहों को **जग्मिः**=जानेवाला होता है। उत्तम यज्ञों व सभाओं में सम्मिलित होता हुआ यह कभी भी वासनाओं का शिकार नहीं होता। इस की आराधना यही होती है कि **इन्द्रः**=वह शत्रुविद्रावक प्रभु **नः**=हमें **महः चित् एनसः**=महान् पाप से भी **त्राता**=बचानेवाला हो।

भावार्थ—हम तेजस्वी बनकर शक्तिशाली कर्मों को करें। आत्मधारणशक्तिवाले होकर हम नरहितकारी कर्मों को ही करनेवाले हों, यज्ञ-स्थलों व सभाओं में सम्मिलित होते हुए हम अपने को वासनाओं का शिकार न होने दें। यही आराधना करें कि प्रभु हमें महान् पाप से भी बचायें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

हन्ता वृत्रं, कर्ता लोकं, दाता वसु

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत्॥ २ ॥

(१) **इन्द्रः**=वे शत्रुविद्रावक प्रभु **शूशुवानः**=निरन्तर गतिशील होते हुए (श्वि गतौ) **वृत्रं हन्ता**=ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को विनष्ट करते हैं। **नु**—अब **वीरः**=शत्रु-कम्पक होते हुए वे प्रभु **ऊती**=रक्षण के द्वारा **जरितारम्**=स्तोता को **प्रावीत्**=प्रकर्षेण रक्षित करते हैं। (२) **सुदासे**=(कल्याण दानाय सा०) शुभ दानोंवाले व (दसु उपक्षये) वासनाओं का विनाश करनेवाले के लिये **अह वा उ**=निश्चय से ही **लोकम्**=प्रकाश को **कर्ता**=करनेवाले होते हैं। और **दाशुषे**=इस दाश्वान् पुरुष के लिये, दानशील व्यक्ति के लिये **मुहुः**=फिर **वसु दाता भूत्**=निवास के लिये आवश्यक धनों को देनेवाले होते हैं।

भावार्थ—प्रभु स्तोता की वासनाओं को विनष्ट करते हैं। दानशील व्यक्ति के लिये प्रकाश को करते हैं और सदा आवश्यक धनों को प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

जितेन्द्रिय योद्धा

युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥ ३ ॥

(१) **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **युध्मः**=युद्ध करनेवाला होता है, काम-क्रोध आदि के साथ युद्ध करके उन्हें पराजित करता है। **अनर्वा**=युद्धों में पराङ्मुख नहीं होता, भाग नहीं खड़ा होता। **खजकृत्**-संग्राम को करनेवाला, **समद्वा**=सदा उल्लास से युक्त होता है (स मद्)। **शूरः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाला, **सत्राषाट्**-बहुतों का अभिभव करनेवाला और **ईम्**=निश्चय से **जनुषा**=स्वभावतः ही **अषाढः**=शत्रुओं से अनभिभूत होता है। (२) **स्वोजाः**=उत्तम ओजस्वी यह इन्द्र **पृतनाः**-शत्रु-सैन्यों को **वि आसे**-सुदूर विक्षिप्त करता है। **अधः**=और **विश्वम्**-सब **शत्रूयन्तम्**-शत्रुओं की तरह आधरण करते हुए को **जघान**=यह नष्ट करता है।

भावार्थ—एक जितेन्द्रिय पुरुष योद्धा होता है। यह काम-क्रोध आदि से युद्ध करता हुआ कभी भाग नहीं खड़ा होता, उल्लासपूर्वक युद्ध में प्रवृत्त हुआ-हुआ यह सदा इन शत्रुओं को अपने से दूर फेंकता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सोमरक्षण व आनन्द

उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥ ४ ॥

(१) हे **तुविष्मः**-अनन्त बल सम्पन्न **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! आप **महित्वा**=अपनी महिमा से **तविषीभिः**—बलों के द्वारा **उभे चित् रोदसी**—दोनों ही द्यावापृथिवी को **आपप्राथ**=विस्तृत किये हुए हैं। सर्वत्र आपकी महिमा व शक्ति का प्रकाश हो रहा है। (२) **इन्द्रः**=वह शत्रुविद्रावक प्रभु, **हरिवान्**=प्रशस्त इन्द्रियाश्वों को हमारे लिये देता हुआ **वज्रं निमिमिक्षन्**=शत्रुओं पर वज्र को प्राप्त कराता है। और **वा**=निश्चय से **मदेषु**-उल्लासों की प्राप्ति के निमित्त **अन्धसा**=सोम से **सम् उवोच**-समवेत करता है। प्रभु क्रियाशीलता रूप वज्र के द्वारा हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं का संहार करते हैं और हमें सोम से संगत करते हुए, वीर्य को सुरक्षित करते हुए, आनन्दित करते हैं।

भावार्थ—प्रभु की महिमा द्यावापृथिवी में सर्वत्र व्याप्त है। प्रभु ही हमारे सोम का रक्षण करते हुए हमें आनन्दित करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

'वृषा-नर्य-इन-सत्वा'

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ ५ ॥

(१) **वृषा**=वह शक्तिशाली परमात्मा **वृषणम्**=इस शक्तिशाली जीव को **रणाय**=संग्राम के लिये, **जजान**=जन्म देता है। प्रभु यह मानवजन्म इसलिए देते हैं कि मनुष्य जीवन में आक्रमण करनेवाले इन काम क्रोध लोभ आदि शत्रुओं से संग्राम करके इन्हें जीतने का प्रयत्न करे। **तं**

उचित्=और उसको ही **नारी**=यह जीवन में आगे ले चलनेवाली वेदवाणी रूप स्त्री **नर्यम्**=नरहितकारी मनुष्य को **ससूव**=उत्पन्न करती है। वेदाध्ययन मनुष्य को सदा हितकर कार्यों में व्यापृत किये रहता है। (२) 'वृषा' प्रभु व 'नारी' वेदवाणी उस पुरुष को जन्म देते हैं **यः**=जो **नृभ्यः**=मनुष्यों के लिये **प्र सेनानीः**-प्रकृष्ट सेनापति **अस्ति**=होता है। **इनः**=अपना स्वामी बनता है। **सत्वा**=शत्रुओं का (सादयिता) विनाशक होता है। **गवेषणः**=ज्ञान की वाणियों की कामनावाला **सः**=वह सेनानी **धृष्णुः**=शत्रुओं का धर्षक होता है।

भावार्थ-हम प्रभु के उपासक बनें, वेदवाणी का अध्ययन करें। ये हमें 'शक्तिशाली-नरहितकारी-स्वामी-शत्रुविनाशक व ज्ञान की वाणियों की कामनावाला' बनायेंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

प्रभु-परिचरण व ऋत में निवास

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥

(१) **यः**=जो **अस्य**=इस प्रभु के **घोरं मनः**=शत्रुओं के लिये भयंकर मन को **आविवासात्**=पूजित करता है **सः**=वह **नू चित्**=न तो **भ्रेषते**=मार्गभ्रष्ट होता है **न रेषत्**=न हिंसित होता है। प्रभु से हमें ऐसे ही मन की याचना करनी चाहिये जो काम-क्रोध आदि शत्रुओं के लिये भयङ्कर हो। जिस मन में प्रभु का वास होता है, वह इन शत्रुओं के लिये भयङ्कर हो ही जाता है। (२) **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा **यः**=जो **इन्द्रे**=उस परमैश्वर्यशाली प्रभु में **दुवांसि**=परिचर्या को **दधते**=धारण करता है, **सः**=वही **क्षयत्**=उत्तम निवासवाला होता है। (सः) **राये**=वह ऐश्वर्य के लिये होता है। **ऋतपाः**=जीवन में ऋत का पालन करता है और **ऋतेजाः**=इन ऋतों में, यज्ञों में प्रादुर्भूत शक्तियोंवाला होता है।

भावार्थ-प्रभु से हम शत्रु भयंकर मन की ही याचना करें। न तो हम मार्गभ्रष्ट होंगे, न हिंसित। यज्ञों द्वारा प्रभु का उपासन करने पर हम ऐश्वर्य में निवास करते हुए जीवन में ऋत का रक्षण कर पायेंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः**॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

ज्ञान+सरलता+त्याग

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम्।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यत्**=जिस **चित्र्यं रयिम्**=अद्भुत ज्ञानधन को **पूर्वः**=बड़ा **अपराय**=छोटे के लिये **शिक्षन्**=देने की कामनावाला होता है। ब्रह्मचर्यकाल में बड़ी उमरवाले आचार्य छोटी उमरवाले विद्यार्थियों के लिये जिस ज्ञान-धन को प्राप्त कराते हैं। हे **चित्र**=चायनीय-पूजनीय प्रभो! उस ज्ञान-धन को **नः आभर**=हमारे लिये भी समन्तात् प्राप्त कराइये। (२) गृहस्थ में **ज्यायान्**=बड़ा **कनीयसः**=छोटे सन्तानों से **देष्णम्**=निर्दोषता आदि के दान को **अयत्**=प्राप्त होता है। बच्चों के निर्दोष छल-छिद्रशून्य स्वाभाविक जीवन को देखकर बड़ी उमरवाले माता-पिता को भी सरलता के सौन्दर्य को अपनाने की प्रेरणा होती है। इस सरलता के धन को प्रभु हमारे लिये भी दें। (३) अब वनस्थ अवस्था में **अमृतः इत्**=निश्चय से विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाला होता हुआ ही **दूरम्**=घर से दूर **पर्यासीत**=स्थित होता है। हे प्रभो! इस त्यागरूप धन

को भी हमारे लिये प्राप्त कराइये।

भावार्थ—हमें प्रथमाश्रम में आचार्यों द्वारा ज्ञानधन प्राप्त हो। द्वितीयाश्रम में हम बालकों से सरलता व निष्कपटता का पाठ पढ़ें, तृतीय आश्रम में त्यागवृत्ति को अपनानेवाले हों। प्रभु हमारे लिये 'ज्ञान, सरलता व त्याग' के अद्भुत धनों को प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषि:—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु का प्रिय कौन?

यस्त॑ इन्द्र प्रि॒यो जनो॒ ददा॑श॒दस॑न्निरे॒के अ॑द्रिवः॒ सखा॑ ते।

व॒यं ते॑ अ॒स्यां सु॑म॒तौ चनि॑ष्ठाः॒ स्याम॒ वरू॑थे॒ अघ्न॑तो॒ नृपी॑तौ ॥ ८ ॥

(१) हे **अद्रिवः**=आदरणीय **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यः**=जो **ते**=आपका **प्रियः जनः**=प्रिय मनुष्य होता है वह **ददाशत्**=खूब ही दान की वृत्तिवाला होता है। यह **निरेके**=सदा शंकाशून्य स्थिति में, निर्भय स्थिति में असत् होता है। **ते सखा**=आपका यह मित्र होता है। (२) हे प्रभो! **वयम्**=हम **ते**=आपकी **अस्यां सुमतौ**=इस कल्याणी मति में **चनिष्ठाः स्याम**=सदा उत्तम सात्त्विक अन्नों का सेवन करनेवाले हों तथा **अघ्नतः**=हिंसा को न करते हुए हम **नृपीतौ**=मनुष्यों का रक्षण करनेवाले **वरूथे**=गृह में **स्याम**=हों, निवास करें। हमारे घर ऐसे हों जो मनुष्यों का रक्षण करनेवाले हों। इन घरों के अन्दर अग्निहोत्र आदि यज्ञों के होने से नीरोगता का निवास हो।

भावार्थ—प्रभु का प्रिय वह है (क) जो दान देता है, (ख) निर्भय है, (ग) प्रभु का मित्र है। प्रभु से कल्याणी मति को प्राप्त करके हम सात्त्विक अन्न का सेवन करें, नीरोग घरों में निवासवाले हों।

ऋषि:—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

स्तवन से 'शक्ति व धन' की प्राप्ति

ए॒ष स्तोमो॑ अचिक्रद॒द् वृषा॑ त उ॒त स्ता॒मुर्म॑घवन्नक्रपिष्ट।

रा॒यस्कामो॑ जरि॒तारं॑ त॒ आग॒न्त्वम॒ङ्ग श॑क्र॒ वस्व॒ आ श॑को नः ॥ ९ ॥

(१) **एषः**=यह **ते**=आपका **स्तोमः**=स्तुति समूह **अचिक्रदद्**=ऊँचे से उच्चारित होता है। **वृषा**=यह स्तोम सब सुखों का वर्षण करनेवाला है, **उत**=और हे **मघवन्**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! यह **स्तामुः**=स्तोता **अक्रपिष्ट**=खूब सामर्थ्यवान् होता है, आपके बल से यह बलवान् बनता है। (२) हे प्रभो! **ते जरितारम्**=तेरे स्तोता को **रायस्कायः**=धन की अभिलाषा **आगन्**=प्राप्त हुई है। सो हे **शक्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वम्**=आप **अंग**=शीघ्र ही **नः**=हमारे लिये **वस्वः**=धन को **आशकः**=(धेहि) धारण करिये।

भावार्थ—हम प्रभु के स्तोम का उच्चारण करते हैं, प्रभु हमें शक्तिशाली बनाते हैं। स्तोता को धन की कामना होती है, तो प्रभु उसे शीघ्र ही धन को प्राप्त कराते हैं।

ऋषि:—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु प्रेरणा व यज्ञशील पुरुषों का संग

स न॑ इन्द्र॒ त्वय॑ताया इ॒षे धा॒स्त्मना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑।

वस्वी॒ षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ १० ॥

(१) हे **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **सः**=वे आप **नः**=हमें **त्वयताये**=आप से दी जानेवाली

इषे=प्रेरणा के लिये **धाः**=धारण करिये। **च**=और **ये**=जो **मघवानः**=यज्ञशील लोग (मघ=मख) **त्मना**=स्वयमेव **जुनन्ति**=आपकी ओर गतिशील होते हैं उनके लिये हमें धारण करिये। अर्थात् हम आपकी ओर गतिवाले इन यज्ञशील लोगों के सम्पर्क में हों। (२) हे प्रभो! **ते शक्तिः**=आप से दी गयी शक्ति-सामर्थ्य **जरित्रे**=स्तोता के लिये **सु**=सम्यक् **वस्वी**=उत्तम निवास को देनेवाली **अस्तु**=हो। **यूयम्**=आप **नः**=हमें **स्वस्तिभिः**=कल्याणों के द्वारा **सदा पात**=सदा रक्षित करिये। आप से रक्षित हुए-हुए हम सदा कल्याण के मार्ग का ही आक्रमण करें।

भावार्थ-हमें प्रभु प्रेरणा प्राप्त हो, यज्ञशील प्रभु प्रिय लोगों का सम्पर्क प्राप्त हो। प्रभु की शक्ति हमारे निवास को उत्तम बनाये और प्रभु सदा शुभ मार्गों पर चलाते हुए हमें सुरक्षित करें।

अगले सूक्त के भी ऋषि देवता 'वसिष्ठ व इन्द्र' ही हैं-

[२१] एकविंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सोम-रक्षण व स्तोम-उच्चारण

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु॥ १॥

(१) **देवम्**=दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाला, **गोऋजीकम्**=ज्ञान की वाणियों को सरलता से प्राप्त करानेवाला (गो+ऋज्) **अन्धः**=यह सोम (वीर्य शक्ति) **असावि**=उत्पन्न किया गया है। **अस्मिन्**=इस सोम में **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष ही **ईम**=निश्चय से **जनुषा**=जन्म से ही **नि उवोच**=निश्चय से समवेत होता है (उच समवाये)। जितेन्द्रिय ही सोम का रक्षण कर पाता है, रक्षित सोम जीवन को प्रकाशमय बनाता है और ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराता है। (२) हे **हर्यश्व**-कमनीय इन्द्रियाश्वों को प्राप्त करानेवाले प्रभो! **यज्ञैः**=यज्ञों के द्वारा **त्वा**=आपको **बोधामसि**= अपने अन्दर उद्बुद्ध करते हैं। **अन्धसः**=इस सोमरक्षण से जनित **मदेषु**=उल्लासों में **नः**=हमारे **स्तोमम्**=स्तुति समूह को **बोध**=आप जानिये, अर्थात् सोम-रक्षण से उल्लसित जीवनवाले बनकर हम आपका स्तवन करनेवाले बनें।

भावार्थ-जितेन्द्रिय बनकर हम सोम का रक्षण करें। यह सोम हमारे जीवनों को प्रकाशमय बनाता है तथा ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराता है। अब यज्ञों के द्वारा हम प्रभु को अपने में उद्बुद्ध करें तथा सोमरक्षण से उल्लसित जीवन में प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

'यज्ञशील-पवित्र हृदय-उत्कृष्ट ज्ञानी'

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः॥ २॥

(१) **सोममादः**=सोमरक्षण से उल्लास को प्राप्त होनेवाले ये व्यक्ति **यज्ञं प्रयन्ति**=यज्ञ को प्राप्त होते हैं। यज्ञमय जीवनवाले होते हैं। **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदयान्तरिक्ष को **विपयन्ति**=विस्तीर्ण करते हैं (विपिः स्तरण कर्मा सा०)। **विदथे**=ज्ञान-यज्ञों में ये व्यक्ति **दुध्रवाचः**=दुर्धारवाणीवाले होते हैं, इनकी युक्तियुक्त बातों का किसी के लिये भी खण्डन करना कठिन होता है। सोमरक्षण इन्हें 'यज्ञशील-पवित्र हृदय व उत्कृष्ट ज्ञानी' बनाता है। (२) **यशसः**=यश के **गृभात्**=ग्रहण से ये **उ**=निश्चयपूर्वक **आ**=समन्तात् **नि भ्रियन्ते**=नीचे धारण किये जाते हैं, अर्थात् अधिक और

अधिक नम्र हो जाते हैं। जितना यश–उतने नम्र। **दूरे उपब्दः** (दूरे उपब्दिः येषा ते)=दूर दूर जिनका जिनका यश का शब्द फैला हुआ है, ऐसे ये सोमरक्षक पुरुष **वृषणः**=शक्तिशाली होते हैं और **नृषाचः**=मनुष्यों के साथ समवेत होकर चलनेवाले होते हैं। सबके साथ मिलते हैं, उनके दु:खों में सहानूतिवाले होते हुए उनके दु:खों को दूर करने के लिये यत्नशील होते हैं।

भावार्थ–सोमरक्षण से मनुष्य 'यज्ञशील–पवित्र हृदय व उत्कृष्ट ज्ञानी' बनता है। ये सोमरक्षक पुरुष यशस्वी व नम्र बनते हैं। सुदूर कीर्ति शब्दोंवाले, शक्तिशाली व मनुष्यों के दु:खों को दूर करनेवाले होते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सोमरक्षण व सुन्दर जीवन

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्योर्३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा॥ ३॥

(१) हे **शूर**=शत्रुओं के शीर्ण करनेवाले **इन्द्र**=शत्रुविद्रावक प्रभो! **त्वम्**–आप **अहिना**=आहनन करनेवाली वासना से **परिष्ठिताः**=चारों ओर से घिरे हुए **पूर्वीः**=हमारा पालन व पूरण करनेवाले **अपः**=रेत:कणरूप जलों को **स्रवितवा**=शरीर में सर्वत्र गतिमय होने के लिये **कः**=करते हैं। वासना को विनष्ट करके (अहि=वृत्र=काम) आप रेत:कणों को शरीर में व्याप्त करते हैं। (२) **त्वद्**=आपसे ही **रथ्यः न**=शरीर–रथ के इन्द्रियाश्वों के समान **धेनाः**=ज्ञान की वाणियाँ **वावक्रे**=हमारे अन्दर खूब ही गतिवाली होती हैं, अर्थात् आप हमें इन्द्रियाश्वों को प्राप्त कराते हैं तथा वेदवाणियों का ज्ञान देते हैं। इस प्रकार हृदयस्थ आपके **भीषा**–भय से **विश्वा**=सब **कृत्रिमाणि**=कृत्रिम बातें **रेजन्ते**=कम्पित हो उठती हैं, मनुष्य इन कृत्रिम बातों से ऊपर उठकर स्वाभाविक सुन्दर जीवनवाला बनता है।

भावार्थ–प्रभु वासना को विनष्ट करके सोम को शरीर में व्याप्त करते हैं। हमारे लिये उत्तम इन्द्रियाश्वों व ज्ञान की वाणियों को प्राप्त कराते हैं। सब कृत्रिम दोषों को दूर करके हमारे जीवन को सुन्दर बनाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

आसुरभावों का संहार

भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान॥ ४॥

(१) वह प्रभु **एषाम्**=इन उपासकों के शत्रुओं के लिये **भीमः**=भयंकर होते हुए **आयुधेभिः**= अस्त्रों से **विवेष**=इन्हें व्याप्त करते हैं, अर्थात् इन्द्रिय, मन व बुद्धिरूप अस्त्रों के द्वारा काम–क्रोध व लोभरूप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं। **विश्वा**=सब **नर्याणि**=नरहितकारी **अपांसि**=कर्मों को **विद्वान्**=वे प्रभु जानते हैं, उपासकों के लिये इन कर्मों का ज्ञान देते हैं। (२) **जर्हृषाणः**=इन उपासकों से प्रसन्न होते हुए **इन्द्रः**=वे शत्रुविद्रावक प्रभु **पुरः**=काम–क्रोध–लोभ की नगरियों को **विदूधोत्**=कम्पित कर देते हैं। और **वज्रहस्तः**=वज्र को हाथ में लिये हुए वे प्रभु **महिना**–अपनी महिमा से **विजघान**=इन असुरों का संहार कर देते हैं। प्रभु ही आसुरभावों को विनष्ट करते हैं।

भावार्थ–प्रभु उपासकों के शत्रुओं के लिये भयंकर होते हुए अस्त्रों से उन्हें व्याप्त करते हैं। नरहितकारी कर्मों का ज्ञान देते हैं। वे प्रभु उपासक से प्रसन्न होते हुए आसुरपुरियों को कम्पित

कर देते हैं और वज्रहस्त होकर इन असुरों का संहार करनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

ऋत से दूर रहनेवाले 'शिश्नदेव'

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।

स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥ ५ ॥

(१) हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **यातवः**=पीड़ा का आधान करनेवाले 'काम-क्रोध-लोभ' रूप राक्षसीभाव **नः**=हमें **न जूजुवुः**=हिंसित न करें। हे **शविष्ठ**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **वन्दना**=(वन्दनानि) प्रभु के प्रति वन्दन व स्तवन **वेद्याभिः**=ज्ञान की क्रियाओं से **न** (जूजुवुः)=हमें पृथक् न करें। हम वन्धनों में ही न रह जायें, ज्ञान को भी अवश्य प्राप्त करें। (२) **सः**=वह **अर्यः**=स्वामी प्रभु **विषुणस्य** (विष् व्याप्तौ)=कर्त्तव्य कर्मों में व्याप्त **जन्तोः**=प्राणी को **शर्धत्**=उत्साहित करनेवाले हों। **शिश्नदेवाः** (शिश्नेन दीव्यन्ति क्रीडन्ति)=अब्रह्मचर्य लोग-असंयमी पुरुष **नः**=हमारे **ऋतम्**=यज्ञों को **मा अपिगुः**=मत प्राप्त हों। संयमी पुरुष ही यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हमें राक्षसीभाव हिंसित न करें। हम स्तवन में प्रवृत्त हुए-हुए ज्ञान को उपेक्षित न कर दें। प्रभु कर्तव्य कर्मों में (व्याप्त) लग्नशील मनुष्य को ही उत्साहित करते हैं। असंयमी पुरुष यज्ञों में प्रवृत्त नहीं होते।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

भूरध महिमानं युधा

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि।

स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे **इन्द्र**=राजन्! **अध**=और तू **क्रत्वा**=उत्तम कर्म से **ज्मन्**=पृथिवी पर **रजांसि**=राजस भावों को **अभि भूः**=पराजित कर। रजांसि=वे लोग **ते**=तेरे **महिमानं**=सामर्थ्य को **न विव्यङ्**=न प्राप्त कर सकें। तू **स्वेन शवसा हि**=अपने ही बल से **वृत्रं**=विघ्नकारी शत्रु को **जघन्थ**=विनष्ट कर। **शत्रुः**=तेरा नाशक, **ते अन्तं**=तेरा अन्त **युधा**=युद्ध द्वारा **न विविदत्**=न पा सके।

भावार्थ—इन्द्र परमात्मा हम जीवों के अभिभव करके अपनी महिमा को बढ़ाकर जीवों के काम-क्रोध आदि शत्रुओं का वध करता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

देवाश्चित्ते क्षत्राय ममिरे

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि।

इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे राजन्! **असुर्थाय क्षत्राय**=मेघ में उत्पन्न जल प्राप्त करने के लिये जैसे अन्नाभिलाषी जन यत्न करते हैं वैसे ही **पूर्वे देवाः**=वे पूर्व के, शिक्षित, विद्वान् **ते** असुर्थाय क्षत्राय=तेरे मेघ में उत्पन्न विद्युत् के बल को प्राप्त करने के लिये **सहांसि**=साहस और बलयुक्त कर्म **अनु ममिरे**=तेरी आज्ञा में करते हैं। वह **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् तू **विषह्य**=शत्रु को पराजित करके **मघानि दयते**=ऐश्वर्यों का दान करता है। प्रजाजन **वाजस्य सातौ**=बल और संग्राम में विजय लाभ हेतु **इन्द्रं**=ऐश्वर्यवान्

पुरुष को **जोहुवन्त**=बुलाते हैं।

भावार्थ–परमैश्वर्यशालिन् इन्द्र हमारे काम-क्रोधादि शत्रुओं और अज्ञान को नष्ट करके अपने भक्तों को सात्त्विक अन्न और श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कीरिः ईशान वरूता

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः।

अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता॥ ८॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=स्वामिन्! **कीरिः**=क्रियाकुशल पुरुष **चित्**=भी **अवसे**=स्व रक्षा हेतु **भूरेः**=बड़े **सौभगस्य**=ऐश्वर्य के **ईशानं**=स्वामी **त्वाम्**=तुझको **जुहाव**=पुकारता है। हे **शतम्-ऊते**=सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न! तू **अस्मे**=हमारा **अवः बभूथ**=रक्षक हो। **त्वावतः**=तेरे जैसे **अभिक्षत्तुः**=सन्मुख आये शत्रुनाशक वीर को **वरूता**=स्वीकार करने और उसको युद्ध में पराजित कर भगानेवाला भी, तू ही **बभूथ**=हो।

भावार्थ–शत्रुओं का धर्षक इन्द्र अपने भक्तों के धन की रक्षा करता है और उसके शत्रुओं का निवारण करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

हम इन्द्र के सखा हो जाएँ

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र।

वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके३ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि॥ ९॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! हे **तरुत्र**=शत्रु नाशक! **ते**=तेरे हम लोग **विश्वह**=सदा **सखायः**=मित्र और **महिना**=तेरे सामर्थ्य से **नमः-वृधासः**=अन्न और शस्त्र से बढ़नेहारे **स्याम**=हों। **समीके**=रण में **ते**=तेरे **शवसा**=रक्षण-सामर्थ्य से ही प्रजास्थ पुरुष **अभीतिम् वन्वन्तु**=अभय पायें और **वनुषां शवांसि**=हिंसक शत्रु बलों के प्रति (अभि हितम् वन्वन्तु)-प्रयाण करें। तू उनका **अर्यः**=स्वामी होकर रक्षा कर।

भावार्थ–हम स्तुति द्वारा इन्द्र के सखा हो जावें और परमैश्वर्यशाली परमात्मा अनार्यों के बल को नष्ट कर आर्यों की रक्षा करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रजा को अभय प्राप्त हो

स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।

वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १०॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**–ऐश्वर्यवन्! **नः**–हममें से **ये**–जो **त्मना**=स्वसामर्थ्य से **मघवानः**-धनी होकर **जुनन्ति**=तुझे प्राप्त होते हैं, उनको तू **त्वयताया**=तेरे से सुप्रबुद्ध **इषे**–प्रेरणा के लिये **धाः**=धारण कर। **जरित्रे**=विद्वान् के लिये **ते**=तेरी **वस्वी**=ऐश्वर्ययुक्त **शक्तिः**=दान शक्ति **सु-अस्तु**=खूब हो। **यूयम्**–तुम लोग हे विद्वानो! **नः सदा**=हमें सदा **स्वस्तिभिः पात**=कल्याणकारी उपायों से पालन करो।

भावार्थ–परमात्मा यज्ञशील मनुष्य को सात्त्विक अन्न प्रदान कर उन्हें शक्ति प्रदान कर

यज्ञप्रेमी बनाकर स्वस्ति द्वारा पालन करता है।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र है।

[२२] द्वाविंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिगुष्णिक्** ॥ स्वरः-**ऋषभः** ॥

इन्द्र का सोमपान और राष्ट्र पालन

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

पदार्थ-हे **हर्यश्व**-उत्तम सैन्य के स्वामिन्! **यं**=जिस **सोमम्**=अन्नवत् ऐश्वर्य को **ते**=तेरे लिये **अद्रिः**=मेघवत् शस्त्र बल **सुषाव**=उत्पन्न करता है तू उसको **सोमम्**=ओषधि-रस के समान **पिब**=उपभोग कर। वह **त्वा मन्दन्तु**=तुझे हर्षित करे और **सोतुः बाहुभ्यां सुयतः**=सञ्चालक सारथि के बाहुओं से नियन्त्रित **अर्वा न**=अश्व के समान, तू भी **सोतुः**-मार्ग में सञ्चालन करनेवाले पुरुष के **बाहुभ्यां**=कुमार्ग से रोकनेवाले ज्ञान और कर्मरूप बाहुओं से **सुयतः**=उत्तम रूप से नियन्त्रित होकर **सोमम् पिब**=इस राष्ट्ररूप ऐश्वर्य की रक्षा कर।

भावार्थ-ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके जो ब्रह्मचारी रहता है वही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

वृत्र हनन और शत्रुनाश

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **हर्यश्व**=वेगयुक्त अश्वों के स्वामिन्! **यः**=जो **ते**=तेरा **युज्यः**=सहयोग देने योग्य, **चारुः**=उत्तम **मदः**=हर्ष **अस्ति**=है और **येन**=जिससे तू **वृत्राणि**=मेघों को सूर्यवत्, शत्रुओं का **हंसि**=विनाश करता है, हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! हे **प्रभूवसो**=प्रचुर ऐश्वर्य के स्वामिन्! **सः**=वह **त्वा**=तुझको **ममत्तु**=अति हर्षयुक्त बनावे।

भावार्थ-अज्ञान को नष्ट करके ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके हर्षयुक्त रहना चाहिये।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

अन्न उत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान और धन प्राप्ति

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

पदार्थ-हे **मघवन्**-ऐश्वर्यवन्! **याम्**=जिस **प्रशस्तिम्**=प्रशंसित **ते**=तेरी **वाचम्**=वाणी का **वसिष्ठः**=उत्तम विद्वान् **सु अर्चति**=आदर कर रहा है तू **इमाम्**=उसको **सु बोध**=अच्छी प्रकार जान। **इमा ब्रह्म**=तू इन ज्ञानों को **सध मादे**=हर्ष के साथ मिलकर **जुषस्व**-सेवन कर।

भावार्थ-ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके अन्न की उत्पत्ति करके राष्ट्र को समृद्ध करना चाहिये।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**आर्चीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्। कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥

पदार्थ-हे परमात्मन्! हम **वि-पिपानस्य**=विविध प्रकार के रसों के पालन करनेवाले **अद्रेः**=मेघ तुल्य नाना विद्याओं के रसों का पान करनेवाले **अद्रेः**=आदर योग्य **विप्रस्य**=मेधावी **अर्चतः**=पूज्य विद्वान् के **हवम्**=उपदेश और **मनीषाम्**=बुद्धि का **बोध**=ज्ञान प्राप्त करें और **इमा**=

इन **सचेमा दुवांसि**=नाना सेवाओं को **अन्तमा कृष्व**–आत्मसात् करें।

भावार्थ–ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण करके मैं परमात्मा की स्तुति करता हूँ। हे प्रभु! आप मेरी बुद्धि वृद्धि में सहायक बनो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**अनुष्टुप्**॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

परमात्मा की वाणी की अवहेलना न करना

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्। सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥५॥

पदार्थ–हे राजन्! **विद्वान्**–मैं विद्वान् होकर **ते गिरः**=तेरी वाणियों को **न अपि मृष्ये**=न त्यागूँ। **तुरस्य**–अति शीघ्र कार्यकर्त्ता और शत्रु-हिंसक **असुर्यस्य**=बलवानों में श्रेष्ठ तेरी **सुस्तुतिम्**–उत्तम स्तुति को भी (न अपि मृष्ये)=न छोड़ूँ। मैं **ते नाम**–तेरे नाम, या सामर्थ्य को ही **स्वयशः**=अपनी कीर्त्ति या बल **विवक्मि**=कहूँ।

भावार्थ–परमात्मा की आज्ञा वेदवाणी का सदैव पालन करना चाहिए।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

परमात्मा मनीषी विद्वान् की पुकार सुनता है

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्। मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥६॥

पदार्थ–हे **मघवन्**=ऐश्वर्ययुक्त! **ते**=तेरे **भूरि हि सवना**–अनेक ऐश्वर्य **मानुषेषु**–मनुष्यों में हैं। **मनीषी**=बुद्धिमान् व्यक्ति **त्वाम् इत् हवते**–तेरी ही स्तुति करता है। तू **अस्मत्**–हमसे **ज्योक् मा कः**=अपने को दूर मत कर।

भावार्थ–मनीषी स्तोता ही तुम्हारा आह्वान करता है। हे परमात्मा आप हमसे दूर न हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृदनुष्टुप्**॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

परमात्मा मनुष्यों के द्वारा स्तुति करने योग्य है

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि। त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥७॥

पदार्थ–हे **शूर**–वीर! **इमा सवना तुभ्यं इत्**–ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही अधिकार में हों। **तुभ्यं वर्धना**=तुझे बढ़ानेवाले **विश्वा ब्रह्माणि**=समस्त अन्न और वेद-वचन **कृणोमि**=मैं करता हूँ। हे प्रभो! **त्वं**=तू **नृभिः**=मनुष्यों से **हव्यः**=स्तुति करने योग्य, और **विश्वधा असि**=विश्व का धारक है।

भावार्थ–हे परमात्मा मैं तेरी ही स्तुति करता हूँ। तेरे अतिरिक्त कोई स्तुति के योग्य नहीं है। क्योंकि तू ही विश्व का धारक है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराडनुष्टुप्**॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

परमात्मा का सामर्थ्य सबसे अधिक बढ़कर

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र। न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥८॥

पदार्थ–हे **दस्म**=दर्शनीय! हे **उग्र**=प्रचण्ड राजन्! **मन्यमानस्य**=मानने योग्य **ते**=तेरे **महिमानम्**=सामर्थ्य को **नू चित् नु**=अवश्य सज्जन लोग **उद् अश्नुवन्ति**=प्राप्त करें। परन्तु शत्रु **ते महिमानम् न**–तेरे सामर्थ्य को **उद् अश्नुवन्तु**=न पा सकें, **न ते वीर्यम्**=न तेरे बल और **न ते राधः**=न तेरे ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

भावार्थ–हे प्रभो! तेरे सामर्थ्य को, तेरे बल व ऐश्वर्य को कोई प्राप्त नहीं कर सकता है।

क्योंकि तुझसे अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् कोई नहीं है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

पुराने और नए ऋषि वेदार्थ का प्रकाश करें

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन् आचार्य! **ये च ऋषयः**=जो सत्य-ज्ञानों के द्रष्टा, **पूर्वे**=पूर्व काल के गुरुजन और **ये च नूत्नाः**=जो नये शिष्य, नवशिक्षित **विप्राः**=विद्वान् पुरुष हैं वे **ब्रह्माणि जनयन्त**=वेद-मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करें। हे विद्वन्! तेरी **सख्यानि**=मित्रता के कार्य **अस्मे**=हमारे लिये **शिवानि**=कल्याणकारक हों। **यूयम्**=आप लोग, हे विद्वन् ऋषिजनो! **नः**=हमारी **सदा**=सदा **स्वस्तिभि**=उत्तम साधनों से **पात**=रक्षा करो।

भावार्थ—प्राचीन विद्वान् तेरी वाणी वेद के अर्थ का प्रकाश करते रहे हैं। नए विद्वान् भी वेदार्थ का प्रकाश करें कि जिससे जगत् का कल्याण होवे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ इन्द्र नाम से परमात्मा की स्तुति करता है।

[२३] त्रयोविंशं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विद्वान् वेदवाणी का उत्तम उपदेश करे

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे **वसिष्ठ**=प्रजा को बसाने हारे वसो! विद्वन्! तू **श्रवस्या**=यश की कामना से **ब्रह्माणि**=ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर **उद् ऐरत उ**=उत्तम रीति से उपदेश कर। तू **समर्ये**=संग्राम में वा सभा आदि में **इन्द्रम्**=ऐश्वर्यवान्, वीर पुरुष का **महय**=आदर कर। **यः**=जो तू **उप-श्रोता**=प्रजाओं के कष्टों को सुननेवाला **शवसा**=बलपूर्वक **ईवतः**=समीप आनेवाले **मे**=मेरे उपकारार्थ **विश्वानि वचांसि**=समस्त उत्तम आज्ञाएँ **आ ततान**=देता है।

भावार्थ—विद्वान् अपने शिष्यों को ज्ञानपूर्वक वेदवाणी उपदेश करे जिससे शिष्य भी ईश्वरीय ज्ञान को जाने।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वेदवाणी के प्रवक्ता पुरुष शत्रुओं को रोकने में समर्थ होते हैं

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे **देवजामिः घोषः**=जलदाता मेघ की गर्जना होती है और **विवाचि**=विविध मध्यमा वाक् विद्युत् के गर्जते हुए **शुरुधः**=शीघ्र आनेवाली ओषधियाँ बढ़ती हैं, वैसे हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **यत्**=जब **देव-जामिः**=विजयेच्छु पुरुषों में रहनेवाला **घोषः**=घोष उठता है उस समय **वि वाचि**=विशेष वाणी के प्रवक्ता पुरुष के अधीन **शुरुधः**=शत्रुओं को रोकने में समर्थ वीर **इरज्यन्त**=आगे बढ़ते हैं। **जनेषु**=मनुष्यों में कोई भी **स्वम् आयुः**=अपना जीवन सुरक्षित **नहि चिकिते**=नहीं जानता है, तब, हे राजन्! तू ही **तानि इत् अंहांसि**=उन पापाचारों से **अस्मान्**

अतिपर्षि=हमें पार करता है।

भावार्थ–वेदज्ञ पुरुष राष्ट्र में वेदवाणी का उपदेश करके राष्ट्र के नायक एवं नागरिकों को शत्रुओं से युद्ध करने में समर्थ बनावें जिससे शत्रु का पराभव होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वैदिक विद्वान् पुरुषों से राष्ट्र ऐश्वर्यवान् बनता है

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः।

वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान्॥ ३ ॥

पदार्थ–**हरिभ्यां रथं**=जैसे दो अश्वों से रथ को जोड़ा जाता है वैसे मैं **हरिभ्याम्**=दो विद्वान् पुरुषों से **रथम्**–राष्ट्र को **युजे**=युक्त करूँ। समस्त प्रजा वर्ग **ब्रह्माणि जुजुषाणम्**=धनों को प्राप्त करनेवाले पुरुष का **उप अस्थुः**–आश्रय लेते हैं। वह **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् पुरुष ही **महित्वा**=सामर्थ्य से **रोदसी**=शत्रु को रुलानेवाली उभय पक्ष की सेनाओं को **वि बाधिष्ट**=विविध प्रकार से वश में करे और वह शत्रु **अप्रति**=हताश होकर **वृत्राणि जघन्वान्**–राष्ट्र विघातक तत्त्वों का नाश करे।

भावार्थ–वेदज्ञ विद्वान् वेदोपदेश द्वारा कृषि एवं शिल्प विद्या का ज्ञान देकर राष्ट्र को ऐश्वर्य सम्पन्न बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

वायु के समान शत्रु को उखाड़ फैंको

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र।

याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान्॥ ४ ॥

पदार्थ–**स्तर्यः गावः न**=जैसे गौएँ गृहस्थ को **पिप्युः**=बढ़ाती हैं **आपः चित्**=और जैसे रक्तधाराएँ शरीर की वृद्धि करती हैं, वैसे ही **आपः**–विद्वान् और प्रजाएँ **स्तर्यः**=शत्रुहिंसक और देश की रक्षक सेनाएँ तथा **गावः**=गौएँ भी देश को **पिप्युः**–समृद्ध करती हैं। हे **इन्द्र**–ऐश्वर्यवन्! **जरितारः**–विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं की जीवन–हानि करनेवाले वीर **ते ऋतं रक्षन्**=तेरे सत्य, न्याय को प्राप्त करें। **त्वं**–तू **नः**=हमारे **नियुतः**–लक्षों प्रजाजनों तथा अश्व -सैन्यों को भी **वायुः**=प्राणवत् प्रिय, वा वायु तुल्य बल से शत्रु को उखाड़ने में समर्थ होकर **अच्छ याहि**=प्राप्त हो और **धीभिः**–अपने कर्मों और सम्मतियों से **वाजान्**=ऐश्वर्यों को **वि दयसे**–विविध प्रकार से दे और **वाजान् वि दयसे**=वेगवान् अश्वों को पालन कर और ज्ञानवान् पुरुषों पर **वि दयसे**=विशेष कृपा कर।

भावार्थ–जैसे तेज हवा बड़े-बड़े वृक्षों को धराशायी कर देती है उसी प्रकार वेदज्ञ विद्वान् द्वारा प्रशिक्षित सेना शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शूरवीर प्रजा की रक्षा करता है

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।

एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व॥ ५ ॥

पदार्थ–**हि**=जिससे, हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले वीर! तू **देवत्रा**=विद्वानों के बीच,

उनका त्राता होकर **एकः**=अद्वितीय **मर्तान् दयसे**=मनुष्यों को जीवन देता है, अतः **जरित्रे**=विद्वान् के लिये **तुवि-राधसं**=बहुत धन देनेवाले **शुष्मिणं**=बलशाली, **त्वा**=तुझको, हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **ते**=तेरे लिये **मदाः**=तृप्तिकारक पदार्थ **मादयन्तु**=हर्षित करें। और **अस्मिन्**=इस **सवने**=संग्राम में **मर्तान्**=प्रजा को **मादयस्व**=प्रसन्न कर।

भावार्थ–सुभट योद्धा विद्वानों का त्राता होकर अद्वितीय राष्ट्र की प्रजा की रक्षा करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

राष्ट्र के वासी शत्रुओं पर आक्रमण करें

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

पदार्थ–**वसिष्ठासः**=राष्ट्रवासी जन **एव**=निश्चय से **वृषणं**=शत्रु पर शरों की वर्षा करनेवाले **वज्र-बाहुम्**=शस्त्रास्त्र बल को बाहुओं में रखनेवाले, **इन्द्रं**=शत्रुनाशक पुरुष को **अर्कैः**=अर्चना-योग्य उपायों से **अभि-अर्चन्ति**=सत्कार करते हैं। **सः स्तुतः**=वह प्रशंसित शासक **नः**=हमारे **वीरवत्**=वीरों से युक्त सैन्य और **गोमत्**=भूमि-युक्त राष्ट्र की **पातु**=रक्षा करे। हे वीरो **नः**=हमारा **सदा**=सदा **स्वस्तिभिः**=उत्तम उपायों से **पात**=पालन करो।

भावार्थ–राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजा जब बलवान् मेघ या सूर्य के समान शत्रु पर बाण वर्षा करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र परमात्मा है।

[२४] चतुर्विंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

रक्षक परमात्मा ऐश्वर्य प्रदाता

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि।

असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **सदने**=सभा में **ते**=तेरा **योनिः**=गृहवत् स्थान **अकारि**=बने। हे **पुरुहूत**=बहुतों से प्रशंसित! तू **तम्**=उस मुख्य स्थान को **नृभिः**=नायकों सहित **आ याहि**=प्राप्त कर और **प्र याहि**=प्रयाण कर। **यथा**=जैसे तू **नः**=हमारा **अविता**=रक्षक **असः**=हो। **नः वृधे च**=और हमारी वृद्धि के लिये तू **वसूनि आ ददः**=ऐश्वर्य दे और ग्रहण कर। तू **सोमैः च**=सौम्य पुरुषों, ऐश्वर्यों से **ममदः**=तृप्त हो।

भावार्थ–सर्वरक्षक परमेश्वर हमारी वृद्धि के लिए नाना ऐश्वर्य प्रदान कर सौम्य पुरुषों और विभिन्न औषधि रसों से हर्ष प्राप्त कराता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मनुष्य यज्ञशील बनें

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि।

विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

पदार्थ–**इयम्**=यह **सु-वृक्तिः**=सद्व्यवहारवाली **मनीषा**=मनोहारिणी **विसृष्ट-धेना**=उत्तम भूमि **इन्द्रं**=ऐश्वर्य-युक्त वर्षा जल को **जोहुवती**=प्राप्त करती हुई **परि-सिक्ता**=गर्भाशय में निषिक्त

मधूनि=मधुर जल को **भरते**-धारण करे। हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यदातः! **ते मनः गृभीतं**=तेरा मन उस भूमि द्वारा ग्रहण किया जाय। उससे **सुतः**=उत्पन्न **सोमः**=सोम ओषधियाँ **द्वि-बर्हाः**=राष्ट्र को राष्ट्रीय प्रजा दोनों का वृद्धि को प्राप्त और दोनों को सम्पन्न करें।

भावार्थ–राष्ट्र के निवासी भूमि को मेहनत से उपजाऊ बनाकर नाना औषधियाँ एवं वनस्पतियों को उगाकर राष्ट्र को समृद्ध करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राजा विजयकामी हो

आ नो॑ दि॒व आ पृ॑थि॒व्या ऋ॑जीषिन्नि॒दं ब॒र्हिः सो॑म॒पेया॑य याहि।

वह॑न्तु त्वा॒ हर॑यो म॒द्र्य॑ञ्चमाङ्गू॒षमच्छा॑ त॒वसं॒ मदा॑य॥ ३॥

पदार्थ–हे **ऋजीषिन्**-सरल मार्ग में प्रजा को चलाने हारे! तू **सम-पेयाय**-प्रजा-पालन और ऐश्वर्यों के भोग के लिये **दिवः पृथिव्याः**-उत्तम व्यवहार और भूमि के लिये **नः**=हमारी **इदं बर्हिः**=इस बढ़ती प्रजा को **आ याहि**-प्राप्त हो। **हरयः**-प्रजास्थ पुरुष **तवसं**-बलवान् **मद्र्यञ्चम्**-मेरे प्रति आनेवाले **त्वा**-तुझको **मदाय**-प्रसन्नता के लिये **आङ्गूषं अच्छ वहन्तु**=उत्तम स्तुति वचन प्रदान करें।

भावार्थ–राजा पुत्रवत् प्रजापालन करे और अपने उत्तम व्यवहार से विजयकामना करता हुआ राष्ट्र को उन्नत करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राजा शत्रुशोषक हो

आ नो॒ विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑ स॒जोषा॒ ब्रह्म॑ जुषा॒णो ह॑र्यश्व याहि।

वरी॑वृज॒त्स्थवि॑रेभिः सुशिप्रा॒स्मे दध॒द् वृष॑णं॒ शुष्म॑मिन्द्र॥ ४॥

पदार्थ–हे **हर्यश्व**-मनुष्यों में श्रेष्ठ! राज्य-रथ के सञ्चालक! तू **नः**=हमारे **ब्रह्म जुषाणः**=अन्न और ज्ञान को सेवन करता हुआ **विश्वाभिः ऊतिभिः**=सब रक्षा साधनों से **नः**=हमें **आयाहि**=प्राप्त हो। हे **सु-शिप्र**-उत्तम मुकुटधारिन्! तू **स्थाविरेभिः**-विद्या और आयु में वृद्ध पुरुषों सहित विपत्तियों को **वरीवृजत्**-दूर कर। हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **अस्मे**-हमारे लिये **वृषणं**-बलवान् **शुष्मम्**-शत्रु-पोषक सैन्य को **दधत्**-धारण कर।

भावार्थ–राजा को वृद्ध पुरुषों के अनुभवों को प्राप्त कर दैवी व मानुषी विपत्तियों को दूर करके शत्रु का शोषण कर राष्ट्र को समृद्ध करना चाहिए।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

सबको उत्तम व्यवहार करना चाहिए

ए॒ष स्तोमो॑ म॒ह उ॒ग्राय॒ वाहे॑ धु॒री॑३वात्यो॒ न वा॒जय॑न्नधायि।

इन्द्र॑ त्वा॒यम॒र्क ई॑ट्टे वसू॑नां दि॒वी॑व॒ द्याम॑धि॒ नः॒ श्रोम॑तं धाः॥ ५॥

पदार्थ–**वाहे धुरि अत्यः न**-रथ को उठानेवाले धुरा में जैसे अश्व लगाया जाता है वैसे ही **वाहे धुरि**-राष्ट्र को धारण के पद पर **महे उग्राय**=महान्, बलवान् पुरुष के लिये **एषः स्तोमः**-यह स्तुत्य व्यवहार **वाजयन् इव**=उसे ऐश्वर्य देता हुआ **अधायि**=नियत किया जाता है। **वसूनां मध्ये दिवि अर्कः**–पृथिव्यादि वसुओं के बीच, आकाश में सूर्य के समान, हे

इन्द्र-ऐश्वर्यवन्! **वसूनाम्**=प्रयोजनों, शासकों के बीच **अयम् अर्कः**-यह अर्चना-योग्य पद **त्वाम् ईट्टे**-तुझे ही ऐश्वर्य देता है। तू **नः**=हमें प्रकाशवत् **द्याम्**=उत्तम व्यवहार और **श्रोमतं**=श्रवण-योग्य यश **धाः**=धारण करा।

भावार्थ-राष्ट्र के निवासी परस्पर शिष्टाचार एवं उत्तम व्यवहार करें, जिससे राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़े।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

सम्पन्न पुरुष राष्ट्र का पालन करें

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **नः**=हमें तू **वार्यस्य**=धनैश्वर्य से **पूर्धि**=पूर्ण कर। हम **ते**=तेरे **महीं**=पूज्य **सुमतिं**=ज्ञान को **वेविदाम**=प्राप्त करें। तू **मघवद्भ्यः**=धन-युक्तों को **सुवीराम्**=शुभ पुत्रों से युक्त **इषं**=अन्न **पिन्व**=दे। हे सम्पन्न पुरुषो! **यूयं**=आप **नः**=हमारी **स्वस्तिभिः**=उत्तम उपायों से **सदा पात**=सदा रक्षा करो।

भावार्थ-राष्ट्र के समृद्ध जनों को चाहिए वे राज्य को कर प्रदान कर राष्ट्र समृद्धि की परियोजनाओं में सहयोगी बनें, जिससे राष्ट्र के नागरिकों का भरण-पोषण सम्यक् होवे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र ही है।

[२५] पञ्चविंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

राष्ट्र रक्षार्थ अस्त्र-शस्त्र उद्योग लगावें

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्य१ग्वि चारीत् ॥ १ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! हे **अति उग्र**=प्रचण्ड! **यत्**=जब **महते**=तुझ महान् की **समन्यवः**=क्रोध-युक्त गर्व-पूर्ण **सेनाः**=सेनाएँ **ऊती**=देश-रक्षा के लिये **सम्-अरन्त**=आगे बढ़ें तब **नर्यस्य**=सब मनुष्यों में श्रेष्ठ **ते**=तेरे **बाह्वोः**-बाहुओं में **दिद्युत्**=चमकता शस्त्रास्त्र **पताति**=शत्रु पर पड़े और **ते मनः**=तेरा चित्त **विष्वद्र्यग् मा विचारीत्**=सब तरफ न जाय।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए बड़ी-बड़ी आयुध निर्माणी उद्योगशालायें लगावे, जिससे शत्रुजन भयभीत होते रहें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

शत्रुनाश का उपदेश

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनाम् ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **ये**=जो **मर्तासः**=मनुष्य **नः**=हमें **अमन्ति**=रोगों के तुल्य पीड़ा देते हैं उन **अमित्रान्**=शत्रुओं को **दुर्गे**=दुर्ग में बैठकर **अभि श्नथिहि**=युद्ध में मार। **निनित्सोः**=निन्दक से **आरे**=दूर रहकर ही **नः**=हमारी **तं शंसं कृणुहि**=वह प्रशंसनीय विनय कर और **नः**=हमें **वसूनाम्**=ऐश्वर्यों से **सम्भरणं आ भर**=समृद्ध कर।

भावार्थ–जैसे वैद्य लोग पीड़ादायक रोगों को उत्तम औषध द्वारा नष्ट करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र के नायक को चाहिए कि वह राष्ट्र को हानि पहुँचानेवाले शत्रु का उचित साधनों द्वारा नाश करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विजेता की प्रशंसा करो

शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **शिप्रिन्**=सुन्दर मुखवाले राजन्! **सु-दासे**=उत्तम दानी पुरुष के लिये **ते**=तेरी **शतं**=सैकड़ों **ऊतयः**=रक्षायें और **सहस्रं शंसाः**=सहस्रों प्रशंसाएँ हों और **सहस्रं रातिः अस्तु**=सहस्रों दान हों। हे राजन्! तू **वनुषः मर्त्यस्य**=दुष्ट पुरुष के **वधः**=हिंसाकारी साधनों को **जहि**=नष्ट कर और **अस्मे**=हमें **द्युम्नम्**=यश और **रत्नं च**=धन **अधि धेहि**=अधिक दे।

भावार्थ–जो राजा वा सेनापति शत्रुओं को जीतकर प्रजा जनों की रक्षा करता है, उस राजा वा सेनापति की प्रजा द्वारा खूब प्रशंसा की जानी चाहिए।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

राजा प्रजा की रक्षा करे

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=राजन्! प्रभो! **विश्वा इत् अहानि**=मैं सब दिनों **त्वावतः**=तेरे जैसे स्वामी के **क्रत्वे**=कर्म करने के लिये **अस्मि**=रहूँ। हे **शूर**=वीर! मैं **त्वावतः अवितुः**=तेरे जैसे रक्षक के ही **रातौ**=दिये दान पर **अस्मि**=वृत्ति करूँ। हे **तविषीव**=बलवती सेना के स्वामिन्! तू सब दिनों **उग्रः**=शत्रु के लिये भयजनक, **ओकः कृणुष्व**=स्थान और सेना का समन्वय बना। हे **हरिवः**=अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन्! तू **न मर्धीः**=हमें मत मार।

भावार्थ–राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा की शत्रुओं से प्राणपण द्वारा रक्षा करे। प्रजा राजा से यही अपेक्षा रखती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा न्यायकारी हो

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम्॥ ५ ॥

पदार्थ–**इन्द्रे**=ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन ही **हर्यश्वाय**=उस वेगवान् अश्व के स्वामी के विजयार्थ **एते**=ये **कुत्साः**=शस्त्रास्त्र-समूह वा उत्तम शिल्पों के करनेवाले जन **देव-जूतम्**=वीरों से प्रेरित वा उनके अभिलषित **शूषम्**=सुखकारी **सहः**=शत्रुविजयी बल को **इयानाः**=प्राप्त करते रहें और ऐसे ही **वयम्**=हम भी **तरुत्राः**=सबको दुःखों से तारते हुए **वाजम् सनुयाम**=बल और धन प्राप्त करें। हे **शूर**=वीर! तू **सत्रा**=सदा, **वृत्रा**=दुष्ट पुरुषों को **सुहना कुरु**=सुख से नाश-योग्य बना।

भावार्थ–राजा को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि दुष्ट लोग प्रजा के धनादि ऐश्वर्य का

हरण न कर सकें। उचित न्याय व्यवस्था द्वारा दुष्टों व शत्रुओं के दण्ड का विधान होवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

राष्ट्र समृद्ध बने

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।

इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**-ऐश्वर्यवन्! **नः**=हमें तू **वार्यस्य**=धनैश्वर्य से **पूर्धि**-पूर्ण कर। हम **ते**-तेरे **महीं**=पूज्य **सुमतिं**=ज्ञान को **वेविदाम**=प्राप्त करें। तू **मघवद्भ्यः**=धन-युक्तों को **सुवीराम्**=शुभ पुत्रों से युक्त **इषं**=अन्न **पिन्व**-दे। हे सम्पन्न पुरुषो! **यूयं**=आप **नः स्वस्तिभिः सदा पात**=उत्तम उपायों से हमारी सदा रक्षा करो।

भावार्थ-यज्ञ करने से राष्ट्र समृद्ध बनता है। यज्ञ द्वारा प्रजा नीरोग व स्वस्थ रहकर सुखी बनती है। पर्यावरण प्रदूषण रहित होने से अन्नादि की उत्पत्ति दोष रहित होकर राष्ट्र समृद्ध होता है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ देवता इन्द्र है।

[२६] षड्विंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सोम की रक्षा करो

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः।

तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥ १ ॥

पदार्थ-असुतः सोमः=जैसे बिना तैयार किया ओषधि-रस **इन्द्रम्**=जीव को **न ममाद**=हर्षित नहीं करता और **असुतः सोमः**=न उत्पन्न हुआ पुत्र **इन्द्रं न ममाद**=गृह-स्वामी को हर्षित नहीं करता, वैसे ही **असुतः**=ऐश्वर्यरहित **सोमः**=राष्ट्र **इन्द्रम् न ममाद**=राजा को सुखी नहीं करता। **अब्रह्माणः सुतासः**=वेदज्ञान-रहित पुत्र **मघवानम्**=धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को हर्ष नहीं देते, वैसे ही **अब्रह्माणः**=धन न देनेवाले **सुतासः**=उत्पन्न जन भी **मघवानं न ममाद**=धनाढ्य को प्रसन्न नहीं करते। **यत् जुजोषत्**=जो प्रेम से सेवन करे मैं **तस्मै**=उसी के लिये **उक्थं जनये**=उत्तम वचन प्रकट करूँ **यथा**=जिससे वह **नः नवीयः**=हमारा उत्तम वचन **नृवत्**=उत्तम पुरुष के समान **शृणवत्**=सुने।

भावार्थ-जैसे तैयार किया हुआ सोम असंयमी को सुख नहीं देता, उसी प्रकार से धनाढ्य राज्य अनुशासन ही न प्रजा को सुखी नहीं कर सकता।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा-प्रजा परस्पर प्रेम से रहें

उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः।

यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

पदार्थ-उक्थे-उक्थे=प्रत्येक उत्तम, उपदेश योग्य व्यवहार-ज्ञान में **सोमः**=शिष्य **इन्द्रं ममाद**=आचार्य को हर्ष देनेवाला हो। **नीथे-नीथे**=उत्तम उद्देश्य की ओर जानेवाले प्रत्येक मार्ग में **सुतासः**=शिष्य वा पुत्र भी **मघवानं**=दान-योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को

प्रसन्न करें। ऐसे ही **सोमः**=ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र राजा को प्रसन्न करे। **समानदक्षाः पुत्राः सबाधः पितरं न** समान बल से युक्त पुत्र जैसे पीड़ायुक्त पिता को **अवसे हवन्ते**-उसकी रक्षार्थ प्राप्त होते हैं, वैसे ही **यत् ईम्**-जब भी प्रजाजन **सबाधः**=पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही **पितरं**-राजा को **समान-दक्षाः**=समान बलशाली होकर **अवसे हवन्ते**-रक्षा के लिये पुकारें।

भावार्थ-जैसे पुत्र पर कष्ट आने पर पिता उसकी रक्षा करता और पिता के कष्टमय होने पर पुत्र पिता की सेवा कर उसके कष्ट का निवारण करता है। उसी प्रकार प्रजा पर कष्ट आवे तो राजा प्रजा की रक्षा करे तथा राजा पर कष्ट आने पर प्रजा भी राजा का सहयोग करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा प्रजा को पापाचरण से बचाए

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः॥ ३ ॥

पदार्थ-वेधसः-विद्वान् लोग **सुतेषु**-अपने पुत्रों में और विद्वान् जन **सुतेषु**-अभिषिक्त पुरुषों में **यानि**-जिन-जिन **अन्या**-भिन्न-भिन्न उपदेश्य वचनों को **ब्रुवन्ति**=उपदेश करते हैं **इन्द्रः**-ऐश्वर्यवान् राजा **ता**-उन-उन उत्तम कर्मों को **नूनम्**-अवश्य **चकार**-करे और **कृणवत्**-अन्य-अन्य भी उत्तम कर्म करें। **एकः**=एक **पतिः**-पति जैसे **जनीः इव**-पुत्रोत्पादक दाराओं को **नि मामृजे**-प्रथम ही दोषरहित कर लेता है ऐसे ही **इन्द्रः**-ऐश्वर्यवान् राजा **एकः**-अद्वितीय, **सर्वाः समानः**-उत्तम आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान होकर समस्त **पुरः**=समक्ष आये प्रजाओं को **सु**=अच्छी प्रकार **नि मामृजे**=पवित्र करे।

भावार्थ-जिस प्रकार से विद्वान् जन अपने शिष्यों को उत्तम शिक्षा द्वारा बुराइयों से बचाकर सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं, उसी प्रकार राजा भी निष्पक्ष होकर उत्तम राजनियमों के द्वारा प्रजा को पापाचरण से बचावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा न्यायकारी हो

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि॥ ४ ॥

पदार्थ-यस्य=जिसके **पूर्वीः**=सदा से विद्यमान **मिथस्तुरः**-परस्पर मिलकर शीघ्र कार्य करनेवाली, **ऊतयः**-रक्षाएँ वा रक्षाकारिणी सेनाएँ **अस्मे**=हमें **भद्राणि**-सुखजनक, **प्रियाणि**=ऐश्वर्य **सश्चत**=प्राप्त कराती हैं वह **इन्द्रः**-ऐश्वर्यवान् राजा **एकः**=अद्वितीय **तरणिः**=संकटों से पार उतारनेवाला, **मघानां विभक्ता**=ऐश्वर्यों का विभाग करनेवाला है **तम् एव आहुः**-उसका ही लोग उपदेश करते हैं **उत तम् एव शृण्वे**-और उसकी ही मैं गुरुजनों से उपदेश द्वारा श्रवण करूँ।

भावार्थ-जैसे सेना राष्ट्र की रक्षा में तत्पर रहती है उसी प्रकार राजा अपनी न्याय व्यवस्था द्वारा प्रजा की रक्षा में तत्पर रहे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

कृषि वृद्धि हेतु प्रयत्न करें

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ-सुते-अन्न को उत्पन्न करने के लिये जैसे **कृष्टीनां**=खेतियों के वृद्ध्यर्थ **वृषभं**=वर्षक मेघ की विद्वान् स्तुति करते हैं और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जैसे **कृष्टीनां**-खेती करने हारों के बीच **वृषभं**=बलवान् बैल की स्तुति की जाती है, वैसे **वसिष्ठः**=देशवासी उत्तम जन **सुते**=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये और **ऊतये**=रक्षार्थ भी **कृष्टीनां**=मनुष्यों में **वृषभं**=श्रेष्ठ **इन्द्रं**=ऐश्वर्य-युक्त पुरुष की **गृणाति**=स्तुति करता है। हे राजन्! तू **नः**=हमें **सहस्रिणः वाजान्**=सहस्रों सुखों से युक्त ऐश्वर्य **उप माहि**=दे। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करें।

भावार्थ-राजा व प्रजा दोनों मिलकर ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राष्ट्र की भूमि उन्नत कृषि के योग्य बने। इस प्रकार उन्नत कृषि द्वारा अन्न के भण्डार भरे रहें जिससे प्रजा सुखी रहे।

अगले सूक्त का वसिष्ठ ऋषि व इन्द्र देवता है।

[२७] सप्तविंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

परमात्मा का स्मरण करें

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १ ॥

पदार्थ-यत्=जो **इन्द्रं**=ऐश्वर्यवान् को **नेमधिता**=संग्राम में **नरः**=मनुष्य **हवन्ते**=पुकारते हैं, **यत्**=जो **पार्याः**=पालन-योग्य **धियः**=और धारण-योग्य प्रजाएं ऐश्वर्यवान् राजा का **युनजते**=सहयोग करती हैं, हे राजन्! तू वह **शूरः**=वीर **नृ-साता**=मनुष्यों को विभक्त करनेवाला, **शवसः चकानः**=बल की इच्छा करता हुआ **ताः**=उन प्रजाओं को और **नः**=हमें भी **गोमति व्रजे**=उत्तम वाणियों से प्रासव्य ज्ञानमार्ग वा ब्रह्मपद से युक्त उत्तम राज्य में **आ भज**=रख।

भावार्थ-मनुष्य को योग्य है कि सर्वव्यापक परमेश्वर का हर समय स्मरण करते हुए उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अनुभव करे, तथा कुमार्गों से सदा बचकर सुपथ पर चलता रहे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

परमात्मा धन और ज्ञान दे

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यप्रद! हे **मघवन्**=धन के स्वामिन्! राजन्! **यः**=जो **ते**=तेरा **शुष्मः अस्ति**=बल है, वह तू **सखिभ्यः**=मित्र **नृभ्यः**=मनुष्यों को **शिक्ष**=दे। हे **पुरुहूत**=बहुतों से प्रशंसित! हे **मघवन्**=उत्तम धन के स्वामिन्! **त्वं हि**=तू निश्चय से **विचेताः**=ज्ञानवान् होकर **परि-वृतं राधः न**=छुपे धन के समान ही **दृढा**=दृढ़ दुर्गों और परम ज्ञान को **अपा वृधि**=खोलकर हमें दे।

भावार्थ–मनुष्यों को चाहिए कि समस्त ज्ञान एवं धन का स्वामी ईश्वर को मानकर उसी से सम्पूर्ण पुरुषार्थ के साथ ज्ञान एवं धनैश्वर्य की प्रार्थना करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रजा दानशील हो

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

पदार्थ–**इन्द्रः**–शत्रु–नाशक पुरुष **राजा**–सूर्यवत् तेजस्वी, और **जगतः**=जंगम संसार और **चर्षणीनाम्**=मनुष्यों का स्वामी हो। **अधि क्षमि**–पृथिवी पर **यत्**=जो **विषु-रूपं**=विविध प्रकार का धन है वह उसी का है। **ततः**=उसमें से वह **दाशुषे**–दानशील पुरुष को **वसूनि ददाति**–धन देता है। वह **उप-स्तुतः**=प्रशंसित **अर्वाक्**–हमें प्राप्त होकर **राधः चोदत्**=धन प्राप्ति की प्रेरणा करे।

भावार्थ–दान से धन की वृद्धि होती है ऐसा जानकर सभी मनुष्यों को दानशील होना चाहिए। परमेश्वर दानशील के धन की पर्याप्त वृद्धि करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

धन और बल पर राजा का नियन्त्रण हो

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती।

अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ–**यस्य**–जिसका **अभि-वीता**=तेजो–युक्त, **दक्षिणा**=दान और क्रिया–सामर्थ्य, **अनूना**=किसी से न्यून न होकर **सखिभ्यः नृभ्यः**=मित्रों के लिये **वामं**=उत्तम ऐश्वर्य को **पीपाय**=बढ़ाता है **नु चित्**–वह पूज्य **इन्द्रः**–ऐश्वर्यवान् **मघवा**=धन का स्वामी **दानः**=दान देता हुआ **नः**=हमारी **ऊती**=रक्षार्थ **स-हूती**=सबको समान देने की नीति से **वाजं**=ऐश्वर्य को **नि यमते**=नियन्त्रित करता है।

भावार्थ–राजा को न्यायकारी होकर निष्पक्ष भाव से समस्त राज्य सम्पदा पर अधिकार करके सम्पूर्ण प्रजा जनों में समान रूप से वितरण व्यवस्था को सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित करना चाहिए। सेना पर भी राजा का सुनियन्त्रण होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा प्रजापालक हो

नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय।

गोमदश्वावद्रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**–ऐश्वर्यवन्! तू **नु**=शीघ्र ही **राये**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये **नः वरिवः कृधि**=हम प्रजाजनों का कल्याण कर। हम भी **ते मनः**=तेरे मन को **मघाय**=धन के लिये **आ ववृत्याम**=आकर्षण करें। हे विद्वान् पुरुषो! **गोमत्**=गौओं, भूमियों से युक्त **अश्ववत्**=अश्वों से युक्त, **रथवत्**=रथों से सम्पन्न ऐश्वर्य का **व्यन्तः**=उपभोग करते हुए **यूयम्**–आप लोग **स्वस्तिभिः**=उत्तम साधनों से **नः पात**=हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–प्रजा को सुखी करना राजा का प्रथम कर्त्तव्य है। अतः राजा को योग्य है कि

वह अन्न, धन, वस्त्र, निवास, व्यापार, स्वास्थ्य तथा शिक्षा की सुव्यवस्था करके प्रजा का विश्वास जीतकर उत्तमता के साथ पालन करे।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र ही है।

[२८] अष्टाविंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उत्तम विद्वान के कर्त्तव्य

ब्रह्मा॑ ण इन्द्रोप॑ याहि वि॒द्वान॒र्वाञ्च॑स्ते॒ हर॑यः सन्तु यु॒क्ताः।

विश्वे॑ चि॒द्धि त्वा॑ वि॒हव॑न्त॒ मर्ता॑ अ॒स्माक॒मिच्छृ॑णुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्य और विद्योपदेशदाता राजन्! आचार्य! तू **विद्वान्**=विद्वान् होकर **नः ब्रह्म उप याहि**=हमारा बड़ा राष्ट्र और धन प्राप्त कर, करा। **ते**=तेरे अधीन **हरयः**=अश्वारोही और नियुक्त मनुष्य **अर्वाञ्चः**=विनयशील और **युक्ताः**=मनोयोग देनेवाले हों। **विश्वे चित् मर्त्ताः हि**=समस्त मनुष्य निश्चय से **त्वा वि हवन्त**=तुझे विविध प्रकार से पुकारते हैं। हे **विश्वमिन्व**=सबके प्रेरक! तू **अस्माकम् इत्**=हमारा वचन अवश्य **शृणुहि**=सुन।

भावार्थ–राष्ट्र के अन्दर उत्तम विद्वानों को सुशिक्षा एवं सदुपदेश के द्वारा राजा तथा प्रजा दोनों को सन्मार्ग में प्रेरित करना चाहिए। राजा वेद के विद्वानों के परामर्श से राज्यव्यवस्था चलावे। प्रजा की समस्याओं को विद्वान् जन राजा के सामने रखकर उनका समाधान करावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा शत्रुओं के लिए भयानक हो

हवं॑ त इन्द्र महि॒मा व्या॑न॒ड् ब्रह्म॒ यत्पासि॑ शवसि॒न्नृषी॑णाम्।

आ यद्वज्रं॑ दधि॒षे हस्त॑ उग्र घो॒रः सन्क्रत्वा॑ जनिष्ठा॒ अषा॑ळ्हः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**–ऐश्वर्यवन्! **ते महिमा**=तेरा सामर्थ्य **हवं**=यज्ञ और संग्राम को भी **वि आनड्**=व्याप्त है। **यत्**=जिससे, हे **शवसिन्**=बलवन्! तू **ऋषीणाम्**=ऋषियों के **हवं, ब्रह्म**=स्तुत्य ज्ञान की भी **पासि**=रक्षा करता है। हे **उग्र**=तेजस्विन्! **यत्**=जो **वज्रं हस्ते दधिषे**=शस्त्रास्त्र बल को हाथ में धारण करता है वह, तू **घोरः सन्**=शत्रुनाश में समर्थ होकर **क्रत्वा**=अपने कर्म से **अषाळ्हः**=अन्यों के लिये असह्य हो **जनिष्ठाः**=अजेय सेनाओं को प्रकट कर।

भावार्थ–कुशल राजा अपने ज्ञान एवं कर्म द्वारा शक्ति का बहुत संग्रह करे, जिससे शत्रु काँप उठे तथा राष्ट्र पर आक्रमण करने का साहस न कर सके। आक्रमणकारी शत्रु पर इन्द्र के समान भयंकर वज्रपात करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

राजा विद्रोहियों को कठिन दण्ड दे

तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न्त्सं यन्नॄन्न रोद॑सी नि॒नेथ॑।

म॒हे क्ष॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञेऽतू॑तुजिं चि॒त्तूतु॑जिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

पदार्थ–**रोदसी न**=सूर्य जैसे आकाश और पृथ्वी को मार्ग पर चलाता है वैसे ही **यत्**=जो पुरुष **जोहुवानान्**=निरन्तर पुकारनेवाले और बुलाये गये, **नॄन्**=नायक पुरुषों को **सं निनेथ**=सन्मार्ग पर चलाता है और जो **तूतुजिः**=शत्रु-नाशक होकर **अतूतुजिं**=अहिंसक प्रजा और कर न देनेवाले

शत्रु का **अशिश्नत्** शासन करता है वह, तू **हि**-निश्चय से **महे क्षत्राय**-बड़े क्षात्र बल और **महे शवसे**-बड़े सैन्य बल के सञ्चालन के लिये **जज्ञे**-समर्थ है।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि वह दण्ड विधान को कठोरता के साथ राज्य में लागू करे। दण्ड के बिना शासन कभी भी नहीं चल सकता। जो कर न देनेवाले, देशद्रोही तथा भ्रष्टाचार करनेवाले हैं राजा उन्हें कठोर दण्ड देवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रः**॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः-**पञ्चमः**॥

राजा उत्तम न्यायकारी हो

एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते।

प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात्॥ ४॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=न्याय के द्रष्टा राजन्! **नः**-हमारे **दुः-मित्रासः**=दुष्ट मित्र और **क्षितयः**=साथी **हि**=भी **पवन्ते**=तुझे प्राप्त होते हैं। तू **एभिः अहभिः**=इन कुछ दिनों में, शीघ्र **दशस्य**-न्याय प्रदान कर। **यः**=जो तू **अनृतम्**=असत्य को **प्रतिचष्टे**=खण्डित करता है वह, तू **अनेनाः**=पाप-रहित, **वरुणः**=श्रेष्ठ **मायी**=बुद्धिमान् होकर **द्विता**-सत्य और असत्य दोनों के बीच **नः अव सात्**=हमारा निर्णय कर।

भावार्थ-राजा को अपनी गुप्तचर व्यवस्था को सुदृढ़ करना चाहिए। जिससे राज्य में होनेवाली प्रत्येक गतिविधि को जानकर राजा अपनी न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ कर सके। न्यायकारी राजा उत्तम न्याय व्यवस्था द्वारा प्रजा को सुखी एवं शत्रु को मित्र बना सकता है।

ऋषिः **वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रः**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

राजा ऐश्वर्यशाली हो

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः।

यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

पदार्थ-**यत्**-जो **महः रायः**-बड़े-बड़े ऐश्वर्य **नः ददत्**=हमें देता है। **एनं मघवानम्**=उस ऐश्वर्य स्वामी को हम **इन्द्रम् इत् वोचेम**-'इन्द्र' ही पुकारें और **यः**-जो **अर्चतः**=अपने सत्कारकों को **ब्रह्म-कृतिम्**=धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के साधन देता, वही **अविष्ठः**-उत्तम रक्षक है। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**-हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ-राजा को विद्वान् होना चाहिए। विद्वान् राजा उत्तम विद्या का प्रचार-प्रसार करके राष्ट्र में सुख के साधनों को बढ़ावा देकर प्रजा को ऐश्वर्यशाली बना सकता है। विद्वान् जन भी निर्भयता के साथ राज्य में ज्ञान-विज्ञान का प्रचार कर उत्तम शिक्षा द्वारा ऐश्वर्य की वृद्धि करें।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र है।

[२९] एकोनत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रः**॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः-**पञ्चमः**॥

राजा उत्तम ऐश्वर्य दाता हो

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः।

पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः॥ १॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन्! **अयं सोमः**=यह ऐश्वर्य **तुभ्यम्**=तेरे लिये **सुन्वे**=उत्पन्न किया है। हे **हरिवः**=मनुष्यों के स्वामिन्! **तदोकाः**=तू उस गृह में रहता हुआ **तु**=भी **आ याहि**=हमें प्राप्त हो और **प्र याहि**=प्रयाण कर। **अस्य**=इस **सु-सुतस्य**=उत्तम रीति से उत्पन्न प्रजाजन का **तु**=भी **पिब**=पालन कर। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन्! **इयानः**=प्राप्त होता हुआ तू हमें **मघानि**=ऐश्वर्य **ददः**=दे।

भावार्थ–उत्तम राजा अपनी प्रजा को उत्तम बनाकर राष्ट्र को उन्नत करता है। उत्तम राजा अपने राज्य में उत्तम शिक्षा को फैलाकर राज्य की प्रजा को उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर सुखी बनाता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा चतुर्वेदज्ञ हो

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **ब्रह्मन्**=विद्वन्! हे **वीर**=शूर! तू **ब्रह्मकृतिं**=परमेश्वर-निर्मित जगत् को, बड़े राष्ट्र-कार्य को **जुषाणः**=सेवन करता हुआ **हरिभिः**=उत्तम पुरुषों सहित **अर्वाचीनः**=अब भी **तूयम् याहि**=शीघ्र प्राप्त हो। **अस्मिन् सवने**=इस यज्ञ, वा राष्ट्र-शासन में **नु सु मादयस्व**=शीघ्र, तू प्रसन्न होकर अन्यों को भी सुखी कर और **नः**=हमारे **इमा**=इन **ब्रह्माणि इमा**=वेद-वचनों को **उप-शृणवः**=सुन।

भावार्थ–राजा को चारों वेदों का विद्वान् होना चाहिए जिससे वह अपने राज्य में वेद विद्या का प्रसार कर वेद के विद्वानों द्वारा समस्त प्रजा को वेदवित् बना सके तथा वैदिक राष्ट्र की स्थापना कर सके।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

राजा विद्वान् और विनयशील हो

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **मघवन्**=ऐश्वर्य-स्वामिन्! **ते**=तेरे **सूक्तैः**=उत्तम वचनों, विद्या-प्रवचनों से **का अरंकृतिः अस्ति**=कैसी शोभा है। हे ऐश्वर्यवन्! हम **ते**=तेरे लिये **नूनं**=सत्य कहो, आज्ञा करो **कदा दाशेम**–कब कब उपहार दें? **त्वाया**–तुझसे ही हमारी **विश्वाः मतीः**=सब बुद्धियाँ **आ ततने**=विस्तृत ज्ञानवाली होती हैं। **अध**=और, हे **इन्द्र**=ज्ञानप्रद! **मे इमा हवा**=मेरे ग्राह्य पदार्थ और प्रार्थना-वचन **शृणवः**=सुनो और **हवा**=ग्राह्य ज्ञानोपदेश **मे शृणवः**=मुझे सुनाओ।

भावार्थ–विद्वान् राजा वेद के विद्वानों की मण्डली में नित्य बैठा करे तथा उनसे राष्ट्र की समृद्धि के सूत्रों को प्राप्त कर शोध कार्यों द्वारा राष्ट्र में उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि करे। राजा अभिमान को छोड़ विनयशीलता के साथ प्रजा पालन करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा बहुश्रुत हो

उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम्।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्य-दातः! **उतो घ**–और **येषाम्**=जिन **पूर्वेषां ऋषीणाम्**=पूर्व के, सत्य ज्ञान द्रष्टा जनों के ज्ञान को तू **अशृणोः**=सुनता है **ते इत्**=वे निश्चय से **पुरुष्याः आसन्**-मनुष्यों के हितकारी हैं। हे **मघवन्**-धनवन्! **अध**-और **अहं**=मैं **त्वा**=तुझे **जोहवीमि**-गुरु स्वीकार करता हूँ, **त्वं**=तू **प्रमतिः**-उत्तम ज्ञानी होकर **नः पिता इव असि**-हमारे पिता के समान है।

भावार्थ–राष्ट्र में विविध विद्याओं के विद्वानों की एक मण्डली होवे। राजा उन विद्वानों से ज्ञान का श्रवण उसी प्रकार श्रद्धा से करे, जैसे पुत्र पिता से ज्ञान को सुनता है। इससे राजा बहुत विद्याओं को जानकर राष्ट्र में अध्यात्म तथा ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

विद्वान् भी ऐश्वर्यशाली हो

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ५॥

पदार्थ–यत्=जो **महः रायः**–बड़े-बड़े ऐश्वर्य **नः ददत्**=हमें देता है। **एनं मघवानम्**-उस ऐश्वर्य के स्वामी को हम **इन्द्रम् इत् वोचेम**='इन्द्र' ही पुकारें और **यः**=जो **अर्चतः**-अपने सत्कारकों को **ब्रह्म-कृतिम्**-धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के साधन देता है, वही **अविष्ठः**=उत्तम रक्षक है। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**-आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**-हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ–विद्वानों को योग्य है कि वे राष्ट्र में विभिन्न प्रकार के शोध कार्यों द्वारा ज्ञान-विज्ञान को बढ़ावें तथा ऐश्वर्यशाली होवें। इससे राष्ट्र भी ऐश्वर्यसम्पन्न होकर उन्नति को प्राप्त करेगा। राज्य की प्रजा भी ऐसे विद्वानों से प्रेरणा पाकर उन्नति की ओर अग्रसर होगी।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र ही है।

[३०] त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राजा बलशाली हो

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर॥ १॥

पदार्थ–हे **देव**=तेजस्विन्! प्रभो! तू **शवसा**–बल और ज्ञान-सहित **नः आयाहि**=हमें प्राप्त हो। हे **शुष्मिन्**-बलशालिन्! हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! तू **अस्य**=इस **रायः**=धनैश्वर्य का **वृधः भव**=वर्धक हो। हे **सुवज्र**–उत्तम वीर्यवन्! हे **शूर**=वीर! हे **नृपते**=मनुष्य-पालक! तू **महे नृम्णाय**-बड़े धनैश्वर्य, **महि क्षत्राय**=बड़े शत्रुनाशक राष्ट्र और **पौंस्याय भव**=पौरुष के लिये उद्यत हो!

भावार्थ–पुरुषार्थी राजा ही शरीर, मन, आत्मा तथा सम्प्रभुता के बलों को प्राप्त कर सकता है। इन बलों से युक्त बलवान् राजा ही राज्य की शत्रुओं से रक्षा कर सकता है। प्रजा का पालन भी इन बलों के बिना नहीं हो सकता। अतः राजा को चाहिए कि वह आत्मिक एवं भौतिक बलों से बलशाली बने।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सेनापति होने योग्य पुरुष

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु॥ २ ॥

पदार्थ–हे राजन्! **शूरः**–वीर पुरुष **वि वाचि**=विविध वाणियों के प्रयोग के समय, संग्राम और स्तुतिकाल में **हव्यं**=पुकारने और स्तुति–योग्य **त्वा उ**=तुझको ही **हवन्ते**=पुकारते हैं। **तनूषु**=शरीरों में **सूर्यस्य सातौ**=सूर्य नाम दक्षिण नासागत प्राण के प्राप्त होने पर, आवेश में **त्वा उ हवन्ते**=तेरी ही स्तुति करते हैं। **त्वं विश्वेषु जनेषु**=तू सब मनुष्यों में **सेन्यः**=सेना–नायक होने योग्य है और **त्वं**=तू **वृत्राणि**=बढ़ते शत्रु–सैन्यों को **सु हन्तु**=अच्छी प्रकार मार, **रन्धय**=वश कर।

भावार्थ–जैसे तेजस्वी सूर्य अपने तेज से सबका मार्गदर्शन करता है। जैसे सूर्य ऊर्जा का भण्डार है, उसी प्रकार से सेनापति को भी तेजस्वी तथा ऊर्जावान् होना चाहिए। तभी वह सेना का नेतृत्व तथा राष्ट्र की रक्षा कर सकेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सेनापति तेजस्वी हो

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु।
न्यग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान्॥ ३ ॥

पदार्थ–जैसे सूर्य **सुदिना**=शुभ दिनों को **वि उच्छान्**=खूब प्रकाशित कर **दधे**=धारण करता है, **केतुम् दधे**=ज्ञान–प्रकाशक को धारण करता है, वह **सुभगाय देवान् हुवानः होता न**=कल्याण के लिये किरणों को देता हुआ अग्नि के समान प्रदीप्त होता है वैसे ही, हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन् सेनापते! तू भी **सुदिना अहा**=शुभ दिनों को प्राप्त कर **व्युच्छान् देवान् दधः**=तेजस्वी वीर पुरुषों और शुभ गुणों को धारण कर और **समत्सु**=संग्रामों में **उपमं**=आदर्श रूप **केतुम्**=ज्ञापक चिह्न को **दधः**=धारण कर। तू **अग्निः**=अग्नि–समान तेजस्वी और **असुरः न**=प्राणवत् सबको जीवन दाता **होता**=सबको वृत्ति देनेवाला होकर **देवान्**=विजयेच्छुक वीरों को **सु-भगाय**=उत्तम ऐश्वर्य के लिये **हुवानः**=बुलाता, स्वीकार करता हुआ **नि सीदत्**=विराजे।

भावार्थ–सेनापति सर्व उपमा योग्य ज्ञान धारण करे। अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और प्राणवत् सबको जीवन देनेवाला वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ, समराग्नि में होता के तुल्य मन्त्रों को उच्चारण करता हुआ शत्रुओं को जलावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सेनापति ज्ञानवान् हो

वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! हे **देव**=दानशील! **मघानि**=नाना ऐश्वर्य **ददतः**=देते हुए **ते**=तेरी **ये च स्तवन्त**=जो लोग स्तुति करते हैं **ते**=वे और **वयम्**=हम **स्वाभुवः**=उत्तम रीति से समृद्ध होकर **जरणाम्**=स्तुति और दीर्घायु को **अश्नवन्त**=प्राप्त हों। तू **सूरिभ्यः**=विद्वान् पुरुष

को **उपमं वरूथं**=उत्तम गृह **यच्छ**=दे।

भावार्थ–सेनापति युद्धनीति ज्ञाता और सामर्थ्यवान् होकर शत्रुओं की प्रबल सेना को भी ध्वस्त करने में समर्थ हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

परमात्मा से ज्ञान और बल की प्रार्थना

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दत्रः।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–यत्=जो **महः रायः**–बड़े-बड़े ऐश्वर्य **नः ददत्**=हमें देता है। **एनं मघवानम्**=उस ऐश्वर्य के स्वामी को हम **इन्द्रम् इत् वोचेम**–'इन्द्र' ही पुकारें और **यः**=जो **अर्चतः**=अपने सत्कारकों को **ब्रह्म-कृतिम्**=धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के साधन देता, वही **अविष्ठः**–उत्तम रक्षक है। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ–परमेश्वर ऐश्वर्य का स्वामी है। उसी से ऐश्वर्य के साधन ज्ञान और बल प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। ज्ञान और बल से ही परमात्मा जीवों की रक्षा करता है।

अगले सूक्त का वसिष्ठ ऋषि देवता इन्द्र है।

[३१] एकत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सोमपान का अधिकारी

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **सखायः**–मित्रो! आप लोग **सोमपाव्ने**–सोम–पान करनेवाले यजमान, 'सोम' अर्थात् वीर्य का रक्षण करनेवाले ब्रह्मचारी, पुत्र और शिष्य के पालक गृहपति और आचार्य, ऐश्वर्य और अन्न के पालक राजन्य और वैश्य, योग द्वारा ब्रह्मज्ञान के पान करनेवाले मुमुक्षु और जगत् के पालक परमेश्वर, **हर्यश्वाय**=वेगवान् अश्वों, बलों के स्वामी **इन्द्राय**=ऐश्वर्यवान्, भूमिपालक, आत्मा, परमात्मा आदि के लिये **मादनं**–अतिहर्षजनक **प्र गायत**=वचन का उपदेश करो।

भावार्थ–सोम अर्थात् शरीर का सर्वश्रेष्ठ धातु रेतः को धारण करनेवाला ब्रह्मचारी योग द्वारा ब्रह्मज्ञान का पान करनेवाला मुमुक्षु ही ईश-प्राप्ति का अधिकारी होता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

मुमुक्षु के गुण

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

पदार्थ–सु-दानवे=उत्तम दाता **सत्य राधसे**=सत्य और न्याय के धनी पुरुष के लिये मैं **उक्थं**–उत्तम वचन **शंसे**=कहूँ। **यथा**=जैसे **नरः**–मनुष्य उसके लिये **द्युक्षं**–अन्न आदि से सत्कार करते हैं वैसे ही हम लोग उसका **द्युक्षं चकृम**=सत्कार करें।

भावार्थ–मोक्ष की कामनावाले योगी को शान्त, सहनशील, मन और इन्द्रियों पर संयम रखनेवाला तथा सत्यवादी होना चाहिए।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

राजा वाजयु हो

त्वं न॑ इन्द्र वाज॒युस्त्वं ग॒व्युः श॑तक्रतो। त्वं हि॑रण्य॒युर्व॑सो ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे **इन्द्र**=राजन्! **त्वं**=तू **नः**=हमारे लिये **वाज-युः**=अन्न, बल आदि की कामनावाला, **गव्युः**=वाणी आदि चाहनेवाला हो। हे **शतक्रतो**=असंख्यों बुद्धियों के स्वामिन्! हे **वसो**=सब में बसने हारे! **त्वं**=तू **हिरण्ययुः**=हित-कार्य को चाहनेवाला हो।

भावार्थ—सर्वव्यापक परमात्मा जैसे हित एवं रमणीय कार्यों को ही चाहता है, उसी प्रकार राजा को भी भूमि, इन्द्रिय सामर्थ्य और वाणी का चाहनेवाला होकर अन्न, बल आदि का संग्राहक होना चाहिए।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

राजा से विनय

व॒यमि॑न्द्र त्वा॒यवो॒ऽभि प्र णो॑नुमो वृषन्। वि॒द्धी त्व१॒॑स्य नो॑ वसो ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! हे **वृषन्**=बलवन्! सुखदातः! हे **वसो**=बसने-बसानेवाले! **वयम्**=हम **त्वायवः**=तुझे चाहते हुए, **अभि प्र नोनुमः**=खूब स्तुति करते हैं **अस्य तु नः विद्धि**=तू हमारी इस अभिलाषा को जान।

भावार्थ—राजा को चाहनेवाली सुप्रजा अपनी रक्षा, उन्नति और राष्ट्र की समृद्धि के लिए राजा से विनय करे। राजा को भी पितृवत् प्रजा की प्रार्थना को सुनना, स्वीकारना चाहिए।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

राजा प्रजा को पीड़ित न करे

मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ऽर्यो र॑न्धी॒ररा॑व्णे। त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे राजन्! तू **अर्यः**=स्वामी होकर **नः**=हमें **निदे**=निन्दक **वक्तवे**=गर्हित, **अराव्णे**=अदानशील शत्रु के हितार्थ **मा रन्धीः**=मत दण्डित कर और **मम त्वे अपि क्रतुः**=मेरी जो तेरे में सद्बुद्धि है उसे तू नष्ट मत होने दे।

भावार्थ—राजा को योग्य है कि अन्य राजा को या राष्ट्र को हानि पहुँचानेवाले ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्ति को लाभ पहुँचाने के लिए अपनी प्रजा को पीड़ित न करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

राजा प्रजा की कवचवत् रक्षा करे

त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरोयो॒धश्च॑ वृत्रहन्। त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे **वृत्रहन्**=दुष्टनाशक! **त्वं**=तू **सप्रथः**=ख्याति से युक्त **वर्म असि**=कवच तुल्य रक्षक और **पुरः योधः च**=आगे बढ़कर युद्धकर्ता है। **त्वया युजा**=तुझ सहायक से मैं **प्रति ब्रुवे**=शत्रु का उत्तर दूँ।

भावार्थ—राजा अपनी प्रजा का कुशल नेतृत्व करते हुए कवच के समान उसकी रक्षा करे तथा प्रेरणा करे कि वह शत्रु से राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

स्वधावरी 'रोदसी' की व्याख्या

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः। मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**-ऐश्वर्यवन्! जैसे सूर्य के अधीन **स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते**–जल, अन्न से युक्त आकाश, पृथिवी दोनों परस्पर स्थिर हैं वैसे ही **यस्य ते सहः**=जिस तेरे बल के **अनु**–अनुकूल रहकर **स्वधावरी रोदसी** अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त स्त्री-पुरुष दोनों **मम्नाते**–मिलकर रहते हैं वह तू **महान् असि**=बलों में महान् हो।

भावार्थ–जैसे पृथिवी और द्युलोक के अन्नः जल आदि सूर्य अधीन रहते हैं। उसी प्रकार समस्त प्रजा तथा उसके ऐश्वर्य राजा के अधीन हों। अर्थात् राजा के नियमों में रहें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

विद्वान् वेदविद्या को सुशोभित करे

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी। नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे राजन्, **मरुत्वती**–बलवान् मनुष्योंवाली, **सयावरी**=साथ जानेवाली **द्युभिः सह**=तेजों, धनों से बढ़ती हुई **वाणी**–शत्रुहिंशक बाण आदि शस्त्र-सम्पन्न सेना **तं त्वा परि भुवत्**=उस तुझको घेरे रहे, तुझको **मरुत्वती वाणी**–मनुष्यों की स्तुति, गुणों सहित वाणी प्राप्त हो और विद्वान् को **द्युभिः सह नक्षमाणा**=तेजों, गुणों से युक्त **सयावरी**=सदा साथ विद्यमान **मरुत्वती**=उत्तम विद्वानों से प्राप्त **वाणी**=वेदविद्या, **परि भुवत्**=सुशोभित करे।

भावार्थ–जैसे राजा समस्त ऐश्वर्य को प्रजा में वितरण कर स्वयं सुशोभित होता है। उसी प्रकार विद्वान् को चाहिए कि वह वेदविद्या का राष्ट्र की जनता में प्रचार कर सन्मार्ग में प्रेरित करता हुआ सम्मानित होकर सुशोभित होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

प्रजा राजा के अनुकूल हो

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि। सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥

पदार्थ–हे राजन्! **ऊर्ध्वासः**–जो उत्तम कोटि के **इन्दवः**–ऐश्वर्य एवं आनन्दित जन हैं वे **द्यवि**=इस पृथिवी पर **त्वा दस्मम्**=शत्रु-नाशक तुझको ही **उपभुवन्**–प्राप्त हों और **त्वा अनु भुवन्**=तेरे अनुकूल हों। **कृष्टयः** सब प्रजाजन **ते सं नमन्त**=तेरे लिये झुकें।

भावार्थ–राजा को विनयशील होकर प्रजा का सेवक होना चाहिए जिससे समस्त प्रजा राजा की कृतज्ञ होकर उसके अनुकूल चलनेवाली होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

ज्ञान-प्राप्ति के उत्तमोत्तम साधन हों

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्। विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥

पदार्थ–हे विद्वान् लोगो! आप लोग **वः**=अपने में से **महि वृधे**–बड़ों के बढ़ानेवाले, **महे**= गुणों में महान् के आदरार्थ **प्र भरध्वम्**–उत्तम पदार्थ प्रस्तुत करो और **प्र-चेतसे**–उत्तम चित्तवाले शिष्य और विद्वान् के लिये **सुमतिं**=उत्तम ज्ञान **प्र कृणुध्वम्**–अच्छी प्रकार सम्पादन करो। हे विद्वन्! **त्वं**=तू **चर्षणि-प्राः**-मनुष्यों का विद्या, बल से पूर्ण करनेवाला होकर **पूर्वीः विशः**–पिता,

पितामहादि से प्राप्त प्रजाओं को **प्र चर**=प्राप्त कर।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह अपने राष्ट्र में विभिन्न विद्याओं में निष्णात उत्तम विद्वानों को नियुक्त करे, जिससे राज्य के विचारशील उत्तम नागरिक विभिन्न प्रकार के ज्ञान–विज्ञान से युक्त होकर समृद्ध राष्ट्र का आधार बनें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

राष्ट्रोन्नति के उत्तम नियम

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः। तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

पदार्थ–**उरु व्यचसे**=बड़े विश्व में व्यापक **महिने**=महान् **इन्द्राय**–ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये **विप्राः**=बुद्धिमान् पुरुष **सुवृक्तिम्**=उत्तम स्तुति और **ब्रह्म जनयन्त**=वेदमन्त्र प्रकट करते हैं। **धीराः**=वे उसी के ध्यान में मग्न होकर **तस्य व्रतानि**=उसके निमित्त करने योग्य धर्म कार्यों का **न मिनन्ति**=लोप नहीं करते।

भावार्थ–ईश्वर के उपासक भक्त जैसे ईश्वर के लिए उत्तम-उत्तम स्तुति के मन्त्रों को बोलकर ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं। उसी प्रकार विद्वान् लोग प्रजा को प्रेरित करें कि वे राष्ट्र की उन्नति के उत्तम नियमों का पालन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

क्रोध रहित राजा को धारण करे

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै। हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥

पदार्थ–**वाणीः**=वाणीवत् शत्रुनाशक सेनाएँ **अनुत्त-मन्युम्**=शत्रु–उच्छेदन–संकल्प से युक्त **इन्द्रं**=ऐश्वर्यवान् **राजानं**=राजा को **सत्रा**=अपने साथ **सहध्यै**=शत्रु–पराजय के लिये **दधिरे**=धारण करे। हे प्रजाजन! **हर्यश्ववाय**=मनुष्यों में अश्ववत् बलवान्, पुरुष की वृद्धि हेतु **आपीन्**=आप्त बन्धु जनों को भी **सं बर्हय**=अच्छी प्रकार बढ़ा।

भावार्थ–सुप्रजा का पालक राजा अपनी रक्षा एवं न्याय आदि कार्यों से इतना लोकप्रिय होवे कि प्रजा अपने प्रियजनों को भी राजा का अनुयायी बनावे। क्रोध रहित राजा ही इतना लोकप्रिय हो सकता है।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ व देवता इन्द्र है।

[३२] द्वात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराड्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

राजा विलासी न हो

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

पदार्थ–हे राजन्! **वाघतः**=विद्वान् **अस्मत् आरे**=हम से दूर **त्वा मो सु निरीरमन्**=तुझे विनोद में न रमने दें। **आरात्तात् चित्**=दूर रहता हुआ भी, तू **नः सधमादं आ गहि**=हमारे साथ आनन्द के लिये प्राप्त हो। **इह वा**=और इस राष्ट्र में **सन्**=रहकर **नः उप श्रुधि**=हमारे वचन सुन।

भावार्थ–राजा विद्वत् सभा के अधीन होवे। विद्वान् जन राजा को विलासी न होने दें। इससे प्रजा भी प्रेरणा पाकर विलासी नहीं होगी और राष्ट्र समर्थ रहेगा।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

मधुव्रती ब्राह्मण

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

पदार्थ-हे राजन्! विद्वन्! **इमे ब्रह्म-कृतः**-ये वेद द्वारा स्तुतिकर्ता लोग **मधौ मक्षः न**-मधुर पदार्थ पर मधुमक्खी के समान **ते सुते**-तेरे शासन में **आसते**=विराजते हैं और **जरितारः**=स्तुतिशील **वसूयवः**=धन और नाना लोकों की कामनावाले लोग **रथे न पादम्**=रथ में पैर के समान **इन्द्रे कामम् आदधुः**=परमैश्वर्ययुक्त तुझ प्रभु में ही अपनी कामना को स्थिर करते हैं।

भावार्थ-विद्वान् लोग राष्ट्र में मधुमक्खी के समान स्वभाव=श्रुत वाले होवें। जैसे मधुमक्खी अनेकों प्रकार के पुष्पों पर बैठकर उनसे पराग का एक-एक कण लाती है, तथा संग्रह कर मधुर मधु का निर्माण करती है। इससे पुष्प को कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार विद्वान् भी विभिन्न स्थानों पर जाकर राष्ट्रोन्नति हेतु विभिन्न विद्याओं का संग्रह करें। राजा भी कर अधिक न ले।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**साम्नीपङ्क्तिः** ॥ स्वरः **पञ्चमः** ॥

राजा हमारा पालक हो

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

पदार्थ-मैं **रायस्कामः**=ऐश्वर्य का इच्छुक, **पितरं पुत्रः न**-पिता को पुत्र के समान **सुदक्षिणं**=उत्तम दानशील, उत्तम क्रिया-सामर्थ्यवान्, **वज्रहस्तं**=बल-सम्पन्न राजा को अपना **पितरं**=पालक **हुवे**=स्वीकारता हूँ।

भावार्थ-जैसे पुत्र अपने पिता को अपना पालक मानता है, उसी प्रकार से प्रजा भी शत्रुओं से रक्षा करनेवाले राजा को अपना पालक स्वीकार करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**विराड्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

राष्ट्रधारक शासक की नियुक्ति

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥

पदार्थ-**इमे**=ये **दध्याशिरः**=राष्ट्र के धारक **सोमासः**=ऐश्वर्ययुक्त शासक **सुन्विरे**=प्रजा का शासन करें। हे **वज्रहस्त**=बल को हाथों में धारणकर्ता राजन्! **पीतये**-राष्ट्र पालन के लिये **तान् आ याहि**-उनको प्राप्त कर और **हरिभ्याम्**=उत्तम अश्वों से, तू **ओकः आयाहि**=अपने गृह को आ।

भावार्थ-जो राजा वा सेनापति अपने राष्ट्र की रक्षा करने में सक्षम न हो, उसकी नियुक्ति राष्ट्र में नहीं होनी चाहिए। राजा वा सेनापति वही नियुक्त होवे जो राष्ट्र की रक्षा में समर्थ, तथा प्रजा व राष्ट्र की सम्पदा को सुरक्षित कर सके।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

शासक प्रजा के कष्टों को सुने

श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद्गिरः।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥

पदार्थ–**वसूनां**=बसे प्रजाजनों की **गिरः**=वाणियों को जो राजा **श्रुतकर्णः**=सुननेवाले सावधान कानों से **श्रवत्**=सुने, वही **ईयते**=प्रार्थना किया जाता है। वह **नः गिरः चित् नु**=हमारी वाणियों को **मर्धिषत्**=चाहे, **सद्यः चित्**=अति शीघ्र **यः**=जो **शता सहस्राणि**=सैकड़ों और सहस्रों को **ददत्**=दे। **दित्सन्तम्**=दान देना चाहनेवाले को **न किः आ मिनत्**=कोई भी पीड़ित न करे।

भावार्थ–राष्ट्र में शासक वर्ग को संवेदनशील तथा प्रजा का हितकारी होना चाहिए। जब भी प्रजा जन शासक के पास अपने कष्टों के निवारणार्थ आवें, उनके कष्टों को सुनकर तुरन्त उसका समाधान करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

राजाज्ञा का पालन हो

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः। यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥

पदार्थ–**यः**=जो पुरुष, हे **वृत्रहन्**=दुष्टों के नाशक राजन्! **यः**=जो **ते**=तेरे **गभीरा**=गम्भीर **सवना**=आदेशों को **सुनोति**=करता और **आ-धावति च**=आगे बढ़ता है **सः**=वह **वीरः**=विविध विद्या और बल से युक्त पुरुष **इन्द्रेण**=ऐश्वर्य और **नृभिः**=उत्तम नायकों सहित **अप्रतिष्कृतः**= सर्वाधिक **शुशुवे**=हो जाता है।

भावार्थ–राजा को जनप्रिय तथा जनहितकारी नियमों का निर्माण वेद के विद्वानों की सम्मति से करना चाहिए। प्रजा को भी राजा की आज्ञा व शासनादेश का स्वेच्छा से पालन करना चाहिए। इससे राष्ट्र सुदृढ़ बनता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

समृद्ध प्रजा

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

पदार्थ–**यत्**=जो तू **शर्धतः**=शत्रुओं को **सम् अजासि**=एक साथ उखाड़ने में समर्थ हो और **शर्धतः सम् अजासि**=उत्साहवान् पुरुषों को एक साथ सेनावत् सञ्चालित करता है, वह तू **मघोनां**=धनवाले पुरुषों के **वरूथं**=गृह के समान रक्षक **भव**=हो। हम **त्वाहतस्य**=तेरे से मारे गये **शर्धतः**=बलवान् शत्रु के **वेदनं**=धन को **वि भजेमहि**=बाँट लें। **दुः-नाशः**=तू कठिनता से नाश होने योग्य होकर हमारे **गयम् आ भर**=गृह को प्राप्त करा और उसे पूर्ण कर।

भावार्थ–कुशल राजा वा सेनापति को योग्य है कि वह शत्रुओं को परास्त कर जो सम्पत्ति प्राप्त करे, उसे अपनी प्रजा में वितरित कर देवे जिससे उसकी प्रजा समृद्ध तथा ऐश्वर्यशाली बनी रहे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

राष्ट्रपति पराक्रमी हो

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग **सोमपाव्ने**=‘सोम’ ओषधिरस को पीनेवाले के लिये

सोमम् सुनोत=उत्तम ओषधिरस उत्पन्न करो। ऐसे ही **सोमपाव्ने**-ऐश्वर्य-पालन में समर्थ **इन्द्राय**=ऐश्वर्यवान् **वज्रिणे**=बलवान् पुरुष के लिये **सोमं**=ऐश्वर्य **सुनोत**=उत्पन्न करो। **अवसे**=तृप्ति के लिये **पक्तीः**=नाना पकने योग्य अन्नों को **पचत इत्**-पकाओ। **पृणन् इत्**-सबको पालन करनेवाला ही **मयः पृणते**-सबको सुख देता है।

भावार्थ-जैसे सोमरस की आहुति के लिए प्रचण्ड यज्ञाग्नि ही समर्थ होती है। उसी प्रकार राष्ट्र का अध्यक्ष भी प्रचण्ड पराक्रमवाला होना चाहिए। पराक्रमी राष्ट्राध्यक्ष ही राष्ट्र की रक्षा में समर्थ होता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

पुरुषार्थी की विजय

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥ ९॥

पदार्थ-हे **सोमिनः**-अन्नादि के पालक जनो! आप लोग **मा स्रेधत**-परस्पर नाश मत करो। **महे राये**=बड़ी धनैश्वर्य प्राप्ति और **आ-तुजे**-सब प्रकार के बल प्राप्त करने और ऐश्वर्य के लिये **दक्षत**=सदा यत्न करो। **तरणिः इत्**-संकटों को पार करनेवाला पुरुष ही **जयति क्षेति**=विजय करता और **पुष्यति**=समृद्ध होता है **देवासः**-विद्वान् पुरुष **कवत्नये**=कुत्सित पुरुष के लिये **न**=नहीं होते।

भावार्थ-संसार समरांगण है। इसमें पुरुषार्थी पुरुष ही विजय पाता है। इसी प्रकार पुरुषार्थी, पराक्रमी पुरुष ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर राष्ट्र को समृद्ध एवं उन्नत ऐश्वर्ययुक्त बना सकता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

राष्ट्ररक्षक तत्त्वदर्शी, शत्रुहन्ता हो

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे॥ १०॥

पदार्थ-**यस्य**=जिसका **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान्, वीर, प्रभु **अविता**-रक्षक है, **यस्य मरुतः**=जिसके रक्षक, शिक्षक, बलवान् विद्वान् हैं **सः**-वह पुरुष **गोमति व्रजे**-वाणी-युक्त प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग में नाना भूमियों और गवादि से सम्पन्न पद को **गमत्**-पाता है। **सु-दासः**=उत्तम दाता के **रथं**-रथ को **नकिः परि आस**=कोई पलट नहीं सकता और **न रीरमत्**=न अन्य उसे दुःख दे सकता है।

भावार्थ-ईश्वर भक्त, तत्त्वद्रष्टा पुरुष जैसे जीवन में काम, क्रोधादि शत्रुओं-विकारों को जीतकर नष्ट कर देता है। उसी प्रकार उत्तम विद्वान् अध्यापकों से प्रेरित नीतिज्ञ राष्ट्र नायक को भी शत्रु का विनाश कर राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

भूमि रक्षक राजा

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम्॥ ११॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यवन् प्रभो! **यस्य भुवः**=जिसकी भूमि वा प्राणों की **त्वम् अविता**=तू रक्षा करता, **वाजयन्**=ऐश्वर्य, अन्न आदि की कामना करता है वह **मर्त्यः**–मनुष्य **वाजं**–ऐश्वर्य, अन्नादि **गमत्**=प्राप्त करता है। हे **शूर**=शत्रुनाशक! तू **अस्माकम्**=हमारा और हमारे **नृणाम्**=मनुष्यों और **रथानाम्**=रथों, रमण–योग्य देहों का भी **अविता**=रक्षक होकर **अस्माकं बोधि**=हमें ज्ञान दे।

भावार्थ–राष्ट्र नायक को ऐसी नीति का निर्धारण करना चाहिए, जिससे उसकी पराक्रमी सेना राष्ट्र की सीमा की रक्षा प्राणपण से करे। जो राजा अपनी मातृभूमि की सीमाओं की रक्षा करने में समर्थ न हो विद्वानों के सहयोग से प्रजा उसे राजसिंहासन से अलग कर देवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ज्ञान-कर्म उन्नत हो

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः।

य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि॥ १२॥

पदार्थ–**यः**=जो पुरुष **इन्द्रः**=सूर्य–तुल्य तेजस्वी, **हरिवान्**=अश्व–सैन्यों का स्वामी होकर **सोमिनि**=ऐश्वर्यवान् पुरुष में **दक्षं दधाति**=बल धारण करता है **तम्**=उसको **रिपोः**=शत्रु का भय नहीं रहता है, और वह **जिग्युषः न**=विजेता के तुल्य **अस्य इत् नु**=उसका **अंशः धनं न**=भाग वा धन **उद्रिच्यते**=सर्वाधिक होता है।

भावार्थ–शत्रु के नाश में जैसे पराक्रमी वीर योद्धा को उसके शौर्य हेतु पदक से सम्मानित किया जाता है। उसी प्रकार से राष्ट्र में ज्ञानपूर्वक राष्ट्र की उन्नति हेतु उन्नत कर्म करनेवाले नागरिकों को शासन पुरुस्कृत कर प्रोत्साहित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सत्कर्मी राजा का ऐश्वर्य

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।

पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत्॥ १३॥

पदार्थ–हे विद्वान् पुरुषो! **यज्ञियेषु**=सत्कार–योग्य जनों और दान आदि व्यवहारों में **अखर्वं**=बहुत अधिक **सु-धितम्**=उत्तम रीति से रक्षित, **सुपेशसं**=उत्तम रूप से युक्त, **मन्त्रं**=मन्त्र को **आ दधात**=धारण करो। **पूर्वीः चन**=पूर्व के भी **प्र-सितयः**=उत्तम प्रेम–बन्धन **तं तरन्ति**=उसको प्राप्त होते हैं **यः**=जो पुरुष **कर्मणा**=सत्कर्म से **इन्द्रे भुवत्**=परमेश्वर में दत्तचित्त रहता है।

भावार्थ–राजा को अपने राज्य में ईश्वर द्वारा प्रेरित सत्कर्मों को करना चाहिए। जिससे प्रजा में उसका अपार–सत्कार बढ़े तथा प्रजा ऐसे सत्कर्मी राजा की प्रशंसक, अनुयायी होकर राष्ट्र की एकता व अखण्डता में सहायक बने। इससे राजा ऐश्वर्यशाली तथा राष्ट्र समृद्ध बनेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिगनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

ज्ञानवान् और बलवान् ऐश्वर्यवान् होते हैं

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति।

श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥ १४॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=प्रभो! **त्वा वसुम्**=तुझमें ही बसनेवाले **तं**=उस पुरुष को **कः**=कौन

मर्त्यः=मनुष्य **आ दधर्षति**=तिरस्कार कर सकता है? हे **मघवन्**-ऐश्वर्यवन् **ते**=तेरे **पार्ये दिवि**-पालन योग्य व्यवहारवाले ज्ञान में **श्रद्धा इत्**-सत्य धारण ही है, जिससे प्रेरित **वाजी**=ज्ञानवान् पुरुष **वाजं सिषासति**-ऐश्वर्य-भोग करता है।

भावार्थ-ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के अधीन रहकर जो शासक वा राजा वेदाज्ञा का पालन करता हुआ अपने ज्ञान व बल की वृद्धि करता है तथा राष्ट्र में विद्वानों-वैज्ञानिकों व बलवानों=सैनिकों को पुष्ट एवं प्रोत्साहित करता है निश्चय से वह राष्ट्र को ऐश्वर्यवान् बनाता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

न्याययुक्त शासन से प्रजा सुखी

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता॥ १५॥

पदार्थ-**ये**=जो लोग **प्रिया वसु**=प्रिय धन **ददति** दान करते हैं उन **मघोनः**-ऐश्वर्यवान् पुरुषों को **वृत्र-हत्येषु**-शत्रुनाशक संग्राम आदि कार्यों में **चोदय स्म**=प्रेरित कर। हे **हरि-अश्व**=मनुष्यों के स्वामिन्! **तव**-तेरी **प्रणीती**=उत्तम नीति में **सूरिभिः**=विद्वानों की सहायता से **विश्वा दुरिता**=सब दुःखजनक कारणों को **तरेम**=पार करें।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि विद्वानों की सम्मति एवं परामर्श से राष्ट्र को उन्नत करने की नीति तैयार कर लागू करे तथा उन विद्वानों के सहयोग से न्याययुक्त शासन व्यवस्था प्रदान कर प्रजा को सुखी एवं समृद्ध बनावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

राजा श्रेष्ठ प्रजा पुष्ट

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते॥ १६॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=प्रभो! **अवमं वसु**-निकृष्ट, प्रजा-पालक धन, भूमि, वस्त्रादि और **मध्ययम् वसु**=मध्यम कोटि का धन, चाँदी, सोना आदि विनिमय का माध्यम बन सके, जिससे **तां पुष्यसि**=उस प्रजा को पुष्ट करता है वह सब **तव इत्**-तेरा ही है और **परमस्य**=सर्वोत्कृष्ट **विश्वस्य**=समस्त ऐश्वर्य के द्वारा **सत्रा**=तू अपने सत्य के बल से **राजसि**=राजा के समान है। **गोषु**=भूमियों पर शासन के लिये **त्वा**=तुझे **नकिः वृण्वते**=भला कौन स्वीकार न करे।

भावार्थ-जनहित एवं जनकल्याण के कार्यों में राजकोश के धन का व्यय करनेवाला राजा जनप्रिय एवं श्रेष्ठ होता है। ऐसे राजा की प्रजा भी पुष्ट एवं समृद्ध होती है। ऐसे राजा के राज्य की श्रीवृद्धि को कोई नहीं रोक सकता।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

दुष्टों का अभिभव

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते॥ १७॥

पदार्थ-**ये**=जो **ईम्**=सब ओर **आजयः भवन्ति**=संग्राम होते हैं उनमें **त्वं**-तू **विश्वस्य धनदाः श्रुतः असि**=सबका धनदाता प्रसिद्ध है। हे **पुरु-हूत**-प्रशंसित! **अयं**=यह **विश्वः**=समस्त

पार्थिवः=पृथिवीवासी राज-प्रजावर्ग **अवस्युः**=रक्षा चाहता हुआ **तव नाम**=दुष्टों को नमानेवाले तेरे अधीन रहना **भिक्षते**=चाहता है।

भावार्थ–राज्य की प्रजा उस पराक्रमी, तेजस्वी राजा को चाहती है, जो राष्ट्र में दुष्टों को दण्डित कर उनके ऐश्वर्य को छिन्न-भिन्न करके राजनियमों में चलने के लिए बाध्य करता है तथा दुष्टता के अहम् को झुका देता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

धन धर्म में व्यय हो

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय॥ १८॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **यत्**=जैसे और **यावतः**=जितने भी धन का **त्वम्**=तू स्वामी है **एतावत्**=उतना ही **अहम्**=मैं भी **ईशीय**=स्वामी हो जाऊँ। हे **रदावसो**=शत्रु-कर्षक बसी प्रजा के स्वामिन्! मैं उस से **स्तोतारम् इत्**=स्तुतिकर्ता को ही **दिधिषेय**-पालूँ। मैं अपना धन **पापत्वाय**=पाप-वृद्धि हेतु **न रासीय**=न दूँ।

भावार्थ–राष्ट्र के कोष का धन सदैव धर्म, सेवा एवं राष्ट्रहित के कार्यों में ही व्यय होवे। किसी भी पाप कर्म में राष्ट्र का धन न लगे। राजा राज्य में शराब, तम्बाकू, मांसाहार आदि कार्यों को प्रोत्साहित करने में राजकोष का व्यय न करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

पूज्य पुरुषों का आदर

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन॥ १९॥

पदार्थ–मैं ऐश्वर्यवान् होकर **दिवे दिवे**=प्रतिदिन **कुह चिद्विदे**=कहीं भी विद्यमान, **महयते**=पूज्य पुरुष के आदरार्थ **रायः**=नाना धन **शिक्षेयम् इत्**=दिया ही करूँ। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन्! **त्वत् अन्यत्**=तुझसे दूसरा **नः**=हमारा **वस्यः**=श्रेष्ठ **आप्यं**=बन्धु और **पिता चन**–पालक भी **नहि अस्ति**=नहीं है।

भावार्थ–जिस राज्य में पूज्य पुरुषों का अनादर तथा अपूज्यों का सम्मान होता है वहाँ अकाल, मृत्यु तथा भय व्याप्त हो जाता है। अतः राजा एवं प्रजा दोनों को चाहिए कि वे पूज्य पुरुषों का सत्कार करें तथा उनसे मार्गदर्शन प्राप्त कर राष्ट्रोन्नति में सहयोग प्राप्त करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

शिल्पकारों का सम्मान

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥ २०॥

पदार्थ–**तरणिः इत्**=संकट से तारने में कुशल पुरुष ही **युजा पुरन्ध्या**=नगर-धारक नीति **युजा**=सहायक वर्ग से **वाजं सिशासति**=ऐश्वर्य को विभक्त करता है। हे प्रजाजनो! मैं **वः**=आप में से **इन्द्रं**=ऐश्वर्य-युक्त **पुरुहूतं**=बहु प्रशंसित **सुद्रुवं**=स्थिर पुरुष को **गिरा**=वाणी से **तष्टा इव सुद्रुवं नेमिम्**=शिल्पी से बनाई काष्ठमय चक्र-धार के तुल्य **नमे**=नमाऊँ।

भावार्थ–राजा एवं प्रजा मिलकर राष्ट्रोन्नति में सहायक उत्तम शिल्पकारों=विभिन्न कारीगरों

का सम्मान करें। विभिन्न प्रकार की शिल्पों में निष्णात शिल्पकारों को प्रोत्साहित करने से शिल्पकलाओं से सम्पन्न राष्ट्र समृद्ध होता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

निन्दा से उत्तम धन प्राप्त नहीं होता

न दुःष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

पदार्थ–**मर्त्यः**–मनुष्य **दुःस्तुती**–दुष्ट की स्तुति से **वसु न विन्दते**–धन नहीं पाता। **स्रेधन्तं**=हिंसक जन को **रयिः**=ऐश्वर्य **न नशत्**=नहीं मिलता और उसको **सुशक्तिः इत् न नशत्**–उत्तम शक्ति भी नहीं मिलती। हे **मघवन्**–धन–स्वामिन्! **यत्**=जो **पार्थे दिवि**–पालने योग्य व्यवहार में **मावते**–मेरे जैसे याचक को **देष्णं**–देने योग्य धन देने की **सुशक्ति इत् तुभ्यम्**=उत्तम शक्ति भी तेरी ही है।

भावार्थ–राज्य में निन्दक तथा हिंसक लोग न रहें। ऐसे निन्दितों को प्रोत्साहन न मिले; ऐसा राजनियम होवे। निन्दा व हिंसा से कभी भी उत्तम धन प्राप्त नहीं हो सकता।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**स्वराडनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

ईश्वर के प्रति समर्पण

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

पदार्थ–हे **शूर**=दुष्ट–नाशक! **अदुग्धाः धेनवः इव**=न दुही गौओं के तुल्य हम **अस्य जगतः**=इस जंगम और **तस्थुषः**–स्थावर संसार के **ईशानम्**–सञ्चालक **इन्द्र**=हे परमैश्वर्यवान्! **स्वर्दृशं त्वाम्**=सर्वद्रष्टा तुझको, **अभि नोनुमः**=झुकते हैं।

भावार्थ–जैसे पावसी हुई गाय ग्वाले के प्रति समर्पित हो जाती है। उसी प्रकार राष्ट्र के राजा और प्रजा ईश्वर के प्रति समर्पित होकर समस्त कार्यों को करें। ईश्वर की आज्ञा वेद के आदेश का पालन करें तथा उस प्रभु का धन्यवाद करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

भगवान जैसा कोई नहीं

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! राजन्! **मघवन्**=ऐश्वर्य–स्वामिन्! **त्वावान्**=तेरे जैसा, **अन्यः**= दूसरा, **न दिव्यः**=न ज्ञानवान्, **न पार्थिवः**=न दूसरा कोई इस पृथ्वी पर है। ऐसा **न जातः**=न पैदा हुआ **न जनिष्यते**=न पैदा होगा। हम **वाजिनः**=बल से युक्त, **अश्वायन्तः**=विद्वानों व राष्ट्र के इच्छुक और **गव्यन्तः**=वाणियों, भूमियों के इच्छुक होकर **त्वा हवामहे**=तेरी स्तुति करते हैं।

भावार्थ–ईश्वर के समान विद्वान्, बलवान तथा ऐश्वर्यवान कोई नहीं है और न होगा। अतः उस प्रभु की प्रभुता में रहकर ही मनुष्य विद्वान्, बलवान और ऐश्वर्यवान बने। राजा को चाहिए कि वह भी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों को धारण करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराड्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ऐश्वर्यवान परमात्मा

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः॥ २४॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्ययुक्त! हे **मघवन्**=धन–स्वामिन्! तू **पुरू-वसुः**=बहुतों को बसानेवाला और **सनात्**=सनातन से **भरे भरे च हव्यः**=प्रत्येक पालन–योग्य कार्य में स्तुति–योग्य **असि**=है। तू **सतः**=सत्स्वरूप और **कनीयसः**=अति दीप्तियुक्त, परम तत्त्व का **ज्यायः**=महान् ज्ञान **आ भर**=प्राप्त करा।

भावार्थ–समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता पाने हेतु प्रार्थना करे। उसकी आज्ञा में रहे तथा पूर्ण पुरुषार्थ द्वारा ईश्वर की आज्ञा का पालन करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

शत्रु का पराभव

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम्॥ २५ ॥

पदार्थ–हे **मघवन्**=धन के स्वामिन्! तू **नः अमित्रान्**=हमारे शत्रुओं को **परा नुदस्व**=दूर कर और **नः**=हमें **वसू**=नाना ऐश्वर्य **सुवेदा कृधि**=सुख से प्राप्त करने योग्य कर। **महा-धने**=संग्राम के समय वा भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, तू **अस्माकं**=हमारा **अविता**=रक्षक हो **बोधि**=हमें चेताता रह और **अस्माकं सखीनाम्**=हमारे मित्रों का **वृधः भव**=बढ़ाने हारा हो।

भावार्थ–परमात्मा से प्रार्थना करें कि जीवन संग्राम में काम, क्रोधादि आन्तरिक शत्रुओं का पराभव करने हेतु हे प्रभो! सामर्थ्य दे तथा सांसारिक शत्रु देश–द्रोही व विदेशी शासक, सैनिक आदि को विजय करने हेतु आत्मिक बल एवं प्रेरणा प्रदान करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः शक्तिर्वा** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ज्ञानदाता परमेश्वर

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ २६ ॥

पदार्थ–**पिता**=पालक, गुरु, **पुत्रेभ्यः**=पुत्रों, शिष्यों को **यथा**=जैसे **क्रतुं**=ज्ञान का उपदेश देता है वैसे ही, हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! तू **नः**=हमें भी **क्रतुम् आ भर**=उत्तम बुद्धि दे। **अस्मिन् यामनि**=इस समय, यज्ञ और संसारमार्ग में, हे **पुरुहूत**=बहु–प्रशंसित! तू **नः शिक्ष**=हमें ज्ञान दे जिससे **जीवाः**=हम सब जीव **ज्योतिः अशीमहि**=परम प्रकाशरूप तुझे प्राप्त करें।

भावार्थ–आचार्यों, विद्वानों तथा गुरु जनों से प्रेरणा एवं ज्ञान प्राप्त करके जैसे हम सांसारिक बाधाओं एवं शत्रुओं पर विजय पाते हैं। उसी प्रकार परमेश्वर से प्रार्थना करें कि हे प्रभो! हमें जीवन संग्राम में विजय पाने हेतु सद्बुद्धि व सुप्रेरणा तथा ज्ञान प्रदान कर।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

सुखी बसे संसार सब

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

पदार्थ—**नः**=हमें **अज्ञाताः**=अज्ञात **वृजनाः**=वर्जने योग्य, **दुराध्यः**=दुःख से ध्याने योग्य, **अशिवासः**=दुष्ट लोग **मा अव क्रमुः**=मत रौंदें। हे **शूर**=दुष्ट-नाशक **वयम्**=हम **त्वया**=तेरी सहायता से **प्रवतः**=विनीत होकर **शश्वती अपः**=अनादि काल से प्राप्त कर्म बन्धनों को नदी-तुल्य **अति तरामसि**=पार करें।

भावार्थ—जीवन में ईश्वर आराधना से मनुष्य समस्त कष्टों, बाधाओं तथा दुःखों को पार कर सकता है। उपासक सदैव यही प्रार्थना करता है कि—सुखी बसे संसार सब दुखिया रहे न कोय। संसार में मैं भी तो आता हूँ। इसलिए हे प्रभो! सब के साथ मेरा भी बेड़ा पार हो जाएगा।

अगले सूक्त के ऋषि वसिष्ठ पुत्र तथा वसिष्ठ और देवता भी वशिष्ठ ही है।

[३३] त्रयस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठपुत्राः** ॥ देवता—**त एव** ॥
छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विद्वानों का सम्मान

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

पदार्थ—**श्वित्यञ्चः**=वृद्धि को प्राप्त, **दक्षिणतः-कपर्दाः**=दायें भाग में जटा-जूट रखनेवाले **धियं-जिन्वासः**=उत्तम मति को प्राप्त, **वसिष्ठाः**=ब्रह्मचारी, वसुगण **मा अभि प्रमन्दुः हि**=मुझे आनन्दित करें और वे **अवितवे**=ज्ञान देने के लिये **दूरात्**=दूर देश से भी आयें। उन **नॄन्**=उत्तम पुरुषों का मैं **बर्हिषः**=वृद्धियुक्त आसन से **उत् तिष्ठन्**=उठकर **परि वोचे**=आदर-युक्त वचन से सत्कार करूँ।

भावार्थ—उत्तम कोटि के विद्वानों को देव कहा गया है। जब कभी कोई ऐसा विद्वान् घर पर आवे तो श्रद्धा के साथ खड़े होकर उत्तम वाणी एवं उत्तम आसन आदि के द्वारा उनका सम्मान करें। गृहस्थी कामना किया करें कि दूर स्थानों से चलकर भी ऐसे विद्वान् हमारे पास आवें, जिनसे हमें मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे।

ऋषिः—**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठपुत्राः** ॥ देवता—**त एव** ॥
छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऐश्वर्यवान् पुरुष का वरण

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥

पदार्थ—विद्वान् लोग **वैशन्तम्**=राष्ट्र में प्रविष्ट, प्रजा हितकारी **उग्रम्**=बलवान् **पान्तम्**=पालक **इन्द्रम्**=ऐश्वर्य को **सुतेन**=धर्म से उत्पन्न बल से **दूरात्**=दूर देश से भी **तिरः अनयन्**=पास ले

आते हैं उन **वसिष्ठान्**=राष्ट्रवासी उत्तम पुरुषों को **पाश-द्युम्नस्य**=धन से पास में फँसे वैश्यवर्ग और **वायतस्य**=विज्ञानवान् पुरुषों और रक्षा-युक्त क्षात्रवर्ग के **सुतात् सोमात्**=उत्तम अन्न और ज्ञान से **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् पुरुष **अवृणीत**=उनका सत्कार करे।

भावार्थ-विविध विद्याओं में निष्णात उत्तम कोटि के विद्वान् विदेशों तथा अन्य राज्यों में जाकर अपनी विद्या के प्रभाव से ऐश्वर्य का संग्रह करके स्वदेश में लाकर राष्ट्र को सम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली बनाते हैं। ऐसे विद्वानों का सम्मान राष्ट्र के व्यापारी, सेना व सेनापति, विज्ञानवेत्ता तथा किसान-मजदूर सभी मिलकर किया करें।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठपुत्राः**॥ देवता-**त एव**॥
छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

राष्ट्र में फूट न पड़े

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः॥ ३॥

पदार्थ-हे **वसिष्ठाः**=राष्ट्र में बसे प्रजाजनो! **वः एभिः**=आप में से ही इन जनों की सहायता से **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् पुरुष **सिन्धुं नु कं ततार इत्**=बड़े समुद्र को भी पार करे **एभिः**=इन विशेष जनों सहित **भेदं नु कं ततार एव इत्**=फूट डालनेवाले शत्रु को भी पार करे। **वः ब्रह्मणा**=आप लोगों के बल, ज्ञान से ही वह **दाशराज्ञे**=सुखदाता राजा के लिये **एव नु कं**=भी **सुदासं**=उत्तम दानशील प्रजा की **प्रावत्**=रक्षा करे।

भावार्थ-समस्त प्रजा, गुरुकुलों के ब्रह्मचारी, समस्त सेना व सेनापति मिलकर विदेशों से ऐश्वर्य लाकर राष्ट्र व राजा को ऐश्वर्य सम्पन्न बनानेवाले उत्तम विद्वानों का सहयोग करें। राष्ट्र के अन्दर देश-द्रोही दुष्प्रचार के द्वारा राष्ट्र में फूट पैदा न कर सकें इसके प्रति भी राजा, सेना व प्रजा सावधान रहें।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठपुत्राः**॥ देवता-**त एव**॥
छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

प्रजा बलवती हो

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः॥ ४॥

पदार्थ-हे **नरः**=उत्तम जनो! आप **वः**=अपने **पितॄणाम्**=पालक जनों के **अव्ययं**=अविनाशी **अक्षम्**=सत्यदर्शक ज्ञान-ऐश्वर्य को **ब्रह्मणा**=बल से **न किल रिषाथ**=नाश न करो, प्रत्युत् **जुष्टी**=प्रेमपूर्वक **अदधात**=धारण करो **यत्**=जिस **शुष्मं**=बल को, हे **वसिष्ठाः**=गुरु के अधीन रहनेवालों और राष्ट्रवासी जनो! आप लोग **बृहतः रवेण**=भारी आघोष के साथ **शक्वरीषु**=शक्ति-युक्त सेनाओं और **इन्द्रे**=ऐश्वर्य-युक्त राजा में, उसके अधीन रहकर **अदधात**=धारते रहो।

भावार्थ-जिस प्रकार गुरुकुलों में ब्रह्मचारी गण अपने आचार्य के निर्देश में रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या-प्राप्ति एवं ज्ञान की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र की प्रजा, राजा व सेना के नियन्त्रण में रहकर राजनियमों का पालन करते हुए राष्ट्र एवं राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करे।

ऋषि:-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा सवाद:; वसिष्ठपुत्रा:**॥ देवता-**त एव**॥
छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वर:-**धैवत:**॥

दानशील तेजस्वी राजा

उद्द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतास॑:।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम्॥ ५॥

पदार्थ-वृतास:-वरण किये गये **तृष्णज:**-तृष्णा, वा धन की कामना से युक्त **नाथितास:**-धनादि याचना करनेवाले लोग **दाशराज्ञे**-दानशीलों में तेजस्वी राजा के लिये **द्याम् इव**=सूर्य के तुल्य तेज, या भूमि को **उद् अदीधयु:** उत्तम रीति से धारण करें। **स्तुवत:**-स्तुतिकर्ता **वसिष्ठस्य**=बसे उत्तम प्रजाजन की बात **इन्द्र:**-ऐश्वर्यवान् तेजस्वी राजा **अश्रोत्**=सुने और वह **तृत्सुभ्य:**=शत्रु नाशक सैनिकों के लिये **उरुम् लोकम्**=बड़ा स्थान **अकृणोत्**=दे।

भावार्थ-सूर्य जैसे ऊर्जा को सबके लिए देता रहता है उसी प्रकार राजा भी अपने राष्ट्र में तेजस्वी होकर याचकों, पात्रों को दान देता रहे। प्रजा के कल्याणार्थ राजा जल, स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, संरक्षा आदि की परियोजनाओं में धन लगाकर प्रजा का प्रिय बने।

ऋषि:-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवाद:; वसिष्ठपुत्रा:**॥ देवता-**त एव**॥
छन्द:-**त्रिष्टुप्**॥ स्वर:-**धैवत:**॥

राजा अग्रगामी नायक हो

दुण्डाइवेद्गोअजनास आसुन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकास॑:।
अभ॑वच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो॑ अप्रथन्त॥ ६॥

पदार्थ-दण्डा इव परिच्छिन्ना गो-अजनास:=दण्ड जैसे शाखा से कटकर भी पशु आदि को हाँकने के लिये उत्तम होते हैं वैसे **परिच्छिन्ना:**=सब प्रकार से कटे-छटे, कुशल, **भरता:**-प्रजापालक **अर्भकास:**-बालकों के समान निर्द्वेष, स्वच्छ-हृदय दण्डों के समान ही **दण्डा:**=दुष्टों के दमनकर्ता **गो-अजनास:**-भूमियों को शासन करनेवाले **आसन्**=हों। **वसिष्ठ:**=प्रजा को बसानेवाला राजा, इनका **पुर:-एता**=अग्रयायी नायक **अभवत्**=हो और **आत् इत्**=अनन्तर **तृत्सूनां**-शत्रुहिंसक वीर पुरुषों को ही यह **विश:**-प्रजाएँ **अप्रथन्त**-प्रसिद्ध होती हैं।

भावार्थ-जैसे शाखा से कटकर अलग हुआ दण्ड ही पशु आदि को नियन्त्रण करने में समर्थ होता है उसी प्रकार दल, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय आदि के भावों से ऊपर उठा हुआ राजा ही राष्ट्र की प्रजा को नियमों में चलाने में समर्थ होता है। वही अपने दण्ड विधान को प्रबल कर शत्रु को भी जीत सकता है।

ऋषि:-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवाद:; वसिष्ठपुत्रा:**॥ देवता-**त एव**॥
छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वर:-**धैवत:**॥

तेजस्वी प्रजा

त्रय॑: कृण्वन्ति भुव॑नेषु रेत॑स्तिस्र: प्रजा आर्या ज्योति॑रग्रा:।
त्रयो॑ घुर्मास॑ उषस॑ सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु॑ विदुर्वसिष्ठा:॥ ७॥

पदार्थ-त्रय:-तीन **भुवनेषु**-उत्पन्न लोकों में **रेत:**=जल, तेज, वीर्य को **कृण्वन्ति**-उत्पन्न

करते हैं और **तिस्रः**=तीन प्रकार की **आर्याः प्रजाः**=श्रेष्ठ प्रजाएँ **ज्योतिः अग्राः**=प्रकाश को मुख्य रूप से प्राप्त होती हैं, **त्रयः**=तीनों **घर्मासः**=वीर्यवान् ही **उषसं**-उषा को सूर्यवत्, कामना-योग्य भूमि वा शक्ति को **सचन्ते**=प्राप्त करते हैं **तान् सर्वान् इत्**=उन सबको ही **वसिष्ठाः अनु विदुः**=विद्वान् ब्रह्मचारी अच्छी प्रकार जानते और प्राप्त करते हैं। (२) लोक में सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों **रेतः**=प्रजोत्पादक तेज को उत्पन्न करते और सूर्य, वायु और भूमि तीनों प्रजोत्पादक प्रकाश, प्राणाधार जल और अन्न को उत्पन्न करते हैं, तीनों प्रकार की श्रेष्ठ प्रजाएँ, जेरज, अण्डज, उद्भिज **ज्योतिरग्राः**=प्रकाश की ओर बढ़नेवाली हैं **त्रयः धर्मासः**=तीनों तेजोयुक्त सूर्य, अग्नि, विद्युत् वा सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष **उषसं**=दाहक तापशक्ति, कान्ति तथा कामना योग्य स्त्री को प्राप्त करते हैं। उन पदों को **वसिष्ठाः**=ब्रह्मचारी ही **अनु विदुः**=प्राप्त करें।

भावार्थ–राष्ट्र को तेजस्वी राष्ट्राध्यक्ष ही धारण कर सकता है। लोकतन्त्र में प्रजा में से ही राजा का चयन होता है। अतः राष्ट्र की समस्त प्रजा को तेजस्वी होना चाहिए। प्रजा को तेजस्वी बनाने हेतु राजा राजनियम लागू करे कि राज्य का प्रत्येक पाँच वर्ष का बालक/बालिका गुरुकुल में पढ़ने जावे तथा वहाँ आचार्य/आचार्या के निर्देशन में ब्रह्मचर्य के तप से तेजस्वी बने।

ऋषिः–**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठपुत्राः** ॥ देवता–**त एव** ॥
छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वान् समुद्र के समान गम्भीर हों

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **वसिष्ठाः**=ब्रह्मचारी लोगो! हे राष्ट्रवासी जनों में श्रेष्ठ जनो! **एषां**=इन **वः**=आप लोगों का **वक्षथः**=तेज और वचन **सूर्यस्य ज्योतिः इव**=सूर्य-तेज के समान असह्य और यथार्थ का प्रकाशक हो। **महिमा**=महान् सामर्थ्य **समुद्रस्य इव गभीरः**=समुद्र-समान गम्भीर हो। **प्र-जवः**=उत्तम वेग **वातस्य इव**=वायु के समान अदम्य हो और **वः**=आप लोगों का **स्तोमः**=बलवीर्य, चरित ऐसा हो जो **अन्येन**=दूसरे असमर्थ पुरुष से **अन्वेतये न**=अनुकरण न किया जा सके।

भावार्थ–राष्ट्र में विविध विद्याओं में निष्णात विद्वानों को सूर्य के समान तेजस्वी होना चाहिए। जैसे सूर्य की ओर कोई आँख नहीं उठा सकता, उसी प्रकार विद्वान् की ओर कोई अंगुली न उठा सके। उन विद्वानों को समुद्र के समान गम्भीर होना चाहिए। वे राष्ट्र की समस्याओं तथा उन्नति की योजनाओं पर गहनता के साथ चिन्तन करनेवाले होवें।

ऋषिः–**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठपुत्राः** ॥ देवता–**त एव** ॥
छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तेजस्वी राष्ट्र

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

पदार्थ–**ते इत् वसिष्ठाः**=वे ही पूर्ण ब्रह्मचारी, गुरु के अधीन विद्या-प्राप्ति के लिये बसने हारे जन **यमेन**=नियन्त्रक आचार्य वा परमेश्वर द्वारा **ततं**=विस्तारित **परिधि**=सब प्रकार से धारण-योग्य ज्ञान, व्रत और दीक्षादि को **वयन्तः**=प्राप्त होते और उसका पालन करते हुए **अप्सरसः उपसेदुः**=गृहाश्रम में स्त्रियों को प्राप्त करें। **त इत्**=वे ही **हृदयस्य**=हृदय के **प्रकेतैः**=उत्तम ज्ञानों

से सहस्रों अंकुरों, शास्त्र-ज्ञानों से युक्त **निण्यं**-निश्चित ज्ञान को **अभि सञ्चरन्ति**=प्राप्त कर विचरें।

भावार्थ-गुरुओं के पास ब्रह्मचर्य के तप से तपकर विद्याओं में निष्णात दीप्तिमान विद्वान् ब्रह्मचारी विभिन्न विषयों में शोध करके राष्ट्र को ज्ञान विज्ञान से भरपूर करें। सैनिक व सेनापति ब्रह्मचर्य के तप से वीर्यवान् व शौर्यवान् होकर राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा करें। संन्यासी-महात्मा गण ब्रह्मचर्य के तप द्वारा ईश्वर की प्राप्ति योगाभ्यास द्वारा करके राष्ट्र की प्रजा को अध्यात्म का उपदेश करके तेजस्वी बनावें।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठः** ॥ देवता-**त एव** ॥
छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

जीव के दो जन्म

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार॥ १०॥

पदार्थ-जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य। हे **वसिष्ठ**-देहवासी प्राणों में सबसे श्रेष्ठ जीव! **विद्युतः ज्योतिः**-विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्ति को **परि संजिहानं**=सब प्रकार से धारक **त्वा**=तुझको **यत्**-जब **मित्रावरुणौ**=सूर्य-चन्द्रवत्, प्राण अपान वा माता-पिता दोनों, **अपश्यताम्**-देखते हैं **तत्**-तब **ते**=तेरा **जन्म**-जन्म होता है **उत**-और **एकं**-एक जन्म होता है **यत्**-जब **अगत्स्यः**=सूर्य **त्वा**=तुझको **विशः**=प्रवेश योग्य देहों में, वा आचार्य प्रजाओं में राजा के समान **आजभार**=प्राप्त कराता है।

भावार्थ-जिस प्रकार से जीवात्मा पहले पिता की देह में पुष्ट होकर माता के गर्भ में जाता है यह उसका प्रथम जन्म है और फिर माता के गर्भ में पुष्ट हो संसार में जन्मता है, यह उसका द्वितीय जन्म है। इस दूसरे जन्म से संसार में उसका अस्तित्व बनता है। इसी प्रकार संसार में भी उसके दो जन्म होते हैं प्रथम माता के गर्भ से द्वितीय आचार्य के गुरुकुलरूपी गर्भ से। आचार्य के गर्भ गुरुकुल से विद्या-बल से पुष्ट होकर समाज में आने पर ही उसका यश एवं अस्तित्व झलकता है।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठः** ॥ देवता-**त एव** ॥
छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

विद्वान् सर्व आश्रम पोषक हों

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त॥ ११॥

पदार्थ-हे **वसिष्ठ**=देह में बसे श्रेष्ठ जीव! **उत**-और तू **मैत्रावरुणः**-मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों का स्वामी **असि**-है। हे **ब्रह्मन्**-वृद्धिशील जीव! तू **उर्वश्याः**=कान्तिमती, तैजस, सात्त्विक विचार से युक्त वा 'उरु' विस्तृत, व्यापक प्रकृति के ऊपर **मनसः**=मननशक्ति द्वारा **अधि-जातः**-भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है। **दैव्येन**=समस्त किरणों के, समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी **ब्रह्मणा**-महान् परमेश्वर से **स्कन्नं**-प्रदत्त **द्रप्सं**=वीर्य के समान **त्वा**-तुझको **देवाः**=समस्त दिव्य शक्तियाँ **पुष्करे**=पुष्टिकारक तत्त्व में **अददन्त**=धारण करती हैं।

भावार्थ-विद्वान् आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा विद्या एवं बल से पुष्ट

कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के योग्य बनाते हैं। तब ये उत्तम गृहस्थी, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तीनों आश्रमों का आश्रय स्थल बनकर इन सभी आश्रमों को पुष्ट करते हैं।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठः**॥ देवता-**त एव**॥
छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

सर्वत्यागी ब्राह्मण

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः॥ १२॥

पदार्थ-जैसे **यमेन**=नियन्ता परमेश्वर से **ततं**=फैलाये **परिधिं**=धारक देह सांसारिक जीवन को **वयिष्यन्**=पट के समान स्वयं अपने कर्मों द्वारा बुनता, या बनाता और उसको प्राप्त होना चाहता हुआ **वसिष्ठः**=वसु, जीव **अप्सरसः परिजज्ञे**=स्त्री-शरीर से परिपुष्ट होकर प्रकट होता है, वैसे ही **वसिष्ठः**=गुरु के अधीन बसनेवाला वसु ब्रह्मचारी **यमेन**=नियन्ता आचार्य से **ततं**=विस्तारित **परिधिं**=सब प्रकार से धारण-योग्य ज्ञानमय शास्त्रपट को **वयिष्यन्**=प्राप्त, रक्षण और विस्तृत करना चाहता हुआ **अप्सरसः**=अन्तरिक्षचारी वायु के समान ज्ञानवान् पुरुष की व्याप्त विद्या से **परि जज्ञे**=उत्पन्न होता है। **सः**=वह **प्र-केतः**=उत्तम ज्ञानी और **उभयस्य**=पाप और पुण्य दोनों को **प्र-विद्वान्**=भली प्रकार जानता हुआ, **सहस्र-दानः**=सहस्रों का दाता, परमैश्वर्य का स्वामी हो। **उत वा**=अथवा **स-दानः**=दानशीलों के दान से अलंकृत भिक्षु, ब्राह्मण हो।

भावार्थ-शिष्य आचार्यों के सान्निध्य में रहकर समस्त ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करे तथा योग साधन द्वारा परमेश्वर को जाने। ऐसा ब्रह्मवित् विद्वान् समाज में आकर ज्ञान-विज्ञान तथा अपने समस्त ऐश्वर्य आदि को जनकल्याण हेतु लगाकर सर्वत्यागी बनकर सच्चा ब्राह्मण कहलावे।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठः**॥ देवता-**त एव**॥
छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

ज्ञानदाता गुरु

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥ १३॥

पदार्थ-**सत्रे**=गुरु के गृह में **जातौ**=उत्पन्न हुए कुमार और कुमारी दोनों **इषिता**-एक दूसरे की इच्छावाले होकर **नमोभिः**=आदर सहित **कुम्भे रेतः**=कलश में रक्खे जल से **समानं**=एक समान **सिषिचतुः**=अभिषेक करें, **ततः मध्यात्**=उन दोनों के बीच से **मानः**=उत्तम परिमाणयुक्त बालक **उत् इयाय**=उत्पन्न होता है **ततः**=अनन्तर उस **ऋषिम्**=प्राप्त जीव को **वसिष्ठम् आहुः**='वसिष्ठ' कहते हैं।

भावार्थ-जैसे स्त्री और पुरुष आचार्यों के पास पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर पुष्ट बीज से उत्तम सन्तान को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार उत्तम आचार्य अपने शिष्य में समस्त ज्ञान को धारण कराकर ब्रह्मतेज से तेजस्वी बनाता है। ऐसे शिष्यों से राष्ट्र तेजस्वी बनता है।

ऋषिः-**संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः; वसिष्ठः** ॥ देवता-**त एव** ॥
छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

शुभ संकल्पवाले होकर वेदोपासना करो

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ १४ ॥

पदार्थ-जो विद्वान् **अग्रे**=सबसे पूर्व, **बिभ्रत्**=ज्ञान को धारण करता हुआ **प्र वदाति**=उत्तम प्रवचन करता है वह **ग्रावाणं**=मेघ के समान ज्ञान-जल को धारक **उक्थ-भृतं**=ऋग्वेद के धारक और **साम-भृतं**=सामवेद के धारक विद्वान् शिष्य को भी **बिभर्ति**=धारण करता है। वही **वसिष्ठः**=वसु ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ है। हे **प्र-तृ-दः**=तीनों आश्रमों को अन्नादि देनेवाले गृहस्थो! वा हे **प्रतृदः**=खण्ड-खण्ड कर वेद-अध्ययन करनेवाले ब्रह्मचारियो! जब वह **वः आगच्छति**-तुम्हें प्राप्त हो तब आप **एवं**=उसकी **सुमनस्यमानाः**=शुभ संकल्पयुक्त होकर **उप आध्वम्**-उपासना करो।

भावार्थ-समस्त विद्याओं का धारक परमेश्वर है उसकी उपासना श्रद्धा के साथ करनेवाला ब्रह्मवित् आचार्य अपने शिष्य को ऋग्वेद के ज्ञान और सामवेद की उपासना से पूरित कर तेजस्वी बनाता है। ऐसा ज्ञानोपासना से पूर्ण विद्वान् जब गृहस्थ के घर पर आवे तो शुभसंकल्प एवं श्रद्धा से पूर्ण होकर गृहस्थी जन उससे वेदोपासना सीखें।

अगले सूक्त के ऋषि वसिष्ठ, विश्वेदेवाः तथा अहिः और देवता अहिर्बुध्न्य है।

तृतीयोऽनुवाकः

[३४] चतुस्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

विदुषी स्त्री

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥

पदार्थ-वाजी=वेगवान् **रथः सु-तष्टः**=रथ उत्तम रीति से निर्मित होकर जैसे **मनीषाः एति**=मनोनुकूल गतियें करता है वैसे ही **सु-तष्टः**=उत्तम रीति से अध्यापित, **वाजी**-ज्ञानी पुरुष और **शुक्रा**=शुद्ध अन्तःकरणवाली, **देवी**=विदुषी स्त्री भी **अस्मत्**=हमसे **मनीषाः**=उत्तम बुद्धियों को **एतु**=प्राप्त करे।

भावार्थ-जैसे पुरुष आचार्यों के पास शिक्षा प्राप्त कर ज्ञानवान होता है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी आचार्याओं से वेदविद्या को ग्रहण कर उत्तम विदुषी होवें। इससे राष्ट्र उन्नत बनता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

आप्त स्त्रियों के कर्त्तव्य

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥

पदार्थ-**अधः क्षरन्तीः आपः**=मेघ से नीचे गिरती जलधाराएँ जैसे **दिवः**=आकाश से **जनित्रं**=अपनी उत्पत्ति और **पृथिव्याः जनित्रं**=पृथिवी, अन्न की उत्पत्ति का कारण होती हैं वैसे ही **अधः क्षरन्तीः**=नीचे के अंगों से स्रवित वा ऋतु से होनेवाली नवयुवती **अपः**=आप्त स्त्रियें **दिवः**=सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और **पृथिव्याः**-पृथिवी तुल्य बीजों को अंकुरित करनेवाली माता

से ही **जनित्रं**=सन्तान के जन्म को जानें और **शृण्वन्ति**=वैसा ही उपदेश गुरुजनों से सुनें।

भावार्थ–स्त्रियों को उत्तम विद्याओं से युक्त होकर वेद–विदुषी बनना चाहिए। ऐसी आप्त विदुषी स्त्रियाँ गृहस्थ के विज्ञान को जानकर श्रेष्ठ गुण–कर्म युक्त उत्तम संस्कारवाली सन्तान को उत्पन्न कर समाज को उन्नत बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**आर्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

आप्तजनों का कृषि आदि कार्य

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥

पदार्थ–**वृत्रेषु**=मेघों में **आपः चित्**–जलधाराएँ जैसे **अस्मै**=इस सूर्य के बल से **पृथ्वीः**–भूमियों को **पिन्वन्त**=सींचती हैं और **वृत्रेषु**=मेघों के ऊपर **उग्राः**=प्रचण्ड वायुएँ **मंसन्ते**=प्रहार करते हैं **चित्**=वैसे **अस्मै**=इस राजा के लिये **आपः**=नहरें **पृथ्वीः पिन्वन्त**=भूमियों को सीचें और **शूराः**=वीर पुरुष **वृत्रेषु**=विघ्नकारी पुरुषों पर और धनों के लिए **मंसन्ते**=उद्योग करें।

भावार्थ–राष्ट्र की प्रजा वेदविद्या से युक्त होकर राष्ट्र को उन्नत बनाने में पुरुषार्थ करे। वैदिक कृषि विद्या के जानकार लोग राष्ट्र में नदियों के व्यर्थ बहनेवाले जल को नहरों द्वारा खेतों तक ले जाकर सिंचाई करें तथा उत्तम बीज द्वारा उन्नत कृषि कार्य से राष्ट्र को समृद्ध बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**आर्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

नायक के प्रति कर्त्तव्य

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् पुरुषो! **अस्मै**=इस नायक के लिये **धूर्षु**=धुराओं में **अश्वान्**=अश्वों को **दधात**=लगाओ। **इन्द्रः**=वह ऐश्वर्यवान् **वज्री**=बली, शस्त्रधारक और **हिरण्य-बाहुः**=सुवर्णादि को बाहुबल से रखनेवाला है।

भावार्थ–विद्वानों को चाहिए कि वे राष्ट्र के नायक राजा के लिए ऐश्वर्य का संग्रह करें जैसे भृत्य अपने मालिक के लिए अश्वों को जुए में जोतकर रथ को तैयार करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सन्मार्ग पर बढ़ना

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! **अह इव**=और आप लोग **यज्ञं अभि**=पूजनीय प्रभु, सत्संग, यज्ञ आदि को लक्ष्य कर **प्र स्थात**=आगे बढ़ो। **याता इव**=यात्री या जानेवाले पुरुष के समान **त्मना**=आत्म सामर्थ्य से **पत्मन्**=सन्मार्ग पर **हिनोत**=आगे बढ़ो।

भावार्थ–जिस प्रकार यात्री अपने पुरुषार्थ से अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ता जाता है उसी प्रकार स्त्री–पुरुषों को भी पुरुषार्थ एवं उत्साह के साथ सन्मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ते हुए जीवन के लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

ध्वजावत् वीर का स्थापन

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे वीर पुरुषो! आप लोग **समत्सु**=संग्राम के समय **त्मना**=अपने सामर्थ्य से

यज्ञं=पूज्य नायक को **हिनोत**-बढ़ाओ। **जनाय** साधारण प्रजाजन के हितार्थ **केतुं**-ध्वजा तुल्य सबके आज्ञापरक **वीरम्**=वीर और विद्योपदेष्टा पुरुष को **दधात**-स्थापित करो।

भावार्थ-जिस प्रकार सेना अपने विजय अभियान में आगे बढ़ती हुई राष्ट्र को ध्वजा को फहराती चलती है। इस ध्वजा से उस सेना के नायक की शक्ति प्रदर्शित होती है। उसी प्रकार गृहस्थी स्त्री-पुरुष उत्तम संस्कार युक्त वीर पुत्र को उत्पन्न करें। इससे उस गृहस्थी की प्रतिष्ठा स्थापित होती है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

पृथ्वी के समान स्त्री के कर्त्तव्य

उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥

पदार्थ-भानुः न-जैसे सूर्य-बल से कान्ति ऊपर उठती है वैसे **अस्य शुष्मात्**-इस नायक के बल से **भानुः**-तेजवत् उसके आश्रित प्रजा **उत् आर्त्त**-उन्नत होती है। **पृथिवी न**-पृथिवी-तुल्य विदुषी स्त्री भी **भूम भारं** बहुत भारी प्रजाओं का भार **बिभर्ति**-उठाती है।

भावार्थ-जैसे राष्ट्र का नायक सूर्य के समान तेज को धारण कर राष्ट्र को तेजस्वी बनाता है उसी प्रकार स्त्री भी पृथ्वी के समान धैर्यवती होकर राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई राज्य व्यवस्था में सहयोग करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

शिष्यों से प्रेम

ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥

पदार्थ-हे **अग्ने**=तेजस्विन्! मैं **अयातुः**-अहिंसाव्रती होकर **देवान्**=विद्या-कामनावाले शिष्यों को **ह्वयामि**-बुलाता हूँ। मैं **ऋतेन**-सत्य-व्यवहार द्वारा **साधन्**-साधना करता हुआ **धियं दधामि**=ज्ञान प्रदान करूँ और कर्म करूँ।

भावार्थ-उत्तम आचार्य अपने शिष्यों को प्रीति के साथ समस्त विद्याओं को पढ़ावे। वह अन्य किसी भी कार्य में प्रवृत्त न होकर सदैव शिष्यों की ज्ञानोन्नति में ही लगा रहे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

दिव्य बुद्धि का धारण

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥ ९ ॥

पदार्थ-हे जनो! आप लोग **वः**-अपनी **देवीं धियं**=दिव्य मति को **अभि दधिध्वं**-धारण करो और **वः**-अपनी वाणी को भी **देवत्रा वाचम्**-विद्वानों में विद्यमान उत्तम वाणी के समान बनाओ।

भावार्थ-मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग विध्वंस में न करके निर्माण में लगावे। इसके लिए वह अपनी बुद्धि में ईश्वर के दिव्य तेज को धारण करे जिससे उसकी बुद्धि एवं कर्म सदैव सुपथ में ही लगे रहें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

परमात्मा सहस्र चक्षु है

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥

पदार्थ–**उग्रः**=प्रचण्ड **वरुणः**=सूर्य जैसे **नदीनां पाथः आ चष्टे**=नदियों के जल को खींचता है, वैसे ही **सहस्त्रचक्षाः**–सहस्त्रों आज्ञावचन कहनेवाला **वरुणः**=श्रेष्ठ पुरुष **उग्रः**=बलवान् होकर **नदीनां**–समृद्ध **आसां**=इन प्रजाओं के **पाथः**=पालनकारक राज्य व्यवहार को **आ चष्टे**=स्वयं देखता है।

भावार्थ–परमात्मा सहस्त्र चक्षु है अर्थात् वह अपने अनन्त नेत्रों से समस्त जीवों के कर्मों को देखता है। उसी प्रकार राजा भी अपने प्रचण्ड प्रभाव से प्रजा के कार्य व्यवहार को स्वयं देखे। इससे राष्ट्र में घातक एवं द्रोही तत्त्व सक्रिय न हो सकेंगे तथा राष्ट्र उन्नति करेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

समृद्ध राष्ट्र का निर्माण

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥

पदार्थ–वरुण अर्थात् जल जैसे **नदीनां पेशः**=नदियों के रूप को बनाता है, वैसे यह **राजा**=राजा **राष्ट्रानां**–राष्ट्रों और प्रजाओं का **पेशः**=समृद्ध रूप बनाता और **अस्मै**=उसका **विश्वायु**=सर्वगामी, **अनुत्तम्**–अबाधित **क्षत्रं**=बल होता है।

भावार्थ–जैसे जल की धारा नदियों के स्वरूप का निर्माण कर देती है उसी प्रकार बल और बुद्धि के द्वारा राजा समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कर देता है। इससे उस राजा का बल एवं पराक्रम चमकता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

विद्वान् प्रजा का मार्गदर्शन करें

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥ १२ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् जनो! आप **अस्मान्**–हमें **विश्वासुविक्षु**=समस्त प्रजाओं में **अविष्ट**=रक्षा करो और **शंसं कृणोत**–उपदेश करो। **निनित्सोः अद्युं कृणोत**=निन्दावाले को अन्धकार युक्त करो।

भावार्थ–विद्वान् लोग राष्ट्र की प्रजा को उत्तम उपदेश द्वारा सन्मार्गदर्शन करें। इससे प्रजा श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न होकर राष्ट्रोन्नति में सहयोगी बनेगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

शत्रु का नाश

व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥

पदार्थ–हे वीर पुरुषो! **दिद्युत्**=खूब चमकता प्रकाश **वि एतु**=विविध दिशाओं में फैले। **द्विषाम् अशेवा**=शत्रुओं को नाना दुःख प्राप्त हों। **तनूनाम्**=देह धारियों के **रपः**=दुःखों को आप **विश्वक्**=सब प्रकार **युयोत**=पृथक् करो।

भावार्थ–राष्ट्र के वीर योद्धा अपने प्रचण्ड पराक्रम एवं उन्नत सैन्यशक्ति से शत्रुओं का नाश कर राष्ट्र की प्रजा का रक्षण एवं पालन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सर्वप्रिय राष्ट्र नायक

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥ १४ ॥

पदार्थ–अग्निः=अग्नि–तुल्य तेजस्वी पुरुष **नमोभिः**=अन्नादि पदार्थों तथा शस्त्रों से **नः**=हमारी **अवीत्**=रक्षा करे। वह **हव्यात्**=भक्ष्य पदार्थों को खानेवाला **प्रेष्ठः**=सर्व प्रिय हो। **अस्मै**=उसके लिये **स्तोमः**=स्तुति–योग्य व्यवहार **अधायि**=किया जावे।

भावार्थ–राष्ट्र का नायक प्रजा का पालन एवं रक्षण अन्नादि भोज्य पदाथ तथा शस्त्रों द्वारा करे। ऐसे राष्ट्र नायक सर्वजन प्रिय होते हैं। वह भी अपनी प्रजा को प्रेम करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सूर्य समान तेजस्वी बनो

स॒जूर्दे॒वेभि॑र॒पां नपा॑तं॒ सखा॑यं कृध्वं शि॒वो नो॑ अस्तु ॥ १५ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् पुरुषो! **देवेभिः सजूः**=पृथिव्यादि तत्त्वों सहित अग्नि वा सूर्य के समान **अपां नपातं**=जलों को न गिरने देनेवाले, प्रजाओं का नाश न होने देनेवाले पुरुष को अपना **सखायं कृध्वम्**=मित्र बनाओ। वह **नः**=हमारा **शिवः**=कल्याणकारक **अस्तु**=हो।

भावार्थ–जैसे सूर्य अपने तेज से भूमि पर जल बरसा कर भूमि को तृप्त एवं जीवों को सुखी करता है उसी प्रकार विद्वान् भी अपने ब्रह्मतेज से वेदोपदेश करके प्रजा जनों को तृप्त एवं सुखी करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अहिः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सूर्योपासना

अ॒ब्जामु॒क्थैरहिं॑ गृणीषे बु॒ध्ने न॒दीनां॒ रजः॑सु॒ षीद॑न् ॥ १६ ॥

पदार्थ–जैसे **बुध्ने**=अन्तरिक्ष में **अब्जाम्**=जलों के उत्पादक **अहिम्**=सूर्य को कहा जाता है वही **नदीनां रजःसु सीदन्**=नदियों के जलों या कण–कण में स्थित है। जैसे **उक्थैः**=उत्तम वचनों से **अब्जाम्**=आप्त जनों में प्रसिद्ध, **अहिम्**=शत्रु–नाशक पुरुष के **बुध्ने**=प्रजा के ऊपर आकाशवत् प्रबन्धक पद पर **गृणीषे**=प्रस्तुत करूँ। वह **नदीनां**=प्रजाओं के बीच **रजःसु**=वैभवों में **सीदन्**=विराजे।

भावार्थ–उत्तम विद्वान् सूर्य के समान तेजस्वी मनुष्य को राष्ट्र का अध्यक्ष नियुक्त करें। वह प्रजा में अपने राजप्रबन्ध द्वारा उसी प्रकार आच्छादित होवे जैसे सूर्य नदी में प्रवाहित जलों में।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अहिर्बुध्न्यः** ॥ छन्दः–**आर्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

मेघवत् राष्ट्र नायक पुरुष

मा नोऽहि॑र्बु॒ध्न्यो॑ रि॒षे धा॒न्मा य॒ज्ञो अ॑स्य स्रिधदृता॒योः ॥ १७ ॥

पदार्थ–बुध्न्यः अहिः=आकाशस्थ मेघ–तुल्य **बुध्न्यः**=उदार, विद्वान् पुरुषों द्वारा सञ्चालित तेजस्वी पुरुष **नः**=हमें **रिषे**=हिंसक के लाभ के लिये **मा धात्**=न रखे। **अस्य ऋतायोः**=अन्न और धनाभिलाषी राजा का **यज्ञः**=दान आदि **मा स्रिधत्**=नष्ट न हो।

भावार्थ–जिस प्रकार आकाश में स्थित बादल सब जीवों के हित के लिए वर्षते हैं। उसी प्रकार उत्तम विद्वानों के द्वारा अभिषिक्त राजा प्रजा जनों के लिए उत्तम अन्न, उत्तम संगति तथा हित साधक साधन देकर उन्हें हर्षित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

शत्रुतापी

उ॒त न॑ ए॒षु श्रवो॑ धुः प्र रा॒ये य॑न्तु॒ शर्ध॑न्तो अ॒र्यः ॥ १८ ॥

पदार्थ–विद्वान् लोग, **नः**–हमारे **एषु नृषु**–इन नेता पुरुषों में **श्रवः**=बल, अन्न आदि **धुः**=धारण करें और वे **शर्धन्तः**=उत्साह करते हुए **राये**=धन प्राप्ति हेतु **अर्यः-अरीन्**=शत्रुओं को लक्ष्य कर, उन पर **प्र यन्तु**=चढ़ाई करें।

भावार्थ–उत्तम विद्वान् जन राष्ट्र नायकों एवं सेनानायकों को उत्तम उपदेश के द्वारा प्रजापालन एवं राष्ट्र वृद्धि हेतु प्रेरित करें। प्रेरणा पाए हुए नायक जन शत्रुओं पर आक्रमण कर उन्हें तपाएँ तथा उन शत्रुओं का ऐश्वर्य छीनकर अपनी प्रजा में वितरित करें। इससे शत्रु श्रीः हीन होगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

यशस्वी नेता

तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥

पदार्थ–**एषाम्**=इन नायकों के **अमैः**=सहायक सैन्य बलों से युक्त होकर **महा-सेनासः**=बड़ी सेनाओं के स्वामी लोग **भूमा स्वः न**=भुवनों को सूर्य के समान प्रचण्ड होकर **शत्रुं तपन्ति**=शत्रु को तपावें।

भावार्थ–राष्ट्र का नायक महान् सैन्य बलों के द्वारा शत्रुओं पर आक्रमण कर विजय प्राप्त करे तथा अपनी प्रजा में यशस्वी बने।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिगार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

वीर सन्तान

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥ २० ॥

पदार्थ–**यत्**=जब **पत्नीः**=स्त्रियें **नः**=हमें **अच्छ आ गमन्ति**=भली प्रकार प्राप्त हों तब **त्वष्टा**–तेजस्वी राजा **सु-पाणिः**–उत्तम व्यवहारज्ञ होकर **वीरान्**=वीर पुरुषों तथा हमारे पुत्रों की भी **दधातु**=रक्षा करे। उनको राष्ट्र-रक्षा पर नियुक्त करे।

भावार्थ–राष्ट्र की स्त्रीयाँ वीर प्रसूता होवें और राजा उन वीर सन्तानों को राष्ट्र की रक्षा हेतु नियुक्त करे। माताएँ ऐसी राष्ट्र-भक्त वीर सन्तानों से धन्य होती हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

प्रजा प्रिया शासक

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

पदार्थ–**अरमतिः**=बुद्धिमान् **वसूयुः**=प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी, **त्वष्टा**=राजा **नः**=हमारे **स्तोमं**=स्तुति-वचन के **प्रति**=प्रति **जुषेत**=प्रेम करे और वह **अस्मे स्यात्**=हमारे हितार्थ प्रीतिमान् हो।

भावार्थ–राजा विद्वान् तथा बुद्धिमान् होवे। प्रजाजनों के उत्तम कर्मों तथा उत्तम विचारों को जानकर उन्हें प्रोत्साहित करे। इससे राजा प्रजा का प्रिय बन जाता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृदार्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ऐश्वर्यशाली राजा

ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥ २२ ॥

पदार्थ–राति-षाचः=दानयोग्य वृत्ति को लक्ष्य कर धनाढ्य लोग **नः**-हमें **ता**-वे नाना प्रकार के **वसूनि** ऐश्वर्य **रासन्** दे। **रोदसी** दुष्टों को रुलानेवाली न्यायसभा तथा पुलिस और **वरुणानी**-स्वयं वृत राजा की शासनसभा भी **नः आ शृणोतु**-हमारी बाते सुने। **त्वष्टा**-तेजस्वी पुरुष **वरूत्रीभिः**=दुःखवारक नीतियों से **नः**-हमारा **सु-शरणः**=उत्तम शरण **अस्तु**=हो। वह **सु-दत्रः**-उत्तम दानशील पुरुष **रायः वि दधातु**=नाना ऐश्वर्य दे।

भावार्थ–राजा दानशील वृत्तिवाला प्रजाहितैषी होवे। उसकी न्याय सभा, विधानसभा तथा कार्यकालिका जनहितकारी कार्य करे। राजपुरुष-आरक्षी पुरुष प्रजा को पीड़ित न करें। ऐसा कुशल नेता प्रजा का प्रिय होकर विराजता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

शस्य श्यामला भूमि

तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः।

वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः॥ २३॥

पदार्थ–तत् रायः–वे ऐश्वर्य और **पर्वताः**-पर्वत, मेघ और पालक साधनों से सम्पन्न जन **नः**=हमारी रक्षा करें। **तत् आपः**–वे जल, प्राण, **तत् रातिषाचः**=वे दान लेनेवाले, **ओषधीः उत द्यौः**=ओषधियाँ, सूर्य, **वनस्पतिभिः सजोषाः पृथिवी**-वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, **उभे रोदसी**=आकाश और भूमि, ये **नः परि पासतः उ**=हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह अपने राज्य में बहुत वृक्षारोपण तथा यज्ञप्रसार अभियान चलावें। इससे राज्य में पर्यावरण प्रदूषण रहित होगा तथा समय पर वर्षा होकर भूमि शस्यश्यामला होगी जिससे समस्त प्रजा की रक्षा एवं पालन होगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**निचृदार्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राजा और सेनापति प्रजा के अनुकूल हों

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा।

अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै॥ २४॥

पदार्थ–तत् उर्वी रोदसी–वे दोनों महान् सेनापति, सेनानायक, सूर्य-भूमि के समान स्त्री पुरुष भी **अनु जिहाताम्**=परस्पर अनुकूल होकर प्राप्त हों। **द्यु-क्षाः**=प्रकाशों का धारक सूर्यवत् तेजस्वी और **इन्द्र-सखा**=ऐश्वर्यवान् का मित्र **वरुणः**-श्रेष्ठ राजा **अनु**-अनुकूल रहे। **ये सहासः मरुतः**=जो शत्रुविजयी, तपस्वी विद्वान् पुरुष हैं वे **विश्वे**=सब **अनु**=अनुकूल हों। हम लोग **रायः धियध्यै**=ऐश्वर्यधारण के लिये **धरुणं**=सुरक्षित पात्रवत् **स्याम**=हों।

भावार्थ–राष्ट्र में सेनापति, विद्वान् तथा समस्त स्त्री–पुरुष प्रजाएँ राजा के अनुकूल होवें। राजा भी इन सबके अनुकूल होवे। इससे राजा, विद्वान्, सेना व सेनापति तथा समस्त प्रजाजन मिलकर राष्ट्र को समृद्ध बनाकर राष्ट्र को उन्नत कर सकेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**विराडार्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

औषधियाँ अलौकिक सुखदायी हों

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।

शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ २५॥

पदार्थ–**वनिनः**=ऐश्वर्यों के स्वामी **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान्, **वरुणः**=प्रजा का वृत राजा, **मित्रः**=स्नेही, **अग्निः**=विद्वान् **आपः**=आप्तजन **ओषधीः**=ओषधियें ये **नः**=हमें **तत्**=वह सुख **जुषन्त**=प्राप्त करावें, जिससे हम **मरुताम् उपस्थे**=विद्वानों के पास **शर्मन् स्याम**=सुख में रहें। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह विद्वान् जनों को प्रजा के कल्याण हेतु नियुक्त करे। वे विद्वान् जन स्त्री पुरुषों को उपदेश करें कि किन-किन दिव्य एवं अलौकिक औषधियों के द्वारा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करके सुखी एवं आनन्दित हुआ जा सकता है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता विश्वे देवा है।

[३५] पञ्चत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

जल-विद्युत् शान्तिदायक हों

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।

शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥ १॥

पदार्थ–**वाजसातौ**–ऐश्वर्य प्राप्त होने पर **इन्द्राग्नी**=विद्युत् और अग्नि, राजा और नायक **अवोभिः**=रक्षा-साधनों और ज्ञानों से **नः शं भवताम्**=हमें शान्तिदायक हों। **रात-हव्या**=लेने और देने योग्य अन्नादि को प्राप्त करनेवाले **इन्द्रा वरुणा**–विद्युत् और जल, सेनापति और राजा **नः शं**–हमें शान्तिदायक हों। **इन्द्रासोमा शम्**=इन्द्र आचार्य, सोम शिष्य गण, **शम्**=हमें शान्तिदायक हों। वे दोनों ही **सुविताय**=सुखमय जीवन के लिये शान्तिदयाक हों। **इन्द्रा-पूषणा**=विद्युत् और वायु दोनों भी **नः शं**=हमें शान्तिदायक हों।

भावार्थ–ऐश्वर्यवान तेजस्वी राष्ट्रनायक अन्न, ज्ञान तथा रक्षा साधनों के द्वारा प्रजा का कल्याण करे। जल तथा विद्युत् जैसी जीवनदायी संसाधनों की राष्ट्र में सुव्यवस्था करे। शिक्षा हेतु आचार्यों की नियुक्ति तथा स्वास्थ्य के साधन प्रदान करे। प्रजा जनों के सुखमय जीवन हेतु ऐश्वर्य प्रदान करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

न्यायकारी पुरुष शान्तिदायक हों

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।

शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥ २॥

पदार्थ–**भगः नः शम्**=ऐश्वर्य हमें सुखकारी हो। **शंसः नः शम् उ**=अनुशासन और उपदेष्टा हमें शान्ति दें। **पुरन्धिः**=पुरधारक राजा **नः शम्**=हमें शान्तिदायक हो। **रायः शम् उ सन्तु**=नाना ऐश्वर्य हमें शान्ति दें। **सु-यमस्य**=उत्तम नियन्ता और **सत्यस्य शंसः**=सत्य का उपदेष्टा **नः शम्**–हमें सुखकर हो। **पुरु जातः**=बहुतों में प्रसिद्ध **अर्यमा**=न्यायकारी पुरुष **नः शं अस्तु**=हमें शान्ति दे।

भावार्थ–राजा न्यायव्यवस्था द्वारा जनप्रिय होकर अनुशासन को बनावे। विद्वानों की नियुक्ति द्वारा सत्य उपदेश, बुद्धि वृद्धि स्वास्थ्य शिक्षा, सुख के साधन एवं पर्यावरण संरक्षण की व्यवस्था का ज्ञान कराकर प्रजा का कल्याण करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

भूमि, अन्न, जल शान्तिदायक हों

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥ ३॥

पदार्थ-धाता न शम्=पोषक वर्ग हमें शान्ति दे। **धर्त्ता नः शम् उ**-धारक हमें शान्ति दे। **उरूची**=बहुत पदार्थ प्राप्त करानेवाली भूमि, **नः**=हमें **स्वधाभिः**-अन्नों से **शं भवतु**-शान्तिदायक हो। **बृहती रोदसी शं**-वृद्धिशील, सूर्य और अन्तरिक्ष **शं**-शान्तिदायक हों। **अद्रिः नः शम्**-मेघ और पर्वत शान्ति दें। **देवानां**-देव, विद्वानों के **सु हवानि** उत्तम उपदेश **नः शं सन्तु**-हमें शान्तिदायक हों।

भावार्थ-राष्ट्र में किसान उत्तम अन्न पैदा करे, भूमि से प्रचुर अन्न-जलों तथा अन्य पदार्थों की उत्पत्ति हो तथा समय पर वर्षा हो। इन सबकी जानकारी हेतु राष्ट्र में विद्वान् जन उत्तम उपदेश करके राष्ट्र का कल्याण करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

तेजस्वी पुरुष सुखकारी हों

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।

शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः॥ ४॥

पदार्थ-ज्योतिः अनीकः अग्निः=तेज का सैन्य तुल्य धारक, आग के समान तेजस्वी सैन्य, वा राजा **नः शम्**=हमें सुखकारी हो। **मित्रावरुणौ नः शं**-एक दूसरे के स्नेही और वरण करनेवाले **अश्विना**=रथी-सारथी वा इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री-पुरुष **नः शं**=हमें शान्तिदायक हों। **सुकृतां**=पुण्यात्माओं के **सुकृतानि**-पुण्य कर्म **नः शं**=हमें शान्ति दे। **इषिरः वातः**=सदा गमनशील वायु **नः शं अभि वातु**-हमें शान्तिदायक होकर सब ओर जावे।

भावार्थ-राष्ट्र में तेजस्वी विद्वान् पुरुष प्राणसाधना, इन्द्रिय जय तथा पुण्यात्माओं के संसर्ग से लाभ आदि का उत्तम उपदेश करके प्रजा का मंगल साधें अर्थात् प्रजा को सुखी करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

विद्युत् और भूमि शान्तिदायक हों

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।

शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः॥ ५॥

पदार्थ-पूर्वहूतौ=पूर्व के विद्वानों के उत्तम कार्य में लगे **द्यावृथिवी** विद्युत् और भूमिवत् स्त्री-पुरुष दोनों **नः शं**=हमें शान्तिदायक हों। **अन्तरिक्षं**=अन्तरिक्ष **नः**=हमें **दृशये**-देखने के लिये **शम् स्तु**=शान्तिदायक हो, **वनिनः ओषधीः**=वन की ओषधियें **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों। **रजसः पतिः**=लोकों का पालक **जिष्णुः**=विजयशील पुरुष **नः शम्**-हमें शान्तिदायक हो।

भावार्थ-प्रजापालक विजयशील राजा विद्वान् स्त्री-पुरुषों को प्रजा के कल्याण हेतु नियुक्त करे। ये विद्वान् स्त्री-पुरुष अन्तरिक्ष को प्रदूषण रहित बनाने, वन की उत्तम ओषधियों द्वारा स्वास्थ्य सुरक्षित रखने आदि का उपदेश एवं मार्गदर्शन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

जलदायक सूर्य सुख दे

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

पदार्थ–वसुभिः=प्राणियों को बसने के स्थान पृथिवी आदि ग्रहों सहित **देवः**=प्रकाशक **इन्द्रः**=सूर्य और राजा, ब्रह्मचारियों सहित आचार्य **नः शं**=हमें सुख दे। **आदित्येभिः**=वर्ष के मासों सहित **वरुणः**=समुद्रादि और आदित्यसम पुरुषों सहित राजा **सु-शंसः**=स्तुत्य होकर **शम्**=सुखकारी हो। **रुद्रेभिः**=प्राणों सहित **रुद्रः**=जीव, दुष्टों के रोदक सैन्यों सहित सेनापति **जलाषः**=सन्ताप नाशक, जलवत् सुख-दाता होकर **नः शम्**=हमें शान्ति दे। **ग्नाभिः त्वष्टा**=वाणियों सहित विद्वान् और उत्तम गृहपतियों सहित गृहस्थी भी **नः**=हमारे **शं**=शान्तिदायक **शृणोतु**=वचन सुनें।

भावार्थ–प्राणियों के बसने के स्थानरूप पृथिवी, ग्रह, बादल, तथा जलदायक सूर्य आदि का ज्ञान कराने हेतु राजा उत्तम आचार्यों की सुव्यवस्था करे। शौर्यवान् तथा उत्तम जनप्रिय शासक वर्ग की नियुक्ति करे। गृहस्थियों को सद्व्यवहार सिखाने हेतु उत्तम विद्वानों की नियुक्ति करके प्रजा का हित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सोम जीवनदायी हो

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

पदार्थ–सोमः=चन्द्र और ओषधि वर्ग **नः शं भवतु**=हमें शान्तिदायक हों। **ब्रह्म**=वेद, बल, अन्न, **नः शं**=हमें शान्तिदायक हों। **ग्रावाणः**=मेघगण, विद्वान् जन **नः शं**=हमें शान्तिदायक हों। **यज्ञाः शम् उ सन्तु**=यज्ञ, देवपूजन, सत्संग हमें शान्तिदायक हों। **स्वरूणां मितयः**=अर्थप्रकाशक शब्दों के ज्ञान **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों। **प्र-स्वः**=उत्पन्न ओषधियाँ, **नः शं**=हमें शान्तिदायक हों **वेदिः शम् उ अस्तु**=वेदि, भूमि, स्त्री आदि हमें शान्तिदायक हों।

भावार्थ–राजा राष्ट्र में व्यवस्था करे कि यज्ञकुण्ड तथा सुन्दर वेदी द्वारा कल्याणकारी यज्ञों का आयोजन होवे वर्षेष्टि, पुत्रेष्टि आदि द्वारा भूमि एवं गृहस्थी जन तृप्त हों। वेद विद्या के पठन-पाठन द्वारा ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

चारों दिशाएँ शान्तिदायक हों

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

पदार्थ–उरुचक्षाः=बहुत सम्यग्-ज्ञान दर्शनों का कर्त्ता तेजस्वी **सूर्यः**=सूर्यवत् प्रकाशक विद्वान् **नः**=हमारे लिये **शं उदेतु**=शान्तिदायक होकर उदय हो। **चतस्रः प्रदिशः**=चारों दिशाएँ **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों। **ध्रुवयः पर्वताः**=स्थिर पर्वत **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों। **सिन्धवः नः शम्**=नदियों के प्रभाव हमें सुखकारी हों और **आपः शम् उ सन्तु**=जल

हमें सुखकारी हों।

भावार्थ—राष्ट्र में उत्तम विद्वानों द्वारा उपदेश कराया जावे कि चारों दिशाओं के पदार्थों से कैसे लाभ लेकर जनसमुदाय सुखी हो सकता है। जैसे—उदय होते सूर्य की किरणों द्वारा स्नान, समुद्र के खारे जल द्वारा स्नान, पर्वतों की चोटियों पर वायु स्नान तथा जल द्वारा कटिस्नान, घर्षण स्नान, मेहन स्नान व पाँव स्नान आदि से कैसे स्वास्थ्य लाभ उठाया जा सकता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आदित्य ब्रह्मचारी शान्तिदायक हो

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

पदार्थ—**अदितिः**=अखण्ड व्रती ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और माता-पिता, **व्रतेभिः**=सत्कर्मों से **नः शम्**=हमें शान्तिदायक हों। **स्वर्काः मरुतः**—उत्तम विद्वान् प्राणवत् प्रिय होकर **नः**=हमें **शं भवन्तु**=शान्तिदायक हों। **विष्णुः नः शम्**—परमेश्वर हमें शान्ति दे। **पूषाः नः शम् उ अस्तु**—पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार, पोषक प्रभु भी हमें सुखकारी हो। **भवित्रं नः शम्**=भवितव्य भी हमें सुख दे। **वायुः सम् उ अस्तु**=वायु हमें शान्तिदायक हो।

भावार्थ—राष्ट्र में आदित्य ब्रह्मचारी उत्तम विद्वान् होकर अपने सत्कर्मों-सदाचरण द्वारा उपदेश करके प्रजा के प्रिय बनें। वे ब्रह्मचारी पुष्टिकारक ब्रह्मचर्य की शिक्षा तथा व्यापक परमेश्वर की प्राप्ति के उपाय सिखाकर जनगण का मङ्गल साधें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सर्वप्रेरक प्रभु सुखदायी हो

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

पदार्थ—**त्रायमाणः**=रक्षा करता हुआ **सविता**—सर्वउत्पादक, **देवः**—सुखों का दाता प्रभु **नः शं**=हमें शान्ति दे। **विभातीः**=विशेष चमकती हुई **उषसः**—प्रभात वेलाएँ **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों। **पर्जन्यः**—शत्रु पराजय में समर्थ राजा और प्रजाओं को तृप्त करनेवाला पुरुष व मेघ **नः**=हमारी **प्रजाभ्यः**—प्रजाओं के लिये **शं भवतु**—शान्तिदाता हो। **क्षेत्रस्य पतिः**—निवास-योग्य क्षेत्र, देश और देह-पालक राजा वा प्रभु, **शंभुः**—सदा सुख का दाता, **नः शम्**=हमें शान्ति दे।

भावार्थ—इस देह के स्वामी सर्वप्रेरक प्रभु की आराधना से मनुष्य की किस प्रकार से रक्षा होती है? वह दिव्य देव भक्त को कैसे सुखी करता है? प्रात:काल की वेला=उषाकाल में जागकर कौन-कौन से लाभ होते हैं? ये सब बताने के लिए राजा उत्तम उत्तम विद्वानों की नियुक्ति करे। शत्रुओं को पराजित करनेवाला राजा प्रजाओं को तृप्त करने के लिए सुख के साधन जुटावे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सभी विद्वान् सुखदायक हों

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।

शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥

पदार्थ–विश्वदेवाः=समस्त विद्वान् **देवाः**=ज्ञान के दाता होकर **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों। **सरस्वती**=सुशिक्षायुक्त वाणी **धीभिः**=प्रज्ञाओं **सह**=सहित **शं अस्तु**=शान्तिदायक हो। **अभिषाचः शम्**=आभ्यन्तर से सम्बन्ध रखनेवाले हमें शान्ति दें। **रातिषाचः सम् उ**–बाह्य पदार्थों के लेने से सम्बन्ध रखनेवाले हमें शान्ति दें। **दिव्याः**=दिव्य **पार्थिवाः**=और पृथिवीस्थ पदार्थ **नः शम्**=हमें सुख दें। **अप्याः**=जल में उत्पन्न, मोती आदि **नः शं**=हमें सुख दें।

भावार्थ–राष्ट्र के समस्त विद्वान् जन राष्ट्र की प्रजा को ज्ञान-प्राप्ति, सुशिक्षा तथा बुद्धि-वृद्धि के उपाय बताकर कृतार्थ करें। अन्तःकरण के शोधन तथा बाहरी पदार्थों की शुद्धि का भी उपदेश करें। पृथिवी तथा जल में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का उपयोग बताकर प्रजा का कल्याण करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शान्ति-प्राप्ति हेतु सद्व्यवहार करें

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥

पदार्थ–सत्यस्य पतयः नः शम् भवन्तु=सत्य-व्यवहार के पालक हमें शान्ति दें। **अर्वन्तः**=अश्व **नः शं**=हमें सुख दें। **गावः शम् उ सन्तु**=गौएँ हमें शान्तिदायक हों। **सुकृतः**=धर्मात्मा **सु-हस्ताः**=शिल्पादि में सिद्धहस्त **ऋभवः**=शिल्पी और ज्ञानी पुरुष **नः शं**=हमें सुख दें। **हवेषु**=यज्ञों और संग्रामों के समय **पितरः**=माता-पिता, राजादि **नः शं भवन्तु**=हमें शान्तिदायक हों।

भावार्थ–उत्तम धर्मात्मा जन सत्य धर्म का उपदेश करें तथा अश्वपालन एवं गौपालन की विद्या सिखावें। यज्ञों में माता-पिता सहित पूरे परिवार को बैठने की प्रेरणा करें। सिद्धहस्त शिल्पकार शिल्प विद्या के द्वारा प्रजा का कल्याण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सर्वसुखदाता परमेश्वर सुखी करे

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥

पदार्थ–एक-पाद्=सब जगत् को एक पाद में धारण करनेवाला, **अजः**=उत्पन्न न होनेवाला, **देवः**=सुखदाता प्रभु **नः शम् अस्तु**=हमें शान्ति दे। **अहिः बुध्न्यः नः शम्**=अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ हमें शान्ति दे। **समुद्रः शम्**=सागर शान्ति दे। **अपां**=जलों में **नपात्**=चरण-रहित नौका **पेरुः**=पार उतारनेवाला होकर **नः शं**=हमें शान्ति दे। **देव-गोपाः**=शुभ गुणों का रक्षक **पृश्निः**=सुखवर्षक ज्ञानी **नः**=हमें शान्ति दे।

भावार्थ–सुखों का वर्षक ज्ञानी विद्वान् राष्ट्र की प्रजा के लिए उपदेश करे कि सब जगत् को उत्पन्न करनेवाला सर्वसुखदाता परमेश्वर जो कभी उत्पन्न नहीं होता, जो अन्तरिक्ष में मेघों को उत्पन्न करता है, समुद्र का निर्माता है वह शुभ गुणोंवाले मनुष्यों की किस प्रकार से रक्षा करके सुख पहुँचाता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

ब्रह्मचारी ज्ञान का श्रवण करें

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।

शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ १४ ॥

पदार्थ–आदित्याः=४८ वर्ष के ब्रह्मचारी **रुद्राः**–३६ वर्ष के ब्रह्मचर्यवान् और **वसवः**=२४ वर्ष के ब्रह्मचारी **इदं**=इस **नवीयः**=उत्तम **क्रियमाणं ब्रह्म**–उपदेश किये जाते ज्ञान को **जुषन्त**–स्वीकार करें। **दिव्याः**–गुणों में प्रसिद्ध, **पार्थिवासः**=पृथिवी में प्रसिद्ध **गोजाताः**–वाणी से सुशिक्षित, विद्वान् **उत**=और ये जो **यज्ञियासः**–सत्संगादि–योग्य पुरुष हैं वे **नः शृण्वन्तु**–हमारे वचन सुनें।

भावार्थ–वाक् कुशल विद्वान् जनों के उत्तम-उत्तम ज्ञान के उपदेश को आदित्य ब्रह्मचारी, रुद्र ब्रह्मचारी, वसु ब्रह्मचारी तथा यज्ञकर्त्ता जन प्रेम से सुनकर धारण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सत्संगी दीर्घायु प्राप्त करें

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १५ ॥

पदार्थ–ये–जो **यज्ञियानां देवानां**–यज्ञकर्ता, उत्तम विद्वानों में भी **यज्ञियाः**=दान, सत्कार-योग्य और **मनोः**–मननशील विद्वान् का **यजत्राः**–सत्संग करनेवाले **अमृताः**=दीर्घायु, **ऋतज्ञाः**–सत्य के जाननेवाले हैं **ते**=वे **नः अद्य**=आज **उरु-गायम्**=बहुत से उपदिष्ट ज्ञान का **रासन्ताम्**–उपदेश करें। हे विद्वान् जनो! **यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात**–तुम लोग हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो।

भावार्थ–मननशील विद्वान् यज्ञ करनेवाले, दानी, सत्संगी, दीर्घायुवाले तथा सत्य ज्ञानी जनों में उत्तम ज्ञान का उपदेश करें तथा उनकी रक्षा करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता विश्वे देवा है।

अथ पञ्चमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः

[३६] षट्त्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–भुरिक्पङ्क्तिः ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

गुरुकुल में ज्ञान-प्राप्ति

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।

वि सानुना पृथिवी सस्त्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

पदार्थ–ऋतस्य सदनात्–ज्ञान के स्थान, गुरुगृह से हमें **ब्रह्म प्र एतु**=ज्ञान प्राप्त हो। **सूर्यः**=सूर्य अपनी **रश्मिभिः**=रश्मियों से **गाः**=भूमियों को **वि ससृजे**=विशेष गुणयुक्त करे। **पृथिवी**=पृथ्वी **ऊर्वी**–विशाल होकर भी **सानुना**–उन्नत प्रदेश से **वि सस्त्रे**–विशेष जानी जाती है। जैसे **अग्निः**=अग्नि **पृथु**–विस्तृत **प्रतीकं**=प्रतीति करानेवाला प्रकाश **अधि एधे**–चमकाता है, वैसे ही विद्वान् वाणियाँ प्रकट करे।

भावार्थ–गुरुकुल में आचार्य ब्रह्मचारी को उत्तम वेदज्ञान प्रदान करे और बतावे कि सूर्य रश्मियों से भूमि विशेष गुणयुक्त कैसे बनती है तथा अग्नि कैसे प्रकाशित होता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मित्रा वरुण का वर्णन

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।

इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **मित्रा-वरुणा**=स्नेह–युक्त और दुःखवारक, शरीर में प्राण, उदान और सभा, सेनाध्यक्ष जनो! हे **असुरा**=बलवान् जनो! मैं **वां**=आप दोनों की **नवीयः**=नवीन, **सुवृक्तिम्**=दुःख-निवारक **इषम्**=इच्छा वा अन्न को प्राप्त करूँ। **वाम्**=आप दोनों में से **अन्यः**=एक **इनः**=स्वामी **पदवीः**=पद को प्राप्त **अदब्धः**=अविनाशी है, **मित्रः**=सर्वस्नेही **ब्रुवाणः**=उपदेश करता हुआ **जनं च यतति**=प्रत्येक जन को उद्यम कराता है।

भावार्थ–राष्ट्र में राजसभा का अध्यक्ष राजा तथा सेना का अध्यक्ष सेनापति ये दोनों बलवान् होवें। इन दोनों में राजा तो स्वामी है अतः वह राष्ट्र में दुःख तथा अज्ञान के निवारण व उत्तम अन्न की व्यवस्था करे। सेनाध्यक्ष अपनी प्रिय सेना के सैनिकों को निरन्तर उद्यम कराता रहे। इस प्रकार से ये दोनों मिलकर राष्ट्र को सुदृढ़ करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजसभाओं में उपदेश

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।

महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥

पदार्थ–**वृषभः**=बलवान् पुरुष **सस्मिन् ऊधन्**=अन्तरिक्ष में मेघ–तुल्य, उषाकाल में सूर्य-तुल्य तेजस्वी होकर **जायमानः**=प्रसिद्ध होकर **महः दिवः**=बड़े भारी प्रकाश, ज्ञान या लोक-व्यवहार के **सदने**=स्थान, राजसभा और गुरु–गृह में **अचिक्रदत्**=प्राप्त हो। **वातस्य ध्रजतः इत्याः सूदाः न रन्ते**=वेग से जाते हुए वायु की गतियों में जैसे वर्षाशील मेघ विहरते हैं वैसे **वातस्य**=वायु–तुल्य बलवान् ध्रजतः–वेग से जाते हुए सेनापति के **इत्याः**–गमनों को प्राप्त **सूदाः**=उत्तम करप्रद प्रजाएँ **धेनवः**=गौओं के समान **रन्ते**=सुखी होती हैं, वे **अपीपयन्त**=आप बढ़तीं और राजा को भी बढ़ाती हैं।

भावार्थ–सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् राजा प्रतिष्ठित होकर राजसभा में लोकव्यवहार का उपदेश=निर्देश करे कि सेनापति सेना को वायु के समान गतिशील व मेघ के समान बलवान् बनावे तथा प्रजा राष्ट्र की प्रगति हेतु समय पर कर प्रदान करे। इससे राजा तथा प्रजा दोनों समृद्ध होते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

हिंसकजनों को राजा दण्ड दे

गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।

प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **शूर**=वीर! हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **यः**=जो **ते**=तेरे **एता**=इन दोनों **धायू**=धारक

सु-रथाः-उत्तम रथवाले **प्रिया**-प्रिय **हरी**=अश्वों के समान बलवान् मुख्य नायक वा स्त्री पुरुषों को **गिरा**-वेद-वाणी से **युनजत्**=सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और **यः**-जो **रिरिक्षतः**=हिंसक जनो को **प्र मिनाति**-दण्डित करता है उस **मन्युम्**=मननशील **सु-क्रतुम्**=उत्तम ज्ञानवान् **अर्यमणं**-न्यायकारी पुरुष को मैं **आ ववृत्याम्**-प्राप्त करूँ।

भावार्थ-मननशील, कर्मशील, न्यायकारी राजा ऐश्वर्ययुक्त होकर अश्वों के समान बलवान् नायक को नियुक्त करे। वह नायक राष्ट्र में हिंसा फैलानेवाले हिंसक जनों को दण्डित करे। उत्तम विद्वान् राष्ट्र में वेदवाणी का उपदेश करके उन लोगों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करे। इस प्रकार से राष्ट्र आतंकवाद से रहित होगा।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

नमस्विनः

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन्।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम्॥ ५॥

पदार्थ-**ऋतस्य धामन्**=न्याय-भवन में **स्वे**-उसके जन **नमस्विनः**-नमस्कार-युक्त होकर **अस्य**-इस रुद्र के **सख्यं**=मित्रभाव और **वयः च**=जीवन-वृत्ति को **यजन्ते**=प्राप्त करते हैं, वह **नृभिः स्तवानः**=मनुष्यों से स्तुत हुआ **पृक्षः**=अन्नादि की **वि बाबधे**=विशेष व्यवस्था करता है। **रुद्राय**-दुष्टों को रुलानेवाले उसको **इदं**=इस प्रकार **प्रेष्ठं**-अतिप्रिय **नमः**-नमस्कार हो।

भावार्थ-अपनी न्याय व्यवस्था से दुष्टों को रुलानेवाले राजा के न्याय भवन में विनयभाव से अपनी समस्या का समाधान कराने के लिए प्रजाजन आया करें। राजा प्रजाजनों की जीवन वृत्ति को सुचारु रूप से चलाने के लिए अन्नादि की उत्तम व्यवस्था करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सरस्वती का सदुपयोग

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः॥ ६॥

पदार्थ-जैसे **स्वेन पयसा पीप्यानाः**-अपने जल से पूर्ण होकर **सु-धाराः**=उत्तम जलधाराएँ **सु-स्वयन्त**=खूब वेग से जाती हैं और उनमें **सरस्वती**-वेग से चलनेवाली **सप्तथी**-आगे बढ़नेवाली **सिन्धु-माता**=बहते जलों को अपने भीतर लेनेवाली माता के समान होती है। वे सब **साकं वावशानाः**=एक साथ गर्जती हुई जाती हैं। वैसे ही **सरस्वती**=वाणी, **सप्तथी**-छह मन-सहित ज्ञानेन्द्रियों के बीच सातवीं **सिन्धुमाता**=प्राण-स्रोतों की माता के समान है और शेष सब भी **सु-दुघाः**=उत्तम ज्ञान से आत्मा को पूर्ण करनेवाली **सु धाराः**=उत्तम वाणी से युक्त होकर **स्वेन पयसा**=अपने ज्ञान से आत्मा को **पीप्यानाः**=पुष्ट करती हुई **सुस्वयन्त**=सुखपूर्वक कार्य करती हैं वे **यशसः**=बलयुक्त आत्मा के अधीन **साकं**=एक साथ **वावशानाः**=विषयों को चाहती हुई **आ**=प्राप्त होती हैं।

भावार्थ-अत्यन्त वेग से बहनेवाली जल से परिपूर्ण होकर उत्तम वेग से बहनेवाली गर्जना करती हुई जो नदी समुद्र में जाकर मिल जाती है उस नदी के जल को नहर आदि के द्वारा खेतों में ले-जाकर सिंचाई हेतु उपयोग में लाने की व्यवस्था राजा को करानी चाहिए।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

विद्वानों की प्रतिष्ठा

उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः॥ ७॥

पदार्थ—उत=और **त्ये मरुतः**=वे विद्वान् **वाजिनः**=ज्ञान-सम्पन्न **मन्दसानाः**=प्रसन्न हुए **नः**=हमारे **धियं तोकं च**=बुद्धियों, कर्मों, सन्तानों की **अवन्तु**=रक्षा करें। **ते**=वे **नः**=हमारे **युज्यं रयिं अवीवृधन्**=नियुक्त ऐश्वर्य को बढ़ावें और **अक्षरा**=अविनाशी वाणी **चरन्ती**=प्राप्त होती हुई **मा नः**=हमें न **परि ख्यत्**=त्यागे।

भावार्थ—सदैव प्रसन्न रहनेवाले विद्वान् जन अपने ज्ञान के द्वारा राष्ट्र की प्रजा को उपदेश करें जिससे राष्ट्र के निवासियों की बुद्धियों, कर्मों एवं सन्तानों की रक्षा होवे। विद्वान् यह भी बतावें कि अपने ऐश्वर्य की रक्षा एवं वृद्धि हेतु राष्ट्र जन अपनी वाणी को शिष्ट बनावें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

व्यवहार का उपदेश

प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम्।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरन्धिम्॥ ८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग **वः**=अपनी **महीम्**=वाणी को **अरमतिं**=अति अधिक बुद्धि को **प्र कृणुध्वम्**=खूब बढ़ाओ और **विदथ्यं**=संग्राम में कुशल **वीरं न**=वीर पुरुष-तुल्य **पूषणं**=पोषक पुरुष को **प्र कृणुध्वम्**=सत्कार से बढ़ाओ। **भगं**=ऐश्वर्यवान् और **धियः**=ज्ञान, कर्म के **अवितारं**=रक्षक पुरुष की **प्र कृणध्वम्**=प्रतिष्ठा करो। **अस्याः सातौ**=इस वाणी को प्राप्त करने के लिये **वाजम्**=ज्ञान, **रातिषाचं**=परस्पर दान-प्रतिदान से सम्बद्ध **पुरन्धिम्**=ज्ञान-धारक विद्वान् का **प्र कृणुध्वम्**=आदर करो।

भावार्थ—विद्वान् जन राष्ट्र की प्रजा को उपदेश करें कि तुम लोग अपनी वाणी एवं ज्ञान की खूब वृद्धि करो। सैनिकों एवं सेनापति का सम्मान करो। व्यापारी वर्ग जो तुम्हारे ऐश्वर्य वृद्धि में सहायक है उसका भी सम्मान करो विद्वानों का आदर करो तथा प्रजाजन परस्पर नाना प्रकार के ज्ञानों का आदान-प्रदान किया करो।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दीर्घजीवन का उपदेश

अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ९॥

पदार्थ—हे **मरुतः**=विद्वान् और वीर पुरुषो! **अयं**=यह **नः**=आप लोगों की **श्लोकः**=शिक्षा और वाणी **श्रवोभिः**=रक्षा-साधनों, सैन्यादि से **निषिक्त-पाम्**=अभिषिक्त माण्डलिकों तथा निषिक्त गर्भों के पालक, दयालु **विष्णुम्**=सर्वव्यापक को लक्ष्य करके **अच्छ एतु**=प्राप्त हो, यह स्तुति उनको भी **अच्छ-एतु**=प्राप्त हो जो **प्रजायै गृणते**=प्रजा को उपदेश दें और **वयः धुः**=दीर्घ जीवन धारण करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **स्वस्तिभिः**=कल्याणकारी साधनों से **नः सदा पात**=हमारी सदा रक्षा करें।

भावार्थ–विद्वान् जन राष्ट्र में ज्ञान तथा व्यवहार का उपदेश करें। राष्ट्रजनों को बतावें कि आप लोग उत्तम शिक्षा तथा उत्तम वाणी के द्वारा अपने ऐश्वर्य को बढ़ाओ। रक्षा के साधन तथा सैन्य शिक्षा में राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक प्रशिक्षित हो। साथ ही ईश्वर की स्तुति एव उपासना भी सदा किया करें। इससे उत्तम तथा दीर्घ जीवन की प्राप्ति होगी।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता विश्वे देवा है।

[३७] सप्तत्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तेजस्वी पुरुष

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम्॥ १ ॥

पदार्थ–हे **वाजाः**=बलशाली जनो! हे **ऋभुक्षणः**=तेज से चमकनेवाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषो! **वः**=तुम लोगों को **रथः**=रमणीय, रसस्वरूप **अमृक्तः**=अविनाशी **वाहिष्ठः**=रथ-समान सबको उद्देश्य तक उठाकर पहुँचा देने में सर्वश्रेष्ठ **आ वहतु**=सब प्रकार से रथ के समान धारण करे; वही **स्तवध्यै**=स्तुति-योग्य है। हे **सु-शिप्राः**=सौम्य-मुख जनो! **सवनेषु**=यज्ञादि कर्मों के समय आप लोग **महभिः**=महत्त्व-युक्त **त्रिपृष्ठैः सोमैः**=तीन-तीन रूपोंवाले ऐश्वर्यों, अन्नों और ज्ञानों से **मदे**=आनन्द में **अभि पृणध्वम्**=सबको पूर्ण करो।

भावार्थ–तेजस्वी विज्ञानवेत्ता पुरुष राष्ट्र में यज्ञ विज्ञान को प्रतिष्ठित करें। यज्ञ कर्म की प्रत्येक क्रिया का विश्लेषण करके राष्ट्र तथा प्रजा जनों को तेजस्वी बनने का मार्ग प्रशस्त करें। और यह भी बतावें कि यज्ञ द्वारा ऐश्वर्य, अन्न, ज्ञान तथा आनन्द की वृद्धि होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उत्तम विद्या का दान

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम्।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम्॥ २ ॥

पदार्थ–हे **स्वर्दृशः**=आनन्द का साक्षात् करनेवाले **ऋभुक्षणः**=सत्य-प्रकाश से चमकनेवाले विद्वानो! **यूयं**=आप **मघवत्सु**=ऐश्वर्यवान् पुरुषों में **अमृक्तं**=अविनाशी **रत्नम्**=सुन्दर विद्यामय धन **ह**=अवश्य **धत्थ**=धारण कराया करो। आप **स्वधावन्तः**=उत्तम अन्न के स्वामी होकर **यज्ञेषु**=यज्ञों में **सं पिबध्वम्**=मिलकर उत्तम रस का पान करो और **मतिभिः**=ज्ञानों से **नः**=हमारे **राधांसि**=धनों को **वि दयध्वम्**=विशेषरूप से रक्षित करो।

भावार्थ–आनन्द का साक्षात् करनेवाले सत्य से प्रकाशित विद्वान् प्रजाओं में कभी नष्ट न होनेवाले अत्युत्तम विद्यारूपी धन को धारण करावें। जिस विद्या के द्वारा उत्तम अन्न तथा विविध धनों के स्वामी बन सकें। यज्ञ विद्या का प्रसार करके उत्तम आनन्द रस का पान करने की प्रेरणा भी करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञान दान

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन्! **महः**=बहुत और **अर्भस्य**=थोड़े से भी **वसुनः**=धन के **विभागे**=विभाग करने में, तू **देष्णं**=देने वा उपदेश करने योग्य ज्ञान का **उवोचिथ हि**=अवश्य उपदेश कर। **वसुना पूर्णा ते गभस्ती**=धन से भरे-पूरे तेरे बाहुओं को **असव्या**-धन के उचित विभाग का उपदेश करनेवाली **सूनृता**=उत्तम वाणी **न नियमते**=दान करने से नहीं रोकती।

भावार्थ–विद्वान् जन उपदेश करें कि हे लोगो! तुम अपने ज्ञान को दूसरों तक अवश्य बाँटों। ज्ञान दान सर्वोत्तम दान है। पात्र की खोज करके ज्ञान दान अवश्य करो चाहे थोड़ा ही क्यों न हो। यही तुम्हारी विद्या एवं वाणी का सदुपयोग है।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**निचृत्पङ्क्तिः**॥ स्वरः–**पञ्चमः**॥

साधक वेदमन्त्रों का ज्ञाता

त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा।

वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः॥ ४॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=राजन्! प्रभो! **त्वम्**=तू **ऋभुक्षाः**=सत्य-ज्ञान से दीप्तियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने, स्वयं न्याय से धन का भोग करनेवाला **वाजः न**=ऐश्वर्यवान् के समान **साधुः**=सत्कर्मनिष्ठ, **ऋक्वा**=वेद-मन्त्रों का ज्ञाता होकर **अस्तम् एषि**=गृह को प्राप्त होता है। हे **हरिवः**=मनुष्यों के स्वामिन्! **वयम्**=हम **नु**=शीघ्र ही **ब्रह्म दाश्वांसः**=ज्ञान, अन्न, धन के दाता जन **ते**=तेरे लिये **कृण्वन्तः**=सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए **वसिष्ठाः**=ब्रह्मचारी **स्याम**=हों।

भावार्थ–विद्वान् जन उपदेश करें कि हे लोगो! तुम सत्यज्ञान की दीप्ति से युक्त, बलवान्, ऐश्वर्यवान् होना चाहो तो जितेन्द्रिय, सत्य कर्मनिष्ठ होकर उत्तम ब्रह्मचारी बनो तथा साधक वैदिक विद्वानों का सम्मान करो। और उनसे वेद मन्त्रों में वर्णित साधना को सीखो।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

प्रभु से प्रार्थना

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः।

ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः॥ ५॥

पदार्थ–हे **हर्यश्व**=वेगवान् अश्वोंवाले! एवं, हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन्! **येभिः**=जिन **धीभिः**=ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से **विवेषः**=सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही **दाशुषे**=दानशील पुरुष को **प्रवतः**=उत्तम गुण-युक्त **रायः**=ऐश्वर्य **सनितासि**=देनेहारा है। **ते**=तेरी **युज्याभिः**=नियुक्त, **ऊती**=सेनाओं तथा रक्षण-नीति से प्रवाहित होकर **ते नु ववन्म**=तेरी याचना करते हैं। हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! तू **नः**=हमें **रायः**=वे ऐश्वर्य **कदा दशस्येः**=कब देगा?

भावार्थ–विद्वान् लोग प्रजाओं को प्रभु से प्रार्थना की रीति सिखावें कि हे सबके स्वामिन् प्रभो! तू अपने ज्ञान एवं कर्मों से सर्वत्र व्याप रहा है। तू अपनी रक्षाओं के द्वारा मुझ याचक की रक्षा कर और हे दानशील दानिन! तू हमें नाना ऐश्वर्यों का दान कर।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**विश्वे देवाः**॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः–**पञ्चमः**॥

हमारी बात सुनो

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः।

अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी॥ ६॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **त्वं**=तू **नः**=हम **वेधसः**=विद्वानों को **वासयसि इव**=राष्ट्र में बसा-सा रहा है। तू **नः**=हमारे **वचसः**=वचनों को **कदा**=कब **बुबोधः**=समझेगा? **वाजी अर्वा**=वेगवान् अश्व-तुल्य बलवान् पुरुष **तात्या धिया**=व्यापक बुद्धि और त्याग-युक्त कर्म से प्रेरित होकर **नः अस्तं**=हमारे घर में **सुवीरं रयिं**=उत्तम पुत्रों से युक्त धन और **पृक्षः**=अन्न **नि उहीत**=प्राप्त करावे।

भावार्थ–विद्वान् जन राष्ट्र की प्रजा को प्रेरणा करें कि तुम लोग व्यापक परमेश्वर में बुद्धि को स्थिर करके अपने कर्मों को त्याग युक्त बनाओ तथा उस प्रभु से प्रार्थना किया करो कि हमारे घर में उत्तम वीर पुत्रों, धन तथा अन्न प्रदान कर शान्ति की स्थापना करे। उस प्रियतम प्रभु से कातर भाव से बार-बार प्रार्थना कर कहो कि–हमारी बात सुनो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा परिव्राजकवत रहता है

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः।

उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥

पदार्थ–**देवी**=उत्तम स्त्री **चित्**=जैसे **निर्ऋतिः**–नित्य रमण करनेवाली, प्रसन्न रहकर **ईशे**–स्वामिनी हो जाती है वैसे **देवी**–दिव्य गुण-युक्त **निर्ऋतिः**–भूमि **यम् अभि**–जिसको प्राप्त कर **ईशे**–ऐश्वर्यवती हो जाती है **यम्**=जिस **इन्द्रम्**–ऐश्वर्ययुक्त को **शरदः सुपृक्षः**=उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष **नक्षन्तः**=प्राप्त होते हैं और **मर्त्ताः**=मनुष्य **यं**=जिसको **अस्ववेशं**–अपने गृहादि से रहित, परिव्राजक **कृणवन्त**=करते हैं वह **त्रिबन्धुः**=तीनों आश्रमों का बन्धु-मित्र होकर **जरद्-अष्टिम्**=वृद्धावस्था को **उपेति**=प्राप्त होता है।

भावार्थ–राजा का जीवन परिव्राजक=संन्यासी की भाँति होवे। जैसे संन्यासी अपना घर-परिवार आदि त्यागकर तीनों आश्रमों का मित्र होकर निस्पृह भाव से विचरण करता है उसी प्रकार राजा का भी न कोई अपना जन होता है न घर होता है। राष्ट्र ही राजा का घर तथा समस्त प्रजा उसका परिवार हो जाता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ऐश्वर्य की प्राप्ति

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ।

सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **सवितः**=सबके उत्पादक ईश्वर! **नः**=हमें **स्तवध्यै**=स्तुति करने के लिये **राधांसि आ यन्तु**=धन प्राप्त हों और **पर्वतस्य**=मेघवत् दानशील पुरुष के **रायः**=ऐश्वर्य **रातौ**–दान के निमित्त **नः आयन्तु**=हमें प्राप्त हों। **दिव्यः**–शुद्ध, **पायुः**=रक्षक **नः**=हमें **सिषक्तु**–सुखों से युक्त करे। हे विद्वान् जनो! **यूयम्**=आप लोग **नः**=हमारी **सदा**=सदा **स्वस्तिभिः पात**-कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो।

भावार्थ–विद्वान् लोग ईश्वर स्तुति-प्रार्थना करने की रीति सिखावें। प्रजा को प्रेरित करें कि निराकार, सर्वव्यापक, सर्वोत्पादक ईश्वर से ही प्रार्थना किया करें कि हे धनैश्वर्य के स्वामी प्रभो! आप हमें नाना प्रकार के धनों से युक्त करो। हे रक्षक! हमें सदा सुखी करो। विद्वान् जन यह भी बतावें कि पूर्ण पुरुषार्थ करने का नाम ही प्रार्थना है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता सविता, भग और वाजिन हैं।

[३८] अष्टात्रिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सविता** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

जगत् का उत्पादक परमेश्वर

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ १ ॥

पदार्थ-स्वः देवः सवितः=वह सुखों का दाता, जगदुत्पादक परमेश्वर **याम्**=जिस **हिरण्ययीम्**=हितकारी और रमणीय; **अमतिम्**=रूपयुक्त लक्ष्मी को **अशिश्रेत्**=धारण करता है उसको हम **उत् ययाम**=उद्यम करके प्राप्त करें। **यः**=जो **वसुः**= २४ वर्ष का ब्रह्मचारी होकर **पुरु रत्ना दधाति**=बहुत-से उत्तम गुणों और ज्ञानों को धारण करता है **नूनं**=निश्चय से वही **हव्यः**=स्तुति-योग्य और **भगः**=ऐश्वर्यवान् है।

भावार्थ-विद्वान् जन उपदेश करें कि हे लोगो! समस्त जगत् का उत्पादक तथा सब ऐश्वर्यों का स्वामी वह परमेश्वर है। वही लक्ष्मीपति है। लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहो तो पुरुषार्थ करो। ब्रह्मचारी होकर उसके गुणों एवं ज्ञान को धारण किया जा सकता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सविता** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

भूमि का रचयिता ईश्वर

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **सवितः**=ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू **उत् तिष्ठ**=सबसे ऊपर के पद पर स्थित हो। तू **अस्य**=इस प्रजा के दुःखों को **श्रुधि**=सुन। हे **हिरण्यपाणे**=हित, रमणीय व्यवहारवाले! तू **ऋतस्य**=सत्य ज्ञान और अन्न जीवनादि को **प्र-भृतौ**=उत्तम रीति से धारण करने के लिए **उर्वीम्**=विशाल, **अमतिम्**=सुन्दर **पृथ्वीम्**=भूमि को **वि सृजानः**=रचता हुआ और **मर्त्तभोजनं**=मरणशील प्राणियों के लिये भोजन और रक्षा-साधन को **आसुवानः**=सब ओर पैदा करता हुआ स्थित है।

भावार्थ-विद्वान् जन ईश्वर की सत्ता का उपदेश करें कि ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ही इस भूमि को रचता है तथा मरणधर्मा प्राणियों के लिए भोजन व रक्षा साधनों को प्रदान करता है। वही सबका अधिष्ठाता है। जीवरूपी अपनी प्रजा के दुःखों को भी वही सविता सुनता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सविता** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

परमेश्वर ही स्तुति के योग्य है

अपिष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३ ॥

पदार्थ-यम्=जिसको **विश्वे वसवः**=सब बसने योग्य पृथ्वी आदि लोक और प्राणी **आ गृणन्ति**=आदर से स्तुति करते हैं वह **देवः**=सुख-दाता और **सविता**=उत्पादक **अपि-स्तुवः अस्तु**=स्तुति योग्य है। **सः**=वह **नमस्यः**=नमस्कार करने योग्य **नः**=हमें **स्तोमान्**=स्तुति-योग्य वेद-मन्त्रों और **चनः**=अन्न का भी **आधात्**=उपदेश करता है, देता है। वह **विश्वेभिः पायुभिः**=

समस्त पालन साधनों से **सूरीन्**=पुरुषों की **नि पातु**=रक्षा करे।

भावार्थ–परमेश्वर की स्तुति का उपदेश विद्वान् जन करते हैं कि जो सर्वोत्पादक ईश्वर जो स्तुति योग्य मन्त्रों तथा अन्नादि का भी प्रदान करता है उस सर्वरक्षक प्रभु की पृथ्वी पर बसनेवाले सब प्राणी आदर से स्तुति करते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**सविता**ः॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः–**पञ्चमः**॥

सबका रक्षक परमेश्वर

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः॥४॥

पदार्थ–देवस्य=सर्व प्रकाशक, **सवितुः**=जगदुत्पादक प्रभु के **सवम्**=ऐश्वर्य को **जुषाणा**=सेवन करती हुई **देवी**=अन्नादि देनेवाली **अदितिः**=पृथिवी और प्रकृति, पत्नी के समान **यम् अभि गृणाति**=जिसका गुणानुवाद करती है और **यम् अभि सम्राजः वरुणः**=जिसकी स्तुति सम्राट् राजे और **मित्रासः**=मित्रगण तथा **सजोषाः अर्यमा**=न्यायकारी न्यायाधीश ये प्रीतियुक्त होकर करते हैं, हे पुरुषो! **सः नः चनः धात्**–वह हमें अन्न दे और **पायुभिः नि पातु**–रक्षा–साधनों से रक्षा करे।

भावार्थ–विद्वान् बताते हैं कि यह प्रकृति जिसकी महिमा का बखान करती है, चक्रवर्ती सम्राट् व राजे-महाराजे भी जिसके न्याय में रहकर स्तुति करते हैं। उस अन्न आदि से सबको रक्षा करनेवाले परमेश्वर का तुम भी गुणगान किया करो।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**सविता**ः॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

प्रभु अत्यन्त उदार है

अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु॥५॥

पदार्थ–ये–जो हम लोग **मिथः**–मिलकर **वनुषः**=ज्ञानैश्वर्यदाता **दिवः**=प्रकाशस्वरूप **पृथिव्याः**–भूमि–तुल्य विशाल **रातिषाचः**=सुखदाता प्रभु के **रातिम्**=दान को **सपन्ते**=प्राप्त करते हैं वे **उत**=और **बुध्न्यः अहिः**=आकाश में उत्पन्न मेघ–तुल्य उदार प्रभु **नः शृणोति**=हमारी विनय सुने और वह **वरूत्री**=श्रेष्ठ माता के समान **एक-धेनुभिः**–एक वाणी से बद्ध सहायकों द्वारा **नः नि पातु**=हमारी रक्षा करे।

भावार्थ–विद्वान् जन बताते हैं कि वह परमात्मा अपने भक्तों की पुकार को सुनता है। क्योंकि आकाश में घिरे बादलों की भाँति वह प्रभु बड़ा उदार है। माता जैसे बच्चे की वाणी को समझकर सुनती है वह प्रभु भी माता की भाँति रक्षा व पालना करता है। वह पिता तो भूमि के समान विशाल दानदाता है जरा माँग कर तो देखो वह अवश्य देगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**सविता भगो वा**॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः–**पञ्चमः**॥

सर्व ऐश्वर्यदाता प्रभु

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम्॥६॥

पदार्थ–देवस्य=सर्वैश्वर्य-दाता **सवितुः**=शासक, जगदुत्पादक परमेश्वर के **रत्नम्**=रमणीय, **भगम्**–ऐश्वर्य को **इयानः**=प्राप्त करता हुआ **उग्रः**=बलवान् **जास्पतिः**=प्रजा-पालक **तत्**=वह **नः**

अनु मंसीष्ट=हमें शक्ति दे। **अध**=इस प्रकार **अनुग्रः**=निर्बल पुरुष भी **अवसे**=अपनी रक्षार्थ जिस **रत्नं**=उत्तम **भगं**=ऐश्वर्य की **जोहवीति**=याचना करता है वह भी उसे **याति**=पा लेता है।

भावार्थ–विद्वान् जन बतावें कि समस्त ऐश्वर्य का दाता सर्वजगत् का उत्पादक परमेश्वर ही है। प्रजा का पालन करनेवाला राजा भी उसी से याचना करता है। निर्बल पुरुष भी उस प्रभु से ही रक्षा एवं ऐश्वर्य की याचना करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वाजिनः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

ज्ञानवान् परमेश्वर

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥ ७ ॥

पदार्थ–**देवताता**=विद्वानों और विजयेच्छुक वीरों से करने योग्य **हवेषु**=यज्ञों और युद्धों में **वाजिनः**=ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् **मितद्रवः**=परिमित गति से आगे बढ़नेवाले **स्वर्काः**=उत्तम अन्न और तेज से युक्त पुरुष **नः शं भवन्तु**=हमें सुखदाता हों। वे **अहिं**=सर्प के समान कुटिल **वृकं**=चोर और **रक्षांसि**=दुष्ट पुरुषों को भी **जम्भयन्तः**=मारते और दबाते हुए **सनेमि**=सदा **अस्मत्**=हम से **अमीवाः**=रोगों और शत्रुओं को **युयवन्**=दूर करें।

भावार्थ–विद्वानों की सम्मति से विजय के इच्छुक वीर पुरुष युद्धों में विजय पाते हुए आगे बढ़ते हैं। वे बलवान् पुरुष प्रजा को सुख देवें। कुटिल जन, लुटेरे तथा दुष्ट पुरुषों को भी मारते व दबाते हुए शत्रुओं का नाश करके राष्ट्र को सुदृढ़ बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वाजिनः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उत्तम पुरुष सन्मार्गगामी बनावें

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **वाजिनः विप्राः**=बलवान्, ज्ञानवान् विद्या-पूर्ण जनो! **अमृताः**=दीर्घायु, ब्रह्मज्ञो! हे **ऋतज्ञाः**=वेद के ज्ञाता जनो! आप **वाजे-वाजे**=प्रत्येक संग्राम में **नः अवत**=हमारी रक्षा करो। **नः धनेषु**=हमारे धनों के आश्रय पर **अस्य मध्वः पिबत**=इस मधुर सुख और अन्न का उपभोग करो। **मादयध्वं**=प्रसन्न रहो और **तृप्ताः**=तृप्त होकर **देव-यानैः**=विद्वानों से जाने योग्य **पथिभिः**=मार्गों से **यात**=जाया करो।

भावार्थ–वेद के ज्ञान से युक्त विद्वान् दीर्घायु को प्राप्त कर सत्य वेदज्ञान से जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान करें। सदा प्रसन्न रहने व अन्न का उपभोग करने हेतु सदैव सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते रहें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता विश्वे देवा है।

[३९] एकोनचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उदात्त मार्ग से चलो

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति॥ १ ॥

पदार्थ–**ऊर्ध्वः**–उदात्त मार्ग से जानेवाला **अग्निः**–अग्नि-तुल्य तेजस्वी **वस्वः**–अधीन बसानेवाले आचार्य वा प्रभु की **सुमतिम्**–शुभ मति का **अश्रेत्**–सेवन करे। **प्रतीची**–प्रत्यक्ष प्राप्त **जूर्णिः**–वृद्धावस्था **देवतातिम्**–मनुष्यों के हितकारी कार्य में **एति**–लगे। **अद्री**=अनिन्दित स्त्री–पुरुष **रथ्या इव**=रथ में जुड़े अश्वों के समान **ऋतम्**=सन्मार्ग का **भेजाते**=सेवन करें। **इषितः**–इच्छावान् पुरुष **होता न**=दाता के तुल्य **यजाति**–दान, सत्संग करे।

भावार्थ–ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी अग्नि के समान तेजस्वी बनने के लिए आचार्य के अधीन रहकर श्रेष्ठ बुद्धि एवं ज्ञान का सेवन करे। इनसे प्रेरणा पाकर वृद्धजन समाज सेवा के कार्य में लगें। उत्तम स्त्री–पुरुष लोगों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करें तथा जिज्ञासु जन दान देवें व सत्संग करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः **निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रजाओं का कल्याण

प्र वा॑वृजे सुप्र॒या ब॒र्हिरे॑षा॒मा वि॒श्पती॑व बीरि॑ट इयाते।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षस॑ः पू॒र्वहू॑तौ वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् ॥ २ ॥

पदार्थ–**एषाम्**–इन प्रजाओं के बीच **सु-प्रथाः**=उत्तम अन्नादि सम्पन्न, तृप्त करनेवाला **बर्हिः**–उसको बढ़ानेवाला पुरुष ही उनको **प्र वावृजे**=उत्तम मार्ग से चलावे। **एषाम्**=इनमें स्त्री पुरुष दोनों **वीरिटे**=अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्र के समान **विश्पती इव**–प्रजा–पालक राजा–रानी के तुल्य **हयाते**=व्यवहार करें। **अक्तोः उषसः पूर्वहूतौ**–रात्रि और दिन के पूर्वागमन–काल में **वायुः**–वायु–तुल्य प्राण–प्रिय और **पूषा**–पृथ्वी–तुल्य पोषक स्त्री–पुरुष **नियुत्वान्**–नियुक्त भृत्यादि के स्वामी होकर **विशाम् स्वस्तये**=प्रजाओं के कल्याणार्थ कार्य करें।

भावार्थ–राजा और रानी प्रजा जनों को उत्तम अन्नादि तथा आने–जाने के साधन प्रदान करें। नौकर तथा नौकरानियों सहित समस्त प्रजाओं के कल्याण के कार्य करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वायु तथा सड़क मार्गों की व्यवस्था

ज्मया अत्र॒ वस॑वो रन्त दे॒वा उ॒राव॒न्तरि॑क्षे मर्जयन्त शु॒भ्राः।
अ॒र्वाक्प॒थ उ॑रुज्रयः कृणुध्वं॒ श्रोता॑ दू॒तस्य॑ ज॒ग्मुषो॑ नो अ॒स्य ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **वसवः**=राष्ट्रवासी जनो! **अत्र**=इस राष्ट्र में आप लोग **ज्मयाः**–भूमि के मध्य **रमन्त**=प्रसन्न रहो। हे **शुभ्राः**–सुशोभित **देवाः**=स्त्री–पुरुषो! आप **उरौ**=विशाल **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में वायु-तुल्य **मर्जयन्त**–व्यवहारों को शुद्ध करो। हे **उरु-ज्रयः**=बड़े बड़े मार्गों पर चलनेहारे! आप **अर्वाक्**=हमारी ओर **पथः**=गन्तव्य **मार्ग कृणुध्वं**–मार्ग बनावें। **जग्मुषः**–जानेवाले आप लोगों के प्रति **नः**–हमारे **अस्य दूतस्य**–इस दूत के वचनों को **श्रोत**–सुनो।

भावार्थ–राजा को चाहिए कि वह राष्ट्र की प्रजा के लिए आकाश मार्ग=वायुयान आदि से आने–जाने की व्यवस्था करे। बड़े-बड़े भूमि पर चलने हेतु राजमार्गों की भी व्यवस्था करे। अर्थात् परिवहन व्यवस्था सुचारु बनावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

बड़ों का आदर करो

ते हि य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिया॑स॒ ऊमा॑ः स॒धस्थं॒ विश्वे॑ अ॒भि सन्ति॑ दे॒वाः।
ताँ अ॑ध्व॒र उ॑श॒तो य॑क्ष्यग्ने श्रु॒ष्टी भगं॒ नास॑त्या॒ पुर॑न्धिम् ॥ ४ ॥

पदार्थ–**ते**=वे **ऊमाः**=रक्षक **देवाः**=विद्वान् **विश्वे**=समस्त **यज्ञियासः**=यज्ञकर्ता **यज्ञेषु**=यज्ञों में **हि**=अवश्य **सधस्थं अभि सन्ति**=साथ बैठने योग्य सभा-स्थान में प्राप्त हों। हे **अग्ने**=तेजस्विन्! **तान् उशतः**=उन चाहनेवाले पुरुषों और **भगं**-ऐश्वर्यवान्, **नासत्वा**=कभी असत्य न करनेवाले पुरुषों और **पुरन्धिम्**=सुखों के धारक, वा पुर-रक्षक को **श्रुष्टी**=शीघ्र ही **यक्षि**-सत्कार कर।

भावार्थ–राष्ट्र में यज्ञों का प्रचलन बढ़े इसके लिए विद्वान् पुरुष समस्त यज्ञ करनेवालों को यज्ञ का प्रशिक्षण देवें। यज्ञों में विद्वान् जनों तथा सत्यवादी पुरोहितों का खूब आदर सम्मान होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सदा आनन्दित रहो

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम्।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम्॥५॥

पदार्थ–हे **अग्ने**=विद्वन्! **दिवः**=विद्युत्, सूर्य आदि और **पृथिव्याः**=पृथिवी के सम्बन्ध की **गिरः**=ज्ञान-वाणियों को **आ वह**=धारण कर। तू **मित्रं**=मित्र, प्राण वायु **वरुणं**=उदान वायु **इन्द्रं**=आत्मा, **अग्निम्**=जाठर अग्नि, **अर्यमणम्**=स्वामिवत् नियन्ता मन और **अदितिं**=अविनाशी **विष्णुम्**=परमेश्वर को **आ वह**=धारण कर। **एषां सरस्वती**=इन सबके सम्बन्ध की वेदवाणी से हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! आप **मादयन्ताम्**=प्रसन्न होवो, अन्यों को प्रसन्न करो।

भावार्थ–विद्वान् जन राष्ट्र में सूर्य और पृथिवी के सम्बन्धों का विज्ञान, प्राण विज्ञान, आत्मज्ञान, शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान तथा ब्रह्म ज्ञान को प्रतिष्ठित करें। इन विज्ञानों से सम्बन्धित वेदवाणी का प्रचार करते हुए सदैव आनन्दित रहें तथा अन्य लोगों को भी आनन्दित करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों का संग करो

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन्।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः॥६॥

पदार्थ–मैं **यज्ञियानाम्**=सत्कारोचित जनों के योग्य **हव्यं**=अन्नादि पदार्थों को **मतिभिः**=बुद्धियों और ज्ञानी पुरुषों से प्रेरित होकर **ररे**=दिया करूँ। **यज्ञियानां मर्त्यानाम्**=आदर-योग्य मनुष्यों की भी **कामं**=अभिलाषा को **नक्षत्**=प्राप्त होओ। जो विद्वान् **असिन्वन्**=हमें प्रेमादि से बाँधते हैं उन **युज्येभिः**=सहयोगी **देवैः**=विद्वानों के साथ **सक्षीमहि**=मिलकर रहें, हे विद्वान् जनो! आप लोग **सदासां**=सदा सेवन-योग्य **अविदस्यं**=अविनाशी **रयिम्**=ऐश्वर्य को **धात**=धारण करो।

भावार्थ–प्रजाजन पूजा के योग्य विद्वान् पुरुषों को अन्नादि से तृप्त कर उनसे ज्ञान तथा सद्प्रेरणाएँ प्राप्त करें। विद्वानों के संग से भौतिक तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता **विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रसन्नचित्त रहो

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥

पदार्थ–**वसिष्ठैः**–विद्वान् पुरुषों द्वारा **रोदसी**=सूर्य, भूमि के तुल्य व्यवहारयुक्त स्त्री-पुरुषों

की **अभि-स्तुते**–अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और **ऋतावानः**=ऐश्वर्य के स्वामी **वरुणः**=श्रेष्ठ, **मित्रः**–स्नेहवान् और **अग्निः**–तेजस्वी पुरुष, सभी **चन्द्राः**=आह्लादकारी होकर **नः**=हमें **उपमं**=ज्ञान और **अर्कं**=उत्तम सत्कार **यच्छन्तु**=प्रदान करें। हे विद्वान् जनो! **यूयं**–आप सब लोग **नः**–हमारी **स्वस्तिभिः सदा पात**–कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें।

भावार्थ–उत्तम विद्वानों का संग करनेवाले स्त्री-पुरुष सत्य, न्याय तथा श्रेष्ठ प्रिय आचरण करते हुए सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं। और विद्वानों से उत्तम ज्ञान-प्राप्त कर प्रशंसित होते हैं।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता विश्वे देवा है।

[४०] चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

धन सम्पन्न बनो

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम्।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे॥ १ ॥

पदार्थ–ओ–हे विद्वानो! **विदथ्या**–यज्ञों और संग्रामों में होने योग्य **श्रुष्टिः**=शीघ्रकारिता **तुराणां**=वीर पुरुषों के **स्तोमं**=समूह को **प्रति समेतु**=प्रति-पुरुष प्राप्त हो, ऐसे **स्तोमं**=जन-समूह या सैन्य को हम **दधीमहि**=धारण करें। **यद् देवाः**=जो दानशील **सविता**=सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष **अद्य सुवाति**=आज ऐश्वर्य देता है **अस्य**=उसके **विभागे**=व्यवहार में हम **रत्निनः स्याम**–धन-सम्पन्न हों।

भावार्थ–उत्तम शासन तथा ऐश्वर्यशाली दानशील तेजस्वी राजा अपने प्रिय मधुर व्यवहार तथा उत्तम धन द्वारा प्रजा को समृद्ध करे यज्ञों की रक्षा के लिए विद्वानों तथा शत्रुओं की हिंसा करनेवाले वीर पुरुषों को भी व्यक्तिगत प्रोत्साहित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा विद्वानों का सहयोग ले

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च॥ २ ॥

पदार्थ–मित्रः–स्नेही, **वरुणः**=श्रेष्ठ पुरुष, **रोदसी च**–आकाश, पृथिवी के तुल्य स्त्री, पुरुष और **इन्द्रः अर्यमा**=सूर्य, मेघ के तुल्य राजा और न्यायाधीश **नः**=हमें **तत्**=वह नाना प्रकार का **द्युभक्तम्**=बहुत दिनों तक सेवन-योग्य ऐश्वर्य **ददातु**=देवे। **अदितिः देवी**=अन्नदात्री भूमि-तुल्य विदुषी स्त्री, **भगः च वायुः च**=ऐश्वर्यवान् और बलवान् सूर्य और वायु के तुल्य तेजस्वी बली पुरुष **यत् रेक्णः**=जो धन और बल **नि-युवैते**=अच्छी प्रकार मिलकर उत्पन्न करते हैं उसका हमें भी **दिदेष्ट**=विद्वान् पुरुष उपदेश करे।

भावार्थ–न्याय प्रिय राजा अपनी प्रजा स्त्री-पुरुषों, मित्रों, श्रेष्ठ पुरुषों को भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करे। राष्ट्र की स्त्री विदुषी तथा पुरुष तेजस्वी बलवान् हों ऐसी व्यवस्था विद्वानों के सहयोग से राजा करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

सन्मार्गगामी बनो

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति॥ ३॥

पदार्थ—हे **मरुतः**=वायु-तुल्य बलवान् वीरो! हे **पृषदश्वाः**=हृष्ट-पुष्ट अश्वोंवाले सैन्य जनो! आप **यं मर्त्यं अवाथ**=जिस मनुष्य की रक्षा करते हो **सः इत् उग्रः अस्तु**=वह ही शत्रुओं को डराने में समर्थ हो। **उत**=और **ईम्**=सब ओर **तस्य सरस्वती**=उसकी वेगवती सेना **अग्निः**=अग्नि-तुल्य शत्रु को जलानेवाली हो। जिसको **जुनन्ति**=विद्वान् लोग सन्मार्ग पर चलाते हैं **तस्य रायः**=उसके ऐश्वर्यों को कोई **पर्येता न अस्ति**=छीन लेनेवाला नहीं होता।

भावार्थ—राष्ट्र की प्रजा विद्वानों के मार्गदर्शन में सन्मार्ग पर चलते हुए ऐश्वर्यशाली बने। प्रजा जन उत्तम वाणी के धनी तथा वीर बनकर शत्रुओं को भयभीत करने और आत्मरक्षा में समर्थ हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दुःखसागर से तरो

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा न नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान्॥ ४॥

पदार्थ—**अयं**=यह **हि**=ही **वरुणः**=सर्वश्रेष्ठ पुरुष **नेता**=सबका नायक होता है। **मित्रः**=सर्वस्नेही **अर्यमा**=शत्रुनियन्ता और **राजानः**=अन्य राजागण उसके अधीन **अपः धुः**=नाना काम अपने पर लेते हैं। **सुहवा**=उत्तम ज्ञान-युक्त **देवी**=अन्नादि देनेवाली, विदुषी **अदितिः**=अखण्ड चरित्रवाली माता और **अनर्वा**=अश्वादि से रहित, यन्त्रमय रथ पर जानेवाला पुरुष **ते**=वे सब **अंहः**=कष्ट से **अरिष्टान्**=बिना पीड़ित हुए **नः**=हमें **अति पर्षन्**=पार करें।

भावार्थ—राष्ट्र का नेता सर्वश्रेष्ठ होवे। वह सर्वस्नेही, शत्रु का नियन्ता होवे। राष्ट्र की स्त्रियाँ विदुषी, उत्तम चरित्रवाली होवें। यान पर आरूढ़ होकर राष्ट्रनायक प्रजाजन को पाप और दुःखों से पार करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अन्नादि से समृद्ध बनो

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्॥ ५॥

पदार्थ—**अस्य**=इस **देवस्य**=सुखप्रदाता **मीढुषः**=वीर्यसेक्ता पिता के तुल्य, **विष्णोः**=बलशाली, **एषस्य**=सबके चाहने योग्य, **हविर्भिः प्रभृथे**=अन्नों या आज्ञा-वचनों द्वारा उत्तम रीति से पोषित इस राष्ट्र में सब **वयाः**=शाखा के समान हैं। **रुद्रः**=दुष्टों का रुलानेवाला वह ही **रुद्रियं महित्वं विदे**=रुद्र होने योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है। हे **अश्विनौ**=स्त्री-पुरुषो! तुम लोग **इरावत् वर्त्तिः**=अन्नादि-समृद्ध गृह को **यासिष्टं**=प्राप्त करो।

भावार्थ—दुष्टों को दण्डित करनेवाला राजा तेजस्वी, बलवान्, पराक्रमी होवे। राजा पिता के समान, सर्वप्रिय होकर राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों को अन्नादि से खूब समृद्ध कर उनका पोषण करे।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्द:-**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वर:-**पञ्चमः** ॥

सुख की वर्षा करो

मात्र पूषन्नघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन्।

मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ६ ॥

पदार्थ-हे **आघृणे**-सब ओर दीप्त! **पूषन्**=सर्वपोषक! तू **अत्र**=इस राष्ट्र में **मा इरस्य**-विनाश मत कर। **यत्**-जो **वरूत्री**=वरण योग्य विदुषी स्त्री और जो **रातिषाचः च**-दानशील पुरुष **रासन्**=प्रदान करते हैं वे **मयः-भुवः**=सुख दाता **नः अर्वन्तः**=हमें प्राप्त होकर **नि पान्तु** रक्षा करें और **परि-ज्मा**=पृथ्वी पर शासक **वातः**-वायु-तुल्य बलवान् होकर **वृष्टिं ददातु**=प्रजा पर सुख-वृष्टि करें।

भावार्थ-राजा राष्ट्र के अन्दर किसी हिंसक को न पनपने दे। उनके तेज और ऐश्वर्य को नष्ट करके राष्ट्र को विनाश तथा अशान्ति से बचावे। और अपनी उत्तम प्रजा पर मेघ के समान खूब सुख की वर्षा करे।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**विश्वे देवाः** ॥ छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:-**धैवतः** ॥

ऋत को धारण करो

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।

यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

पदार्थ-**वसिष्ठैः**-विद्वान् पुरुषों द्वारा **रोदसी**-सूर्य, भूमि के तुल्य व्यवहारयुक्त स्त्री-पुरुषों की **अभि-स्तुते**=अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और **ऋतावानः**=ऐश्वर्य के स्वामी **वरुणः**=श्रेष्ठ, **मित्रः**=स्नेहवान् और **अग्निः**=तेजस्वी पुरुष, सभी **चन्द्राः**-आह्लादकारी होकर **नः**=हमें **उपमं**-ज्ञान और **अर्कं**=उत्तम सत्कार **यच्छन्तु**-प्रदान करें। हे विद्वान् जनो! **यूयं**-आप सब लोग **नः**=हमारी **स्वस्तिभिः सदा पात**=कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें।

भावार्थ-विद्वान् जन राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों को ज्ञान प्रदान कर अग्नि के समान तेजस्वी तथा चन्द्रमा के समान आह्लादकारी बनाकर सत्याचरण में प्रवृत्त करें। इस प्रकार के अनेक कल्याणकारी उपायों द्वारा प्रजा को ऋत नियमों की धारक बनावें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता लिंगोक्ता, भग और उषा हैं।

[४१] एकचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**लिङ्गोक्ताः** ॥ छन्द:-**निचृज्जगती** ॥ स्वर:-**निषादः** ॥

प्रभु का ध्यान

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।

प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

पदार्थ-हम लोग **प्रातः**=प्रभात में **अग्निम्**=अग्नि-तुल्य प्रभु की **हवामहे**=स्तुति करें। हम **प्रातः इन्द्रम् हवामहे**-प्रातःकाल विद्युत् वा सूर्य-तुल्य प्रकाशक परमेश्वर की उपासना करें। **मित्रा वरुणा**-प्राण और उदान दोनों को **प्रातः**=प्रातःकाल प्राणायाम द्वारा वश करें। **अश्विना प्रातः**-देह में सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्रातः सेवन करें। **भगं**=ऐश्वर्यमय, **पूषणं**-पोषक वायु का **प्रातः**=सेवन करें। **ब्रह्मणः पतिम्**=ब्रह्माण्ड, ऐश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर और वेदोपदिष्टा विद्वान् की शिष्य,

सोमम्=ओषधि की रोगी और **रुद्रं**=पापियों को रुलानेवाले प्रभु की भक्तजन **प्रातः हुवेम**=प्रातः ही सेवा करें।

भावार्थ—प्रातःकाल ब्रह्ममुहुर्त्त में जगकर मनुष्य प्राणायाम पूर्वक परमेश्वर की उपासना करे तथा उसके तेजः स्वरूप का ध्यान करे। उसके बाद वायुसेवन अर्थात् भ्रमण के लिए जावे। परमेश्वर का स्मरण करते हुए रोगी औषध का सेवन करे तथा शिष्य आचार्य के सान्निध्य में जावे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**भगः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ईशोपासना निर्धन-धनी सब करें

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥ २॥

पदार्थ—**प्रातः-जितम्**=प्रभात में सर्वाधिक उत्कर्ष पाने और **भगं**=सेवन योग्य **उग्रं**=दुष्ट-भयकारी, **पुत्रं**=बहुतों के रक्षक प्रभु की **वयं**=हम **हुवेम**=स्तुति करें, **यः**=जो **अदितेः**=अखण्ड प्रकृति, सूर्य और **विधर्त्ता**=लोकों को धारण करता है और **यं मन्यमानः**=जिसका मनन करता हुआ **यं**=जिस **भगं**=ऐश्वर्यवान् प्रभु की **आध्रः चित्**=अन्यों से धारण-योग्य और **तुरः चित्**=शीघ्रकारी **राजा चित्**=राजा भी **भक्षि**='मैं भजन करता हूँ' **इति आह**=ऐसा कहता है।

भावार्थ—सूर्य आदि विविध लोकों को धारण करनेवाला सर्वरक्षक परमेश्वर मनन करने के योग्य है। उस ऐश्वर्यशाली प्रभु की उपासना राजा-प्रजा, निर्धन-धनी सब जन करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**भगः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्रभु से विनय

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥ ३॥

पदार्थ—हे **भग**=ऐश्वर्यवन्! हे **प्रणेतः**=उत्तम मार्ग में ले जाने हारे! हे **भग**=सेवन-योग्य, हे **सत्य-राधः**=सत्यज्ञान वेद के धनी! हे **भग**=सुखदातः! आप **नः**=हमारी **इमां**=इस **धियम्**=बुद्धि को **उत् अव**=ऊपर ले चलो। **नः ददत्**=हमें दान करते हुए, हे **भग**=ऐश्वर्यवन्! **गोभिः अश्वैः**=गौओं, वाणियों और अश्वों से **प्र जनय**=उत्तम बनाइये। जिससे हे **भग**=ऐश्वर्य-स्वामिन्! हम **नृभिः**=उत्तम पुरुषों से मिलकर **नृवन्तः**=उत्तम मनुष्यों के सहयोगी होकर **प्र स्याम**=उत्तम बनें।

भावार्थ—सब मनुष्य अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए ऐश्वर्यवान् प्रभु से प्रातःकाल में विनय किया करें कि हे सब पदार्थों, विद्यमान सत्यज्ञान वेद के प्रकाशक प्रभो! आप हमारी बुद्धियों को उन्नत बनावें। फिर अपनी श्रेष्ठ बुद्धि का उपयोग ऐसे उत्तम कार्यों में करें जिससे अश्व-गौ आदि पशुओं से श्रेष्ठ बनें तथा उत्तम मनुष्यों के सहयोगी बनें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**भगः** ॥ छन्दः—**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

परमात्मचिन्तन

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ ४॥

पदार्थ—**उत इदानीं**=और इस समय, **उत प्र-पित्वे**=और ऐश्वर्य प्राप्त होने पर और

अह्नाम् मध्ये–दिनों के मध्य **उत**=और **सूर्यस्य उदिता**=सूर्योदय काल में या **उद्-इता**=अस्तकाल में भी, हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन्! हम **भगवन्तः**=ऐश्वर्यों के स्वामी **स्याम**–हों और **देवानां**–विद्व पुरुषों की **सु-मतौ**=शुभ मति के अधीन **स्याम**=रहें।

भावार्थ–व्यवहार कुशल विद्वानों के संग से शुभ मति प्राप्त करते हुए सूर्योदय काल, मध्याह्न काल तथा सूर्यास्त काल में भी समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी परमात्मा का चिन्तन किया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**भगः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

भगवान से पुकार

भग॑ ए॒व भग॑वाँ अस्तु देवा॒स्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम।

तं त्वा॑ भग स॒र्व॒ इज्जो॑हवीति॒ स नो॑ भग पुरए॒ता भ॑वे॒ह ॥ ५ ॥

पदार्थ–**भगः एव**=भजन योग्य प्रभु ही **भगवान् अस्तु**=ऐश्वर्यों का स्वामी हो। हे **देवाः**=विद्वानो! **तेन**–उससे ही **वयं**=हम सब **भगवन्तः स्याम**=ऐश्वर्यवान् हों। हे **भग**=सेवा-योग्य! **सर्व इत्**=सब ही **त्वां तं**=उस तुझको **जोहवीती**=पुकारते हैं, **सः भगः**=वह ऐश्वर्यवान् तू ही **इह**–इस लोक में **नः पुरः-एता भव**–हमारा अग्रगामी हो।

भावार्थ–प्रातःकाल जागकर भगवान् को पुकारें और कहें कि हे प्रभो! इस लोक में तू ही हमारा मार्गदर्शक है। तू ही हमारे अन्तःकरण में सुप्रेरणा किया कर। विद्वान् लोगों की संगति से उस कल्याणकारी, ऐश्वर्यों के स्वामी प्रभु का भजन नित्य किया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**भगः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रातःकाल ईश्वर प्राप्ति का व्रत लें

सम॑ध्व॒राया॒षसो॑ नमन्त दधि॒क्रावे॑व॒ शुच॑ये प॒दाय॑।

अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भगं॑ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ आ व॑हन्तु ॥ ६ ॥

पदार्थ–**उषसः**=प्रातःकाल के समय आप लोग **अध्वराय**=हिंसारहित उपासनादि के लिये और **शुचये**=पवित्र, **पदाय**=प्रभु को प्राप्त करने के लिये **दधिक्रावा इव**=बोझ लेकर चलनेवाले अश्व के समान व्रत को धारण करके आगे पैर बढ़ाते हुए **सं नमन्त**–अच्छी प्रकार झुको। **अश्वाः रथं न**–अश्व जैसे रथ को ले जाते हैं वैसे ही **वाजिनः**=ज्ञानवान् लोग **अर्वाचीनं**=साक्षात् करणीय **वसुविदं**=ऐश्वर्यों, जीवों को प्राप्त और उनसे पालने योग्य **भगं**=ऐश्वर्यमय प्रभु तक **नः आवहन्तु**=हमें पहुँचावें।

भावार्थ–प्रातःकाल की वेला में ज्ञानवान् साधकों के सान्निध्य में बैठकर यज्ञ तथा उपासना द्वारा परम पवित्र प्राप्त करने योग्य परमेश्वर की प्राप्ति के लिए दृढ़व्रती होकर साधना पथ पर बढ़ते जावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विदुषी महिला

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑ती॒ः सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।

घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वत॑ः प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ७ ॥

पदार्थ–**उषासः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः**=जैसे प्रभात वेलाएँ सूर्य किरणों और वायु से युक्त–होकर सुख देती हैं वैसे ही **उषासः**=कामना-युक्त स्त्रियाँ भी **अश्वावतीः**=

भोक्ता पुरुष से सनाथ, **गोमतीः**=उत्तम वाणियों को धारण करनेवाली, **वीर-वतीः**=वीर पुत्र-युक्त होकर **नः सदम्**=हमारे घर को **उच्छन्तु**=प्रकाशित करें। वे **घृतं दुहानाः**=गृह में दीप्तिवत्, ज्ञानप्रकाश से पूर्ण करती हुईं **विश्वतः प्रपीताः**=सब प्रकार हृष्ट-पुष्ट, तृप्त रहें। हे विदुषी स्त्रियो! **यूयं**=आप सब **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमें सदा कल्याण उपायों से रक्षा करो।

भावार्थ-विदुषी महिलाएँ प्रातःकाल ब्रह्मवेला में उठकर उत्तम वायु तथा प्रातःकालीन सूर्य किरणों का सेवन करके सुखी होती हैं। उत्तम वाणी तथा उत्तम सन्तान द्वारा घर को प्रकाशित करती हैं तथा ज्ञान के प्रकाश की दीप्तियों से घर को भर देती हैं।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और विश्वे देवा देवता है।

[४२] द्विचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**विश्वे देवाः**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

प्राण साधना

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु।

प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः॥ १॥

पदार्थ-**अङ्गिरसः**=देह में प्राणवत्, तेजस्वी **ब्रह्माणः**=वेदज्ञ पुरुष **प्र नक्षन्त**=आया करें। **क्रन्दनुः नभन्यस्य**=जैसे मेघ वायु के वेग को प्राप्त करता है वैसे ही **क्रन्दनुः**=उपदेष्टा पुरुष **नमन्यस्य वेतु**=स्तुति-योग्य प्रभु-ज्ञान का प्रकाश करे। **क्रन्दनुः**=रोदनशील, कोमल-प्रकृति स्त्री **नभन्यस्य वेतु**=सम्बन्ध योग्य पुरुष का आश्रय करे। **उदप्रुतः**=जल पूर्ण नदियों के तुल्य **धेनवः**=वाणियाँ और गौएँ **प्र नवन्त**=प्रभु की स्तुति करें और **अद्री**=पर्वतवत् स्थिर स्त्री-पुरुष **अध्वरस्य वेशः**=अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को **प्र युज्याताम्**=सम्पन्न करें।

भावार्थ-वेद के विद्वान् उपदेष्टा पुरुष हमारे पास आया करें तथा प्राण साधना सिखाकर स्तुति के योग्य प्रभु के ज्ञान का प्रकाश करें। सभी स्त्री पुरुष अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को सम्पन्न करते हुए वेदवाणियों से ईश्वर की स्तुति किया करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**विश्वे देवाः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

प्रशंसनीय वीर

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्व सुते हरितो रोहितश्च।

ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः॥ २॥

पदार्थ-हे **अग्ने**=तेजस्विन्! विद्वन्! **ते**=तेरा **सनवित्तः**=सनातन से वेद द्वारा ज्ञात **अध्वा**=मार्ग **सुगः**=सुख से गमन-योग्य है। तू भी **सुते**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये रथ में **हरितः रोहितः च**=लाल अश्वों को **युक्ष्व**=युक्त कर। **ये वा अरुषाः वीरवाहः**=जो क्रोध-रहित वीरों को ले चलनेवाले हों **देवानां जनिमानि**=उन विद्वानों और वीरों के जन्मों की मैं **सत्तः**=स्थिर होकर प्रशंसा करूँ।

भावार्थ-अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् सत्य सनातन वेदमार्ग को समस्त प्रजा के लिए प्रशस्त करें। इस वेद मार्ग पर चलकर गृहस्थीजन प्रशंसनीय वीर सन्तानों को जन्म देकर राष्ट्र के गौरव को बढ़ावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

यज्ञरूप परमेश्वर की पूजा

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके।

यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः॥ ३ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् जनो! **वः**=आप लोगों में **मन्द्रः**=स्तुत्य **होता**=उपदेष्टा **नमोभिः**=नमस्कार योग्य मन्त्रों से **यज्ञं**=यज्ञमय परमेश्वर की **महयन्**=पूजा करता हुआ **उपाके**=हमारे पास रहकर **प्र रिरिचे**=पापों से पृथक् रहता है। हे **पुर्वणीक**=बहुत सैन्यों के स्वामिन्! तू **देवान् सु यजस्व**=विद्वान् पुरुषों का सत्संग कर, उनको दान दे और **यज्ञियानाम्**=यज्ञ, प्रभु की ध्यानोपासना और सत्संगोचित्त **अरमतिं**=उत्तम बुद्धि को **आ ववृत्याः**=सब प्रकार प्रयुक्त कर।

भावार्थ–उत्तम विद्वानों के संग से सभी मनुष्य प्रभु की ध्यानोपासना तथा यज्ञ क्रिया में संलग्न होकर उत्तम बुद्धि को प्राप्त करें। इस प्रकार यज्ञमय परमेश्वर की पूजा द्वारा समस्त पापों से पृथक् रह सकेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

अतिथि यज्ञ

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत्।

सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै॥ ४ ॥

पदार्थ–यदा=जब **वीरस्य**=वीर क्षत्रिय और **रेवतः**=धनाढ्य वैश्य के **दुरोणे**=गृह में **अतिथिः**=अतिथि, विद्वान्, परिव्राजक, **स्योनशीः**=सुख से रहे और प्राप्त हो, वह **दमे**=गृह में **सु धितः**=सुखपूर्वक धारित **अग्निः**=अग्नि–तुल्य तेजस्वी पुरुष **सुप्रीतः**=प्रसन्न होकर **इयत्यै**=सुखेच्छुक **विशे**=प्रजा के लिये **वार्यं आदाति**=उत्तम ज्ञान देता और उसके हितार्थ ही स्वयं भी **वार्यम् आ दाति**=वरणीय धनादि लेता है।

भावार्थ–भ्रमणशील विद्वान्, संन्यासी, साधक, योगी, जब कभी वीर क्षत्रिय तथा धनाढ्य वैश्य गृहस्थ के द्वार पर आवें तो उन अतिथियों का प्रसन्नता पूर्वक अपने गृह पर सत्कार करें। इससे घर की सन्तति सुसंस्कारित हो ज्ञान, वीरता तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति कर सकेगी। क्योंकि ये अतिथि अपना–अपना ज्ञान गृहस्थ के घर में बाँटकर जाएँगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों की संगति करें

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः।

आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **अग्ने**=अग्नि–तुल्य तेजस्विन्! विद्वन्! **नः इमं अध्वरं**=तू हमारे इस यज्ञ को **जुषस्व**=सेवन कर। **मरुत्सु**=मनुष्यों और **इन्द्रे**=राजा में भी **नः**=हमारे **अध्वरं यशसं कृधि**=यज्ञ को कीर्ति–युक्त कर। **नक्ता उषासः**=रात और दिन, **उशन्ता**=चाहनेवाले **मित्रावरुणा**=स्नेही, परस्पर को वरण करनेवाले स्त्री–पुरुषों को **इह यज**=इस स्थान पर धर्मोपदेश दे। तू **बर्हिः सदताम्**=उत्तमासन पर विराज।

भावार्थ–गृहस्थी जन अपने घर पर यज्ञ में उत्तम विद्वानों को श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर उनसे

धर्मोपदेश सुनें। इस प्रकार वे विद्वान् तुम्हारी तथा तुम्हारे यज्ञ की कीर्ति शासक राजा आदि में तथा समस्त मनुष्यों में फैलावेंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

तेजोमय परम की आराधना

एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

पदार्थ—वसिष्ठः=उत्तम विद्वान् **रायः कामः**=ऐश्वर्यों का इच्छुक होकर **विश्वप्स्न्यस्य**=सर्वत्र विद्यमान अग्नि आदि तत्त्व के **सहस्यं**=बलोत्पादक **अग्निं**=अग्नि या विद्युत् तत्त्व का **स्तौत्**=उपदेश करे। **अस्मे**=हमारे **इषं रयिम् वाजम् पप्रथद्**=अन्न, धन का विस्तार करे। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग **नः स्वस्तिभिः सदा पात**=हमें कल्याणकारी उपायों से सदा सुरक्षित रखिये।

भावार्थ—उत्तम विद्वान् सर्वत्र व्याप्त तेजोमय परम पुरुष की आराधना की विधि गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को सिखावें तथा अग्नितत्त्व में बल की उत्पत्ति, विद्युत् तत्त्व में शक्ति, अन्न में बल उस परमेश्वर ने कैसे भर दिया है इस तत्त्वज्ञान को विस्तार से समझावें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और विश्वे देवा देवता है।

[४३] त्रिचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ज्ञान का प्रसार

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ॥ १ ॥

पदार्थ—यज्ञेषु=सत्संगों, दान आदि कार्यों में **वः**=आप लोगों में **द्यावा पृथिवी**=आकाश और भूमि को **इषध्यै**=जानने के लिये **देवयन्तः**=विद्वानों की **नमोभिः**=विनयों और अन्नादि से **प्र अर्चन्**=अच्छी प्रकार अर्चना करते हैं **येषां**=जिनके **ब्रह्माणि**=ज्ञान और धनैश्वर्य **असमानि**=सबसे अधिक हैं वे **विप्राः**=विद्वान् **वनिनः शाखाः न**=वृक्ष की शाखाओं के समान **विष्वग् वियन्ति**=सब ओर जाते हैं।

भावार्थ—आकाश में फैली सूर्य की किरणों के समान विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण राष्ट्र में जा-जाकर सत्संगों, यज्ञों व शिविरों के द्वारा ईश्वर आराधना, स्वास्थ्य साधना तथा वेद ज्ञान का प्रसार करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

यज्ञ द्वारा वर्षा

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥ २ ॥

पदार्थ—हमें **हेत्वः सप्तिः न**=वेगवान् अश्व तुल्य **यज्ञः प्र एतु**=यज्ञ प्राप्त हो। हे विद्वानो! आप **समनसः**=एकचित्त होकर **घृताचीः उद्यच्छध्वम्**=घृत-युक्त स्त्रुवे उठाओ, वा एकचित्त होकर उद्यम करो, आप **घृताचीः**=जल-युक्त मेघमालाओं को **बर्हिः**=आकाश में **स्तृणीत**=आच्छादित करो। **साधु**=अच्छी प्रकार **अध्वराय**=यज्ञ की **देवयूनि**=दीप्तियुक्त **शोचींषि**=ज्वालाएँ **ऊर्ध्वा**

अस्थुः=ऊँचे उठें।

भावार्थ–विद्वान् लोग राष्ट्र में यज्ञ विज्ञान को तेजी से बढ़ावें। ये विद्वान् यज्ञों के बड़े-बड़े आयोजनों में जाकर एकाग्रचित्त होकर घृत से भरे स्रुवों द्वारा आहुतियाँ देकर यज्ञ की ज्वालाओं को ऊँचे उठावे जिससे जलों से युक्त मेघमालाएँ आकाश में आच्छादित होकर भूमि को तृप्त करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शासक माता के गुणों से युक्त हो

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥ ३ ॥

पदार्थ–विभृत्राः पुत्रासः मातरं न=भरण योग्य पुत्र जैसे माता को प्राप्त होते हैं वैसे ही **विभृत्राः**=विशेष भृति द्वारा रक्षित राज-पुरुष **पुत्रासः न**=राज-पुत्रों के समान प्रिय होकर, **मातरं**=मातृभूमि को प्राप्त होकर **देवासः**=विजयेच्छु जन **बर्हिषः**=राष्ट्र तथा प्रजाजन के **सानौ**=समुन्नत पदों पर **सदन्तु**=विराजें। **विश्वाची**=समस्त जनों की बनी सभा **विदथ्याम्**–संग्राम-सम्बन्धिनी नीति को **आ अनक्तु**=प्रकट करे। हे **अग्ने**=तेजस्विन्! **देवताता**–यज्ञ और युद्ध में **नः मृधः**=हमारे हिंसकों को **मा कः**=मत उत्पन्न कर।

भावार्थ–राजा पंचायत सभा की सम्मति से राष्ट्रोन्नति की नीति तैयार करे तथा मातृभूमि को समर्पित राजपुरुषों=सरकारी सेवा में नियुक्त पुरुषों को योग्यता के अनुसार समुन्नत पदों पर नियुक्त करे। कुशल नायक हिंसक राष्ट्रद्रोहियों को उत्पन्न न होने दे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सत्य प्रतिज्ञाएँ

ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥ ४ ॥

पदार्थ–ते=वे **यजत्राः**=एकत्र संगत जन **ऋतस्य**=सत्य वचन और धन की **सुदुघाः धाराः दुहानाः**=सुख से पूर्ण करनेवाली वाणियों का प्रयोग करते हुए **जोषम्**=प्रीतिपूर्वक **आ सीषपन्त**=मिलकर रहें और **वः वसूनां**–बसनेवाले आप लोगों में से **महे**–पूज्य **ज्येष्ठं**=सबसे बड़े को **अद्य**=आज आप **समनसः**=समान चित्त होकर **आ गन्तन**=प्राप्त होओ और **यति स्थ**=यत्न में लगे रहो।

भावार्थ–राजकोष से वेतन पानेवाले सभी राजकर्मचारी अपनी नियुक्ति के समय ली गयी शपथ के अनुसार अपने सत्य वचन पर दृढ़ रहते हुए प्रीतिपूर्वक राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखें तथा अपने ज्येष्ठ अधिकारी के पूर्णविश्वासपात्र बने रहें ऐसा यत्न करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

लोक सेवक राजा

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **सहसावन्**=बलवन्! हे **अग्ने**=ज्ञानवन्! तू **एव**=अवश्य **विक्षु**=प्रजाओं में **आ दशस्य**=सब ओर दान कर। **त्वया युजा वयं**–तुझ से मिलकर हम **आस्क्राः**=सब प्रकार से

मानो क्रय किये हुए भृत्यवत् हों, **अरिष्टाः सधमादः**=अहिंसित और **राया**=एक साथ **सध-मादः**=प्रसन्न रहें। हे वीर पुरुषो! **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात**=आप हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो।

भावार्थ–राजा अपनी प्रजाओं को उन्नति के लिए विकास की योजनाएँ चलाकर खूब दान दे तथा उत्तम साधनों से प्रजा की रक्षा करता हुआ उदार तथा लोकसेवक बनकर रहे। इससे प्रजा राष्ट्र भक्त बनी रहेगी।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता लिंगोक्ता है।

[४४] चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**लिङ्गोक्ताः**॥ छन्दः–**निचृज्जगती**॥ स्वरः–**निषादः**॥

विद्वानों के कर्त्तव्य

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः॥ १॥

पदार्थ–हे विद्वानो! मैं **वः**=आप में से **दधिक्राम्**=शिष्यों को धारण कर उपदेश देनेवाले **प्रथमम्**=सर्व-प्रथम, **अश्विना**=सूर्य-चन्द्रवत् प्रकाशक **उषसम्**=प्रभात के समान दीप्त **समिद्धं अग्निम्**=प्रज्वलित अग्नि-तुल्य तेजस्वी, **भगम्**=ऐश्वर्यवान् पुरुष को **ऊतये**=रक्षा के लिये **हवे**=स्वीकार करूँ। मैं **इन्द्रम्**=विद्युत्, **विष्णुं**=व्यापक, **पूषणं**=पोषक, **ब्रह्मणः पतिम्**=धनादि के पालक और **आदित्यान्**=१२ मासों **द्यावा-पृथिवी**=सूर्य, पृथिवी, **अपः**=जलों, **स्वः**=सूर्य-प्रकाश और सुख को भी **हुवे**=प्राप्त करूँ।

भावार्थ–उत्तम आचार्यों के उपदेशों से ज्ञान प्राप्त करनेवाले कान्तियुक्त तेजस्वी तथा ऐश्वर्यवान् शिष्यों में से प्रजाजनों के साथ मिलकर विद्वान् लोग रक्षा, ज्ञान एवं सुख-प्राप्ति के लिए राजा का चयन करें। वह चुना हुआ राजा अन्न, धन, औषधि व जल आदि की व्यवस्था द्वारा बारहों मास प्रजा को सुख पहुँचावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**लिङ्गोक्ताः**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

विद्वानों के गुण

दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम॥ २॥

पदार्थ–हम लोग **दधिक्राम्**=राज्य भार को उठानेवालों को सन्मार्ग पर चलानेवाले राजा को **नमसा बोधयन्तः**=विनय से निवेदन करते हुए **उद्-ईराणाः**=उत्तम ज्ञान देते हुए, **यज्ञम् उप प्रयन्तः**=यज्ञ वा पूज्य पुरुष के पास जाते हुए, **बर्हिषी**=वृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र में बसे प्रजाजन में **देवीं**=गुण युक्त **इळां**=वाणी की **सादयन्तः**=व्यवस्था करते हुए **सु-हवा**=उत्तम वचन बोलनेवाले **विप्रा**=बुद्धिमान् **अश्विना**=रथी-सारथिवत् सहयोगी स्त्री-पुरुषों को **हुवेम**=प्राप्त करें।

भावार्थ–राष्ट्र के उत्तम विद्वान् राज्य के समस्त कार्यभार को चलानेवाले राजा को ज्ञान पूर्वक विनयभाव से उत्तम परामर्श देते हुए सत्संग, यज्ञ तथा पूज्य पुरुषों के समीप जाने की प्रेरणा करते रहें। दिव्य वाणी से युक्त उत्तम व्यवस्थापक राजा के साथ इन रथि-सारथिवत् सहयोगी बुद्धिमान् स्त्री-पुरुषों की सभी प्रजाजन प्रशंसा करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**लिङ्गोक्ताः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा के गुण

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम्।

ब्रध्नं मँश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु॥ ३ ॥

पदार्थ-**बुबुधानः**=निरन्तर ज्ञानवान् मैं **दधि-क्रावाणं**=धारक रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगन्ता, **अग्निम्**=अग्नि-तुल्य तेजस्वी, **उषसं**=प्रभात तुल्य दीप्त, **गाम्**=पृथिवी समान गतिमान् **मंश्चतः वरुणस्य**=अभिमानी के नाशक राजा के **बभ्रुं**=भरण-पोषण करनेवाले **ब्रध्नं**=आकाश वा सूर्य-समान अन्यों को अपने में बाँधनेवाले पुरुषों से **उप ब्रुवे**=प्रार्थना करता हूँ कि **ते**=वे **अस्मत्**=हमसे **विश्वा दुरिता यावयन्तु**=सब बुराइयाँ दूर करें।

भावार्थ-उत्तम राजा निरन्तर ज्ञानवान, समर्थ, सदा आगे बढ़नेवाला, तेजस्वी, कान्तियुक्त, अभिमानी लोगों का नाश करनेवाला तथा विद्वानों से सदैव ज्ञान की याचना करनेवाला होता है। वह प्रजा का भरण-पोषण, सबको अपने विश्वास से बाँधनेवाला तथा राष्ट्र से बुराइयों का नाश करनेवाला होवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**लिङ्गोक्ताः** ॥ छन्दः-**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

मन्त्रिमण्डल निर्माण

दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन्।

संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः॥ ४ ॥

पदार्थ-दधिक्रावा का स्वरूप। **रथानाम् अग्रे वाजी**-रथों के आगे जैसे वेगवान् अश्व मुख्य होता है वह **दधिक्रावा**=रथी, सारथी तथा अन्यों के धारक रथ को लेकर चलने से 'दधिक्रावा' है, वैसे **प्रजानन्**=उत्तम ज्ञानवान् पुरुष भी **रथानां**=रमणीय, व्यवहारों के **अग्रे**=मुख्य पद पर **प्रथमः**=सर्वप्रथम, **भवति**-होता है, वह भी **दधिक्रावा**=कार्य-भार को उठानेवाले पुरुषों को उपदेश देकर ठीक राह पर ले चलने से 'दधिक्रावा' है। वह **उषसा**=प्रभात-तुल्य कान्तियुक्त, **सूर्येण**-सूर्यवत् तेजस्वी राजा **आदित्येभिः**=१२ मासों के समान नाना प्रकृति के विद्वान् अमात्यों, **वसुभिः**-वा प्रजा में बसे, ब्रह्मचारी आठ विद्वानों और **अंगरिभिः**-अंगारों के समान तेजस्वी या बलस्वरूप प्राणोवत् देश के प्रिय पुरुषों से **संविदानः**=ज्ञान की वृद्धि करे।

भावार्थ-राजा ऐसे ज्ञानवान्, व्यवहार कुशल पुरुष को अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त करे जो राज्य के समस्त कार्यभार को अपने ऊपर उठाने में समर्थ हो तथा अपने अन्य सहयोगी मन्त्रियों को उपदेश देकर ठीक राह पर चला सके। राजा अन्य मन्त्री पदों पर भी विभिन्न विषयों वा विद्याओं के विद्वानों को नियुक्त करे जो राष्ट्र की प्रजा में ज्ञान की वृद्धि करने में समर्थ तथा प्रजाप्रिय हों।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**लिङ्गोक्ताः** ॥ छन्दः-**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

सन्मार्ग दर्शन

आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ।

शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः॥ ५ ॥

पदार्थ-जैसे **दधिक्राः**=रथ वा मनुष्यों को ले चलने में समर्थ अश्व मार्ग में चलते हुए अच्छी चाल प्रकट करता है वैसे ही **नः**=हममें से **दधि-क्राः**=सहयोगी जनों को साथ लेकर

बढ़नेवाला पुरुष **ऋतस्य पन्थाम् अन्वेतव**=न्याय-मार्ग को स्वयं चलने और औरों को चलाने के लिये **नः**=हमारे लिये **पथ्याम्**=हितकारिणी नीति को **अनक्तु**=प्रकट करे। वह सन्मार्ग प्रकट करने से **अग्निः**=अग्नि-तुल्य प्रकाशक **नः**=हमारे **दैव्यं**=मनुष्य-हितकारी **शर्धः**=बल को **शृणोतु**=सुने. जाने और **विश्वे**=समस्त **अमूराः**=मोह-रहित, **महिषाः**=बड़े लोग भी **शृण्वन्तु**=हमारे कार्यों को सुनें।

भावार्थ-राष्ट्र का नियुक्त प्रधानमन्त्री सभी सहयोगी जनों को साथ लेकर चलनेवाला, सत्य व न्याय के मार्ग पर स्वयं चलने व अन्यों को चलानेवाला, राष्ट्रहित की नीति लागू कर सबका हितकारी तथा प्रजा की समस्याओं को ध्यान से सुननेवाला पुरुष ज्ञानी तथा निष्पक्ष होना चाहिए।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता सविता है।

[४५] पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**सविता**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

बनें सूर्य सम तेजस्वी

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः।

हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम॥ १॥

पदार्थ-सविता देवः=प्रकाशक सूर्य के तुल्य **सविता**=प्रेरक पुरुष **अन्तरिक्ष प्राः**=आकाश को व्यापनेवाला, **सु-रत्नः**=उत्तम रत्नों के तुल्य रमणीय गुणों का धारक, **अश्वैः वहमानः**=अश्वों के तुल्य विद्वानों की सहायता से कार्य-भार उठाता हुआ **आ यातु**=आवे। वह **हस्ते**=हाथ में **पुरूणि**=बहुत से **नर्या**=मनुष्यों के हितार्थ पदार्थों को **दधानाः**=धारण करता, **नि वेशयन् च**=सबको बसाता, **प्र-सुवन् च**=और ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ प्राप्त हो।

भावार्थ-राजा सूर्य समान तेजस्वी, सबका प्रेरक तथा विद्वानों की सहायता से समस्त राजकार्य करनेवाला होवे। सबके हित की नीति बनाकर सबको बसने का उत्तम रीति तथा शासन-व्यवस्था लागू करे। सबके लिए ऐश्वर्य प्राप्ति के साधन उपलब्ध करावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**सविता**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

कर्म का महत्त्व

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम्।

नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम्॥ २॥

पदार्थ-अस्य=इसकी **शिथिरा**=शिथिल **बृहन्ता**=बड़ी-बड़ी **हिरण्यया**=सुवर्ण-मण्डित **बाहू**=बाहुएँ **दिवः अन्तान्**=विजय-योग्य व्यवहारों के पार तक **उत् अनष्टाम्**=उत्तम रीति से पहुँचती हैं। **नूनं**=निश्चय से **अस्य**=इसका **सः महिमा**=वह सामर्थ्य **पनिष्ट**=स्तुति-योग्य है कि **सूरः चित्**=विद्वान् पुरुष **अस्मै**=इसकी **अपस्याम्**=कर्माभिलाषा में **अनु दात्**=सहयोग देता है।

भावार्थ-राष्ट्र को समृद्ध बनाने की ऐश्वर्यशाली योजनाएँ तथा विजय प्राप्ति की नीतियों को विद्वानों के सहयोग से तैयार कर पूर्ण करनेवाले राजा को कर्म कुशलता निश्चय से प्रशंसनीय हैं।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सविता** ॥ छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:-**धैवतः** ॥

प्रजा पालन

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

पदार्थ-सः देवः सविता=वह सर्वसुखदाता ऐश्वर्यवान् राजा **सहावा**=बलवान् **वसुपतिः**=धनों का स्वामी होकर **वसूनि**=धनों को **साविषत्**=पैदा करे। **उरूचीं**=बहुत पदार्थों को प्राप्त करनेवाली **अमतिम्**=नीति को **वि-श्रयमाणः**=विशेषतः आश्रय लेता हुआ **नः**=हमें **मर्त्त-भोजनं**=मनुष्यों से भोगने योग्य भोग **रासते**=दे।

भावार्थ-राजा राष्ट्र को समृद्ध करने की महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का आश्रय लेकर मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य, मनुष्यों का पालन, शासन और न्याय प्रदान कर प्रजा का प्रिय बने।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सविता** ॥ छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:-**धैवतः** ॥

प्रशंसित वाणी

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम्।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

पदार्थ-इमाः=ये **गिरः**=वाणियाँ **सु-जिह्वं**=उत्तम वाणी बोलनेवाले **पूर्ण-गभस्तिम्**=पूर्ण रश्मि-युक्त सूर्य के समान पूरे परिमाण की बाहुओंवाले, **सुपाणिम्**=उत्तम हाथोंवाले, **सवितारं**=शासक, आज्ञापक पुरुष की **ईडते**=प्रशंसा करती हैं। वह विद्वान् पुरुष **अस्मे**=हमें **चित्रं**=अद्भुत **वयः**=ज्ञान और बल **दधातु**=दे। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग **नः**=हमारा **सदा**=सदा **स्वस्तिभिः पात**=कल्याणकारी साधनों से पालन करें।

भावार्थ-विद्वान् पुरुषों की उत्तम वाणियाँ तथा व्यवहार कुशलता ही उनकी प्रशंसा का कारण होती हैं। उनका अद्भुत ज्ञान और बल सबके लिए सदैव कल्याणकारी होता है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता रुद्र है।

[४६] षट्चतवारिंशं सूक्तम्

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**रुद्रः** ॥ छन्द:-**विराड्जगती** ॥ स्वर:-**निषादः** ॥

सेनापति के कर्त्तव्य

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥

पदार्थ-हे विद्वान् पुरुषो! **इमाः**-ये **गिरः**=उत्तम वाणियें, **स्थिर धन्वने**=स्थिर धनुषवाले, **क्षिप्रेषवे**=वेग से बाण चलाने में चतुर, **देवाय**=विजयेच्छुक, **स्वधाव्ने**=राष्ट्र, जन और तन आदि की रक्षा में कुशल, **अषाढाय**=शत्रुओं से अपराजित **सहमानाय**=शत्रुओं को पराजित करनेवाले, **वेधसे**=कार्यों के विधान करनेवाले, **तिग्मायुधाय**=तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों के स्वामी, **रुद्राय**=दुष्टों को रुलानेवाले राजा के प्रति **भरत**=कहो और वह **नः**=हमारे निवेदन **शृणोतु**=सुने।

भावार्थ-विद्वान् लोग राजा व सेनापति को उनके कर्त्तव्य का उपदेश करे कि तुम दृढ़ लक्ष्यभेदी, तीव्र अस्त्र चलाने में चतुर, राष्ट्र तथा प्रजाजन की रक्षा में कुशल व तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों के स्वामी बनो। तभी राष्ट्र सुरक्षित व समृद्ध बनेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**रुद्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ऐश्वर्यशाली साम्राज्य

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव॥ २॥

पदार्थ–सः=वह राजा **क्षम्यस्य**=क्षमा-योग्य **जन्मनः**=प्राणी या जनों के **क्षयेण**=निवास और **दिव्यस्य**=आकाश से होनेवाले **क्षयेण**=वृष्टि आदि ऐश्वर्य तथा **साम्राज्येन**=साम्राज्य से **हि**=निश्चय से **चेतति**=जाना जाय। हे राजन्! तू **अवन्तीः अवन्**=रक्षक सेनाओं और प्रजाओं की रक्षा करता हुआ **नः**–हमारे **दुरः**–बनाये द्वारों के **उपचर**=पास आ। हे **रुद्र**=दुष्टों को रुलानेवाले विद्वन्! **नः**=हमारे **जासु**=सन्तानों के बीच तू **अनमीवः**=रोगरहित और अन्यों को रोगों से मुक्त करनेवाला **भव**=हो।

भावार्थ–राजा वा सेनापति राष्ट्र के निवासियों को ऐश्वर्यशाली बनावे तथा अपने साम्राज्य का विस्तार करे। उसकी पहचान विशाल ऐश्वर्यशाली साम्राज्य के नाते ही होवे। राजा अपनी सेनाओं को प्रजा के घरों तक भेजे ताकि कोई दुष्ट प्रजा जनों को दुःख न पहुँचा सकें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**रुद्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

सेनापति का पराक्रम

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः॥ ३॥

पदार्थ–हे **सु-अपिवात**=उत्तम रीति से शत्रुओं को प्रचण्ड वायु के सदृश प्रबल आक्रमण से दूर करने हारे! **या**=जो **ते**=तेरी **दिद्युत्**=चमचमाती सेना **दिवः परि**=विजय-कामना से सब ओर **अवसृष्टा**=छोड़ी हुई **क्ष्मया**=भूमि के साथ **परि चरति**=जाती है **सा नः**=वह हमें **परि वृणक्तु**=कष्ट न दे। हे विद्वन्! **ते**=तेरी **सहस्रं भेषजा**=सहस्रों ओषधियाँ हैं। तू **नः तोकेषु**=हमारे बच्चों और **तनयेषु**=पुत्रों पर **मा रीरिषः**=हिंसा का प्रयोग मत कर।

भावार्थ–सेनापति अपनी सेना के प्रचण्ड प्रहार से शत्रु को नष्ट कर देवे तथा उसकी तेजस्वी सेना शत्रु राष्ट्र में सर्वत्र फैलकर उसकी भूमि को अपने अधिकार में लेवे। इस विजय अभियान में बच्चों व निर्बलों पर बल प्रयोग न करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**रुद्रः** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

कृपालु सेनापति

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४॥

पदार्थ–हे **रुद्र**=दुष्टों को रुलानेवाले! तू **नः मा वधीः**=हमें मत मार। **मा परा दाः**=हमें मत त्याग। हम **हीडितस्य**=क्रुद्ध हुए **ते**=तेरे **प्रसितौ**=बन्धनागार में **मा भूम**=न हों। तू **जीवशंसे**=जीवित जनों से प्रशंसनीय **बर्हिषि**=वृद्धिशील राष्ट्र में **नः**=हमें **आ भज**=प्राप्त हो। हे विद्वानो! **यूयं**=आप **नः**=हमारा **स्वस्तिभिः सदा पात**=उत्तम साधनों से सदा पालन करो।

भावार्थ–वही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है जहाँ निर्दोषों को दण्डित तथा निर्बलों को पीड़ित नहीं किया जाता। सेनापति निरपराधों को कारागार में न डाले। दुष्टों को दण्ड अवश्य दिया जावे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता आपः है।

[४७] सप्तचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आपः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

आप्तजनों के कर्त्तव्य

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम॥ १॥

पदार्थ-जैसे **देवयन्तः**=सूर्यवत् रश्मियें **इडः**-अन्न या भूमि के **उर्मिम्**-ऊपर उठनेवाले जलों के अंश को **इन्द्रपानम् अकृण्वत**=सूर्य द्वारा पान करने योग्य करते हैं वैसे ही हे **आपः**-विद्वान् प्रजाओ! **देवयन्तः**-राजा के तुल्य आचरण करते हुए राजपुरुष **वः**=आप में से **यं**-जिस **प्रथमं**=अग्रगण्य **ऊर्मिम्**=तरंग-तुल्य उन्नत पुरुष को **इडः**=भूमि और वाणी के ऊपर **इन्द्र-पानं**=राजावत् पालक-रूप से **अकृण्वत**=नियत करते हैं **वयं**-हम लोग **तं**-उस **शुचिम्**=शुद्ध, **अरि-प्रम्**=निष्पाप **घृत-प्रुषं**=जल से अभिषिक्त **मधुमन्तं**=मधुरवाणीवाले पुरुष को **अद्य**=आज **वनेम**=प्राप्त हों।

भावार्थ-राष्ट्र की प्रजा विद्वान् होवे। विद्वान् आप्तजन, दिव्य आचरणवाले, प्रजा पालक वृत्तिवाले, धार्मिक, निष्पाप, मधुर स्वभाववाले, उन्नत पुरुष को राजा के पद पर अभिषिक्त करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आपः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

आप्तजनों के गुण

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य॥ २॥

पदार्थ-**यस्मिन्**=जिसके सहारे **इन्द्रः**=राजा **वसुभिः**=बसे प्रजाजनों के साथ **मादयाते**=सबको प्रसन्न करता है, हे **आपः**=आप्त जनो! **तं वः ऊर्विम्**=आप लोगों के उस उत्तम **मधुमत्तमं**=अति मधुर गुणों से युक्त पुरुष वर्ग को **आशु-हेमा**=सेना वा अश्वों को शीघ्र प्रेरक **अपां नपात्**=जलों में नाव के तुल्य तारक, प्रजाओं को नीचे न गिरने देने हारा पुरुष **अवतु**=बचावे। हे विद्वानो! **वः**-आप लोगों के ऐश्वर्यमय अंश को हम **देवयन्तः**=चाहते हुए **अश्याम**=प्राप्त करें।

भावार्थ-आप्तजन=वेदानुसार आचरणवाले विद्वान् पुरुष अपने उपदेशों द्वारा प्रेरणा करके राजनियम के पालन द्वारा प्रजाजनों को व्यवस्था में बाँधकर नीचे न गिरने दें। राजा तथा सेनापति को भी राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा करके उनमें मधुर गुणों का समावेश करें। इस प्रकार राजा-प्रजा को परस्पर जोड़कर रखें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आपः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

देवमार्ग

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत॥ ३॥

पदार्थ-**शत-पवित्राः**-सैकड़ों रश्मियों से पवित्र **देवीः**=दिव्य गुण-युक्त जलांश **स्वधया**-अक्षांश से **मदन्तीः**=प्रजाओं को तृप्त करते हुए **देवानां**=सूर्य-रश्मियों के **पाथः अपियन्ति**=मार्ग को प्राप्त करते हैं। ऐसे ही **शत-पवित्राः**-सैकड़ों उत्तम संस्कारों से पवित्राचरणवाली **देवीः**=उत्तम

स्त्रियाँ **स्वधया**=अन्नादि से **मदन्तीः**=आनन्द लाभ करती हुईं **देवानां**=विद्वान् पुरुषों के **पाथः**=पालन योग्य ऐश्वर्य को **अपियन्ति**=प्राप्त करती हैं। **ताः**=वे **इन्द्रस्य**=ऐश्वर्य-युक्त पति के **व्रतानि**=कर्मों को **न मिनन्ति**=नाश नहीं करतीं। **सिन्धुभ्यः**=पुरुषों को सम्बन्धों से बाँधनेवाली उन स्त्रियों के भी **घृतवत्**-घृत-युक्त **हव्यं**=जलों या खाद्य अन्नों का उत्पादक अंश 'इन्द्रपान' अर्थात् जीवों के उपभोग-योग्य इस अंश को रश्मियें उत्पन्न करती हैं।

भावार्थ-उत्तम जन सूर्य की किरणों द्वारा शोधित जल व अन्न पान द्वारा तृप्त होकर देवमार्ग के गामी होते हैं। विदुषी स्त्रियाँ भी ऐसे अन्न-जल का पान करके उत्तम संस्कारोंवाली होकर अपने व्रतों=सुकर्मों द्वारा यज्ञशील बनती है। वे भी देवमार्ग की गामिनी होती हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आपः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

उन्नत कृषि

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

पदार्थ-**सूर्यः**=सूर्य **रश्मिभिः**=किरणों से जैसे जलों को **आततान**=आकाश में फैलाता है और **याभ्यः**=जिन जलों के लिये **इन्द्रः**=विद्युत् **ऊर्मिम्**=गमन-योग्य **गातुम्**=मार्ग को **अरदद्**=बनाता है, वैसे ही **सूर्यः**=तेजस्वी पुरुष **रश्मिभिः**=रश्मियों के समान अधीन शासकों से **याः आततान**=जिन आप्त प्रजाओं को विस्तृत करता है और **याभ्यः**=जिन प्रजाओं के हितार्थ **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् पुरुष **ऊर्मिम्**-उन्नत भूमि को **अरदत्**=कृषि द्वारा सम्पन्न करता है। **ते**=ये **सिन्धवः**=जलधाराएँ **वः**=हमें **वरिवः धातन**-उत्तम धन दें। हे उत्तम प्रजाजनो! **ते**=वे **यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात**=आप लोग हमारा सदा उत्तम उपायों से पालन करो।

भावार्थ-राजा अपने राष्ट्र में उन्नत कृषि की योजनाएं बनाकर राष्ट्र को समृद्ध बनावे। इसके लिए नदियों के जल को नहरों द्वारा खेतों तक ले-जाकर सिंचाई की व्यवस्था करे। विद्वानों के सहयोग से यज्ञ-विज्ञान द्वारा वृष्टि यज्ञ के आयोजन करावे। ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाने की तकनीक विकसित करावे। इस प्रकार से उन्नत कृषि द्वारा प्रजा का पालन करे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और ऋभव तथा विश्वे देवा देवता है।

[४८] अष्टचत्वारिंशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**ऋभवः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

आवागमन के साधन

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

पदार्थ-हे **ऋभुक्षणः**=ऐश्वर्य सेवनकर्ता पुरुषो! हे **वाजाः**=ज्ञानी पुरुषो! हे **मघवानः**=धनों के स्वामी जनो! हे **नरः**=नायको! आप **सुतस्य**=उत्पन्न ऐश्वर्य से **अस्मे**=हमें **मादयध्वम्**=सुखी करो। **वः**=आप में से **अर्वाचः**=नये-नये **क्रतवः न विभ्वः**=बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यवान् पुरुष **यातां**=यात्री जनों के लिये **नर्थ रथं**=मनुष्यों को सुखदायी रथ **वर्त्तयन्तु**=चलाया करें।

भावार्थ-राष्ट्र के प्रतिभाशाली ज्ञानी पुरुष धनवान् लोगों के सहयोग से अपनी बुद्धि द्वारा राष्ट्र में आवागमन के साधनों का विकास करें जिससे यात्री तथा व्यापारियों को सुविधा होवे और राष्ट्र समृद्ध बने।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**ऋभवः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अस्त्र-शस्त्र निर्माण

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्॥ २ ॥

पदार्थ—वः=आप में से **ऋभुः**=सत्य, यज्ञ, धन से चमकनेवाला पुरुष **ऋभुभिः**=वैसे ही सत्य धनादि-समृद्ध पुरुषों के साथ मिलकर और **वाजः**=बलवान् पुरुष भी **वाज-सातौ**=युद्ध-काल में **अस्मान् अवतु**=हमारी रक्षा करे। हम **विभ्वः**=विशेष बलशाली होकर **विभुभिः**=विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों से मिलकर **शवसा**=बल से **शवांसि**=शत्रु सैन्यों को **अभि स्याम**=हरायें और **युजा**=सहयोगी **इन्द्रेण**=ऐश्वर्यवान् राजा से मिलकर **वृत्रं तरुषेम**=बढ़ते शत्रु का नाश करें।

भावार्थ—राजा को योग्य है कि राष्ट्र की रक्षा हेतु युद्ध सामग्री अर्थात् अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करावे जिससे युद्धकाल में शत्रु को पराजित करके राष्ट्र की प्रजा, ऐश्वर्य तथा सीमाओं की रक्षा कर सके। बिना उन्नत अस्त्र-शस्त्रों के शत्रु का नाश सम्भव नहीं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**ऋभवः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

युद्धकौशल

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन्।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम्॥ ३ ॥

पदार्थ—इन्द्रः=ऐश्वर्यवान्, **ऋभुः-क्षाः**=तेजस्वी पुरुषों को बसाने हारा **वाजः**=संग्राम-कुशल **अर्यः**=स्वामी, **शत्रोः मिथत्या**=शत्रु को मारने के लिये **विभ्वान्**=बड़े समर्थ पुरुषों को प्राप्त करे। वे **नृम्णम्**=धनैश्वर्य को **वि कृणवन्**=विविध प्रकारों से उत्पन्न करें। **उपरताति**=मेघादि के तुल्य शरवर्षी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध में **ते चित् हि**=वे ही **विश्वान् अर्यः**=सब बढ़ते शत्रुओं को मारें और **शासा**=शस्त्र-बल से **पूर्वीः**=पहले की सेनाओं को भी **अभि सन्ति**=मात करें।

भावार्थ—राजा वा सेनापति तेजस्वी व संग्राम कुशल होवे। जो वीर सैनिकों तथा बलवान् योद्धाओं के सहयोग से रणकौशल योजनाएं बनाकर, मेघ के समान गोलियों की बौछार करते हुए शत्रु सेना संहार कर आगे बढ़ें तथा शासन और शस्त्रबल से युक्त सेना की टुकड़ियों को इधर-उधर भेजकर सामञ्जस्य बनाए रखे। जिससे शत्रु श्रीहीन होकर अधीनता स्वीकार कर लेवे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**ऋभवो विश्वे देवा वा** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऐश्वर्यशाली प्रजा

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४ ॥

पदार्थ—देवासः=विद्वान् **नः**=हमारी **वरिवः**=ऐश्वर्य-वृद्धि **कर्तन**=करें। **विश्वे देवासः**=सब वीर **स-जोषाः**=प्रीतियुक्त होकर **नः अवसे भूत**=हमारी रक्षार्थ तैयार रहें। **वसवः**=बसे प्रजाजन, बसानेवाले शासक **अस्मे**=हमें **इषं ददीरन्**=इच्छानुकूल ऐश्वर्य दें। हे विद्वानो! **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करें।

भावार्थ—राजा अपनी प्रजा को रक्षा प्रदान करने के लिए वीर पुरुषों को नियुक्त करे जो

हर समय तैयार रहें। और प्रजा के लिए सरकारी सेवा, व्यापार तथा कृषि आदि की समुचित व्यवस्था करे जिससे प्रजा ऐश्वर्यशाली बने।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता आपः है।

[४९] एकोनपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आपः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राष्ट्र रक्षा

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः।

इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ १॥

पदार्थ–समुद्र-ज्येष्ठाः=एक साथ ऊपर उठनेवाले, मेघों में स्थित, **देवीः आपः**=उत्तम जल **अनिविशमानाः**=कहीं भी स्थिर न रहते हुए, **सलिलस्य मध्यात् पुनानाः**=अन्तरिक्ष के बीच में से पवित्र करते हुए **यन्ति**=आते हैं। **याः**=जिनको **वज्री इन्द्रः**=तीव्र बल से युक्त विद्युत् वा सूर्य, **वृषभः**=वर्षणशील मेघ या वायु **रराद**=छिन्न-भिन्न करता है। **ताः आपः**=वे जल **इह**=इस पृथिवी पर **माम्**=मुझ बसे प्रजाजनों को **अवन्तु**=रक्षा करते हैं।

भावार्थ–उत्तम प्रजाएँ अपार बलशाली पुरुष को पवित्र जलों के द्वारा राजाध्यक्ष के पद पर अभिषिक्त करे। यह बलशाली राजा राष्ट्र की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करके अपने अधीन कर राष्ट्र की रक्षा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आपः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

जल संरक्षण

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।

समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ २॥

पदार्थ–याः=जो **आपः**=जल-धाराएँ **दिव्याः**=आकाश में उत्पन्न या सूर्य, विद्युतादि से उत्पन्न **उत वा**=और जो **स्रवन्ति**=बहती हैं जो **खनित्रिमाः**=खोदकर प्राप्त की जायें **उत वा**=और **याः स्वयं-जाः**=जो स्वयं आप से आप भूमि से उत्पन्न हुई हों, **याः**=जो **समुद्रार्थाः**=समुद्र, आकाश से आनेवाली या समुद्र को जानेवाली **शुचयः**=शुद्ध **पावकाः**=पवित्र करनेवाली **आपः**=जलधाराएँ हैं वे **देवीः**=उत्तम गुणों से युक्त होकर **इह माम् अवन्तु**=इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें।

भावार्थ–राजा को चाहिए कि वह आकाश से बादलों द्वारा बरसनेवाले जल का संरक्षण करे। भूमि खोदकर कुएँ से प्राप्त जल, पर्वतों या भूमि से अपने आप स्रोतों से बहनेवाले जल तथा नदियों द्वारा समुद्र की ओर जानेवाली धाराओं के जलों को संरक्षित करे। और उन जलों को शोधित कर पवित्र बनाकर पीने सिचाई के योग्य बनाकर राष्ट्र की रक्षा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आपः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राज्य व्यवस्था

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।

मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ ३॥

पदार्थ–यासां मध्ये=जिन प्रजाजनों के बीच अभिषिक्त होकर **वरुणः**=प्रजा द्वारा स्वयंवृत राजा **जनानाम्**=सब मनुष्यों के **सत्यानृते**=सत्य और झूठ का **अवपश्यन्**=विवेक करता हुआ

याति–प्राप्त होता है। वे **मधुश्चुतः**=मधुर गुणों से युक्त, **शुचयः**=शुद्ध और **याः**=जो **पावकाः**=पवित्र करनेवाली हैं **ताः देवीः आपः**=वे जलधाराएं और विद्वान् प्रजाएं **माम् अवन्तु**-मुझ राजा का पालन करें।

भावार्थ–राजा को प्रजा स्वयं वरण करके अभिषिक्त करती है। वह चुना हुआ राजा लोगों के सत्य और झूठ दोनों का विवेक रखनेवाला होकर राज्य की प्रबन्ध व्यवस्था करे जिससे प्रजापालन उत्तम रीति से होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आपः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रजा हितकारी राजा

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।

वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ ४॥

पदार्थ–**यासु**=जिन जलों वा प्रजाओं में **वरुणः**–वरण किया गया पुरुष **राजा**=राजा बनता है, **यासु सोमः**=जिनके बीच ओषधि तथा सौम्य विद्वान् हैं, **यासु**=जिनके बल पर **विश्वे देवाः**=सब मनुष्य **ऊर्जम् मदन्ति**=अन्न से तृप्ति और बल प्राप्त करते हैं **यातु**=जिनके बीच **वैश्वानरः**–समस्त मनुष्यों का हितकारी **अग्निः**=तेजस्वी नेता **प्रविष्टः**–प्रविष्ट है **ताः आपः देवीः**=वे दिव्य गुण–युक्त जल और प्रजाजन **माम् इह अवन्तु**–मेरी इस लोक में रक्षा करें।

भावार्थ–प्रजा द्वारा वरण किया हुआ राजा प्रजा के हित के लिए योग्य चिकित्सकों, उत्तम विद्वानों, तेजस्वी नायकों तथा कुशल प्रशासकों की नियुक्ति करे। जिससे प्रजा राजा की प्रिय तथा राजा प्रजा का प्रिय होवे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और मित्रावरुण, अग्नि, विश्वे देवा व नद्य देवता हैं।

[५०] पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**स्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नीरोग प्रजा

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन्।

अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः॥ १॥

पदार्थ–हे **मित्रावरुणा**=स्नेहवान् और कष्टों के निवारक जनो! **इह**=इस लोक में आप दोनों माता–पिता के समान **माम् रक्षतम्**=मेरी रक्षा करें। **कुलावयत्**=घर या स्थान घेर कर संघ बनाकर रहने वा कुत्सित रूप प्राप्त करानेवाला और **वि-श्वयत्**=विविध रूपों में फैलने और शोथ प्रकट करनेवाला रोग **नः मा आगन्**=हमें प्राप्त न हो। **अजकावं**='अजक' अर्थात् भेड़–बकरियों के समान छोटे जन्तुओं को खा जानेवाले, अजगरादिवत् **दुर्दृशीकं**=कठिनता से दीखनेवाले जन्तुओं को मैं **तिरः दधे**=दूर करूँ। **त्सरुः**=कुटिलचारी सर्प आदि **पद्येन रपसा**–पैर से होनेवाले दोष द्वारा **मां मा विदत्**=मुझे प्राप्त न हो।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह अपने राज्य में ऐसे चिकित्सकों की नियुक्ति करें जो मित्रवत् कष्ट निवारण में कुशल हों। वे लोगों को कुत्सित रोगों, छूत के रोगों, शोथ एवं विष आदि से फैलनेवाले रोगों से मुक्त करें। राजा को चाहिए कि वह अजगर, विषैले साँप, बिच्छु आदि से रहित भूमि बनावे। सूक्ष्मदर्शी से दीखनेवाले कृमियों से भी रोग न फैले ऐसी व्यवस्था कर प्रजा को नीरोग बनावे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अग्निः** ॥ छन्दः—**निचृज्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

अग्नि चिकित्सा

यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥ २ ॥

पदार्थ—यत्=जो **वन्दनं**=देह को जकड़नेवाला विष **विजामन्**=विविध पीड़ा के उत्पत्ति स्थान रूप पेट या **परुषि**=सन्धि स्थान पर **भुवत्**=उत्पन्न होता है और जो **अष्ठीवन्तौ**=स्थूल अस्थि से युक्त गोडों और **कुल्फौ**=पैर के टखनों को **परि देहत्**=सुजा दे, **तत्**=उस विषमय रोग को **अग्निः**=अग्नि तत्त्व **शोचत्**=सन्तप्त करता हुआ **इतः बाधताम्**=इस देह से दूर करे। **त्सरुः**=छद्म गति से छुए देह में फैलनेवाला रोग **पद्येन रपसा**=पैर में विद्यमान दुःखदायी रोग रूप से **मा मां विदत्**=मुझे प्राप्त न हो।

भावार्थ—कुशल वैद्य अग्नि प्रधान द्रव्यों से गठिया, सन्धिवात=जोड़ों के दर्द आदि रोगों को दूर करके प्रजा को नीरोग करे। इसके साथ सूर्य किरण चिकित्सा, अग्निताप चिकित्सा आदि प्राकृतिक पद्धति का भी आश्रय लेवें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विश्वे देवाः** ॥ छन्दः—**स्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

रस चिकित्सा

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम्।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—यत् विषम्=जो विष या रस **शल्मलौ भवति**=शाल्मलि वर्ग के वृक्षों में होता है **यत् विषम् नदीषु**=जो विष या रस नदियों में होता है, **यत् विषम्**=जो विष या रस **ओषधिभ्यः परि जायते**=ओषधियों से उत्पन्न होता है, **विश्वे देवाः**=समस्त विद्वान् **तत्**=उन नाना विषों या रसों को **इतः**=इन-इन स्थानों से **निः सुवन्तु**=ले लिया करें चिकित्सा करें। जिससे **त्सरुः**=छुपी चाल का रोग **मां**=मुझे **पद्येन रपसा**=चरणादि के अपराध से **मा विदत्**=न प्राप्त हो।

भावार्थ—कुशल वैद्य औषधियों के रस, दुग्ध आदि से, नदियों, झरनों तथा गर्म-ठण्डे स्रोतों के जल से, पारद अर्थात् पारा, गन्धक आदि के उचित प्रयोगों द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों सुजाक, सिफलिस, ज्वर, कुष्ठ, खुजली आदि चर्म रोगों को दूर कर प्रजा को नीरोग बनावे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**नद्यः** ॥ छन्दः—**भुरिगतिजगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

जल चिकित्सा

याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थ—याः=जो नदियाँ **प्रवतः**=दूर देशों तक जानेवाली, **याः निवतः**=जो नीचे की ओर बहनेवाली, **याः उद्वतः**=जो ऊँचे की ओर जानेवाली, **उदन्वतीः**=जो प्रचुर जलवाली, **याः च अनुदकाः**=और जो जलरहित या अल्प जल की हैं **ताः**=वे **अस्मभ्यं**=हमारे लिये **पयसा**=जल से देश को सींचती हुईं **शिवाः भवन्तु**=कल्याणकारी हों **देवीः**=सुखप्रद, अन्नादि देनेवाली हों और **अशिपदाः**=भोजनार्थ सब प्रकार के अन्नोत्पादक हों और **सर्वाः नद्यः**=सब नदियें **अशिमिदाः**

भवन्तु-अहिंसाकारिणी हों।

भावार्थ-कुशल वैद्य प्राकृतिक तत्त्वों से भी चिकित्सा करे। इनमें जल चिकित्सा द्वारा अनेक रोगों को दूर किया जा सकता है। जैसे कटिस्नान, पाँव स्नान, मेहन स्नान, रीढ स्नान आदि द्वारा प्रजा को नीरोग बनावें। नदियों के जल, नदियों के किनारे की मिट्टी व रेत आदि का भी चिकित्सा में उपयोग लेवें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और आदित्य देवता है।

[५१] एकपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**आदित्याः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

आदित्योपासना

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन।

अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः॥ १॥

पदार्थ-आदित्यानाम्='अदिति' अखण्ड और अदीन परमेश्वर के उपासक प्रजाओं को शरण में लेनेवाले पुरुषों के **नूतनेन अवसा**=उत्तम ज्ञान से और **शन्तमेन शर्मणा**=अति शान्ति-दायक गृहवत् देह से हम **सक्षीमहि**=अपने आपको सम्बद्ध करें। वे **तुरासः**=शीघ्रकारी, **श्रोषमाणाः**= हमारे दुःख-सुख को सुनते हुए **इमं यज्ञं**=इस उत्तम सत्संग, ज्ञान, दान आदि सम्बन्ध को **अनागास्त्वे**=हमें पाप रहित करने और **अदितित्वे**=अखण्ड बनाये रखने के लिये **दधतु**=स्थिर रक्खें।

भावार्थ-परमेश्वर के भक्त उत्तम साधकों को योग्य है कि वे प्रजा को उत्तम ज्ञान प्रदान कर एक अखण्ड, अद्वितीय परमेश्वर की उपासना में प्रवृत्त करें। शरीर साधना तथा ईशोपासना से लोग शारीरिक तथा मानसिक दुःखों से रहित होकर सदा सुखी रहेंगे। ये ज्ञानी लोग प्रजा को यज्ञ, सत्संग व उत्तम कार्यों में दान की ओर प्रवृत्त करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**आदित्याः**॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

आदित्य ब्रह्मचारी

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः।

अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य॥ २॥

पदार्थ-आदित्यासः=पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान्, 'अदिति' प्रभु परमेश्वर के उपासक स्वयं **अदितिः**=यह भूमि या माता, पितादि, **मित्रः**=स्नेही जन, **अर्यमा**=दुष्टों का नियन्ता **वरुणः**=श्रेष्ठ जन, **रजिष्ठाः**=अति धर्मात्मा, वे सब **अस्माकं**=हमारे **भुवनस्य**=लोक के **गोपाः**=रक्षक **सन्तु**= हों। वे **नः अवसे**=हमारी रक्षा के लिये **अद्य**=आज **सोमम् पिबन्तु**=ओषधि रस के समान ऐश्वर्य का भोग करें।

भावार्थ-पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले आदित्य ब्रह्मचारी परमेश्वर के उपासक विद्वान् जन माता-पिता के समान लोगों को उपदेश देकर सन्मार्ग में प्रवृत्त करें। इनके उपदेशों से लोग धर्मात्मा, न्यायकारी, ईश्वर उपासक बनकर श्रेष्ठ ऐश्वर्य का उपभोग करें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आदित्याः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

उपासक के कर्त्तव्य

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ३ ॥

पदार्थ-विश्वे आदित्याः=समस्त बारह मासों के समान सुखप्रद विद्वान् **विश्वे मरुतः**=समस्त वायुगण, **विश्वे देवाः च**=समस्त पृथिवी आदि लोक, **विश्वे ऋभवः च**=समस्त तेज से प्रकाशित जन **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् **अग्निः**=तेजस्वी, **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुष, ये सब **तुष्टुवानाः**=स्तुति किये जाएँ। हे स्वजनो! **यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात**=आप हमें उत्तम साधनों से सदा पालें।

भावार्थ-सभी मनुष्य विद्वानों के संग से ईश्वर उपासना करते हुए सत्याचारी, तेजस्वी तथा ऐश्वर्यवान् बनें। सभी स्त्री-पुरुष जितेन्द्रिय होकर ईश्वर स्तुति करते हुए परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और आदित्य देवता है।

[५२] द्विपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आदित्याः** ॥ छन्दः-**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

प्राणसाधना

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः॥ १ ॥

पदार्थ-हे **आदित्यासः**-आदित्य तुल्य तेजस्वी पुरुषो! हम लोग **अदितयः**-अखण्ड बलशाली **स्याम**=हों। हे **वसवः**=गुरु के अधीन बसने हारे विद्वान् पुरुषो! आप, **देवत्रा**=विद्वानों और **मर्त्यत्रा**=मनुष्यों में **पूः**=नगरी तुल्य सबके रक्षक होओ। हे **मित्रावरुणा**=प्राण उदान तुल्य प्रिय और श्रेष्ठ जनो! हम लोग **सनन्तः**=ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए **सनेम**=दान किया करें। हे **द्यावा-पृथिवी**=सूर्य-पृथिवीवत् माता-पिता जनो! हम **भवन्तः**=सामर्थ्यवान् होकर **भवेम**=रहें।

भावार्थ-आदित्य ब्रह्मचारी ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् लोगों को प्राण साधना की श्रेष्ठ रीति सिखावें जिससे सब लोग इस शरीर में दिव्य शक्तियो का जागरण कर आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा भौतिक सफलताओं को प्राप्त करने में समर्थ होवें। और सूर्य समान तेजस्वी व पृथिवी समान धैर्यशाली बन सकें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आदित्याः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

मित्रा वरुण

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे॥ २ ॥

पदार्थ-मित्रः=स्नेही और **वरुणः**=पापों के वारक श्रेष्ठजन और **गोपाः**=रक्षक जन **नः**=हमें **तत् शर्म मामहन्त**=वह सुख दें **तोकाय तनयाय**=पुत्र पौत्रों को सुख दें। **वः**=आप लोगों में रहते हुए हम **अन्य-जातम् एनः**=औरों से उत्पन्न पाप का **मा भुजेम**=भोग न करें। हे **वसवः**=विद्वान् जनो! **यत् चयध्वे**=जिसको आप नाश करो **मा तत् कर्म**-वह काम हम न

करें।

भावार्थ–सब लोग मधुरता आदि श्रेष्ठ गुणों को धारण कर एक दूसरे को सुख प्रदान करें, पुत्र और पौत्रों के मध्य में रहते हुए उन्हें पाप कर्मों से बचावें तथा विद्वानों द्वारा निषिद्ध किए गए कार्य न करने दें। सदैव सत्य पथ पर चलने की प्रेरणा दें।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**आदित्याः**॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः**॥ स्वरः–**पञ्चमः**॥

आलस्य रहित पुरुष

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त॥ ३॥

पदार्थ–**तुरण्यवः**=शीघ्र कर्म करने में कुशल **अंगिरसः**–देह में प्राणवत् राष्ट्र में तेजस्वी पुरुष **सवितुः देवस्य**=सुखदाता प्रभु को **इयानाः**–याद करते हुए उसके **रत्नं नक्षन्त**–परमैश्वर्यमय राज्यरूप रत्न को प्राप्त करें। **तत्**–वह ही **नः**=हमारा **यजत्रः**=अति पूज्य **महान्**–बड़ा **पिता च**=पालक है। **विश्वे देवाः**–समस्त विद्वान् **समनसः**–समान-चित्त होकर **जुषन्त**=प्रेम-वर्त्ताव करें।

भावार्थ–मनुष्यों को योग्य है कि वे आलस्य-प्रमाद से रहित होकर कर्म करने में कुशल बनें तथा परमेश्वर के द्वारा प्रदत्त समस्त ऐश्वर्य को राज्य रूप रत्न की प्राप्ति कर तेजस्वी बनें तथा विद्वानों के साथ समान चित्त होकर ईश्वर आराधना करते हुए परस्पर प्रेम पूर्वक व्यवहार करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और द्यावापृथिवी देवता हैं।

[५३] त्रिपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**द्यावापृथिव्यौ**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

द्यावापृथिवी

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे॥ १॥

पदार्थ–**द्यावा-पृथिवी**=भूमि और सूर्य के तुल्य **बृहती**–बड़ी, **यजत्रे**=सत्संग योग्य **देव-पुत्रे**=विद्वान् पुत्रों के माता-पिताओं को मैं **यज्ञैः**=दान, मान से **नमोभिः**=नमस्कारों से **सबाधः**=जब-जब पीड़ा-युक्त होऊँ **ईडे**–उनकी पूजा करूँ। **त्ये चित् मही**=उन दोनों पूज्यों को **पूर्वे**=पूर्व के **गृणन्तः**–उपदेष्टा **कवयः**=विद्वान् पुरुष **पुरः दधिरे**=सदा अपने सन्मुख, पूज्य पद पर स्थापित करते रहे हैं।

भावार्थ–मनुष्य लोग आकाश के समान विशाल हृदयवाले पिता तथा पृथिवी के समान धैर्यशाली माता का सदा सम्मान करें। उनके द्वारा प्रदत्त उत्तम शिक्षाओं को ग्रहण कर दान, मान, सत्कार आदि के द्वारा विद्वानों की भी पूजा करें। माता, पिता व विद्वानों के सत्संग से प्रेरित जन इन सबको पूज्य पद पर स्थापित करते हैं तथा इन्हें कभी भी पीड़ा नहीं पहुँचाते।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**द्यावापृथिव्यौ**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

मातृ-पितृ भक्ति

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम्॥ २॥

पदार्थ–हे विद्वान् पुरुषो! आप **पूर्वजे पितरौ**=पूर्व के विद्वानों से शिक्षित होकर विद्वान् हुए **ऋतस्य सदने**=सत्य व्यवहार के आश्रय रूप **पितरा**=माता-पिताओं को **नव्यसीभिः गीर्भिः**=अतिस्तुत्य वाणियों से **प्र कृणुध्वम्**=आदरयुक्त करो। हे **द्यावा-पृथिवी**=सूर्य और भूमि के समान अन्न, जल, तेज और आश्रय से प्रजा-पालक माता-पिताओ! आप लोग **नः**=हमें **दैव्येन जनेन**=विद्वान् पुरुषों से शिक्षित जनों के साथ **वाः महि वरूथं**=अपने बड़े भारी घर को **आ यातं**=प्राप्त होओ।

भावार्थ–मनुष्य लोग अपनी सन्तानों को विद्वानों के सान्निध्य में रखकर शिक्षित करावें। वे शिक्षा प्राप्त सन्तानें विद्वान् होकर माता-पिता का अपनी उत्तम वाणी व व्यवहार से सदैव आदर करें तथा उनके लिए अन्न, जल, औषधि तथा निवास की उत्तम व्यवस्था करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**द्यावापृथिव्यौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कल्याणकारी माता-पिता

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **द्यावा-पृथिवी**=भूमि, विद्युत् के तुल्य माता-पिताओ! **सु-दासे**=आप दोनों उत्तम भृत्यों से युक्त होओ। अथवा दानशील के लिये **वां**=आप दोनों के **पुरूणि रत्न-धेयानि**=बहुत सुन्दर ऐश्वर्य **सन्ति**=हैं। **यत्**=जो भी **अस्कृधोयुः**=बहुत जीवनप्रद **असत्**=हो वह **अस्मे धत्तं**=हमें दो। **यूयं**=आप लोग **स्वस्तिभिः**=कल्याणकारी साधनों से **नः पात**=हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–उत्तम माता-पिता अपनी सन्तानों तथा सेवकों के लिए उत्तम-उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ शिक्षाओं के द्वारा उन्हें अनन्त जीवन जीने की प्रेरणा देकर उनका कल्याण करते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और वास्तोष्पति देवता हैं।

[५४] चतुःपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उत्तम गृहपति

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **वास्तोः पते**=वास करने योग्य राष्ट्र के पालक! राजन्! तू **अस्मान् प्रति जानीहि**=हमें प्रत्येक को जान वा हमसे प्रतिज्ञापूर्वक व्यवहार कर। **नः**=हमारे प्रति **सु आवेशः स्व-आवेशः**=उत्तम भावों और बर्त्ताओंवाला और **अनमीवः**=रोगादि से पीड़ा न होने देनेवाला **भव**=हो। **यत् त्वा ईमहे**=जो हम तेरे समीप याचना करते हैं **नः तत् प्रति जुषस्व**=वह तू हमें मान दे। **नः द्विपदे शम्, चतुष्पदे शम्**=हमारे दोपाये पुत्रादि और चौपाये गाय आदि का भी कल्याण हो।

भावार्थ–उत्तम घर का स्वामी गृहपति सबके साथ उत्तम भावों तथा प्रेमपूर्वक व्यवहार करे इससे उस घर का प्रत्येक प्राणी सुख पूर्वक रहेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

गयस्फानो

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **वास्तोः पते**–निवास योग्य गृह, राष्ट्र के पालक गृहपते! राजन्! तू **नः**=हमारा **प्र-तरणः**=नाव के तुल्य संकट से पार उतारनेवाला और **गय-स्फानः**=गृह, प्राण और धन का बढ़ानेवाला **एधि**=हो। हे **इन्दो**=ऐश्वर्यवन्! तू **नः**=हमें **गोभिः अश्वेभिः**=गौओं, अश्वों सहित प्राप्त हो। **ते सख्ये**=तेरे मित्र भाव में हम **अजरासः**–वृद्धावस्था-रहित, बल-युक्त रहें। **नः**=हम से तू **पिता इव पुत्रान्**–पुत्रों को पिता के तुल्य **जुषस्व**=प्रेम कर।

भावार्थ–गृहपति वा राजा को अपने आश्रित जनों वा प्रजा का कष्ट स्नेह पूर्वक दूर करना चाहिये।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वास्तोष्पते

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **वास्तोः पते**–गृह, देह और राष्ट्र-पालक! **ते**–तेरी **रण्वा**=रमणीय **शग्मया**-सुखदायक **गातु-मत्या**=उत्तम वाणी और भूमि से युक्त **सं सदा**=सहवास और सभा से हम लोग **सक्षीमहि**=सम्बन्ध बनाये रक्खें। **क्षेमे**=रक्षा-कार्य और **योगे**–अप्राप्त धन को प्राप्त करने में **नः**=हमारी **वरं**=अच्छी प्रकार **पाहि**=रक्षा करो। हे विद्वान् जनो! **यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात**=आप लोग सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करे।

भावार्थ–राजा तथा प्रजा का परस्पर सम्बन्ध बना रहे, जिससे राष्ट्र का योग क्षेम सुचारु रूप से चलता रहे।

[५५] पञ्चपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वास्तोष्पतिः** ॥ छन्दः–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

अमीवहा

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **वास्तोः-पते**=गृह, देह और राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! राजन्! तेरे अधीन **विश्वा रूपाणि**=सब प्रकार के नाना रूप अर्थात् जीव बसते हैं। तू **अमीव-हाः**=सब प्रकार के रोगों, कष्टों का नाशक और **सु-शेवः**=उत्तम सुखदायक **नः**=हमारा **सखा एधि**=मित्र हो।

भावार्थ–राजा, प्रजा मित्र भाव से रहे, जिससे राष्ट्र में विद्वेष न फैल सके।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

यदर्जुन सारमेय

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे। वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्त्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **अर्जुन**=धनादि को उपार्जन करनेवाले! हे **सारमेय**=सारवान्, बलवान् हे **पिशङ्ग**=तेजस्विन्! तू **दतः**=खण्डित करनेवाले शस्त्रों को **यच्छसे**=नियम में रख। **बप्सतः**=खाते हुए मनुष्यों के दाँत जैसे **स्नक्वेषु उप**=ओठों के पास चमकते हैं वैसे **स्नक्वेषु**=बने नगरों के पास **बप्सतः**=राष्ट्र का भोग करते हुए तेरे **ऋष्टयः**=शस्त्र-अस्त्रादि, **वि इव भ्राजन्त**=विशेष रूप से चमकें। **नि सु स्वप**=बलवान् राजा के, हे प्रजाजन! तू अच्छी प्रकार सुख की निद्रा ले।

भावार्थ–राष्ट्र की सीमाएँ सेना द्वारा सुरक्षित रहे, जिससे नागरिक सुख से सो सकें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

सारमेय

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर। स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप॥ ३॥

पदार्थ-हे **सारमेय**=उत्तम बल-धारक सेना के जन! तू **स्तेनं**=चोर और **तस्करं**=निन्द्य कार्य करनेवाले डाकू के पास **राय**=पहुँच, उसे पकड़। **पुनः सर**=तू उस पर आक्रमण कर। तू **इन्द्रस्य स्तोतृन्**-राजा के प्रति उत्तम उपदेश करनेवाले विद्वानों को **किं रायसि**=क्यों पकड़ता है? **अस्मान् किं दुच्छुनायसे**=हमें दुष्ट कुत्ते के समान क्यों कष्ट देता है? तू **नि सु स्वप**=नियमपूर्वक सुख से निद्रा ले।

भावार्थ-राष्ट्र आरक्षी विभाग दुष्टों का दमन तथा सज्जनों का रक्षण करता रहे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

रायसि

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः। स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप॥ ४॥

पदार्थ-हे राजन्! **त्वं**=तू **सू-करस्य**=उत्तम कार्य करनेवाले को **दर्दृहि**=बढ़ा। **सूकरस्य**=उत्तम रीति से वश करने योग्य शत्रु को **दर्दृहि**=विदीर्ण कर और **सूकरः**=उत्तम युद्धकर्त्ता शत्रुजन **तव दर्दृहि**=तेरे राष्ट्र में भी भेदन करने में समर्थ है। तू **स्तोतृन्**=उत्तम विद्वानों के प्रति **इन्द्रस्य**=ऐश्वर्य का **रायसि**=दान कर। **अस्मान् किम् दुच्छुनायसे**=हमारे प्रति क्यों दुष्ट कुत्ते के समान करता है, **नि सु स्वप**=तू सावधान रहकर सुख की निद्रा ले।

भावार्थ-राजा सज्जनों का सम्मान और राष्ट्र द्रोहियों को कठोर दण्ड दे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

माता सस्तु

राष्ट्र की सुन्दर व्यवस्था

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः। ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः॥ ५॥

पदार्थ-राष्ट्र और गृह का उत्तम प्रबन्ध होने पर **माता सस्तु**=माता सुख से सोवे, **पिता सस्तु**=पिता सुख से सोवे। **श्वा सस्तु**=कुत्ता आदि सुख से सोवें। **विश्पतिः सस्तु**=प्रजाओं का स्वामी सुख से सोवे। **सर्वे ज्ञातयः ससन्तु**=सब सम्बन्धी सुख से सोवें। **अयम्**=यह **अभितः जनः**=चारों ओर बसा प्रजाजन **सस्तु**=सुख से सोवे।

भावार्थ-उत्तम राजा को योग्य है कि वह अपने राज्य में सुरक्षा आदि की ऐसी व्यवस्था करे कि समस्त प्रजाजन, मित्रजन तथा पारिवारिक जनों के साथ स्वयं भी सुखपूर्वक सो सके।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

भवन निर्माण

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः। तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा॥ ६॥

पदार्थ-**यः आस्ते**=जो बैठा हो **यः च चरति**=जो चलता है, **यः जनः**=जो मनुष्य **नः**=हमें **पश्यति**=देखता है **तेषां**=उनके **अक्षाणि**=आँखों को हम **संहन्मः**=अच्छी प्रकार निमीलित करें जिससे बाहर के भीतर, भीतर के बाहरवालों को न देखें। **यथा**=जैसा **इदं हर्म्यं**=यह उत्तम भवन है **तथा**=उसी प्रकार हम घर बनावें।

भावार्थ–राष्ट्र में ऐसे उत्तम कुशल शिल्पकार हों जो ऐसी भवन निर्माण कला जानते हों कि भवन के अन्दर रहनेवाला तो सबको देख सके किन्तु भवन में रहनेवालों को कोई ना देख पावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

सुख की निद्रा

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्। तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥

पदार्थ–समुद्रात् सहस्नः-शृङ्गः=समुद्र से सहस्रों किरणोंवाले सूर्य-तुल्य **यः**-जो तेजस्वी पुरुष **वृषभः**-बलवान्, **उत् आचरत्**=उत्तम पद पर विराज कर न्याय से वर्त्तता है, **तेन सहस्येन**-उस बलवान् के सहयोग से **वयं**=हम **जनान्**=सब प्रजा को **नि स्वापयामसि**=सुख की निद्रा सोने दें।

भावार्थ–उत्तम राजा अपने राज्य में इतना तेजस्वी होवे कि कोई दुष्ट प्रजा को कष्ट न दे सके। उसकी न्याय व्यवस्था इतनी सुदृढ तथा पक्षपात रहित हो कि दुष्ट व अपराधी को दण्ड अवश्य मिले तथा निरपराधी को कष्ट न हो। ऐसे बलवान् राजा की प्रजा सुख की नींद सोती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

राज्य व्यवस्था

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः। स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥

पदार्थ–याः नारीः=जो स्त्रियाँ **प्रोष्ठे-शयाः**–आंगन में सोती हैं, **या वह्ये-शयाः**=जो रथ आदि में सोती हैं, **याः तल्पशीवरीः**–जो उत्तम सेजों में सोती हैं और **याः पुण्यगन्धाः स्त्रियः**=जो उत्तम गन्धवाली, शुभ-लक्षणा स्त्रियाँ हैं **ताः सर्वाः**=उन सबको **स्वापयामसि**=सुख की नींद सोने दें। ऐसा उत्तम राज्य और गृह का प्रबन्ध करें।

भावार्थ–राजा ऐसा उत्तम राज्य प्रबन्ध करे कि उसके राज्य में स्त्रियाँ भी निर्भय विचरण कर सके। चाहे वे आंगन में सोवें या भवन में, रथ में सोवें या उत्तम सेजों पर। चाहे आभूषणों से सजी हों वे सब निर्भयता के साथ सुख की नींद सोवें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और मरुत् देवता है।

चतुर्थोऽनुवाकः

[५६] षट्पञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**आर्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

वीर पुरुष

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥

पदार्थ–ईम्–सब प्रकार से **वि-अक्ताः**=विशेष तेजस्वी, **सनीडाः**=समान-स्थान वासी, **रुद्रस्य**–दुष्टों के रोदक, प्रभु, विद्योपदेष्टा आचार्य के **के मर्याः**–कौन विशेष मनुष्य **नरः**–उत्तम नायक और **सु-अश्वाः**–उत्तम अश्वोंवाले वा जितेन्द्रिय हैं?

भावार्थ–सेनापति अपनी सेना में उत्तम वीर पुरुषों को नायक नियुक्त करे जो क्रान्तियुक्त, साथ रहनेवाले, शत्रु को मारने में कुशल तथा उत्तम घुड़सवार हों।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिकार्चीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

वीरों का कर्त्तव्य

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम्॥ २ ॥

पदार्थ—**एषां**=इन जीवों के **जनूंषि**=जन्मों को **नकिः वेद हि**=निश्चय से कोई नहीं जानता। **अङ्ग**=हे विद्वन्! **ते**=वे सब **मिथः**=स्त्री-पुरुष परस्पर मिलकर **जनित्रम्**=जन्म **विद्रे**=प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ—सेनापति अपनी सेना के सैनिकों को जाति-पाति, क्षेत्र, सम्प्रदाय आदि से ऊपर उठकर परस्पर मिलकर रहने की प्रेरणा दे तथा क्षात्रधर्म का पालन करने हेतु संगठित सैन्य शक्ति विकसित करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

वीरों का कर्त्तव्य

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन्॥ ३ ॥

पदार्थ—वे जीव **स्वपूभिः**=अपने साथ सोनेवाली अथवा **स्वपूभिः**=अपनी उत्पन्न होने योग्य भूमियों से **मिथः**=परस्पर मिलकर **अभि वपन्त**=सम्मुख हो बीज बोते हैं। वे **वातस्वनसः**=वायुवत् प्राण के बल पर ध्वनि करनेवाले **श्येनाः**=वाजपक्षी के समान एक देह से दूसरे देह में जानेवाले होकर भी **अस्पृध्रन्**=स्पर्धा करते हैं।

भावार्थ—सेनापति अपने सैनिकों को संगठित रहने की प्रेरणा करे। वे वीर सैनिक संगठित होकर सम्मुख आनेवाले शत्रुओं को मारते हुए वायु के समान शत्रु पर आक्रमण करें तथा उस पर विजय करने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

बुद्धिमान पुरुष

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार॥ ४ ॥

पदार्थ—**पृश्निः**=सेवन करनेवाला सूर्य और **मही**=भूमि **यत्**=जैसे **ऊधः**=जलधारक मेघ को **जभार**=धारण करता है वैसे **पृश्निः**=वीर्यसेक्ता पुरुष और **मही**=पूज्य माता **यत्**=जो मिलकर बालक और उसके पान के लिये **ऊधः**=स्तनादि धरती है **एतानि निण्या**=इन सत्य सिद्धान्तों को **धीरः**=बुद्धिमान् पुरुष **चिकेत**=जाने।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य बादलों को भूमि पर बरसा का उत्तम औषधादि की उत्पत्ति करता है। उसी प्रकार बुद्धिमान् स्त्री-पुरुष गर्भाधान संस्कार करके उत्तम सन्तान को उत्पन्न करते हैं। माता उस सन्तान को उत्तम संस्कार प्रदान करती हुई स्तनपान करावे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याबृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

वीर सन्तान

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम्॥ ५ ॥

पदार्थ—**सा**=वह **विट्**=प्रजावर्ग **मरुद्भिः**=वायुवत् बलवान् पुरुषों से ही **सु-वीरा**=उत्तम वीरोंवाली **अस्तु**=हो। वह **सनात्**=सदा **सहन्ती**=शत्रु को पराजित करती हुई और **नृम्णं पुष्यन्ती**=धनैश्वर्य को समृद्ध करती रहे।

भावार्थ–राष्ट्र में उत्तम विद्वानों के निर्देशन में वीर सन्तानें पैदा होवें जो शत्रुओं को पराजित कर राष्ट्र में ऐश्वर्य को बढ़ावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**भुरिकार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

लक्ष्यगामी सेना

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥

पदार्थ–प्रजाएँ, स्त्रियें और सेनाएँ भी **येष्ठाः**=लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम **शुभ्राः**=कान्तियुक्त, **शोभिष्ठाः**=शोभायुक्त **श्रिया**=लक्ष्मी से **सं-मिश्लाः**=संयुक्त **ओजोभिः**–पराक्रमों से **उग्राः**-बलवान् हों। वे **यामं येष्ठाः**–उत्तम नियम, प्रबन्धों को प्राप्त हों।

भावार्थ–सेनापति अपनी सेना को लक्ष्य की ओर संगठित रूप से बढ़ने के लिए तेजस्वी, बलवान् तथा पराक्रमी सैनिकों से सज्जित करे। ऐसी सेना ही विजयश्री पाने के योग्य होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**भुरिकार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

ओजस्वी वीर

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे प्रजाजनो! **वः**–आप लोगों का **ओजः**=तेज **उग्रं**=उन्नत कोटि का और **शवांसि स्थिरा**–बल स्थिर और **मरुद्भिः सह गणः**=बलवान् वीरों, विद्वानों सहित गण **तुविष्मान्**=बलवान् हो।

भावार्थ–राष्ट्र की सेना पराक्रमी, उग्र तथा स्थिर बलवाली होवे। प्राणशक्ति से युक्त सैनिक बलवान् हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः–**ऋषभः** ॥

दुष्टों का दमन

शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे प्रजाजनो! **वः**=आप लोगों का **शुष्मः**=बल **शुभ्रः**=प्रशंसनीय हो। आप लोगों के **मनांसि**=मन **क्रुध्मी**=दुष्टों के प्रति क्रोधयुक्त हों और **शर्धस्य**=आप के बलवान् और **धृष्णोः**=शत्रुपराजयकारी सैन्य का **धुनिः**–नायक शत्रुओं को कम्पाने हारा **मुनिः इव**=मननशील के समान विचारशील हो।

भावार्थ–सेनापति शत्रुओं को कंपानेवाला, प्रभावी तथा गम्भीर विचारशील हो। उसके सैनिक उन्नत देह, बल तथा शत्रु के प्रति क्रोधवाले हों। ऐसी सेना दुष्टों का दमन करने में समर्थ होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**भुरिकार्चीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

परस्पर प्रेम

सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः ॥ ९ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् वीर जनो! **अस्मत्**-हमसे अपने **सनेमि**=चक्रधारा से युक्त **दिद्युम्**=चमचमाते शस्त्र-बल को **युयोत**–सदा पृथक् रक्खो और **वः**=आप लोगों की **दुर्मतिः**–दुष्ट बुद्धि **नः**=हमें और **नः दुर्मतिः वः**–हमारी दुष्टमति आपको **मा प्रणक्**=प्राप्त न हो।

भावार्थ–वीर सैनिक राष्ट्र की प्रजा पर दुष्टबुद्धि–स्वार्थ से युक्त होकर अपने अस्त्र-शस्त्रों

का बल प्रयोग न करें। प्रजा की दुर्मति=भ्रान्ति की शिकार होकर सैनिकों से द्वेष न करे। सेना-प्रजा परस्पर प्रेमपूर्वक रहें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**आर्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः-**ऋषभः** ॥

यशोकामी पुरुष

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥

पदार्थ-**यत् नाम**=जो उत्तम नाम, अन्न **वः मरुतः**=प्राणवत् प्रिय आप लोगों को **तृपत्**=प्रसन्न करे, हे **वावशानाः**=कीर्ति-कामी सज्जनो! मैं **तुराणां**=शीघ्रकारी **वः**=आप लोगों के लिये **प्रिया नाम**=प्रिय नाम वा अन्नादि पदार्थ **आ हुवे**=आदर पूर्वक कहूँ और दूँ।

भावार्थ-यश की कामना करनेवाले पुरुष सब लोगों के साथ आत्मवत् प्रिय व्यवहार कर उन्हें तृप्त करें तथा अप्रमादी होकर अपने आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं को नष्ट करें। और सबके साथ आदर पूर्ण व्यवहार करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**निचृदार्च्युष्णिक्** ॥ स्वरः-**ऋषभः** ॥

वीर योद्धा

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥ ११ ॥

पदार्थ-हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग **स्वायुधासः**=उत्तम शस्त्रास्त्र-सम्पन्न, **इष्मिणः**=अन्न के स्वामी, **सु-निष्काः**=उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करनेवाले **उत**=और उनसे **स्वयं**=स्वयं **तन्वः शुम्भमानाः**=अपने शरीरों को सुशोभित करनेवाले होओ।

भावार्थ-वीर योद्धा हर समय तीक्ष्ण और उत्तम अस्त्र-शस्त्रों को अपने शरीर पर धारण किये हुए सन्नद्ध रहते हैं। यही उनकी शोभा है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सत्य ज्ञान से युक्त पुरुष

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।

ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ १२ ॥

पदार्थ-हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! **वः**-आप के **हव्या**-खाने, लेने-देने के पदार्थ **शुची**=पवित्र हों। मैं **शुचिभ्यः**=पवित्र पदार्थों की वृद्धि के लिये **शुचिं अध्वरं**=पवित्र यज्ञ की **हिनोमि**=वृद्धि करता हूँ। **ऋत-सापः**=सत्य के आधार पर प्रतिज्ञाबद्ध होनेवाले **शुचिजन्मानः**=शुद्ध जन्म धारण करनेवाले **शुचयः**=कर्म, वाणी में शुद्ध, **पावकाः**=अग्निवत् तेजस्वी पुरुष **ऋतेन**=सत्य-ज्ञान से ही **सत्यम् आयन्**=सत्य व्यवहार को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ-विद्वान् पुरुष सत्य ज्ञान से युक्त होकर अपने कर्म व वाणी में पवित्रता लाकर हृदय को शुद्ध बनावें। यज्ञ की वृद्धि कर समाज में शोधन करें। ये विद्वान् सत्य के साथ प्रतिज्ञाबद्ध होकर सत्य व्यवहार ही करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राष्ट्र रक्षक

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।

वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**–वीर पुरुषो! विद्वान् पुरुषो! **वः**–आपके **अंसेषु**–कन्धों पर **खादयः**–शस्त्र और **वक्षः सु** छातियों पर **रुक्माः**–कान्तियुक्त आभूषण **उप शिश्रियाणाः**=शोभा दें। आप लोग **वृष्टिभिः विद्युतः न**=वर्षाओं से बिजुलियों के समान **आयुधैः**–हथियारों से **रुचानाः**–चमकते हुए **स्वधाम्**-जलवत् अन्न और राष्ट्र-भूमि के **अनु यच्छमानाः**–अनुसार उसको वश करते हुए विजय करो।

भावार्थ–राष्ट्र के रक्षक वीर पुरुष अपने कन्धों पर शस्त्र तथा छाती पर कान्तियुक्त कवच धारण कर अपने शत्रुओं पर वर्षा के समान हथियार से तीव्र प्रहार कर राष्ट्र को विजय प्राप्त करावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**स्विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

कर व्यवस्था

प्र बुध्न्या॑ व ईरते॒ महां॑सि॒ प्र नामा॑नि प्रयज्यवस्तिरध्वम्।

स॒ह॒स्रियं॒ दम्यं॑ भा॒गमे॒तं गृ॑हमे॒धीयं॑ मरुतो जुषध्वम्॥ १४॥

पदार्थ–बुध्न्याः–आकाश में मेघ जैसे **महांसि नामानि प्र ईरते**–तेज और जलों को प्रदान करते हैं वैसे ही हे **बुध्न्याः**-उच्च पद के योग्य **प्रयज्यवः**=उत्तम दानशील पुरुषो! आप भी **महांसि**=देने योग्य **नामानि**=अन्नों को **प्र तिरध्वम्**–बढ़ाओ और दान करो। हे **मरुतः**–वीरो! आप **एतम्**=इन **गृहमेधीयं**–गृहस्थों से प्राप्त वा गृह के निर्वाह योग्य **सहस्त्रियं दम्यं भागम्**=सहस्रों ग्रामों वा गृहों से प्राप्त करादि अंश को **जुषध्वम्**=स्वीकार करो।

भावार्थ–शासक का अधिकारी वर्ग प्रजा से प्रेमपूर्वक कर का संग्रह करे। कर से प्राप्त उस धन को शासक वर्ग प्रजा को सुविधाएँ प्रदान करने में व्यय करे। प्रजा के उच्च व समृद्ध लोग अपने धन का राष्ट्रोन्नति की योजनाओं में कुछ अंश दान करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञान दान

यदि॑ स्तु॒तस्य॑ मरुतो अधी॒थेत्था विप्र॑स्य वा॒जिनो॒ हवी॑मन्।

म॒क्षू रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य दात॒ नू चि॒द्यम॒न्य आ॒दभ॒दरा॑वा॥ १५॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=वायु-समान बलवान् वीरो! आप **यदि**–यदि **वाजिनः**=ऐश्वर्यवान् और **विप्रस्य**=बुद्धिमान् पुरुष के **हवीमन्**=देने योग्य उत्तम ज्ञान और धन के व्यवहार में **इत्था**=सत्य-सत्य **स्तुतस्य**=उपदिष्ट शास्त्र का **अधीथ**=स्मरण रक्खो। **यम्**=जिस धनादि को **अन्यः**=दूसरा **अरावा**=शत्रु वा वचनादि से रहित मूकजन **नू चित् आदभत्**=अवश्य विनाश कर देवे ऐसे **रायः**=धन, ज्ञानादि को आप **सु-वीर्यस्य**=उत्तम वीर्यवान्, ब्रह्मचारी के हाथ **दात**=प्रदान करो।

भावार्थ–विद्वान जन गुरुजनों से प्राप्त शास्त्र को अच्छी प्रकार याद रक्खें तथा उस विद्या को उचित पात्र को प्रदान करें। यदि ज्ञान का प्रवचन नहीं किया जाएगा तो वह ज्ञान नष्ट हो जाएगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**स्विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

निष्पाप मन

अत्या॑सो॒ न ये म॒रुतः॒ स्वञ्चो॑ यक्ष॒दृशो॒ न शु॒भय॑न्त॒ मर्याः॑।

ते ह॑र्म्ये॒ष्ठाः शिश॑वो॒ न शु॒भ्रा व॒त्सासो॒ न प्र॑क्री॒ळिनः॑ पयो॒धाः॥ १६॥

पदार्थ–**ये**–जो **मरुतः**=मनुष्य, वायु–तुल्य बलवान्, **अत्यासः न**=निरन्तर गतिवाले अश्वों के तुल्य **सुअञ्चः**–उत्तम आचरणवाले हों वे **मर्याः**–मनुष्य **यक्षदृशः न**=पूज्य जनों को दर्शन करनेवालों के तुल्य **शुभयन्त**=सदा उत्तम वस्त्रालंकार धारण करें और **ते**=वे **हर्म्येष्ठाः**=बड़े–बड़े महलों में रहकर **शिशवः न शुभ्राः**=बालकों के समान स्वच्छ **वत्सासः न**=गाय के बछड़ों के समान, **प्र-क्रीडिनः**=विनोदी स्वभाव के और **पयः-धाः**=दूध, अन्नादि के पीने–खानेवाले हों।

भावार्थ–उत्तम आचरणवाले मनुष्य आदर के योग्य होते हैं। ऐसे निष्पाप मनवाले पुरुष बच्चों के समान विनोदी स्वभाववाले होते हैं। ऐसे पूज्य पुरुषों को घरों में बुलाकर उत्तम वस्त्र अलंकार आदि से सम्मान करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मातृ-पितृ भक्त

दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके।

आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम्॥ १७॥

पदार्थ–**मरुतः**=वीर पुरुष **दशस्यन्तः**=दान देते और **सुमेके**=पूज्य **रोदसी**=माता–पिताओं की **वरिवस्यन्तः**–सेवा करते हुए **नः मृडन्तु**=हमें सुखी करें। **गोहा**=गौ आदि का मारनेवाला और **नृहा**=मनुष्यों को मारनेवाला **वः**=आप से **आरे**=दूर हो और वह **वधः अस्तु**=वध–योग्य हो। **सुम्नेभिः अस्मे वसवो नमध्वम्**=श्रेष्ठ पुरुष शुभ वचनों से प्रभु की स्तुति करें।

भावार्थ–श्रेष्ठ पुरुष ईश्वर की स्तुति करते हुए अपने पूज्य माता–पिता की सेवा–शुश्रुषा करके सुखी हों। ऐसे पुरुष प्रशंसा के योग्य हैं। गौ आदि पशुओं को मारनेवाले गौघातक दण्ड या वध के योग्य हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सुपात्र को दान

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः।

य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः॥ १८॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=वीरो! विद्वान् पुरुषो! **होता**=उत्तम दाता, **गृणानः**=उपदेश करने हारा **सत्तः**=उत्तमासन पर बैठकर **सत्राचीं**=सत्य से युक्त **दातिं**=दान, ज्ञान वा ऐश्वर्य को **जोहवीति**=देता है और जो **ईवतः**=जल–युक्त **वृषणः गोपाः**=मेघ के तुल्य रक्षक **ईवतः**=धनशाली, **वृषणः**=बलवान् **गोपाः**=रक्षक है **सः**=यह **अद्वयावी**=भीतर–बाहर दो–भाव न करता हुआ, निष्कपष्ट होकर **उक्थैः**=उत्तम वचनों से **वः**=आपको **हवते**=ज्ञान दे, वा आदर से बुलावे।

भावार्थ–उत्तम दानशील पुरुष सुपात्र को ही दान देवे। जो विद्वान् उपदेशक हैं, जो राष्ट्र रक्षक बलवान् हैं वे दान के पात्र हैं। विद्या का दान भी निष्कपट, मधुरभाषी, विनयी जिज्ञासु को देवें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दुष्ट को दण्ड

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति।

इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति॥ १९॥

पदार्थ–**इमे**=ये **मरुतः**=वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय विद्वान्, **तुरं**–कार्य-कुशल, राजा को **रमयन्ति**=प्रसन्न रखते हैं और **इमे**–ये **सहः**–बल से **सहसः**=बलवान् शत्रुओं को भी **आ नमन्ति**–झुका लेते हैं। **इमे**-ये **वनुष्यतः**–हिंसक वा क्रोधी से **शंसं नि पान्ति** प्रशंसनीय जन को बचा लेते हैं। **अररुषे**–अदानी और क्रोधी जन के दमन के लिये वे **गुरु द्वेषः** बड़ा भारी द्वेष, अप्रीतिकर व्यवहार **दधन्ति**=करते हैं।

भावार्थ–उत्तम विद्वान् शत्रुनाशक राजा की प्रशंसा करते हैं तथा अपने बुद्धि बल एवं वाक् कुशलता से बलवान् शत्रु को भी झुका देते हैं तथा अपने बुद्धि कौशल से सज्जनों को बचाकर दुष्टों को दण्डित करा देते हैं। उत्तम जनों की रक्षा दुष्टों के नाश की योजना बनाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

संन्यासी का सम्मान

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे॥ २० ॥

पदार्थ–**इमे**–ये **मरुतः**=वायुगण जैसे **रध्रं चित् जुनन्ति**=दृढ़ वृक्ष को भी हिला देते हैं। वैसे ही आप लोग भी **रध्रं**=वश करने योग्य, प्रबल पुरुषों को भी सन्मार्ग पर चलाओ और **वसवः**=पृथिवी आदि लोक जैसे **भृमिं**–धारक सूर्य के प्रकाश का सेवन करते हैं वैसे ही आप लोग **भृमिं**=भरण-पोषण करनेवाले स्वामी तथा **भृमिं**=भ्रमणशील, विद्वान् परिव्राजक का भी **जुषन्त**–प्रेम से सेवन करें। आप लोग **तमांसि**–सूर्य-किरणों के समान अन्धकारों को, **अप बाधध्वं**=और खेदजनक मोह आदि को भी दूर करो।

भावार्थ–संन्यासी लोग समृद्ध जनों को भी सन्मार्ग पर चलावें अज्ञान अन्धकार को दूर कर मोह आदि शत्रुओं का नाश करते हैं। ऐसे भ्रमणशील परोपकारी संन्यासियों को सम्मान करें तथा प्रेम से उनकी संगति करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उदार बनो

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्येे३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति॥ २१ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=वीर पुरुषो ! हम **वः**=आपको **दात्रात्**=दान करने से **मा निर् अराम**=न रोकें और **वः दात्रात् मा निर् अराम**=आप लोगों के प्रति देने से हम न रुकें। हे **रथ्यः**=रथारोही जनो ! **विभागे**–धन के विभाग से **नः पश्चात् मा दध्म**–आप को हम पीछे न रक्खें। हे **वृषणः**=सुखवर्षक जनो ! **वः यत् ईम् सुजातम् अस्ति**=आप लोगों का जो उत्तम द्रव्य है उसे **वसव्ये**=धन-सम्बन्धी **स्पार्हे**=अभिलाषा-योग्य पदार्थ के लिये **नः आ भजतन**=हमें प्राप्त करो।

भावार्थ–राष्ट्र के समद्ध पुरुष उदारता के साथ राष्ट्र कार्यों में दान करें। राष्ट्र के सामान्य जन भी अपने सामर्थ्यानुसार उदारतापूर्वक विद्वानों तथा अन्य पात्रों को दान करें। विद्वान् तथा राजपुरुष भी अपने धन में से कुछ अंश दान अवश्य करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सद् वैद्य के लक्षण

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।

अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ २२ ॥

पदार्थ–**यत्**=जो **जनासः**=मनुष्य **विक्षु**=प्रजाओं के बीच **शूराः**=वीर होकर **यह्वीषु ओषधीषु**=बड़ी और बहुत-सी ओषधियों में से **मन्युभिः**=नाना ज्ञानों द्वारा **संहनन्त**=नाना ओषधियों को मिलाते हैं, हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! वे आप **रुद्रियासः**=रोगों को दूर करनेवाले वैद्यजन **पृतनासु अर्यः**–सेनाओं में स्वामी के तुल्य **नः त्रातारः भूत**–हमारे रक्षक होओ।

भावार्थ–जिस प्रकार सेना नायक प्रजा की रक्षा करते हैं उसी प्रकार कुशल उत्तम वैद्य भी प्रजाओं के बीच में जाकर सामान्य तथा विशिष्ट ओषधियों से रोगों को दूर कर प्रजा की रक्षा करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शत्रु हिंसक सेना

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्।

मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! **या**=जिन कर्मों का **वः**=आप लोगों के हितार्थ **पुरा चित्**=पहले ही **शस्यन्ते**=उपदेश किया जाता है उन **पित्र्याणि**=माता-पिता की सेवा और पालक जनोचित **उक्थानि**=कर्मों को आप **भूरि**=खूब **चक्र**=करो। **उग्रः**=बलवान् पुरुष **मरुद्भिः**=बलवान् पुरुषों से ही **साढा**=शत्रु को पराजय करनेवाला और **अर्वा मरुद्भिः यथा वाजं सनिता**=जैसे अश्व प्राण के बल से वेग को प्राप्त करता है वैसे ही **अर्वा**=शत्रुहिंसक पुरुष **मरुद्भिः**=विद्वान् पुरुषों की सहायता से **वाजं सनिता**=संग्राम करने में समर्थ होता है।

भावार्थ–विद्वान् जन उपदेश करें कि माता-पिता तथा वे जन जो अपने कर्मों से आपका पालन करते हैं उन सबका आदर करो। बलवान् पुरुष प्राणशक्ति को धारण कर विद्वानों के परामर्श से हिंसक शत्रुओं को मारकर संग्राम में विजयी हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

समुद्रपार यात्रा

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।

अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=वायुवत् बलवान् पुरुषो! **वीरः**=वीर और विविध विद्याओं का प्रवक्ता पुरुष और हमारा पुत्र **अस्मे**=हमारे उपकारार्थ **शुष्मी अस्तु**=बलवान् हो। **यः**=जो **असुरः**=शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर **जनानां**=मनुष्यों का **विधर्त्ता**=विशेष रूप से धारक पालक हो, **येन**=जिसके द्वारा हम **सु-क्षितये**=उत्तम भूमि की प्राप्ति के लिये **अपः**=जलों के समान शत्रु और कर्मबन्धनों को **तरेम**=तरें। **अध**=और **स्वम् ओकः**=अपने गृह को प्राप्त कर **वः अभि स्याम**=आप लोगों के कृतज्ञ होकर रहें।

भावार्थ–समुद्र के अन्दर जो भूमि अर्थात् टापू हैं राजा की सेना समुद्री जहाजों के द्वारा

उन पर अपनी वीर सेना को भेजकर उन पर अधिकार करें। और विजय यात्रा सम्पन्न करके लौटें। व्यापारी लोग भी समुद्री यात्रा द्वारा विदेशों में व्यापार करने आते जाते रहें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

विद्वानों के समीप रहें

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।

शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

पदार्थ-तत्=वह **इन्द्रः**=सूर्य, विद्युत् आदि **वरुणः**-जल का स्वामी, **मित्रः**-मित्र, **अग्निः**= अग्नि, **आपः**-जल और **ओषधीः, वनिनः**-औषधियें और वन के वृक्ष **नः जुषन्त**-हमें सुख दें। हम **मरुताम् उपस्थे**=विद्वान् पुरुषों के समीप **शर्मन् स्याम**-सुख से रहें। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं नः स्वतिभिः सदा पात**=तुम हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ-विद्वान् पुरुषों के समीप रहकर सूर्य विज्ञान, जल विज्ञान, अग्नि विज्ञान तथा औषधि विज्ञान=आयुर्विज्ञान को जानकर सभी लोग सुखी हों। विद्वान् जन लोगों को जीवन के उत्तम साधनों का उपदेश करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता मरुत है।

[५७] सप्तपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ज्ञानवान् व बलवान् बनो

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति।

ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥

पदार्थ-जैसे **उग्राः**-प्रबल वायुगण **उर्वी रोदसी रेजयन्ति**-विशाल भूमि और अन्तरिक्ष को कम्पाते हैं और **यत् अयासुः**=जब चलते हैं तब **उत्सं पिन्वन्ति**-मेघ को बरसाते हैं वैसे ही **उग्राः**-बलवान् पुरुष **यत् अयासुः**-जब चलते वा प्राप्त होते हैं **उर्वी**-बड़ी **रोदसी**=सेनापतियों के अधीन स्थित उभयपक्ष की सेनाओं को **रेजयन्ति**=कंपाते हैं और **उत्सं**-ऊपर उठनेवाले विजेता को **पिन्वन्ति**=जलों से अभिषिक्त करते हैं। हे **यजत्राः**-दानशील जनो! हे **मध्वः**=मननशील जनो! **वः**=आप लोगों का **मारुतं नाम**=मनुष्यों का सा नाम, सामर्थ्य है, आप **यज्ञेषु**=यज्ञों और युद्धों में **शवसा**-बल और ज्ञान से **प्र मदन्ति**=हर्षित होते और उपदेश करते हो।

भावार्थ-उत्तम मननशील जन उत्तम ज्ञान का उपदेश करें तथा युद्धों में जल सेना, वायुसेना तथा थल सेना तीनों को प्रेरणा करें कि वे उग्र वायु (तूफान) व घनघोर बादलों के समान शत्रुओं को कंपाकर उनके बल को कमजोर करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

नेता कर्मकुशल हों

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म।

अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **मरुतः**-विद्वान् जनो! आप **निचेतारः हि**=धनों, ज्ञानों के संग्रही और **यजमानस्य**= दानशील के **मन्म**-अभिमत वस्तु **गृणन्त**=उपदेष्टा को **पिप्रियाणाः**=प्रसन्न करते हुए **प्रणेतारः**=

कर्म-कुशल होकर **अस्माकं विदथेषु**=हमारे यज्ञों में **वीतये**=रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये **बर्हिः**=उत्तमासन पर **आसदत**=विराजो।

भावार्थ–विद्वान् जन संग्रामों में सेनानायकों को रक्षा एवं युद्ध कर्म हेतु कर्मकुशलता का उपदेश करने जावें। वे कर्मकुशल नायक ऐसे विद्वानों को प्रसन्नता पूर्वक उत्तम आसनों पर बैठाकर उनका उपदेश सुनें तथा सैनिकों का मार्गदर्शन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तेजस्वी योद्धा

नैतावदुन्ये मुरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।

आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ ३ ॥

पदार्थ–यथा इमे=जैसे ये **मरुतः**=शत्रु घातक वीर मनुष्य **रुक्मैः**=कान्तियुक्त **आयुधैः**=हथियारों और **तनूभिः**=शरीरों से **भ्राजन्ते**=चमकते हैं **एतावत्**=उतने **अन्ये मरुतः न भ्राजन्ते**=दूसरे मनुष्य नहीं चमकते। ये **विश्व-पिशः**=सर्वाङ्ग-सुन्दर जन **रोदसी पिशानाः**=आकाश और भूमि को सुशोभित करते हुए सूर्य-किरणों के तुल्य **समानम् अञ्जि**=समान दीप्तियुक्त चिह्न को **शुभे कम्**=शोभा के लिये **अञ्जते**=प्रकट करते हैं।

भावार्थ–सर्वाङ्ग सुन्दर तेजस्वी वीर योद्धा कान्तियुक्त हथियारों तथा शरीरों से चमकते हुए थल सेना, जल सेना तथा वायु सेना में संयुक्त रूप से अपने-अपने ध्वज के साथ सामञ्जस्य बनाकर अन्य शत्रु सेना को तेजहीन करने में समर्थ हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नीतिवान राजा

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।

मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! **वः**=आप की **सा विद्युत्**=वह उज्ज्वल नीति **ऋधक् अस्तु**=सच्ची हो **यत्**=यदि चाहें हम **वः**=आप लोगों के प्रति **पुरुषता**=पुरुष होने से **आगः कराम**=अपराध भी करें। हे **यजत्राः**=पूज्य जनो! **तस्याम्**=उस नीति में रहकर **वः मा अपि भूम**=आप लोगों के प्रति हम अपराधी न हों। **वः चनिष्ठा**=आप की ऐश्वर्यादि-युक्त **सुमतिः अस्मे अस्तु**=शुभ मति हमारे लिये हो।

भावार्थ–विद्वान् वीर राजा अपने राष्ट्र की उन्नति के लिए उत्तम नीति का निर्माण कर लागू करे। वह नीति सच्ची हो, नाममात्र की न हो। वह नीति प्रजा जनों को उत्तम अन्न तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हो। प्रजाजन भी उस नीति का निष्ठा से पालन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कर्मशील बनो

कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।

प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=वीर जनो! **कृते चित् अत्र**=इस संसार में अपने किये कर्म और करने योग्य कर्त्तव्य में ही **रणन्त**=सुख लाभ करो। आप **अनवद्यासः**=अनिन्दित कर्म करनेवाले,

शुचयः=शुद्ध आचारवान्, **पावकाः**-पवित्र करनेवाले होओ। हे **यजत्राः**=संगति-योग्य ज्ञान, मान देनेवाले सज्जनो! आप **सुमतिभिः**-उत्तम ज्ञानों से **नः अवत**=हमारी रक्षा करो। आप लोग **वाजेभिः**=अन्नो से **पुण्यसे**-हमे पुष्ट करने के लिये **प्र तिरत**-बढ़ाओ।

भावार्थ-विद्वान् जन उपदेश करें कि संसार में मनुष्य को कर्मशील बनना चाहिए। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य कर्म को शुद्ध व ईमानदारी से करता है उसकी कीर्ति संसार में बढ़ती है तथा लोग उसका सम्मान करते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**मरुतः**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

दीर्घ जीवन

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि।

ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि॥ ६॥

पदार्थ-हे **मरुतः नरः**=नायक जनो! आप **विश्वेभिः नामभिः**=सब प्रकार के उत्तम नामों से **स्तुतासः**-प्रशंसित होकर **हवींषि**=ज्ञान और नाना ऐश्वर्य **उप व्यन्तु**=प्राप्त करें। **नः**=हमारी प्रजाओं को **अमृतस्य ददात**-अन्न, दीर्घ जीवन दो। **उत**-और **रायः**=उत्तम ऐश्वर्य **सुनृता**=शुभ वचन, **मघानि**=धन **जिगृत**=प्रदान करो।

भावार्थ-उत्तम नायक जन आचार्यों के समीप रहकर उत्तम शिक्षा ग्रहण करें। उस शिक्षा के द्वारा वे स्वयं एवं अन्य लोगों को दीर्घजीवन जीने तथा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान कर सकें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**मरुतः**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

कल्याणकारी साधन

आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात।

ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७॥

पदार्थ-हे **मरुतः**=विद्वानो! आप **विश्वे**-सब **सर्वताता**-सबके सुखकारक कार्य में **स्तुतासः**-प्रशंसित होकर **ऊती**=रक्षा सहित **सूरीन्**-विद्वानों की **आ जिगात**=प्रशंसा करो। **ये**=जो **शतिनः**=सैकड़ों बलों या ग्रामों के स्वामी होकर **त्मना**=स्वयं **नः**=हमें **वर्धयन्ति**=बढ़ाते हैं वे **यूयं**=आप लोग **स्वस्तिभिः**=कल्याणकारी साधनों से **नः पात**-हमारी रक्षा करो।

भावार्थ-विद्वान् जन राष्ट्र में उत्तम कल्याणकारी साधनों के आविष्कार की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन करें जिनसे प्रजा सुखी व राष्ट्र की रक्षा हो सके। इससे वे विद्वान् प्रशंसा व सम्मान के पात्र होते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता मरुत है।

[५८] अष्टपञ्चाशं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**मरुतः**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

वीरों का सम्मान करो

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान्।

उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात्॥ १॥

पदार्थ-हे विद्वान् जनो! **यः**=जो **दैव्यस्य**-विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, पद के योग्य

धाम्नः=नाम, स्थान और जन्म के कारण **तुविष्मान्**=सर्वाधिक बलशाली हैं, **साकमुक्षे**=उन एक साथ अभिषिक्त होनेवाले **गणाय**=वीर-प्रमुख जन का **प्र अर्चत**=अच्छी प्रकार आदर करो। जैसे वायुगण **महित्वा**=अपने भारी सामर्थ्य से **रोदसी**=आकाश और पृथिवी में **क्षोदन्ति**=जल ही जल करके शान्ति, सुख बरसाते हैं वैसे ही **महित्वा**=अपने बड़े सामर्थ्य से **रोदसी**=राजा और प्रजा वर्ग में **क्षोदन्ति**=जल के समान आचरण करते, सबको सुख से तृप्त करते हैं और **निः-ऋते**=दुःखमय संसार-कष्ट और **अवंसात्**=सन्तानरहित होने आदि दुःखों से दूर होकर खूब सुखी, सुसन्तान होकर **नाकं नक्षन्ते**=सुखमय लोक को प्राप्त होते हैं, उनका भी आप लोग **अर्चत**=आदर करो।

भावार्थ-राष्ट्र के अन्दर जल, थल व वायु तीनों सेनाओं के सेनापति तथा वीरों का सम्मान राजा, प्रजा तथा विद्वान् जन मिलकर करें। इससे प्रजाजन अपनी सन्तानों को इन सेनाओं का अंग बनाने के लिए प्रेरित होंगे। राष्ट्र के किसानों तथा मजदूरों को जो खेती का कार्य कर अन्नादि प्रदान करके राष्ट्र का भरण-पोषण करते हैं उन्हें भी सम्मानित करें। प्रजाओं को रोगों से बचाकर सुखी करनेवाले, सन्तानहीन को सुसन्तान प्रदान करनेवाले उत्तम वैद्यजनों का भी सम्मान करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

दुष्टों को दण्ड दो

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **मरुतः**=विद्वान्, वीर जनो! **ये**=जो आप लोग **त्वेष्येण**=अति तीक्ष्ण तेज, **महोभिः**=बड़े गुणों और **ओजसा**=पराक्रम से युक्त होकर **भीमासः**=भयंकर और **तुवि-मन्यवः**=अति क्रोधयुक्त **अयासः**=आगे बढ़नेवाले हो। **वः जनूः चित्**=आप की उत्पादक माताएँ भी **प्र सन्ति**=उत्तम कोटि की हैं। **यामन्**=अपने अपने मार्ग में चलते हुए भी **विश्वः**=सभी **स्वर्दृक्**=सुख से देखनेवाले लोग **वः भयते**=आप से अधर्म करने से भय करते हैं।

भावार्थ-राष्ट्र के रक्षक उत्तम वीरों के पराक्रम, दुष्टों के प्रति भयंकर क्रोध तथा नीतिज्ञान से दुष्ट व अत्याचारी लोग भयभीत रहते हैं। क्योंकि वे वीर, दुष्टों को कठोर दण्ड देते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मरुतः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

विद्वानों का सम्मान करो

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ ३ ॥

पदार्थ-जो **मरुतः**=वीर, विद्वान् जन **मघवद्भ्यः**=ऐश्वर्यवान् लोगों के हितार्थ **बृहत् वयः**=बहुत बड़ा जीवन, अन्न और बल **दधात**=धारण करते हैं और जो **नः**=हमारी **सु-स्तुतिं**=उत्तम स्तुति को **जुजोषन् इत्**=सेवन करते हैं और जो **गतः**=प्राप्त होकर **अध्वा**=मार्ग-तुल्य **जन्तुं न वितराति**=प्राणी को नाश नहीं करते, प्रत्युत बढ़ाते हैं, वह **स्पार्हाभिः ऊतिभिः**=उत्तम उपायों से **नः प्र तिरेत**=हमें भी बढ़ावें।

भावार्थ-राष्ट्र में वीर तथा विद्वान् जनों का सम्मान होना चाहिए। ये विद्वान् लोग उत्तम शिक्षाएँ देकर सन्मार्ग दर्शन करते हैं जिससे मनुष्य लोग उत्तम जीवन धारण कर दीर्घ जीवन व उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए जीवन को नष्ट करने से बच जाते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राजा शत्रु का पराजयकारी हो

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री।

युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम्॥ ४॥

पदार्थ—हे **धूतयः**—भोग-वासनाओं को कंपा कर शिथिल करनेवाले विद्वान् जनो! शत्रुओं को कंपा देनेवाले वीर पुरुषो! **युष्मा-ऊतः विप्रः**—तुम लोगों से सुरक्षित विद्वान् पुरुष जिससे **शतस्वी**=सैकड़ों धनों का स्वामी और सैकड़ों को अपना बना लेने हारा हो और जिससे **युष्मा-ऊतः अर्वा**=आप से सुरक्षित अश्वारोही वीर पुरुष **सहुरिः**—शत्रु-पराजयकारी और **सहस्री**=सहस्रों ऐश्वर्यों और पुरुषों का स्वामी, सहस्रपति होता है और जिससे **युष्मा-ऊतः सम्राड्**—आप लोगों से सुरक्षित महाराजा होकर **वृत्रम् उत हन्ति**—बढ़ते शत्रु का भी नाश करता और **वृत्रं हन्ति**-धन को प्राप्त करता है, हे विद्वानों और वीरो! **वः**—आप लोगों का **तत्**—ऐसा ही **देष्णम्**=दान हो।

भावार्थ—राजा उत्तम वीरों तथा श्रेष्ठ विद्वानों की सम्मति व सहयोग से शत्रु को पराजित करके महाराजा बने, और समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करे। अपने राज्य में ऐसी उत्तम कठोर व्यवस्था लागू करे जिससे भोग-वासना में फँसे लोग तथा राष्ट्र द्रोही जन काँप जावें और राष्ट्र प्रतिष्ठित व सुरक्षित रहे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अपराधियों को शीघ्र दण्ड दो

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः।

यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव सदेनं ईमहे तुराणाम्॥ ५॥

पदार्थ—मैं **मीढुषः**=सुख-वर्षक, **रुद्रस्य**=दुष्टों को रुलानेवाले वीर के अधीन **तान्**—उन वीर जनों को **आ विवासे**—आदर से राष्ट्र में बसाऊँ। वे **मरुतः**=शत्रुहन्ता **नः**—हमें **पुनः**=बार-बार **नसन्ते**=प्राप्त हों। **यत्**=जिस कारण **सस्वर्ता**—उपतापजनक शब्द से, या अप्रकट रूप से **यद् आविः**=वा जिस कारण प्रकट रूप से, वे **जिहीडिरे**=क्रोधित हों, **तुराणाम्**=शीघ्रकारी वा अपराधियों के दण्डकर्त्ता जनों के **तद् एनं**—उस क्रोध को हम **अव ईमहे**=दूर करें।

भावार्थ—राजा राष्ट्र में ऐसे रक्षक वीरों को नियुक्त करे जो दुष्टों व अपराधियों को कठोर दण्ड देकर देश द्रोहियों को नष्ट कर सकें। ऐसे राष्ट्र रक्षक वीरों को राजा सीमाओं पर बसाए तथा उनका आदर सत्कार करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मरुतः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः—**पञ्चमः** ॥

द्वेष भावों को दूर करो

प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त।

आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ६॥

पदार्थ—**मघोनां**-आदर-योग्य धन, ऐश्वर्य के स्वामी जनों की **सा सु-स्तुतिः**=वह उत्तम स्तुति **प्र-वाचि**=अच्छी प्रकार कही जाती है। हे **मरुतः**-विद्वान् पुरुषो! आप **इदं**=इस प्रकार के **सूक्तम्**—उत्तम वचन **जुषन्त**=सेवन करें। हे **मरुतः**=बलवान् पुरुषो! आप लोग **द्वेषः**=द्वेषी शत्रुओं और द्वेष भावों को भी **आरात् चित् युयोत**=दूर ही करो और **स्वस्तिभिः**=सुखकारी साधनों

से **सदा नः यूयं पात**=सदा हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–विद्वान् पुरुष राष्ट्र जनों को ऐसे उत्तम उपदेश करें जिनसे लोगों का परस्पर द्वेषभाव दूर हो तथा वे परस्पर प्रेम से मिलकर राष्ट्रोन्नति में सहयोगी बनें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और मरुत, मृत्युञ्जय रुद्र देवता हैं।

[५९] एकोनषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

सन्मार्ग पर चलो

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत॥ १॥

पदार्थ–हे **देवासः**=विद्वान् जनो! आप **यं त्रायध्वे**–जिसकी रक्षा करते हो और **यं च**= जिसको **इदम् इदम्**=यह सन्मार्ग है, यह सत् कृत्य है, ऐसा बतलाकर **नयथ च**=सन्मार्ग और सत्कर्म में ले जाते हो, हे **अग्ने**=विद्वन्! हे **वरुण**=श्रेष्ठ पुरुष! हे **मित्र**=स्नेहवन्! हे **अर्यमन्**=दुष्टों के नियन्तः! हे **मरुतः**=विद्वान् प्रजाजनो! आप उसको अवश्य **शर्म यच्छत**=शान्ति प्रदान करो।

भावार्थ–श्रेष्ठ विद्वान् प्रजाजनों को बुराइयों व दोषों से बचाकर उन्हें सत्कर्म व सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं। इससे उन लोगों को अवश्य ही शान्ति प्राप्त होगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सत्संगी बनो

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति॥ २॥

पदार्थ–हे **देवाः**=विद्वान् जनो! **प्रिये अहनि**=किसी उत्तम दिन **ईजानः**=आप का सत्संग करता हुआ पुरुष **वः**=आप को **वराय**=स्वीकार करने के लिये **महीः इषः दाशति**=उत्तम–उत्तम इच्छाएँ प्रकट करता और अन्नादि समृद्धियों को देता है, वह **युष्माकं अवसा**=आपके ज्ञान और बल से **द्विषः**=शत्रुओं को **तरति**=पार कर जाता है। **सः**=वह **क्षयं**=ऐश्वर्य को **प्र तिरते**=खूब बढ़ा लेता है।

भावार्थ–मनुष्यों को योग्य है कि वे श्रेष्ठ विद्वानों की संगति करें। अपने अन्दर उत्पन्न होनेवाली इच्छाओं की पूर्ति करने की विधि पूछें। इससे ज्ञान और बलों को बढ़ाकर अपने आन्तरिक व बाहरी शत्रुओं का नाश करें तथा अन्न और ऐश्वर्य की खूब वृद्धि करके सुखी हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

शुभ संकल्पवाले बनो

नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः॥ ३॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! आप **कामिनः**=उत्तम संकल्प और इच्छा से युक्त होकर **विश्वे**=सब **सचा**=साथ मिलकर **अस्माकं सुते**=हमारे ऐश्वर्य के बल पर **पिबत**=ऐश्वर्य का उपभोग करो। **वः चरमं चन**=आप में से अन्तिम को भी **वसिष्ठः**=श्रेष्ठ वसु राजा **न परिमंसते**=त्याज्य नहीं समझता।

भावार्थ–जो विद्वान् उत्तम संकल्प व दृढ़ इच्छाशक्तिवाला होकर पुरुषार्थ पूर्वक विद्या को प्राप्त करके पूर्ण योग्यता प्राप्त करता है राजा लोग उसे उच्च पद पर नियुक्त करके कभी भी उसको त्याज्य नहीं समझते।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः **निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सेना प्रजा की रक्षा करनेवाली हो

नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।

अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः॥ ४॥

पदार्थ–हे **नरः**–मनुष्यो! आप **यस्मै अराध्वम्**–जिसको सुखादि देते हो **वः ऊतिः**–आपकी रक्षाकारिणी सेना **पृतनासु**=संग्रामों में **नहि मर्धति**=उसका नाश नहीं करती। उसे **वः नवीयसी सुमतिः**=आप की सुमति **अभि आवत्**=प्राप्त हो। आप **पिपीषवः**=प्रजा-पालन की इच्छा से **तूयं**=शीघ्र **यात**=प्रयाण करो और **आयात**–आओ।

भावार्थ–सेना प्रजाओं की रक्षा के लिए राष्ट्र की सीमाओं तथा बस्तियों में जागरूक रहकर चक्कर लगावे। संग्रामों में भी प्रजाजनों की हानि न होने देकर प्रजा के हितैषियों की भी रक्षा करती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

विद्वानों का सत्कार

ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये।

इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन॥ ५॥

पदार्थ–**ओ**=हे **मरुतः**=विद्वान् पुरुषो! हे **घृष्विराधसः**=एक दूसरे से बढ़नेवाले आप **पीतये**=उपभोग के लिये **अन्धांसि**=अन्नों को **सु यातन**=सुख से प्राप्त करो। मैं **इमा**=ये **हव्या**=खाने और लेने-देने योग्य द्रव्यादि **ररे**=देता हूँ। **हि कं**–आप लोग **अन्यत्र**=अन्य स्थान में **मो सु गन्तन**=मत जाइये। मेरे राष्ट्र में रहिये।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह अपने राज्य में विद्वानों को आजीविका के समस्त साधन उपलब्ध करावे। उनको यथोचित सम्मान प्रदान करे जिससे वे विद्वान् इस राजा के राष्ट्र को छोड़कर अन्य देशों में न जावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

राष्ट्र रक्षक बनो

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु।

अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै॥ ६॥

पदार्थ–हे **मरुतः**–विद्वान्, प्रजाजनो! **नः बर्हिः आसदत च**=आप हमारे वृद्धियुक्त गृह आदि को प्राप्त होओ **नः**=हमें **स्पर्हाणि**–चाहने योग्य, **वसु**=धनों को **दातवे**=देने के लिये **अविता च**=प्राप्त हों। आप **अस्रेधन्तः**=प्रजा का नाश न करते हुए, **सोम्ये मधौ**=सोम आदि ओषधिरस से युक्त मधु समान विद्वानों के योग्य आनन्ददायक इस राष्ट्र में और अन्नादि के ऊपर **इह**=इस गृहादि में **स्वाहा**=उत्तम सत्कार, सुखपूर्वक अभ्यवहार द्वारा **मादयाध्वै**=आनन्द लाभ करिये।

भावार्थ–प्रजाजन अपने घरों में विद्वान् लोगों को बुलाकर उनका सम्मान करके उनसे मार्गदर्शन लिया करें जिससे अपने स्वास्थ्य को ठीक रखते हुए पुरुषार्थ पूर्वक अन्न-धन कमाकर समृद्ध होवें तथा अपनी सन्तानों को संस्कार प्रदान कर आनन्द प्राप्त करें तथा राष्ट्र को उन्नत बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नायक रणकुशल हो

सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन्।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥ ७ ॥

पदार्थ–**सस्वः**=गुप्त भाव से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि गुप्त रखनेवाले, **तन्वः शुम्भमानाः**=देहों, आत्माओं को गुणों और आभरणों से अलंकृत करनेवाले **नीलपृष्ठाः**=श्यामवर्ण की पीठवाले **हंसासः चित्**=हंसों के समान **नीलपृष्ठाः**=नील, श्याम वर्ण की या सुन्दर पोशाकोंवाले **हंसासः**=हंसवत् विवेकी, ध्येय तक पहुँचने हारे, **अपप्तन्**=आवें। वे **रण्वाः नरः न**=रणकुशल नायकों के समान **सवने**=ऐश्वर्यमय राष्ट्र में **मदन्तः**=आनन्दपूर्वक रहते हुए **अभितः**=सब ओर **विश्वशर्धः**=समस्त बल को **मा अभितः**=मेरे चारों ओर **नि षद**=बनाये रक्खो।

भावार्थ–राजा अपने राज्य की रक्षा तथा शत्रु पर विजय पाने के उद्देश्य से ऐसे कुशल गुप्तचरों को नियुक्त करे जो अपने अन्दर के भावों को छुपाकर, वेश बदलकर तथा अपनी चेष्टाओं को गुप्त रखते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हों। इनसे सूचना पाकर कुशल सेनानायक राष्ट्र में सब ओर शान्ति व्यवस्था बनाकर राष्ट्र के ऐश्वर्य को बढ़ाता हुआ राष्ट्र की पूर्ण रक्षा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दुष्टों को कठोर दण्ड दो

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=विद्वानों और वीर जनो! **यः**=जो **नः**=हमारे बीच **दुर्हृणायुः**=दुःखदायी, दुष्ट-हृदय का पुरुष, हमारे **चित्तानि**=अन्तःकरणों को **तिरः**=तिरस्कारपूर्वक **अभि जिघांसति**=चोट पहुँचाना चाहता है **सः**=वह **द्रुहः पाशान्**=द्रोही के योग्य फाँसों या बन्धनों को **प्रति मुचीष्ट**=त्याग दे और **तम्**=उसको **तपिष्ठेन हन्मना**=अति तापदायक हथियार से **हन्तन**=दण्डित करो।

भावार्थ–जो दुष्ट लोग प्रजाजनों को कष्ट पहुँचाकर उनके हृदय को अशान्त करते हैं। राजनियमों का तिरस्कार करके राष्ट्र में अशान्ति तथा अव्यवस्था फैलाते हैं राजा ऐसे दुष्टों को कठोर दण्ड देवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

उत्तम व्रती बनो

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=उत्तम मनुष्यो! हे **सान्तपनाः**=तपस्वी जनो! आप **इदं हविः**=यह उत्तम अन्न **जुजुष्टन**=सेवन करो। हे **रिशादसः**=**रिशात्-असः**, **रिश-अदसः**=हिंसकों के नाशक जनो! **युष्माक-ऊती**=तुम लोगों की रक्षा से ही हम लोग अन्नादि लाभ करें।

भावार्थ–राष्ट्र में उत्तम तपस्वी जनों को रक्षा तथा उनके पालन आदि की व्यवस्था उत्तम प्रकार से होवे। इससे प्रजा जनों को उत्तम आदर्श प्राप्त होता है जिससे वे भी तपस्वी होकर उत्तम व्रतों को धारण करके राष्ट्र को समृद्ध बनाने में सहायक होते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

गृहस्थी यज्ञशील हों

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन। युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥

पदार्थ–हे **गृहमेधासः**=गृह में यज्ञ करने हारे गृहस्थ जनो! हे **मरुतः**=मनुष्यो! आप लोग **आ गत**=आइये। **मा अपभूतन**=हमसे दूर मत होइये। हे **सुदानवः** उत्तम दानशील पुरुषो! **युष्माक-ऊती**=आप लोगों की रक्षा और सत्कार से ही हम प्रसन्न हों।

भावार्थ–गृहस्थी लोगों को चाहिये कि वे अपने घरों में नित्य यज्ञ करें तथा विद्वानों को बुलाकर उन्हें दान व दक्षिणा से तृप्त करें। उन विद्वानों से सन्मार्ग प्राप्त करके उत्तम सुख का उपभोग करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

क्रान्तदर्शी जनों की नियुक्ति

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः। यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥

पदार्थ–हे **स्वतवसः**=स्वयं शरीर, आत्मा से बलशाली पुरुषो! हे **कवयः**=क्रान्तदर्शी जनो! हे **सूर्य-त्वचः**=सूर्य-तुल्य देह-कान्तिवाले पुरुषो! हे **मरुतः**=विद्वानो! मैं **नः**=आप को **इह-इह**=इस-इस पद के निमित्त **आवृणे**=वरण करता हूँ। आप लोग **यज्ञं**=यज्ञ को **आ गत**=प्राप्त हों और **मा अप भूतन**=हमसे दूर न होवें।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह स्वस्थ व बलिष्ठ शरीरवाले तेजस्वी पुरुषों की नियुक्ति सेना में, क्रान्तदर्शी विद्वानों की नियुक्ति प्रशासनिक पदों तथा विज्ञान वेत्ताओं की नियुक्ति यज्ञ=शोध कार्यों में विभिन्न पदों पर करके राष्ट्र को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**रुद्रः** ॥ छन्दः–**अनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

खरबूजे के समान बन्धन से छूटो

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥

पदार्थ–त्र्यम्बकं=तीनों शब्दमय वेदों के उपदेष्टा वा तीनों लोकों, तीनों वेदों, तीनों वर्णों के उपदेष्टा, रक्षक, द्विपात, चतुष्पात् और सरीसृप तीनों के माता के समान पालक, **सु-गन्धिं**=उत्तम गन्ध से युक्त, उत्तम कुलोत्पन्न, सत्कर्मा, **पुष्टिवर्धनम्**–समृद्धि बढ़ानेवाले पूज्य पुरुष वा प्रभु की हम **यजामहे**–उपासना पूजा करते हैं। मैं **मृत्योः**–मृत्यु के **बन्धनात्**=बन्धन से **उर्वारुकम् इव**=खरबूजे के फल के समान **मुक्षीय**–मुक्त होऊँ और **अमृतात्**–अमृतमय मोक्ष से **मा मुक्षीय**–पृथक् न होऊँ।

भावार्थ–सत्कर्म करनेवाले वेदों के उपदेष्टा विद्वानों की सुसंगति से उपदेश प्राप्त कर मनुष्य लोग अज्ञान व दुष्कर्मों से छूटकर ज्ञानी बनें तथा सांसारिक सुखों का उपभोग करें और अन्त में परमात्मा के अमृतमय मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता सूर्य तथा मित्रावरुण है।

अथ पञ्चमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः

[६०] षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सूर्यः** ॥ छन्दः–**पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सूर्य के समान तेजस्वी बनो

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम्।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ १ ॥

पदार्थ–हे सूर्य-समान तेजस्विन्! हे **अदिते**=अविनाशिन्! हे **अर्यमन्**=न्यायकारिन्! तू **अनागाः**=अपराधों से रहित होकर **मित्राय**=स्नेहवान् और **वरुणाय**=श्रेष्ठ जन के प्रति **अद्य**=आज के समान सदा ही **उत् यन्**=उत्तम पद को प्राप्त होता हुआ **सत्यं ब्रवः**=सत्योपदेश करता है, **देवत्रा**=विद्वान् मनुष्यों में **वयं**=हम लोग **तव**=तेरे ही दिये **सत्यं**=सत्य ज्ञान का **गृणन्तः**=उपदेश करते हुए **तव प्रियासः स्याम**=तेरे प्रिय होकर रहें।

भावार्थ–मनुष्य लोग विद्वान् जनों के द्वारा परमेश्वर के दिव्य ज्ञान वेद का उपदेश सुनें तथा स्वयं को पाप व अपराध से रहित करके श्रेष्ठ जनों के समान सबके प्रिय होकर अविनाशी न्यायकारी परमेश्वर की उपासना करें। इससे स्वयं को सूर्य के समान तेजस्वी बनाकर सत्य ज्ञान का प्रचार व उपदेश किया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

परस्पर प्रेम से रहो

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्॥ २ ॥

पदार्थ–हे **मित्रा वरुणा**=स्नेही और एक दूसरे को वरण करनेवाले स्त्री–पुरुषो! **ज्मन् सूर्यः**=अन्तरिक्ष में सूर्य के समान **एषः स्यः**=वह यह, तेजस्वी **नृ-चक्षाः**=सब मनुष्यों का द्रष्टा, **विश्वस्य**=समस्त **स्थातुः जगतः च**=स्थावर और जंगम का **गोपाः**=रक्षक **मर्तेषु**=मनुष्यों में **ऋजु**=सरल धार्मिक कार्यों और **वृजिना**=पापों को **पश्यन्**=न्यायपूर्वक देखता हुआ **उभे अभि**=स्त्री और पुरुष, वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति **उद् एति**=उदय को प्राप्त होता है।

भावार्थ–स्त्री और पुरुषों को चाहिए कि वे परस्पर प्रेम से रहें तथा समस्त जड़ और चेतन सृष्टि की रक्षा करें। धार्मिक भाव अर्थात् कर्त्तव्य पालन करते हुए झगड़नेवाले स्त्री–पुरुषों को भी प्रेमपूर्वक समझाकर न्याय करें तथा सुपथगामी बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राष्ट्र के अमात्य श्रेष्ठ पुरुष हों

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे॥ ३ ॥

पदार्थ–सधस्थात्=अन्तरिक्ष में जैसे सूर्य **सप्त हरितः**=सातों जलाहरण करनेवाली किरणों को **अयुक्त**-नियुक्त करता है और जैसे **घृताचीः हरितः**=जल से युक्त किरणें वा रात्रियां वा

दिशाएँ **ईं वहन्ति**=उस सूर्य को धारण करती हैं वैसे वह राजा **सप्त हरितः**-राष्ट्र के सात प्रकार के राज-काज चलानेवाले अमात्यों का **सधस्थात्**-साथ बैठने के सभास्थान से आसन करता हुआ, **अयुक्त**=उचित कार्यों में नियुक्त करे **याः**=जो **घृताचीः**-तेज और स्नेह युक्त होकर **सूर्य वहन्ति**=सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को धारण करते हैं। **यः**-जो राजा **युवाकुः**-तुम दोनों की शुभ कामना करता हुआ, हे **मित्रावरुणौ**=प्राण, उदान के समान राष्ट्र के आधार-रूप स्त्री-पुरुषो! **यूथा इव**=गौओं के यूथों को ग्वाले के तुल्य समस्त **धामानि**=स्थानों और पदों तथा **जनिमानि**=सब प्राणियों और कार्यों को भी **सं चष्टे**-अच्छी प्रकार देखता है।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि वह राष्ट्र के सात प्रकार के राज-कार्यों को चलाने के लिए शान्त, तेजस्वी तथा कुशल विद्वान् पुरुषों की सभा का निर्माण करे। उन्हें उचित पदों पर योग्यतानुसार नियुक्त करे। राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों, गौओं के समूह तथा गोपालकों=किसानों की भूमि, घर व अन्य लोगों के विभिन्न कार्यों की रक्षा व ऐश्वर्य की वृद्धि करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा न्यायकारी हो

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४ ॥

पदार्थ-हे स्त्री-पुरुषो! **वाम्**=आप लोगों के लाभार्थ ही **मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः**-जल-युक्त मेघ ऊपर उठते हैं, वैसे ही **मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः**=मधुर गुणयुक्त अन्न भूमि पर उत्पन्न होते हैं। सूर्य जैसे **शुक्रम् अर्णः अरुहत्**=शुद्ध जल को ऊपर उठाता है वैसे ही सूर्यवत् तेजस्वी राजा शुद्ध धन वा प्राप्तव्य पद को प्राप्त करे। **यस्मै**-जिसके हितार्थ **आदित्याः**=१२ मासों तक के सदृश नाना रूप से सर्वोपकारक तेजस्वी १२ सचिव **अध्वनः**=राज-कार्यों के मार्ग **रदन्ति**=बनाते हैं, वही **स-जोषाः**=समान रूप से सबको प्रिय, **मित्रः**=सर्वस्नेही, **अर्यमा**=न्यायकारी, **वरुणः**=सबके वरने योग्य हो।

भावार्थ-उत्तम राजा को योग्य है कि वह अपने राष्ट्र के स्त्री व पुरुषों को उनकी योग्यता के अनुसार पद व धन प्रदान करे। सदैव प्रजाहित का चिन्तन करते हुए उपकारी भाववाले मनुष्यों को सचिव नियुक्त करे जो राजकार्य को उत्तम रीति से चलाते हुए प्रजाजनों के प्रिय होकर सबके साथ न्याय करें तथा स्वयं सम्मान पाकर राजा को भी प्रतिष्ठित करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा विवेकी हो

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥

पदार्थ-**इमे**=ये विद्वान्, **मित्रः**=सर्वस्नेही, **अर्यमा**=न्यायकारी और **वरुणः**=सर्वश्रेष्ठ राजा ये सब **भूरेः**-बहुत बड़े **अनृतस्य**-असत्य को भी **चेतारः**=विवेक द्वारा छानबीन करनेवाले **हि सन्ति**=अवश्य हों। **दुरोणे**-गृह में पुत्र जैसे धन की वृद्धि करते हैं वैसे **दुरोणे**=दुष्प्राप्य पद पर स्थित होकर, वा **इह**=इस राष्ट्र में भी **अदितेः**=सूर्यवत् तेजस्वी राजा के अधीन उसके **पुत्राः**=पुत्रों के समान आज्ञाकारी **शग्मासः**=सुखकारक और **अदब्धाः**=शत्रुओं से पीड़ित न होनेवाले होकर **ऋतस्य वावृधुः**=न्याय और धन की वृद्धि करें।

भावार्थ–राजा अपने विद्वान् मन्त्रियों के साथ मिलकर बड़े असत्य=भ्रष्टाचार का भी विवेक पूर्वक मन्थन अवश्य करे जिससे राजा तेजस्वी होकर भ्रष्टाचार को समाप्त करके राष्ट्र में धन की वृद्धि एवं राजनियमों का पालन कराते हुए दुष्टों व शत्रुओं को दण्डित करके न्याय का शासन स्थापित कर सके।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रतापी पुरुष ही राष्ट्र नायक हों

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।

अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थ–**इमे**=ये **मित्रः**=सर्वस्नेही, **वरुणः**=राजा और **दूडभासः**=दूर–दूर तक चमकनेवाले पुरुष **दक्षैः**=अपने कर्मों और ज्ञानों से **अचेतसं चित्**=ज्ञान–रहित को भी **चितयन्ति**=ज्ञानवान् करते हैं। **अपि**=और **स-चेतसं**=उत्तम ज्ञानवाली **क्रतुं**=बुद्धि वा कर्म का **वतन्तः**=सेवन करते हुए **सु-पथा**=उत्तम मार्ग से **अंहः तिरः चित्**=पाप को दूर करते और अन्यों को सन्मार्ग से **नयन्ति**=ले जाते हैं।

भावार्थ–राजा सर्वप्रिय तथा तेजस्वी हो जो अपने तेजस्वी कर्मों तथा ज्ञान के द्वारा आदर्श स्थापित करके राष्ट्र की प्रजा को भी उत्तम मार्ग पर चलाकर ज्ञानी तथा कर्मनिष्ठ बना सके और उसकी प्रजा पाप कर्मों से दूर रहकर सन्मार्गगामी बने।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सदा सावधान रहो

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।

प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥

पदार्थ–**इमे**–ये **दिवः पृथिव्याः**=आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों के **चिकित्वांसः**= ज्ञाता, विद्वान् **अनिमिषाः**=कभी आँखें न झपकते हुए, सदा सचेत होकर **अचेतसम्**=अज्ञानी पुरुष को भी **प्र-व्राजे चित्**=उत्तम गन्तव्य मार्ग में **नयन्ति**=ले जाते हैं। **प्र-व्राजे**=मार्ग में भी जैसे **नद्यः गाधम्**=नदी का गहरा जल **अस्ति**=होता है, वे विद्वान् **अद्य**=इस **विष्पितस्य**–दूर–दूर तक विस्तृत विघ्न–रूप अथाह जल से भी **नः पारं पर्षन्**=हमें पार करें।

भावार्थ–राजसभा में नियुक्त विद्वान् पुरुष सदैव सावधान रहें। वे भूमि तथा आकाशमार्ग से आनेवाली विपत्तियों पर जागरूक रहकर दृष्टि रखें। आनेवाली विपत्तियों की यथा समय लोगों को जानकारी देकर मार्गदर्शन करें तथा उन विघ्नों से बचने की रीति भी सुझावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों का आदर करो

यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।

तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥

पदार्थ–**यत्**=जो **अदितिः**=विद्वान्, माता–पिता के तुल्य शासक राजा, **मित्रः**=स्नेही, **वरुणः**= सर्वोपरि उत्तम पुरुष ये सब **सुदासे**=उत्तम करादि के दाता के हितार्थ वा वृत्ति आदि देनेवाले राजा के लिये **भद्रं**–सुख **यच्छन्ति**=देते हैं। **तस्मिन्**=उसके अधीन हम अपने **तोकं तनयं आ**

दधानाः=पुत्र-पौत्रादि का पालन करते हुए **तुरासः**=शीघ्रकारी होकर **देवहेडनं**=विद्वानों का अनादर **मा कर्म**=न करें।

भावार्थ–राष्ट्र की प्रजा राजा को राष्ट्र की समृद्धि के लिए अपनी आय का निश्चित अंश कर के रूप में दान करे, जिससे राजा अपने अधिकारियों व कर्मचारियों को वेतन आदि समय पर दे सके। प्रजाहित के लिए कल्याणकारी कार्य कर सके। विद्वानों का उचित सम्मान भी राजा तथा प्रजा दोनों सदैव करते रहें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**विराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

दुष्टों से दूर रहो

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम्॥ ९ ॥

पदार्थ–जो व्यक्ति **होत्राभिः**=उत्तम वाणियों से **वेदिम्**=सब सुखों को प्राप्त करानेवाली यज्ञ वेदी और भूमि को **अवयजेत**=प्राप्त नहीं करता, **सः**=वह **वरुण-ध्रुतः**=श्रेष्ठ जनों से दण्डित होकर **कः चित् रिषः अव यजेत**=कई प्रकार के कष्ट प्राप्त करता है। **अर्यमा**=न्यायकारी, हे **वृषणाः**=बलवान् स्त्री-पुरुषो! **द्वेषोभिः परि वृणक्तु**=द्वेषकारी से हमें दूर रक्खे और **सु-दासे**=उत्तम दानशील पुरुष को **उरुं लोकं**=विशाल स्थान प्रदान करे।

भावार्थ–जो व्यक्ति वेदवाणी तथा यज्ञवेदी से दूर रहता है, जो दुष्ट अपने दुष्कर्मों के कारण दण्डभागी होता है ऐसे लोगों से सभी स्त्री-पुरुष अपनी सन्तानों को दूर रखें जिससे उनमें बुरे संस्कार या दुर्व्यसन न आने पावें। सन्तानों को संस्कारित करने के लिए उत्तम विद्वानों को अपने घरों में बुलाया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**स्वराट्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

शत्रुओं को पराजित करो

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः॥ १० ॥

पदार्थ–**एषां**=इन उक्त बलवान् प्रधान पुरुषों की **सम् ऋतिः**=एक साथ संगति **सस्वः चित्**=गुप्त और **त्वेषी**=तेजस्विनी हो। वे लोग **अपीच्येन**=सुगुप्त, दृढ़ **सहसा**=बल से **सहन्ते**=शत्रु पराजय में समर्थ होते हैं। हे **वृषणः**=बलवान् पुरुषो! **युष्मद्भिया**=आप के भय से **रेजमानाः**=शत्रु काँपते हों और **दक्षस्य महिना चित्**=बल के सामर्थ्य से आप लोग **नः मृडत**=हमें सुखी करें।

भावार्थ–राजा अपने मन्त्रिमण्डल व सेनापति के साथ अत्यन्त गोपनीयता से गुप्त बैठक में विचार-विमर्श करके शत्रु को पराजित करने की सुदृढ़ योजना तैयार करे जिससे शत्रु कम्पित व भयभीत होकर राष्ट्र पर आक्रमण करने की सोच भी न सके।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञान दाता बनो

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु॥ ११ ॥

पदार्थ–**यः**=जो मनुष्य **ब्रह्मणे**=ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हितार्थ, वा ज्ञान, धन के प्राप्त्यर्थ

सुमतिम्=कल्याणकारी ज्ञान और बुद्धि **आ यजाते**=प्राप्त करता है और जो **वाजस्य**=बल, ज्ञान और **परमस्य रायः सातौ**=सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य लाभ के लिये **सुमतिम् आ यजाते**=ज्ञानवान् पुरुष का सत्संग करता है **मघवानः अर्यः**=पूज्य ज्ञान, धनादि-सम्पन्न पुरुष उसको **मन्युं सीक्षन्त**=ज्ञान प्रदान करते और **क्षयाय**=रहने और उसकी ऐश्वर्य के लिये **उरु**=बहुत **सु-धातु**=उत्तम भरण-पोषण, उत्तम गृह, आभूषण आदि **चक्रिरे**=देते हैं।

भावार्थ–ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुष अपने निकट आनेवाले मनुष्यों को ज्ञान प्रदान करके उन्हें धन एवं बल प्राप्ति के योग्य पात्र बना देता है। वे सत्संगी मनुष्य उस ज्ञान प्राप्ति के बदले उन विद्वानों का उत्तम भोजन, निवास तथा आभूषण एवं उत्तम वाणी से सत्कार करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कष्टों को दूर करें

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

पदार्थ–हे **मित्रा वरुणौ**=स्नेहयुक्त, श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो! हे **देव**=विद्वानो! **यज्ञेषु**=सत्संगों, यज्ञों में, **इयं**=यह **युवभ्यां**=आप दोनों के लिये **पुरः-हितः अकारि**=आदर पूर्वक उत्तम भेंट की जाती है। आप **विश्वानि**=समस्त **दुर्गा**=कष्टों को **तिरः**=दूर करके हमें **पिपृतं**=पालन करो और **यूयं**=आप लोग **नः स्वस्तिभिः सदा पात**=हमारी उत्तम साधनों से सदा रक्षा करो।

भावार्थ–मनुष्य लोग यज्ञों एवं सत्संगों में सदाचारी विद्वान् स्त्री-पुरुषों का संग करके सन्मार्गदर्शन द्वारा अपने समस्त कष्टों को दूर करें। उन विद्वानों को आदरपूर्वक भेंट देकर तृप्त करें। इससे लोग अपने उत्तम साधनों का सदुपयोग करके परम्पराओं की रक्षा किया करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता मित्रावरुण है।

[६१] एकषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**भुरिक्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः–**पञ्चमः** ॥

सूर्यवत तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान्।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **वरुण**=सबसे वरणीय श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो! **सूर्यः चक्षुः ततन्वान्**=सूर्य जैसे आँख की शक्ति को बढ़ाता है वैसे **सूर्यः**=ज्ञान-प्रकाशक ईश्वर और विद्वान् **देवयोः**=ज्ञान के इच्छुक **वां**=आप दोनों के **प्रतीकं**=ज्ञानदाता **चक्षुः**=प्रज्ञानेत्र को **ततन्वान्**=विस्तृत करता हुआ आपको **एति**=प्राप्त हो। **यः**=जो **विश्वा भुवनानि**=समस्त लोकों को **अभि चष्टे**=प्रकाशित करता, सब पदार्थों का उपदेश करता है **सः**=वह **मर्त्येषु**=मनुष्यों में **मन्युम्**=मननीय ज्ञान भी **आ चिकेत**=प्रदान करता है। परमेश्वर-तुल्य विद्वान् भी मनुष्यों में ज्ञान-दान करे।

भावार्थ–जिस विद्वान् ने स्वयं को ज्ञान के द्वारा तेजस्वी बना लिया है उसका कर्त्तव्य है कि वह समस्त जिज्ञासु श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों को अपने उस ज्ञान का दान देकर कृतार्थ करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

उत्तम जीवन

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति।

यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे॥ २ ॥

पदार्थ-हे **मित्रा-वरुणा**=स्नेही और वरणीय स्त्री पुरुषो! **यस्य**=जिसके **ब्रह्माणि**=ज्ञानों और धनों की आप दोनों **सु-क्रतू**-उत्तम कर्मवान् होकर **अवाथ**=रक्षा करते हो और **यत्**-जिसके **क्रत्वा न**-कर्म और ज्ञान-सामर्थ्य से **शरदः पृणैथे**=जीवन के वर्षों को सुखपूर्वक बिताते हो **सः विप्रः**=वह विद्वान् **ऋतावा**=न्याय और सत्य से युक्त और **दीर्घ-श्रुत्**-दीर्घ काल तक वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रोता **वां**=आप के प्रति **मन्मानि**=मननीय ज्ञानों का **इयर्त्ति**=उपदेश करे।

भावार्थ-वेदादि सत्यशास्त्रों के ज्ञाता व्याख्याता विद्वान् कर्मशील स्त्री-पुरुषों को धन की रक्षा एवं उत्तम न्याय युक्त जीवन जीने का उपदेश किया करें जिससे उनके जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होवें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा का कर्त्तव्य

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू।

स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा॥ ३ ॥

पदार्थ-हे **मित्रावरुणौ**='मित्र', प्रजा के मृत्यु आदि कष्टों से रक्षक और 'वरुण' दुःखों के दूर कर्ता दोनों वर्गो! हे **सुदानू**=उत्तम ज्ञान दाता आप दोनों **उरोः पृथिव्याः**=विशाल पृथिवी और **बृहतः**-बड़े भारी **ऋष्वात्**=महान् **दिवः**=प्रकाशयुक्त सूर्य से **स्पशः**=ग्रहण-योग्य पदार्थों को **प्र प्र दधाथे**=प्राप्त करो। **ओषधीषु**=ओषधियों और **विक्षु**=प्रजाओं में **अनिमिषं**=बिना प्रमाद के, **ऋधक्**=सत्य के बल से **रक्षमाणा**=प्रजा रक्षण करते हुए भी **यतः**=यत्नशील **स्पशः प्र दधाथे**=गुप्तचरों और अध्यक्षों को नियुक्त करो।

भावार्थ-उत्तम राजा को चाहिए कि वह अपने राज्य में कर्त्तव्यपरायण गुप्तचरों तथा प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति करे। इससे प्रजा की रक्षा होगी तथा राजा, प्रजा में लोकप्रिय हो जाएगा।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

मित्रावरुण का सामर्थ्य

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा।

अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते॥ ४ ॥

पदार्थ-हे मनुष्यो! **मित्रस्य**=शान्तिदायक और **वरुणस्य**=दुःखों के वारणकर्ता जन के **धाम**=तेज और स्थान की **शंस**=प्रशंसा करो। जिसके **महित्वा**=सामर्थ्य से **शुष्मः**=बलवान् पुरुष, या जिसका महान् सामर्थ्य **रोदसी बद्बधे**-आकाश-पृथिवीवत् दुष्टों को रुलानेवाली सेना और राष्ट्र-सभा दोनों को व्यवस्थित करता है। **अयज्वनाम्**-यज्ञ आदि से रहित लोगों के **मासाः**=महीनों पर महीने **अवीराः**=वीर पुत्रादि रहित, वा बिना ज्ञान-प्राप्ति के **अयन्**-व्यतीत होते हैं और **यज्ञमन्मा**=पूज्य प्रभु को मनन, आचार्य और राजादि के मान्य सत्संगादि से ज्ञान प्राप्त करनेवाला

जन **वृजनं**=अपने ज्ञान और बल को **प्र तिराते**=बढ़ाने में समर्थ होता है।

भावार्थ–बलवान् पुरुष अपने तेज व सामर्थ्य से अपनी सेना तथा राष्ट्र सभा दोनों को व्यवस्थित रखे। जो लोग यज्ञ आदि के द्वारा ज्ञान प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं उन्हें आचार्यों की सत्संगति की प्रेरणा देकर ज्ञान–बल बढ़ाने में समर्थ बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उपकारी पुरुष

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम्।

द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन्॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **अमूरा**=अमूढ़, मोह में न पड़नेवालो! हे **विश्वा**=विद्याओं में प्रवेश करने हारो! हे **वृषणौ**=सुख–वर्षक मेघ–सूर्यवत् उपकारी स्त्री–पुरुषो! **इमाः**=ये **वां**=आप की ऐसी उत्तम वाणियाँ हैं **यासु**=जिनमें **चित्रं**=अद्भुत और **यक्षम्**=स्तुति योग्य **न न ददृशे**=कुछ नहीं दिखाई देता ऐसा नहीं, प्रत्युत सर्वत्र अद्भुत और स्तुत्य पदार्थ विद्यमान हैं। **जनानां**=मनुष्यों के मध्य **द्रुहः**=द्रोही पुरुष ही **अनृता**=असत्य बातों को **सचन्ते**=सेवन करते हैं। वस्तुत **वां**=आप लोगों के **निण्यानि**=छुपे मर्म **अचिते न अभूवन्**=अज्ञानी पुरुष को नहीं प्रकट होते।

भावार्थ–उपकारी पुरुष के ज्ञानोपदेश, जिज्ञासु व परोपकारी स्त्री–पुरुषों को अच्छे लगते हैं। इन उपदेशों से श्रेष्ठ जन तो अज्ञान से छूटकर सर्वत्र विद्यमान प्रभु की अद्भुत सामर्थ्य को जान लेते हैं, किन्तु अज्ञानी पुरुष ज्ञान व ज्ञानियों के द्रोही होकर कुछ भी प्राप्त नहीं करते।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सर्वस्नेही पुरुष

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः।

प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **मित्रावरुणा**=सर्वस्नेही वरणीय स्त्री–पुरुषो! **स बाधः**=अज्ञानादि बाधा वा पीड़ा से युक्त होकर **वां यज्ञं**=आप के सत्संग की मैं **नमोभिः**=विनम्र वचनों से **महयम्**=स्तुति करता हूँ और **वां हुवे**–आप दोनों की स्तुति करता हूँ। **वाम्**=आप लोगों के **नवानि**=नये–से–नये **कृतानि**=सम्पादित किये **इमानि ब्रह्म**=ये नाना अन्नादि, धन और उपदिष्ट **मन्मानि**=मननीय ज्ञानादि को लोग **ऋचसे**=सेवन के लिये **जुजुषन्**=प्राप्त करें।

भावार्थ–जो ज्ञानी स्त्री–पुरुष मधुरता के साथ सबसे प्रेम करते हुए ज्ञान का उपदेश करते हैं अज्ञान से पीड़ित दुःखी लोग भी उनके सत्संग में आकर उनके उपदेशों को ग्रहण करके ज्ञानी हो जाते हैं तथा अन्न–धन आदि अपने पुरुषार्थ से प्राप्त कर सुखी होकर उन ज्ञानियों के प्रशंसक हो जाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कष्टों को दूर करें

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **मित्रा वरुणौ**=स्नेहयुक्त, श्रेष्ठ स्त्री–पुरुषो! हे **देव**=विद्वानो! **यज्ञेषु**=सत्संगों,

यज्ञों में. **इयं**–यह **युवभ्यां**–आप दोनों के लिये **पुरः-हितः अकारि**=आदर पूर्वक उत्तम भेंट की जाती है। आप **विश्वानि**=समस्त **दुर्गा**=कष्टों को **तिरः**–दूर करके हमें **पिपृत**=पालन करो और **यूयं** आप लोग **नः स्वस्तिभिः सदा पात**=हमारी उत्तम साधनों से सदा रक्षा करो।

भावार्थ–मनुष्य लोग यज्ञों एव सत्संगों में सदाचारी विद्वान् स्त्री पुरुषों का संग करके सन्मार्गदर्शन द्वारा अपने समस्त कष्टों को दूर करें। उन विद्वानों को आदरपूर्वक भेंट देकर तृप्त करें। इससे लोग अपने उत्तम साधनों का सदुपयोग करके परम्पराओं की रक्षा किया करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता सूर्य व मित्रावरुण है।

[६२] द्विषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सूर्यः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

समदर्शी

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम्।

समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥ १ ॥

पदार्थ–बृहत् सूर्यः पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्–महान् सूर्य जैसे बहुत तेजों को अपने में धारण करता है वैसे ही **सूर्यः**=तेजस्वी पुरुष **बृहत्**=महान् होकर **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के **विश्वा जनिम**=समस्त संघों को **उत् अश्रेत्**=अपने पर धारण करे, और **पुरु अर्चींषि**=बहुत सत्कारों को भी **उत् अश्रेत्**=प्राप्त करे। वह सूर्यवत् **रोचमानः**=तेजस्वी एवं सबको प्रिय लगता हुआ **दिवा**=व्यवहार आदि से **समः**–सबके प्रति समान **ददृशे**–देखे। वह **क्रत्वा**=बुद्धि से **कृतः**=सम्पन्न होकर **कर्तृभिः**=कार्यकर्त्ताओं द्वारा **सु-कृतः**–उत्तम कार्यों में समर्थ **भूत्**=हो।

भावार्थ–तेजस्वी पुरुष अपने उत्तम व्यवहार व आचरण से महानता प्राप्त करता है। विभिन्न संगठनों को नेतृत्व प्रदान करके सम्मान पाता है तथा ज्ञानपूर्वक निष्पक्ष व्यवहार द्वारा अपने अनुयायियों व कार्यकर्त्ताओं को सन्तुष्ट एवं संगठित रखने में समर्थ होता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सूर्यः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञानोदय

स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः।

प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च॥ २ ॥

पदार्थ–हे **सूर्य**–तेजस्विन्! जैसे **एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः पुरः प्रति उद्गच्छति**=सूर्य शुक्ल किरण समूहों से पूर्व दिशा में प्रतिदिन उदय होता है वैसे ही राजन्! विद्वान्! तू भी **एतशेभिः**=अश्वों से **एभिः स्तोमैः**=इन स्तुत्य जन-संघों सहित वा **एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः**=ज्ञानदायक, स्तुत्य मन्त्रसमूहों सहित **प्रति**–प्रतिदिन **नः पुरः**=हमारे समक्ष **उद् गाः**=उदय हो। और **नः**=हमारे में से **मित्राय**=स्नेहवान् **वरुणाय**=दुःखों के वारक, **अर्यम्णे**–न्यायकारी, और **अग्नये**–अग्रणी नेता जन के हित **नः**=हम **अनागसः**=निरपराध जनों को **प्र वोचः**=उपदेश कर।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह ऐसे उत्तम तेजस्वी विद्वानों को राज्य में नियुक्त करे जो प्रजा में उगते सूर्य के समान वेद ज्ञान का प्रकाश करे। इससे प्रजा ज्ञानी होकर सुखी होगी। साथ ही राजा उत्तम लोगों के विभिन्न संघों को भी संगठित करने में विद्वानों का सहयोग लेवे जिससे नेता लोग निरपराध जनों को सुखी करने में सहयोगी होवें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सूर्यः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सम्पन्न प्रजा

वि नः सहस्त्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥ ३ ॥

पदार्थ-**वरुणः**=श्रेष्ठ जन, **मित्रः**=स्नेहवान् पुरुष, **अग्निः**=ज्ञानप्रकाशक विद्वान् ये सब **ऋतावानः**=सत्य, ज्ञान और ऐश्वर्यधारक **सहस्त्रं शुरुधः**=हजारों शोक दुःखादि के रोकनेवाली सुख-सम्पदाओं को **नः**=हमें **वि रदन्तु**=विशेषतया प्रदान करें। वे **चन्द्राः**=आह्लादकारी जन **नः**=हमें **वि रदन्तु**=विशेषतया प्रदान करें। हमें **उपमं**=उत्तम **अर्कं**=ज्ञान और अन्न **यच्छन्तु**=प्रदान करें। वे **स्तवानाः**=उपदेश करते हुए, **नः कामं**=हमारी अभिलाषा **पूपुरन्तु**=पूर्ण करें।

भावार्थ-श्रेष्ठ मधुरभाषी विद्वान् जन अपने उपदेशों द्वारा प्रजा को कर्मशील बनने की प्रेरणा करें जिससे प्रजा पुरुषार्थी होकर सत्य, ज्ञान तथा ऐश्वर्य सम्पन्न बने और अपनी समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण कर दुःखों से पार हो सके।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

उत्तम संस्कारित सन्तान (माता-पिता का कर्त्तव्य)

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ-हे **द्यावाभूमी**-आकाश और पृथिवी के समान ज्ञान-प्रकाश और आश्रयदाता **अदिते**=माता-पिता जनो! आप दोनों **नः त्रासीथाम्**=हमारी रक्षा करो। हे **ऋष्वे**=गुणों में महान् आप दोनों **ये**=जो **सु-जनिमानः**=उत्तम जन्म प्राप्त होकर **वां**=तुम दोनों को **जज्ञुः**=पूज्य जानते हैं वे आप दोनों हमारी रक्षा करें। हम लोग **वरुणस्य हेडे मा भूम**=श्रेष्ठ पुरुष के क्रोध या अनादर के पात्र न हों। **नृणाम्**=साधारण मनुष्यों, **प्रियतमस्य मित्रस्य**=प्रियतम मित्र और **वायोः**=वायु के समान उपकारक पुरुष के भी **हेडे मा भूम**=क्रोध या अनादर में न रहें।

भावार्थ-उत्तम माता-पिता अपनी सन्तानों को उत्तम संस्कारों से युक्त करें। सन्तान ज्ञानी, गुणवान् तथा संस्कारित होगी तो उत्तम व्यवहार से श्रेष्ठ विद्वान जनों की संगति में जाने पर उनके स्नेह की भाजन बनेगी। विद्वान् तो दूर साधारण मनुष्य भी ऐसी सन्तान पर क्रोध न करके उनकी प्रशंसा ही करेंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥

पदार्थ-हे **मित्रावरुणा**=सूर्य वा जल के समान उपकारक स्त्री-पुरुषो! आप लोग **बाहवा**=दो बाहुओं के समान **नः जीवसे**=हमारे जीवन-सुख के लिये **प्र सिसृतम्**=आगे बढ़ो **नः गव्यूतिम्**=हमारे मार्ग को **घृतेन**=जल से **आ उक्षतम्**=सींचो। **युवाना**=आप दोनों युवक **नः**=हमें **जने**=मनुष्यों **आ श्रवयतम्**=प्रसिद्ध करो। **मे इमा हवा**=मेरे ये वचन **श्रुतं**=सुनो।

भावार्थ-उत्तम स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे मिलकर समाजसेवा के कार्यों में सहयोग

करें तथा लोगों को उत्तम मार्गदर्शन करके ज्ञान, कर्म एवं परस्पर प्रीतिपूर्वक व्यवहार सिखाकर राष्ट्र को उन्नत बनाने में सहयोगी हों।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शासक का कर्त्तव्य

नू मि॒त्रो वरु॑णो अ॒र्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधन्तु।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ६ ॥

पदार्थ–नु=अवश्य, शीघ्र ही **मित्रः**=स्नेहवान् और सर्वमित्र विद्वान् **वरुणः**=श्रेष्ठ पुरुष और **अर्यमा**=न्यायकारी पुरुष **नः**=हमारे **त्मने**=अपने लिये **नः तोकाय**=हमारे पुत्र के लिये भी **वरिवः**=उत्तम धन **दधन्तु**=दें जिससे **नः**=हमारे **विश्वा**=सब कार्य **सुगा**=सुगम और **सु-पथानि**=उत्तम मार्ग युक्त **सन्तु**=हों। हे विद्वान् जनो! **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात**=आप हमारी सदा कल्याण–साधनों से रक्षा करें।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह अपने राज्य में उत्तम विद्वानों तथा निष्पक्ष पुरुषों को न्यायाधीश नियुक्त करें। जिससे प्रजा ज्ञानी होकर पुरुषार्थ पूर्वक धन कमावे तथा उत्तम न्याय प्राप्त कर राष्ट्र में सुरक्षित रहकर सुखी एवं समृद्ध होवे।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता सूर्य व मित्रावरुण ही हैं।

[६३] त्रिषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सूर्यः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मार्गदर्शक विद्वान्

उद्वे॑ति सु॒भगो॑ वि॒श्वच॑क्षाः॒ साधा॑रण॒ः सूर्यो॒ मानु॑षाणाम्।
चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य दे॒वश्चर्मे॑व॒ यः स॒मवि॑व्य॒क्तमां॑सि ॥ १ ॥

पदार्थ–जैसे **सूर्यः**=सूर्य **देवः**=प्रकाशयुक्त होकर **तमांसि चर्म इव**=अन्धकारों को चर्म के समान **सम् अविव्यक्**=एक साथ छिन्न-भिन्न करता है और **मानुषाणां साधारणः**=मनुष्यों के प्रति एक समान प्रकाशित होकर **विश्व-चक्षाः उद् एति उ**=सबको दिखाता हुआ उदित होता है और **मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः**=मित्र, दिन और वरुण, रात्रि दोनों का प्रकाशक होता है वैसे ही **सु-भगः**=उत्तम ऐश्वर्यवान् **सूर्यः**=सूर्य-समान तेजस्वी, **मानुषाणां साधारणः**=मनुष्यों के प्रति एक समान और **विश्व-चक्षाः**=सबका मार्गदर्शी विद्वान् वा राजा भी **मित्रस्य**=अपने स्नेही और **वरुणस्य**=श्रेष्ठ पुरुष का भी **चक्षुः**=नेत्र के समान मार्गदर्शक हो। वह **देवः**=विद्वान् **तमांसि**=अज्ञान अन्धकारों को **चर्म इव सम् अविव्यक्**=चर्म के समान एक साथ छिन्न–भिन्न करे।

भावार्थ–उत्तम विद्वान् जन राष्ट्र में लोगों के अज्ञान को अपने वेद ज्ञान के प्रकाश से नष्ट करके उनका मार्गदर्शन करें। वे समानता, बन्धुत्व तथा मधुर व्यवहार सिखाकर राष्ट्र को उन्नत करने में सहायक होवें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सूर्यः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सर्वसंचालक विद्वान्

उद्वे॑ति प्रस॒वी॒ता जना॑नां म॒हान्के॒तुर॑र्ण॒वः सूर्य॑स्य।
स॒मा॒नं च॒क्रं प॑र्या॒विवृ॒त्सन्यदे॑त॒शो वह॑ति धू॒र्षु यु॒क्तः ॥ २ ॥

पदार्थ–जैसे **एतशः**=वेगवान् अश्व वा यन्त्र **धूर्षु युक्तः**=यन्त्रों के धुराओं में जुड़ा हुआ **समानं चक्रम्**=सब यन्त्राङ्गों में समान रूप से गतिदाता चक्र को **परि आववृत्सन्**=घुमाता है और जैसे **एतशः**=तेजोयुक्त सूर्य **धूर्षुयुक्तः सन्**=नाना ग्रहों के धारक केन्द्र में स्थित होकर **समानं चक्रं परि आ ववृत्सन्**=ग्रह-चक्र को समान नीति से अपने गिर्द घुमाता है और जैसे **जनानां महान् केतुः**=सब जन्तुओं का ज्ञापक, **सूर्यस्य=सूर्यः स्थः**=वह सूर्य **अर्णवः**=जल का दाता है **जनानां प्रसवीता**=सबका प्रेरक होकर **उद् एति** उ=नियम से उदय होता है वैसे ही **एतशः**=ज्ञानी पुरुष भी **धूर्षु युक्तः**=कार्य-भारों के धारण पदों पर नियुक्त होकर **वहति**=कार्य-भार को उठावे और **समानं चक्रं**=एक समान राजचक्र को भी **परि आ ववृत्सन्**=यथार्थ रीति से चलावे। **स्य सूर्य**=वह सूर्य के समान वा **अर्णवः**=समुद्र के समान तेजस्वी, गम्भीर और **जनानां**=मनुष्यों के बीच में **केतुः**=ध्वजातुल्य ऊँचा, **महान्**=गुणों में बड़ा और **केतुः**=स्वयं ज्ञानी वह **प्रसवीता**=उत्तम मार्ग में चलाने हारा पुरुष **उत् एति उ**=उत्तम पद को प्राप्त हो। वैसे ही प्रभु स्वप्रकाशक होने से 'एतश', सर्वप्रकाशक होने से 'सूर्य' है, वह समस्त ब्रह्माण्ड-कालचक्र को चलाता, सबका उत्पादक, ज्ञानवान्, महान् है। **सूर्यस्य**=सूर्यः। विभक्तिव्यत्यय इति सायणः। सूर्यः स्यः इति वा पदच्छेदः। विभक्तेर्लुक्।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह राजकार्य हेतु विभिन्न पदों पर ज्ञानी पुरुषों को नियुक्त कर कार्यभार सौंपे। वे ज्ञानी पुरुष राष्ट्र के समस्त कार्यभार को कर्त्तव्य परायणता के साथ निर्वहन करते हुए प्रजा तथा कर्मचारियों को ठीक मार्ग पर चलावें। विभिन्न सभाओं में तथा दूसरे राज्यों के अधिकारियों से वार्त्ता काल में अपने राष्ट्र का ध्वज ऊँचा करें। अर्थात् योग्यता पूर्वक अपने राष्ट्र की पहचान श्रेष्ठ बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सूर्यः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सर्वप्रेरक ज्ञानी

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम॥ ३ ॥

पदार्थ–जैसे **देवः सविता**=प्रकाशमान् सूर्य, **उषसाम् उपस्थात्**=उषाओं में से **विभ्राजमानः**=विशेष चमकता हुआ, **रेभैः**=स्तुतिकर्त्ता जीवों से **अनुमद्यमानः**=स्तुत होकर **उदेति**=उदय होता है वह **समानं धाम न प्रमिनाति**=सबको प्राप्त तेज को नष्ट नहीं करता है, वैसे ही **यः**=जो महापुरुष, **समानं धाम**=अपने एक समान, अनुरूप तेज, नाम, स्थान पद को **न प्र-मिनाति**=नष्ट नहीं करता तो भी **उषसाम्**=प्रभात-वेलाओं के समान उत्तम अनुराग-युक्त प्रजाओं **रेभैः**=विद्वानों द्वारा **अनु-मद्यमानः**=स्तुति एवं उपदेश किया जाकर **उद् एति**=विद्या-प्रकाश तथा बल-दीप्ति से उदय को प्राप्त होता, उन्नत पद प्राप्त करता है, **एषः**=वह **मे**=मेरा **देवः**=ज्ञानदाता पुरुष वा ऐश्वर्यप्रद राजा **सविता**=उत्पादक पितावत् **चच्छन्द**=गृहवत् शरण दे।

भावार्थ–उत्तम ज्ञानी पुरुषों को योग्य है कि वे अपने ज्ञानोपदेश द्वारा लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें। लोगों को बतावें कि प्रातः उषाकाल में जागकर ईश्वर की स्तुति करें। विद्वानों का संग कर ज्ञान एवं बल की प्राप्ति करें तथा योग्य शिक्षा पाकर उन्नत पदों को भी प्राप्त करें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सूर्यः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ज्ञानी से प्रेरणा

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि॥ ४॥

पदार्थ-सूर्य जैसे **दिवः रुक्म**=आकाश में सुवर्ण आभरण तुल्य देदीप्यमान **उरु-चक्षाः**=विशाल आकाश और लोकों का प्रकाशक **तरणिः**=आकाश पार करनेवाला, **भ्राजमानः**=चमकता हुआ **दूरे-अर्थः**=दूर-दूर तक स्वयं प्रकाश फैलाता हुआ **उदेति**=उदय होता है और **जनाः**=मनुष्य, जन्तुगण **सूर्येण प्रसूताः**=सूर्य द्वारा प्रेरित होकर **अर्थानि अयन्**=पदार्थ प्राप्त करते और **अपांसि कृणवन्**=कर्म करते हैं। वैसे ही **तरणिः**=नौका-तुल्य जीवों को दुःखों से पार करनेवाला, **भ्राजमानः**=तेजस्वी, **दूरे-अर्थः**=दूर-दूर तक जानेवाला, दूर से भी धन प्राप्त करनेवाला, **उरु-चक्षाः**=बहुदर्शी पुरुष **दिवः रुक्म**=कामनावान् प्रजा के बीच सुशोभित, उनको प्रिय होता है और **जनाः**=सब जन, ऐसे **सूर्येण**-सूर्यवत् ज्ञान और तेज से युक्त पुरुष से **प्रसूताः**=प्रेरित और शिक्षित होकर **अर्थानि प्रयन्**-अपने प्राप्य पदार्थों को प्राप्त हों और **अपांसि कृण्वन्**=नाना कर्म करें।

भावार्थ-ज्ञानी पुरुष राष्ट्र में कर्मशील होकर अपने जीवन व्यवहार से प्रजा के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करे। जलमार्ग आदि से अन्य देशों के साथ व्यापार करके राष्ट्र में धन की वृद्धि करता है। अन्य देशों से सामान लाकर अपनी प्रजा में उन पदार्थों की कमी को पूरा करके लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इससे अन्य लोग भी प्रेरणा पाकर राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए इस कार्य को बढ़ाते हैं।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सूर्यः, मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सन्मार्ग में गति

यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः॥ ५॥

पदार्थ-पूर्व आधी ऋचा का सूर्य देवता है। **दीयन् श्येनः न**=वेग से गति करता हुआ बाज पक्षी जैसे **पाथः अन्वेति**=आकाश मार्ग में शिकार के पीछे जाता है वैसे ही **श्येनः**=प्रशस्त मार्ग से जानेवाला विद्वान् पुरुष **दीयन्**=सन्मार्ग पर चलता हुआ उस **पाथः**=सन्मार्ग का **अनु एति**=अनुगमन करे, **यत्र**=जिससे जाते हुए **अमृताः**=अमर आत्मा, दीर्घायु जन **अस्मै**=इसको **गातुं चक्रुः**=ज्ञान का उपदेश करते हैं।

उत्तरार्ध ऋचा के देवता मित्र और वरुण हैं। हे **मित्रावरुणा**=श्रेष्ठ गुरुजनो! **सूरे उदिते**=सूर्य के उदय होने पर **हव्यैः नमोभिः**-स्वीकार-योग्य अन्नों और विनय-वचनों से **वां**=आप दोनों की **प्रति विधेम**-प्रति दिन सेवा करें।

भावार्थ-विद्वान् पुरुष स्वयं प्रशस्त मार्ग पर चलकर अन्य लोगों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करे और बतावे कि अपने गुरुजनों व श्रेष्ठ विद्वानों का विनयी भाव से अन्नादि के द्वारा प्रति दिन सेवा सत्कार किया करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विद्वानों से प्रेरणा

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।

सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

पदार्थ—**नु**=अवश्य, शीघ्र ही **मित्रः**=स्नेहवान् और सर्वमित्र विद्वान् **वरुणः**=श्रेष्ठ पुरुष और **अर्यमा**=न्यायकारी पुरुष **नः**=हमारे **त्मने**=अपने लिये **नः तोकाय**=हमारे पुत्र के लिये भी **वरिवः**=उत्तम धन **दधन्तु**=दें जिससे **नः**=हमारे **विश्वा**=सब कार्य **सुगा**=सुगम और **सु-पथानि**=उत्तम मार्ग युक्त **सन्तु**=हों। हे विद्वान् जनो! **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात**=आप हमारी सदा कल्याण-साधनों से रक्षा करें।

भावार्थ—विद्वान् जन मित्रवत् व्यवहार करते हुए लोगों को न्यायपूर्ण आचरण तथा पुरुषार्थ पूर्वक धन कमाने के लिए प्रेरणा करें। जिससे प्रजा अपने पुत्रादि सन्तानों को भी सुमार्ग पर चलाकर ऐश्वर्य सम्पन्न बना सके तथा कल्याण साधनों का संग्रह कर सके।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता मित्रावरुण है।

[६४] चतुःषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ऐश्वर्य सम्पन्न प्रजा

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्।

हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥ १ ॥

पदार्थ—**अर्यमा**—सूर्य जैसे **दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता**=आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हुए मेघों और सूर्य की किरण **घृतस्य निर्णिजः**=जल और तेज के नाना शुद्ध रूपों को **प्र ददीरन्**=अच्छी प्रकार से देते हैं, वैसे ही **दिवि**=ज्ञान और व्यवहार में विद्यमान **रजसः**=प्रजाजनों और **पृथिव्यां क्षयन्ता**=ऐश्वर्यवान् पृथ्वीवासी **मित्रावरुणा**=स्नेही एवं श्रेष्ठ जनो! **वां**=आप लोगों को **निः-निजः रजसः**=शुद्ध पवित्र आत्मावाले उत्तम जन **घृतस्य प्र ददीरन्**=ज्ञानप्रकाश दें। **मित्रः**—स्नेहवान् **अर्यमा**=शत्रुओं का नियन्ता, **सु-जातः**=उत्तम पद पर प्रसिद्ध, **राजा**=देदीप्यमान, **सु-क्षत्रः वरुणः**=उत्तम बल का स्वामी, स्वयं वरणीय राजा ये सब **नः हव्यं**=हमारा दिया पदार्थ **जुषन्त**=सेवन करें।

भावार्थ—जब राष्ट्र की प्रजा ज्ञानी तथा ऐश्वर्य सम्पन्न होती है तो वह कर के रूप में राष्ट्र के भरण-पोषण हेतु अपने धन का कुछ निश्चित अंश दान करके राष्ट्र के विद्वानों, ज्ञानियों, सेनापति एवं सैनिकों, प्रशासन अधिकारियों तथा राजा तक इन सबका पालन करती है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वीर सेनापति व श्रेष्ठ व्यापार

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।

इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

पदार्थ—हे **राजाना**=राजा-रानी, वा राजा-सेनापति तुल्य प्रजाओं में प्रकाशित **महः ऋतस्य गोपा**=बड़े धनैश्वर्य और ज्ञान के रक्षक, **सिन्धु-पती**—वेगवान् अश्वों, समुद्रवत् विशाल प्रजाजनों,

सैन्यों तथा प्राणों के पालक, **क्षत्रिया**=बलशाली होकर तुम दोनों **अर्वाक् यातम्**=आगे बढ़ो। हे **जीर-दानू**-मेघ और वायु तुल्य संसार को वेग, जीवन और प्राण देनेवाले! **मित्रावरुणा**=स्नेहयुक्त और वरणीय श्रेष्ठ जनो! जैसे वायु और मेघ, वा विद्युत् और सूर्य दोनों **दिवः वृष्टिम् इन्वतः**= आकाश से वृष्टि लाते हैं और **दिवः इडाम् इन्वतम्**-भूमि से अन्न को उत्पन्न करते हैं वैसे ही आप दोनों **दिवः**=व्यापार आदि से **वृष्टिम् अव इन्वतम्**-समृद्धि की वृष्टि प्राप्त कराओ **उत**=और **नः**=हमें **इडां अव इन्वतम्**-उत्तम वाणी और अन्न-सम्पदा प्राप्त कराओ।

भावार्थ-राष्ट्र में राजा को योग्य है कि वह वीर पुरुष को सेनापति नियुक्त करे जो प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करे तथा श्रेष्ठ व्यापारियों को प्रोत्साहित करे कि वे देश विदेश में व्यापार करके राष्ट्र के लिए धनैश्वर्य की वृद्धि करें जिससे प्रजा अन्न व सम्पत्ति से युक्त होवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राजा का कर्त्तव्य

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु।

ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥

पदार्थ-मित्रः-स्नेहवान् **वरुणः**-वरणीय **देवः**=दानशील **अर्यः**-स्वामी, **नः**=हमें **तत्**=वे सब जन **साधिष्ठेभिः पथिभिः**-अति उत्तम मार्गों से **प्र यन्तु**=अच्छी प्रकार ले जावें। **आत्**-अनन्तर **यथा**=यथोचित रीति से **नः**=हममें से **सु-दासे**=उत्तम दानशील के हितार्थ **अरिः**=स्वामी राजा **नः ब्रवत्**=हमें उपदेश करे। हम सब **देव-गोपाः**=विद्वानों से सुरक्षित होकर **इषा मदेम**=अन्न से तृप्त-प्रसन्न हों।

भावार्थ-राजा अपने राष्ट्र में शिक्षा व वितरण व्यवस्था को उत्तम बनावे जिससे लोग विद्वानों के संग से उत्तम शिक्षा व प्रशासन के माध्यम से उत्तम व्यवस्था व अन्न को प्राप्त करके तृप्त व प्रसन्न होवें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

राष्ट्र में कृषि व सिंचाई द्वारा उन्नति

यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च।

उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ-मित्रावरुणा राजाना घृतेन उक्षेथां=मित्र, वरुण, वा विद्युत् और सूर्य दोनों जैसे दीप्त होकर जल और तेज का वर्षण करते और **सु-क्षितीः तर्पयेथाम्**=उत्तम भूमियों को तृप्त करते हैं वैसे हे **मित्रावरुणा**=स्नेहवान् और दुःखवारक **राजाना**=राजा जनो! आप दोनों **घृतेन**-जल और तेज से **सु-क्षितीः**-उत्तम भूमियों, प्रजाओं को **उक्षेथाम्**=सींचो, पुष्ट करो। **ता**=वे आप दोनों प्रजाजनों को **तर्पयेथाम्**=तृप्त करें और **यः**=जो प्रजाजन **वां गर्त्तं**-आप दोनों के रथ, सभाभवन और कृषि, स्तुति, उपदेश आदि भी **मनसा तक्षत्**=ज्ञानपूर्वक करे, **ऊर्ध्वाम्**=उन्नत **धीतिम्**=कर्म **कृणवत्**=करे, **धारयत् च**=वहाँ ही स्थापित करे, आप दोनों **एतम्**=उसको **तर्पयेथाम्**=प्रसन्न करो।

भावार्थ-राजा को अपने राष्ट्र में कृषि विद्या के लिए शिक्षा की उत्तम व्यवस्था द्वारा किसानों को प्रशिक्षित कराके खेती को उन्नत करना चाहिए। सिंचाई व्यवस्था को ठीक करे। राजनीति, शिल्पविद्या तथा अन्य शिक्षाओं की भी उचित व उत्तम व्यवस्था करके राष्ट्र को उन्नत

व प्रजा को प्रसन्न करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

श्रेष्ठ जन का कर्त्तव्य

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–वायवे शुक्रः न=वायु को जैसे शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, वैसे हे **वरुण**=श्रेष्ठजन! हे **मित्र**=स्नेहयुक्त जन **तुभ्यम्**=तेरे लिये **एषः**=यह **स्तोमः**=स्तुति और **सोमः**=यह ऐश्वर्य **शुक्रः**=कान्तियुक्त होकर तेरी वृद्धि को **अयामि**=प्राप्त हो। आप दोनों **धियः अविष्टं**=सुकर्मों की रक्षा करो और **पुरन्धीः जिगृतम्**=बहुत से ज्ञान धारण करनेवाली बुद्धियों, ज्ञानों का उपदेश करो। **यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः**=आप हमारा सदा उत्तम उपायों से पालन करें।

भावार्थ–श्रेष्ठ जनों का कर्त्तव्य है कि वे लोगों को सुकर्मों पर चलने की शिक्षा दें। इससे मनुष्य लोग सत्कर्मी तेजस्वी व सम्पन्न होकर उत्तम उपायों द्वारा सुखी होंगे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता मित्रावरुण है।

[६५] पञ्चाषष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा प्रजा के कर्त्तव्य

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।

ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥ १ ॥

पदार्थ–ययोः=जिनका **अक्षितम्**=अविनाशी, **असुर्यम्**=प्राणों में रमण करनेवाले, 'असुर' अर्थात् जीवों के हितकारक, **ज्येष्ठं**=श्रेष्ठ बल **विश्वस्य**=सबको **जिगत्नु**=जीतनेवाला है वे दोनों **यामन्**=राज्यप्रबन्ध के कार्य में **आचिता**=आदर प्राप्त करने योग्य हों। **सूरे उदिते**=सूर्य तुल्य तेजस्वी पुरुष के उदय होने, वा सर्वोपरि पद प्राप्त कर लेने पर मैं प्रजाजन **वाम्**=आप दोनों नर-नारी और राजा-प्रजा-वर्गों में से **पूतदक्षं**=पवित्र बल और आचारवान् **मित्रं**=सर्व स्नेही और **वरुणं**=श्रेष्ठ जन को **सूक्तैः**=उत्तम वचनों से **प्रति हुवे**=प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करूँ।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह प्रजा के हितकारी श्रेष्ठ कर्मपरायण पुरुषों व स्त्रियों को राज्य प्रबन्ध के कार्य हेतु उन्नत व सर्वोपरि पदों पर नियुक्त करे। प्रजा जन ऐसे तेजस्वी पवित्र आचारवान् पदाधिकारियों का सम्मान करें तथा आज्ञापालन में रहकर अनुशासन बनावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों द्वारा विभिन्न विद्याओं की शिक्षा

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।

अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥ २ ॥

पदार्थ–यत्र=जिस राष्ट्र या देश में, हे **मित्रा वरुणा**=प्रजा के स्नेही, प्राणवत् प्रिय और वरणीय स्त्री पुरुषो! **द्यावा**=सूर्य और भूमिवत् विद्वान् और अविद्वान् जन और **अहा च**=दिन-रात्रिवत् स्त्री-पुरुष सभी **वां पीपयन्**=आप दोनों को पुष्ट करते हैं, उसी देश में हम भी **अश्याम**=सुख-समृद्धि प्राप्त करें। वे मित्र और वरुण दोनों ही **देवानाम्**=विद्वान् मनुष्यों के बीच,

प्राणों में प्राण उदान के समान **असुरा**=बलवान् जीवनधारक, **सौ अर्या**=वे दोनों ही स्वामी स्वामिनी के समान गृहपालक और **ता**=वे दोनों ही **नः क्षितीः**=हमारी भूमियों और मानव प्रजाओं को **ऊर्जयन्तीः**=उत्तम अन्न और बल के सम्पादक **करतम्**=बनावें।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह राष्ट्र की प्रजा को पुष्ट करने तथा सुखी एवं समृद्ध करने हेतु विद्वानों व विदुषियों की नियुक्ति करे। वे विद्वान् लोगों को प्राण विद्या, स्वास्थ्यवृत्त, गृहपालन, कृषि तथा सन्तानों को उत्तम बनाने की शिक्षा प्रदान करें। प्रजा विद्वानों द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं को धारण करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा का आचरण

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम॥३॥

पदार्थ–हे **मित्रावरुणा**=परस्पर स्नेही, वरणीय राजा-प्रजा, स्त्री-पुरुषो! **ता**=वे आप दोनों **भूरि पाशा**–बहुत बन्धनों से बद्ध होकर **अनृतस्य**=असत्याचरण को पार करने के लिये **सेतु**–पुल के समान होओ और **रिपवे मर्त्याय**–शत्रुभूत पापी पुरुष के नाश के लिये आप दोनों **दूर-अत्येत्**=दुःख से अतिक्रमण-योग्य, अलंघनीयशासन होओ। **वाम्**=आप दोनों के **ऋतस्य पथा**–सत्य के मार्ग से चलकर हम भी **नावा आपः न**=नाव से जलों के समान **दुरिता तरेम**=सब दुःखों को पार करें।

भावार्थ–राजा को चाहिए कि वह जीवन को अनुशासित व संयमित रखते हुए प्रजा को आदर्श प्रदान करे जिससे प्रजाजन नियमों में रहकर असत्याचरण से बचकर सुपथगामी होवे। राजा शत्रुओं व पापियों के नाश के लिए कठोर नियम बनावे तथा उनको दृढ़ता के साथ लागू करे। प्रजा भी नियमों में रहकर दुःखों से छूट सुख को प्राप्त करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उत्तम जनों का सम्मान

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः॥४॥

पदार्थ–**मित्रावरुणा**=सूर्य-मेघ वा वायु-मेघ के समान सर्वप्रिय जनो! आप दोनों **नः**=हमारे **हव्य-जुष्टिं**=प्रेम से स्वीकार-योग्य अन्न आदि को स्वीकार करो। **घृतैः गव्यूतिम्**=जलों से भूमि भाग के समान **इडाभिः**=उत्तम वाणियों से वाणी के उत्तम पात्रों को **उक्षतम्**=सेचन करो। आप दोनों **वाम्**=अपने **दिव्यस्य**=ज्ञान से पूर्ण **चारोः**–उत्तम **उद्नः**=जलवत् शान्तिदायक वचन का **वरम्**=श्रेष्ठ प्रयोग **जनाय**=समस्त जन के हितार्थ **प्रति**–प्रतिदिन **आ पृणीतम्**=करो।

भावार्थ–लोगों को चाहिए कि वे उत्तम विद्वान् स्त्री-पुरुषों का अन्नादि तथा उत्तम वाणियों के द्वारा सम्मान करें। फिर वे विद्वान् स्त्री-पुरुष भी अपने प्रिय मधुर ज्ञानोपदेश के द्वारा लोगों का मार्गदर्शन करेंगे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विद्वानों द्वारा ज्ञान का उपदेश

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ—वायवे शुक्रः न=वायु को जैसे शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, वैसे हे **वरुण**=श्रेष्ठजन! हे **मित्र**=स्नेहयुक्त जन **तुभ्यम्**=तेरे लिये **एषः**=यह **स्तोमः**=स्तुति और **सोमः**=यह ऐश्वर्य **शुक्रः**=कान्तियुक्त होकर तेरी वृद्धि को **अयामि**=प्राप्त हो। आप दोनों **धियः अविष्टं**=सु-कर्मों की रक्षा करो और **पुरन्धीः जिगृतम्**=बहुत से ज्ञान धारण करनेवाली बुद्धियों, ज्ञानों का उपदेश करो। **यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः**=आप हमारा सदा उत्तम उपायों से पालन करें।

भावार्थ—विद्वान् स्त्री पुरुष अपनी मेधा व ज्ञान के द्वारा लोगों को ब्रह्मचर्य सेवन व सदाचार के द्वारा जीवन को कान्तिमय व उन्नत बनाने की शिक्षा प्रदान करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता मित्रावरुण, आदित्य और सूर्य हैं।

[६६] षट्षष्टितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

गुरु शिष्य

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः। नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥

पदार्थ—तुषि-जातयोः=बहुत-सी विद्याओं में प्रवीण, **मित्रयोः**=परस्पर स्नेही और **वरुणयोः**=गुरु-शिष्य रूप से वरण करनेवाले दोनों का **नमस्वान्**=विनययुक्त व्यवहारवाला, **शूष्यः**=सुखकारी, **स्तोमः**=स्तुति-योग्य उपदेश **नः एतु**=हमें प्राप्त हो।

भावार्थ—विभिन्न विद्याओं के विद्वान् गुरु अपने शिष्यों के प्रति स्नेही भाव रखकर विद्या दान करे। शिष्य भी विनयभाव से गुरुओं द्वारा प्रदत्त विद्या के उपदेश को सुनें। इससे अन्य मनुष्य लोग प्रेरणा लेकर परस्पर छोटे-बड़े के व्यवहार को आचरण में उतारते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

उत्तम पुरुष ही पदाधिकारी हों

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा ॥ २ ॥

पदार्थ—देवाः=विद्वान् मनुष्य **या**=जिन दो को **धारयन्त**=व्रत धारण कराते हैं वे आप दोनों **सु-दक्षा**=उत्तम कर्मकुशल **दक्षपितरा**=बल वीर्य के पालक, **प्र-महसा**=उत्तम तेजस्वी होकर **असुर्याय**=बलवान् पुरुषों में श्रेष्ठ पद के योग्य होते हैं।

भावार्थ—विद्वान् जन उत्तम कर्मकुशल तथा सदाचारी तेजस्वी पुरुषों को श्रेष्ठ पदों के लिए नामित करें। इससे राष्ट्र में भ्रष्टाचार नहीं होगा।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**मित्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**विराड्गायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

विद्वान् का कर्त्तव्य

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणाम्। मित्र साधयतं धियः ॥ ३ ॥

पदार्थ—ता=वे दोनों **नः**=हमारे **स्तिपा**=संघों के रक्षक और **तनूपा**=शरीरों के रक्षक हों।

हे **वरुण**-श्रेष्ठ जन! हे **मित्र**=स्नेहवन्! विद्वन् आप लोग **जरितॄणाम्**=उपदेष्टा पुरुषों को **धियः**=बुद्धियों और विचारों को **साधयतम्**=सफल करो।

भावार्थ–श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष अपने शिष्यों को ज्ञानोपदेश के द्वारा इतना योग्य विद्वान् बनावें कि वे शिष्य लोग राष्ट्र के नागरिकों को स्वस्थ व संगठित रहने का उपदेश करते हुए सन्मार्गदर्शन कर सकें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आदित्याः** ॥ छन्दः–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

न्यायशील राजा

यद्द्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥ ४ ॥

पदार्थ–उदिते सूरे=सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर **यत्**=जो **अनागाः**=अपराधादि से रहित **मित्रः**=स्नेहवान् **अर्यमा**=न्यायकारी, **सविता**–सर्व प्रेरक, शासक और **भगः**–ऐश्वर्यवान् है वह **अद्य**=आज के समान सदा **सुवाति**=शासन करे।

भावार्थ–राजा स्वयं निष्कलंक होवे तथा प्रजा को उचित न्याय प्रदान करे। इससे राजा प्रजा का प्रिय भी बनेगा तथा उसका शासन दीर्घकाल तक चलता रहेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आदित्याः** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

उपदेशक का कर्त्तव्य

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः। ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥

पदार्थ–ये=जो **नः**=हमें **अंहः**–पाप कर्म से **अतिपिप्रति**=पार करते हैं ऐसे **सु-दानवः**=उत्तम उपदेशक, विद्वान् पुरुषो! आप लोगों से प्रार्थना है कि **यामन्**=राज्य के नियन्त्रण और शत्रु पर चढ़ाई के कार्य में **सः**=वह **क्षयः**–शत्रुओं का नाशक पुरुष **नु**=निश्चय से **क्षयः**–गृह के समान **सुप्रावीः अस्तु नु**–उत्तम रीति से रक्षक हो। **यामन्**=विवाह-बन्धन का कार्य हो चुकने पर **सः क्षयः**–वह ऐश्वर्य-युक्त, नव गृहपति **सु-प्रावीः प्र अस्तु**=उत्तम गृहरक्षक हो।

भावार्थ–उत्तम विद्वान् पुरुष लोगों को उत्तम उपदेश करे जिससे वे पाप कर्मों से दूर रहें तथा राजनियमों के पालन और शत्रुओं के नाश में सहयोगी होकर राष्ट्र की रक्षा उत्तम रीति से कर सकें। और सद्गृहस्थ बनकर राष्ट्र रक्षा में सहयोगी बनें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आदित्याः** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सभा का कर्त्तव्य

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥ ६ ॥

पदार्थ–स्व-राजः=स्वयं प्रकाशित, **स्व-राजः**–धनैश्वर्य से चमकनेवाले, प्रजाजनों के राजा और **अदितिः**–अखण्ड शासनकर्त्री सभा वा तेजस्वी पुरुष, **ये**–जो **अदब्धस्य**=अखण्डित **व्रतस्य**=कर्म करने में **ईशते**=समर्थ हैं वे **महः-राजानः**–बड़े ऐश्वर्य के राजा, स्वामी हैं।

भावार्थ–राजसभा को योग्य है कि वह ऐसे तेजस्वी व ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष को राजा के पद पर आसीन करे जो निरन्तर राष्ट्रोन्नति के कार्य को करने तथा प्रजा जनों का पालन करने में सक्षम हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आदित्याः** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे स्त्री–पुरुषो! **वाम्**=आप दोनों में से **सूरे प्रति उदिते**=सूर्य तुल्य तेजस्वी होकर उत्तम पद पर प्राप्त हो जाने पर मैं **मित्रम्**=प्रत्येक स्नेही, **वरुणं**=श्रेष्ठ जन को **अर्यमणम्**=न्यायपूर्वक स्वामिवत् नियन्ता और **रिशादसम्**=दुष्टनाशक कहकर **गृणाषे**=स्तुति करूँ।

भावार्थ–स्त्री व पुरुषों को चाहिए कि वे अपनी बुद्धि, ज्ञान व प्रतिभा के बल पर राष्ट्र में उत्तम पदों को प्राप्त कर पक्षपात रहित न्याय पूर्वक प्रशासन कार्य करें। इससे दुष्ट लोग अव्यवस्था नहीं फैला सकेंगे।

ऋषि:–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**आदित्याः** ॥ छन्द:–**स्वराड्गायत्री** ॥ स्वर:–**षड्जः** ॥

विद्वानं का कर्त्तव्य

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **विप्राः**=विद्वान् लोगो! **अवृकाय**=निश्छल और जिसको ज्ञान–प्रकाश प्राप्त नहीं ऐसे पुरुष के लिये उसके **शवसे**=ज्ञान, बल वृद्धि हेतु **राया**=ऐश्वर्य के साथ–साथ **हिरण्यया**=हित और रमणीय **इयं मतिः**=यह उत्तम बुद्धि, वा ज्ञान **मेध-सातये**=उत्तम अन्न, यज्ञ फलादि प्राप्त करने के लिये सदा रहो।

भावार्थ–विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि वे राष्ट्र में लोगों को ज्ञान, विद्या और उत्तम बुद्धि प्रदान करें जिससे वे लोग निश्छल भाव से पुरुषार्थ पूर्वक ऐश्वर्य, उत्तम अन्न तथा यज्ञों के उत्तम फलों को प्राप्त कर सकें।

ऋषि:–**वसिष्ठः** ॥ देवता–आदित्याः ॥ छन्द:–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वर:–**षड्जः** ॥

सुखदाता परमेश्वर

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ॥ ९ ॥

पदार्थ–हे **देव वरुण**=सुखदाता सर्व दुःखवारक! हे **मित्र**=सर्वप्रिय! हम **ते स्याम**=तेरे होकर रहें। **सूरिभिः सह**=विद्वानों के साथ **ते**–तेरी **इषं**–इच्छा और **स्वः च**=ज्ञान, आनन्द को **धीमहि**=धारण करें।

भावार्थ–मनुष्य लोगों को चाहिए कि वे उत्तम विद्वानों की संगति किया करें जिससे सकल सुखदाता परमेश्वर की अनुभूति करके अपनी इच्छानुसार ज्ञान तथा आनन्द की प्राप्ति कर सकें।

ऋषि:–**वसिष्ठः** ॥ देवता–आदित्याः ॥ छन्द:–**निचृद्बृहती** ॥ स्वर:–**मध्यमः** ॥

सत्यज्ञान का उपदेश

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥ १० ॥

पदार्थ–**ये**=जो **त्रीणि विदथानि**=तीनों प्रकार के ज्ञान, कर्म, यज्ञ और प्राप्तव्य पदार्थों और तीनों प्रकार के ज्ञातव्य वेदों और **विश्वानि**=तीनों विश्वों को **धीतिभिः**=कर्मों, बुद्धियों, वाणियों और अध्ययन आदि द्वारा और **परिभूतिभिः**=उत्तम सामर्थ्यों से **येमुः**=वश करते हैं वे **बहवः**=बहुत से **सूर-चक्षसः**=सूर्य तुल्य सब पदार्थों के ज्ञानोपदेष्टा, **अग्निजिह्वाः**=अग्नि के समान ज्ञानवाणी के वक्ता **ऋतावृधः**=सत्य–ज्ञान के वर्धक हों।

भावार्थ–उत्तम विद्वानों को योग्य है कि वे वेदों के गहन अध्ययन के द्वारा ज्ञान, कर्म व उपासना की त्रिविद्या को प्राप्त करें तथा अपनी बुद्धि, वाणी और शोध कार्यों के द्वारा तीनों लोकों के रहस्यों को जानकर समस्त पदार्थों के ज्ञान का उपदेश देकर सत्य ज्ञान को बढ़ावें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आदित्याः** ॥ छन्दः-**स्वराड्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

वेद ज्ञान का धारण

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम्।
अनाप्यं वरुणा मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत॥ ११ ॥

पदार्थ-ये=जो **शरदं**=वर्ष, **मासम्**=मास और **अहः अक्तुम्**=दिन-रात्र, **आत्**=भी **ऋचं यज्ञम्**=वेद मन्त्रों से स्तुत्य परमेश्वर, वा यज्ञ अथवा **यज्ञम् ऋचं**=यज्ञयोग्य, उपास्य, वेद वेद्य प्रभु की **वि दधुः**=विविध प्रकार से उपासना करते, वेद को धारण करते हैं वे **वरुणः**=श्रेष्ठ, **मित्रः**-सर्वस्नेही **अर्यमा**=न्यायकारी जन **राजानः**=तेजस्वी राजा होकर **अनाप्यं**=अन्यों से प्राप्त न होने वा बन्धु जनों से न बाँटने योग्य **क्षत्रं**=धन, ज्ञानमय वेद को **आशत**=प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-श्रेष्ठ जन दिन-रात महीनों तथा वर्षों तक वेद के मन्त्रों का चिन्तन-मनन करते हुए यज्ञरूप परमेश्वर की उपासना करके अपने आत्मा में उसके तेज को धारण करते हैं। धारण किए हुए उस दिव्य तेज से तेजस्वी होकर वे निष्पक्ष सर्वप्रिय जन किसी के द्वारा न बाँटवा सकने योग्य विद्यारूपी धन के स्वामी हो जाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आदित्याः** ॥ छन्दः-**आर्चीस्वराड्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

ज्ञान की याचना

तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः॥ १२ ॥

पदार्थ-वरुणः=वरणीय, **मित्रः**=स्नेही **अर्यमा**=स्वामिवत् हे विज्ञ जनो! **यूयम्**=आप **ऋतस्य**=सत्य-ज्ञान के **रथ्यः**=महारथियों के तुल्य होकर **यत्**=जिस को **ओहते**=धारते हो हम **उदिते सूरे**=सूर्योदय होने पर **वः तत्**=आपके उस ज्ञानैश्वर्य की **अद्य**=आज **मनामहे**=याचना करते हैं।

भावार्थ-मनुष्य लोग सत्यज्ञान की प्राप्ति के लिए ज्ञानी जनों की शरण में आकर ज्ञानरूपी ऐश्वर्य की याचना किया करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**आदित्याः** ॥ छन्दः-**आर्षीभुरिग् बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

विद्वानों की शरण में रहें

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः॥ १३ ॥

पदार्थ-ये च=और जो **सूरयः**=विद्वान् लोग **ऋत-वानः**=सत्य-ज्ञान का सेवन करने-करानेवाले **ऋतजाताः**=सत्य-ज्ञान में प्रसिद्ध **ऋत-वृधः**=सत्य वर्धक, **घोरासः**=तेजस्वी, **अनृत-द्विषः**=असत्य के द्वेषी हैं, हे **नरः**=नायकवत् पुरुषो! **तेषां वः**=उन आपके **सुच्छर्दिस्तमे**=उत्तम रक्षा-गृह से युक्त **सुम्ने**=सुखद शरण में सदा **स्याम**=रहें।

भावार्थ-नेतृत्त्व करनेवाले पुरुषों तथा प्रशासक वर्ग को सत्य न्याय के उपदेशक सदाचारी विद्वानों की उत्तम शरण में सदैव रहना चाहिए जिससे वे लोग सत्य न्याय के मार्ग से कभी न भटकें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**आर्षीविराड्बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

सदाचारी पुरुष

उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम्॥ १४॥

पदार्थ—जैसे **दिवः प्रतिह्वरे**=आकाश में प्रत्यक्ष वक्र, वृत्त मार्ग में **त्यत् दर्शतं वपुः उत् एति उ**=वह दर्शनीय रूपवाला सूर्य उदय होता है और **यत्**=जो **ईम्**=सब तरफ से **आशुः**=वेग से गतिमान् **देवः**=प्रकाशप्रद, **एतशः**=शुक्ल वर्ण होकर **विश्वस्मै चक्षसे अरं**=समस्त संसार को दिखाने के लिये है वैसे ही **त्यत्**=वह **दर्शतं वपुः**=दर्शनीय शरीरवाला पुरुष **प्रतिह्वरे**=प्रत्येक कुटिल व्यवहार के ऊपर **दिवः**=अपने तेज के कारण **उत् एति उ**=उत्तम होकर शासन करता है, **यत्**=जो **ईम्**=सब ओर **आशुः**=शीघ्रकारी, **देवः**=विद्वान् **एतशः**=शुक्लकर्मा, सदाचारी होकर **विश्वस्मै चक्षसे**=सबको ज्ञान-मार्ग दिखाने और सदुपदेश करने के लिये **अरं वहति**=अधिक ज्ञान और बल को, रथ को अश्व के समान चलाने में समर्थ होता है।

भावार्थ—जब राष्ट्र में सदाचारी पुरुष राजा होता है तो वह अपने तेज से उत्तम शासन करता हुआ कुटिल व विध्वंसक तत्त्वों को नष्ट वा संयमित करके विद्वानों के सहयोग से शुभ कर्म, सत्य उपदेश, ज्ञान तथा बलों को बढ़ाकर राष्ट्र को उत्तम तथा उन्नत बनाने में समर्थ होता है।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**आर्षीभुरिग् बृहती** ॥ स्वरः—**मध्यमः** ॥

सुपथगामी राजा

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः।
सप्त स्वसारः सुवितायु सूर्यं वहन्ति हरितो रथे॥ १५॥

पदार्थ—**जगतः तस्थुषः**=जंगम और स्थावर **शीर्ष्णः-शीर्ष्णः**=प्रत्येक शिर के **पतिम्**=पालक **सूर्यम्**=प्रेरक को **विश्वं रजः समया**=समस्त संसार के बीच **सप्त हरितः**=सातों दिशाओं के वासी प्रजाजन **स्वसारः**=उत्तम भगिनियों के तुल्य स्वयं शरण आकर **रथे वहन्ति**=रथ पर बैठाकर ले जाते हैं, जिससे वह **सुविताय**=उत्तम मार्ग से ले चले। ऐसे ही सातों **स्वसारः सु-असारः**=उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र चालक **हरितः**=वीर-सेनाएँ तेजस्वी को सन्मार्ग पर चलने के लिये स्थावर, जंगम, अर्थात् स्थिर चल-सम्पदा और प्रजा के स्वामी को बीच रथ में जुड़े अश्वों के समान धारण करती हैं।

भावार्थ—सन्मार्ग पर चलकर राष्ट्र की चल, अचल सम्पत्ति की रक्षा करनेवाले तेजस्वी राजा की शस्त्रास्त्रों के संचालन में कुशल वीर सेनाएँ रक्षा करने में तत्पर रहें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**सूर्यः** ॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्** ॥ स्वरः—**ऋषभः** ॥

शतायु भव

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्॥ १६॥

पदार्थ—**तत्**=वह **देव-हितं**=विद्वानों, प्राणों के बीच विद्यमान, कल्याणकारी **शुक्रम्**=सूर्यवत् तेजस्वी **उत्-चरत्**=उत्तम पद को प्राप्त करे और हम उसकी कृपा से **शरदः शतं पश्येम**=सौ बरस तक देखें, **शरदः शतं जीवेम**=सौ बरस तक जीवें।

भावार्थ—विद्वानों के संसर्ग में रहकर मनुष्य लोग प्राणायाम आदि योग के अंगों का अभ्यास करके सौ वर्ष तक की स्वस्थ आयु को प्राप्त होवें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्द:-**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वर:-**षड्जः** ॥

अहिंसक बनो

काव्यैभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये॥ १७॥

पदार्थ-हे **वरुण**=श्रेष्ठ जन! और **मित्रः च**=सर्वस्नेही, आप दोनों **सोमपीतये**-ओषधि-रसवत् राष्ट्र की रक्षा और उपभोग के लिए **काव्येभिः**=कविजनों की वाणियों द्वारा **अदाभ्या**=अहिंसा-व्रतचारी होकर **आयातं**=आओ और **द्युमत्**=ऐश्वर्यपूर्ण देश को **यातम्**=प्राप्त करो।

भावार्थ-श्रेष्ठ जन राष्ट्र की रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य का सेवन करते हुए वेद के अनुसार राज्य व्यवस्था को चलावें जिससे राष्ट्र के निवासी अहिंसा व्रत को धारण करते हुए देश को ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने में सहयोगी बनें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्द:-**आर्षीगायत्री** ॥ स्वर:-**षड्जः** ॥

तेजस्वी बनो

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा। पिबतं सोममातुजी॥ १८॥

पदार्थ-हे **वरुणः मित्रः च**=वरुण और मित्र, रात्रि दिन के तुल्य, स्त्री-पुरुषो! आप **अद्रुहा**=परस्पर द्रोह न करते हुए **आतुजी**-शत्रुओं का नाश और प्रजाओं का पालन करते हुए **दिवः धामभिः**=सूर्य के प्रकाशमय तेजों से प्रभावित होकर **सोमं पिबतु**-ऐश्वर्य को प्राप्त हों।

भावार्थ-उत्तम स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा तेजस्वी होकर अपने आन्तरिक शत्रु काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि का नाश करके प्रीतिपूर्वक प्रजाओं का पालन करें। इससे प्रजाएँ भी तेजस्वी होंगी।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**मित्रावरुणौ** ॥ छन्द:-**आर्षीगायत्री** ॥ स्वर:-**षड्जः** ॥

प्रजापालन

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा। पातं सोममृतावृधा॥ १९॥

पदार्थ-हे **मित्रावरुणा**-दिन-रात्रि वा सदा परस्पर स्नेही और वरण करनेवाले **ऋत-वृधा**=सत्य से बढ़ने-बढ़ानेवाले होकर **सोमम् पातम्**-प्रजा और शिष्यवर्ग को **पातं**=पालन करो और आप दोनों **नरा**-स्त्री-पुरुष **आहुतिम् जुषाणा**=आदर से दिये दान को स्वीकार करते हुए, **आ यातम्**=प्राप्त हों।

भावार्थ-उत्तम स्त्री-पुरुष सदाचारी होकर सत्य के द्वारा अपनी प्रजा तथा शिष्यों को ज्ञान प्रदान कर उनकी रक्षा करें तथा उन शिष्यों वा प्रजाओं के द्वारा श्रद्धा से दिए गए दान को स्वीकार करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता अश्विनौ है।

[६७] सप्तषष्टितमं सूक्तम्

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्द:-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:-**धैवतः** ॥

श्रेष्ठ ज्ञान एवं व्यवहार का उपदेश

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि॥ १॥

पदार्थ-हे **नृपती**=राजा रानी के समान मनुष्यों के पालक, हे **धिष्ण्यौ**=स्तुति-योग्य! उत्तम

बुद्धि-सम्पन्न स्त्री-पुरुषो! **यः**=जो **दूतः न**=दूत के समान **वां**=आप दोनों को **अजीगः**=सचेत करता, ज्ञान देकर प्रबुद्ध करता है, वह मैं विद्वान् **वां प्रति**=आप दोनों के प्रति **हविष्मता**=उत्तम ग्रहण योग्य भावों से युक्त, **यज्ञियेन**=सत्संग योग्य **मनसा**=मन वा ज्ञान से **जरध्यै**=उपदेश करने के लिये **सूनुः पितरा न**=माता-पिता के प्रति पुत्र तुल्य **रथम्**=रमणीय वचन और उत्तम व्यवहार का **अच्छ विवक्मि**=उपदेश करता हूँ।

भावार्थ-विद्वान् जन उत्तम बुद्धिवाले स्त्री-पुरुषों को श्रेष्ठ ज्ञान एवं व्यवहार का उपदेश करे तथा उन्हें अपने सत्संग में रखकर जीवन में आनेवाली बाधाओं, विपत्तियों से सचेत करके पुत्रों को दिए उपदेश के समान उनको सन्मार्गदर्शन करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**अश्विनौ**॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

गुरु शिष्य

अशो॑च्य॒ग्निः स॑मिधा॒नो अ॒स्मे उपो॑ अदृश्र॒न्तम॑सश्चि॒दन्ताः॑।

अचे॑ति के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑च्छ्रि॒ये दि॒वो दु॑हि॒तुर्जाय॑मानः॥ २॥

पदार्थ-समिधानः-अच्छी प्रकार दीप्त **अग्निः**-यज्ञाग्नि, ज्ञानाग्नि, सूर्य एवं अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् **अस्मे अशोचि**=हमारे हितार्थ चमके। **तमसः अन्ताः चित्**=अन्धकार अज्ञान के परले सिरे तक **उपो अदृश्रन्**=स्पष्ट दिखाई दे। **दिवः दुहितुः उषसः**=दीप्त सूर्य-कन्या के समान उषा से ही **पुरस्तात् श्रिये**=पूर्व दिशा की शोभा के लिये जैसे सूर्य उत्पन्न होता है वैसे ही **दिवः दुहितुः**=ज्ञानप्रकाश का दोहन करनेवाले, **उषसः**=पापों और अज्ञान के नाशक मातृवत् गुण से **जायमानः**=उत्पन्न होता हुआ शिष्यरूप पुत्र **पुरुस्तात्**-आगे शोभा के लिये ही **केतुः अचेति**=पूर्ण ज्ञानवान् होकर प्रबुद्ध होता है।

भावार्थ-तेजस्वी विद्वान् गुरु माता के समान शिष्य को अपने गुरुकुलरूपी गर्भ में धारण करके उसे ज्ञान की अग्नि से दीप्त करता है। उसके पापों और अज्ञान का नाश करके पूर्ण ज्ञानवान् बनाकर प्रबुद्ध करता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**अश्विनौ**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

जितेन्द्रिय पुरुष

अ॒भि वां॑ नू॒नम॑श्विना॒ सुहो॑ता॒ स्तोमैः॑ सिषक्ति नासत्या विव॒क्वान्।

पू॒र्वीभि॑र्यातं प॒थ्या॑भिर॒र्वाक्स्व॒र्विदा॒ वसु॑मता॒ रथे॑न॥ ३॥

पदार्थ-हे **अश्विना**=अश्वरूप इन्द्रियों के स्वामी, नर-नारी वर्गो! हे **नासत्या**=कभी असत्य व्यवहार न करनेवाले वा **न-असत्-यौ**=कभी असत्, कुमार्ग पर न जानेवाले जनो! **सुहोता**=उत्तम ज्ञानदाता **वि वक्वान्**-विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष **स्तोमैः**=वेद मन्त्रों और उपदेशों से **नूनम्**=अवश्य **वां**=तुम दोनों को **अभि सिषक्ति**=अपने साथ एक सूत्र में बाँधता है, आप दोनों **वसुमता रथेन**=धन, अन्नादि सम्पन्न रथ से यात्री जैसे सुख से देशान्तर चला जाता है वैसे ही **वसु-मता**=शिष्यों से युक्त, **रथेन**=स्थिर भाव के विद्यमान, **स्वर्विदा**=ज्ञान के प्रकाश को स्वयं प्राप्त और अन्यों को प्राप्त करानेवाले आचार्य की सहायता से **पूर्वीभिः**=पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, **पथ्याभिः**=हितकारी मार्गों से **अर्वाक् यातम्**=आगे बढ़ो।

भावार्थ-जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष वेदमन्त्रों का उपदेश करके अपने शिष्य वर्ग स्त्री, पुरुष, जनों को विविध विद्याओं का ज्ञान प्रदान कर, असत्य व्यवहार तथा कुमार्ग से बचाकर संयमी बनाता

है। उन्हें इतना योग्य बना देता है कि वे भी अपने शिष्यों को उत्तमता पूर्वक ज्ञान के उपदेश करके गुरु-शिष्य परम्परा को आगे बढ़ा सकें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**अश्विनौ**॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

मधुकरी वृत्ति

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि॥४॥

पदार्थ-हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय नर-नारियो! **नूनम्** अवश्य मैं **युवाकुः**-तुम को हृदय से चाहता हुआ, **वसूयुः**=शिष्य-ब्रह्मचारियों की कामना करता हुआ आचार्य **सुते**-उत्तम ज्ञानैश्वर्य के निमित्त **अवोः**-ब्रह्मचर्यादि-पालक आप दोनों में से **वां**-तुम दोनों को **माध्वी**-ऋग्वेद, मधु-विद्या, उपनिषत्-ज्ञान और 'मधु' आनन्दप्रद अन्नादि के योग्य जानकर **हुवे**-प्राप्त करूँ। **स्थविरासः**-ज्ञानवृद्ध **अश्वाः**=विद्या-विचक्षण पुरुष **वां**-तुम दोनों को **आ वहन्तु**=सन्मार्ग पर ले चलें। आप लोग **अस्मे**-हमारे **सु-सुता**=उत्तम रीति से बनाये, **मधूनि**=ज्ञानों और अन्नों का **पिबाथः**=उपभोग और पालन करो। ज्ञानवृद्धों के सत्संग से एकत्र करने योग्य होने से ज्ञान और गृहस्थों से भिक्षारूप में संग्रह करने योग्य अन्न 'मधु' है। उसका संग्रह करना 'मधुकरी' वृत्ति है।

भावार्थ-जैसे मधुमक्खी विभिन्न पुष्पों पर जा-जाकर पराग का एक एक कण लाकर संग्रह करके उत्तम मधु को तैयार करती है उसी प्रकार से जितेन्द्रिय नर-नारी ज्ञान पिपासु होकर विविध विद्याओं में निष्णात विद्वानों के पास जा-जाकर विविध विद्याओं का संग्रह करें तथा इस काल में आजीविका भी 'मधुकरी वृत्ति' अर्थात् भिक्षा वृत्ति से ही चलावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**अश्विनौ**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

विद्या प्राप्ति

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः॥५॥

पदार्थ-हे **देवा अश्विना**-विद्याभिलाषी शिष्य-शिष्याजनो! आप दोनों **मे**-मेरी **प्राची**=ज्ञानयुक्त, पूज्य **अमृध्राम्**-अविनाशी और **वसूयुं**=धनैश्वर्य युक्त **धियं**-बुद्धि और कर्म को **सातये**=प्राप्त करने के लिये **कृतम्**=यत्न करो। वैसे ही हे **देवा अश्विना**=जितेन्द्रिय, ज्ञानदाता गुरु-गुरुपत्नी जनो! आप दोनों **वाज-सातये**=मुझ शिष्य को ज्ञान देने के लिये **प्राचीम्**=अति उत्कृष्ट, **वसूयुं**=शिष्य को प्राप्त होनेवाली **अमृध्रां**-अविनाशी, शिष्य को कष्ट न देनेवाली **धियं**=बुद्धि और वाणी का **कृतम्**=उपदेश करो। आप दोनों **वाजे**-संग्राम और ज्ञान प्राप्ति के समय **विश्वाः पुरन्धीः**=बहुत ज्ञानधारक बुद्धियों, वाणियों की **आ अविष्टं**=रक्षा करो। आप दोनों **शचीपती**=वाणी और शक्ति के पालक होकर **नः**=हमें **शचीभिः**-वाणियों से **ताः**=नाना बुद्धियें देकर **शक्तं**=हमें शक्तियुक्त करो।

भावार्थ-विद्याभिलाषी शिष्य पुरुषार्थ पूर्वक गुरुजनों से विभिन्न विद्याओं को प्राप्त करने का यत्न करें तथा जितेन्द्रिय गुरुजन उत्कृष्ट शिष्यों को समस्त विद्याओं का उपदेश करें। इससे ये गुरु और शिष्य दोनों मिलकर ज्ञान-विद्या की रक्षा व वृद्धि कर सकेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सत्संगति

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री–पुरुषो! आप **आसु धीषु**=इन कर्मों और बुद्धियों के बीच, **नः अविष्टं**=हमारी रक्षा करो और **नः**=हमारा **रेतः**=वीर्य, **प्रजावत्**=प्रजा–उत्पादक और **अह्रयम्**=नष्ट न होनेवाला **अस्तु**=हो। हम **तोके तनये**=पुत्र–पौत्रादि के लिए **वां**=आप की **तूतुजानाः**=रक्षा करते हुए, **सु-रत्नासः**=उत्तम ऐश्वर्ययुक्त होकर **देव-वीतिं**=विद्वानों की संगति को **आ गमेम**=प्राप्त हों।

भावार्थ–स्त्री–पुरुषों को चाहिए वे उत्तम विद्वानों की संगति में रहकर जितेन्द्रिय बनें तथा वीर्य की रक्षा करें। इससे सन्तान भी उत्तम होगी और स्वस्थ रहकर ऐश्वर्यशाली बनेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

आदर्श पुरुष

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **माध्वी**=अन्न वा ज्ञान के मधुवत् संग्राहक और सेवा करनेवाले जनो! **एषः स्यः**=यह वह **निधिः**=ज्ञानैश्वर्यों का खजाना, विद्याओं का सागर गुरुजन **पूर्वगत्वा इव**=पूर्वगामी आदर्श पुरुष तुल्य **वां सख्ये**=आप दोनों के मित्र भाव में **हितः**=स्थित है, वह **अस्मे**=हम प्रजा के हितार्थ **रातः**=दिया गया है। आप लोग **मानुषीषु विक्षु**=मनुष्य–प्रजाओं में **हव्यं अश्नन्ता**=उत्तम अन्नादि को भोगते हुए **अहेडता मनसा**=क्रोध और अपमान–रहित चित्त होकर **अर्वाक् यातम्**=हमारे पास आया करें।

भावार्थ–क्रोध और अपमान रहित चित्तवान् विद्वान् जन प्रजाओं के हित के लिए उनके पास जाते रहें। इससे विद्वानों तथा प्रजाओं में परस्पर प्रीति बढ़ने से ज्ञान–ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सन्मार्ग दर्शन

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात्।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **भुरणा**=प्रजाओं के पोषक जितेन्द्रिय नर–नारियो! **एकस्मिन् समाने**=एक समान आदर युक्त **योगे**=परस्पर मिलने पर **वां रथः**=आप दोनों के रथ के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारा उपदेष्टा पुरुष **सप्त स्रवतः**=प्रवाह से निकलनेवाली सात छन्दोमय वाणियों को **परि गात्**=प्राप्त करे, करावे। **ये**=जो **वां**=आप दोनों के **धूर्षु**=धुराओं में लगे, धुरन्धर विद्वान् **तरणयः**=वेगवान् अश्व तुल्य वेग से संकटों से पार उतारनेवाले विद्वान् **वां वहन्ति**=आप दोनों को सन्मार्ग पर ले जाते हैं **सुभ्वः**=उत्तम सामर्थ्यवान् **देवयुक्ताः**=विद्वानों से नियुक्त होकर **न वायन्ति**=सत्पथ से विचलित नहीं होते।

भावार्थ—श्रेष्ठ विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे प्रजाओं को सात छन्दोंवाली वेदवाणी का उपदेश किया करें। इससे स्त्री-पुरुष जितेन्द्रिय होकर सन्मार्ग पर चलते रहेंगे।

ऋषि:—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

दुर्गुण त्याग

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति।

प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि॥ ९ ॥

पदार्थ—हे नर-नारियो! **ये**=जो **राया**=ऐश्वर्य बल से **मघ-देयं**=दातव्य ऐश्वर्य **जुनन्ति**=देते हैं उन **मघवद्भ्यः**=ज्ञान-धनशाली पुरुषों के उपकार हेतु आप लोग **असश्चता हि भूतम्**=दुर्व्यसनों में असक्त रहो। **ये**=जो लोग **अश्व्या**=अश्वयुक्त और **गव्या**=गौवों से समृद्ध **मघानि**=धनों को **पृञ्चन्तः**=प्राप्त करते हुए **सूनृताभिः**=उत्तम वाणियों और अन्नों से **बन्धुं**=बन्धुजन को **प्र तिरन्ते**=अच्छी प्रकार बढ़ाते हैं उनके लिये आप विषयादि में न फँसकर सेवा में तत्पर रहो।

भावार्थ—उत्तम स्त्री-पुरुष दुर्व्यव्यसनों में कभी न फँसें तथा परोपकार के कार्यों में सदैव दान देते हुए सेवा कार्यों में तत्पर रहें।

ऋषि:—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

विद्या प्राप्ति

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ १० ॥

पदार्थ—हे **अश्विना**=जिज्ञासु स्त्री-पुरुषो! आप **युवाना**=युवा-युवति होकर **मे**=मुझ विद्वान् के **हवम् आ शृणुतम्**=उपदेश को आदर से सुनो। आप लोग **इरावत् वर्त्तिः**=जल अन्नयुक्त मार्ग के समान, उत्तम प्रेरणा-युक्त व्यवहार को **आ यासिष्टं नु**=अवश्य प्राप्त हो। **रत्नानि धत्तम्**=रत्नतुल्य श्रेष्ठ गुणों को धारण करो। **सुरीन्**=विद्वान् पुरुषों को **जरतं च**=प्राप्त होकर विद्या-लाभ करो। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **स्वतिभिः नः सदा पात**=उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें।

भावार्थ—युवावस्था में स्त्री पुरुष विद्वानों के उत्तम उपदेशों को सुनकर सुप्रेरणा प्राप्त करें। सद्गुणों को जीवन में धारण करके व्यवहार को श्रेष्ठ बनावें। वास्तव में यही विद्या प्राप्ति है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और अश्विनौ है।

[६८] अष्टषष्टितमं सूक्तम्

ऋषि:—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**अश्विनौ** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्रियजय

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः।

हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे **अश्विना**=इन्द्रियों पर वशी स्त्री-पुरुषो! आप दोनों **दस्रा**=दुःखनाश में तत्पर होकर **युवाकोः**=तुम दोनों को चाहनेवाले मुझ विद्वान् की **गिरः**=उपदेश वाणियों को **जुजुषाणा**=श्रवण करते हुए **शुभ्रा**=उत्तम गुणों, आभरणों से शोभित और **सु-अश्वा**=उत्तम अश्वारूढ़ वीरवत्, उत्तम विद्या में गतिशील होकर **आ यातम्**=आओ। **नः**=हमारे **प्रति-भृता**=बदले में दिये

भरण पोषणार्थ **हव्यानि**=उत्तम अन्नों का **वीतम्**=भोजन करो।

भावार्थ–इन्द्रियों को वश में रखनेवाले स्त्री–पुरुष विद्वानों की शरण में जाकर उत्तम उपदेश को सुनें तथा श्रेष्ठ गुणों को जीवन में धारण करके जीवन को सुन्दर बनावें और उन विद्वानों को उत्तम अन्न का भोजन कराके सत्कार करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**साम्नीनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सात्त्विक भोजन

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे विद्वान्, स्त्री पुरुषो! **वां**=आप दोनों के लिये **मद्यानि**=आनन्दप्रद **अन्धांसि**=जीवन-धारक उत्तम अन्न **प्र अस्थुः**=अच्छी प्रकार रक्खे हैं आप दोनों **मे**=मेरे **हविषः**=उत्तम अन्न को **वीतये**=खाने के लिये **अरं गन्तं**=अवश्य आइये। **अर्यः**=शत्रु के **हवनानि**=आह्वानों को **तिरः**=तिरस्कार करके **नः हवनानि**=हमारे उत्तम वचनों को **श्रुतं**=श्रवण करो।

भावार्थ–विद्वान् स्त्री–पुरुष सदैव सात्त्विक अन्न का ही ग्रहण करें, दुष्ट लोगों के आग्रह को कभी भी स्वीकार न करें। और विद्वानों के उत्तम वचनों को सुनें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**साम्नीनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शिष्यों का कर्त्तव्य

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः। अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय पुरुषो! **रथः**=उपदेश **मनोजवाः**=मन को प्रेरणा करनेवाला **शत-ऊतिः**=सैकड़ों ज्ञानों से युक्त और सैकड़ों संकटों से रक्षक होकर **वां**=आप दोनों के **रजांसि**=तेज को सूर्य के समान, राजस आवरणों को **तिरः इयर्त्ति**=दूर करता है। हे **सूर्यावसू**=सूर्य के समान तेजस्वी गुरुजनों, विद्या-प्रकाशक गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य से बसनेवाले ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जनो! वह सदा **अस्मभ्यं इयानः**=हमारे हितार्थ आता हुआ **रजांसि**=राजस आवरणों को **तिरः**=दूर करे।

भावार्थ–शिष्य लोग विद्या के प्रकाशक गुरुजनों के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य का पालन व ज्ञान से युक्त होकर राजस वृत्ति का त्याग करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**साम्नीभुरिगासुरीविराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञान दाता पुरुष

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम्। आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

पदार्थ–**देवया**=विद्वानों को अन्नों और ज्ञानों का दाता, उनका सत्कारक पुरुष **अयं ह**=वह है **यत्**=जो **अद्रिः**=मेघ तुल्य उदार होकर **सोम-सुत्**=उत्तम अन्न ओषधियों के रसवत् ज्ञानदाता होकर **ऊर्ध्वः**=उत्तम पद पर स्थित होकर **युवभ्याम्**=तुम दोनों के लाभ के लिये **विवक्ति**=विविध उपदेश कहे। **विप्रः**=विद्वान् पुरुष **वल्गू**=उत्तम वाणी बोलनेवाले आप दोनों का **हव्यैः**=दान योग्य उत्तम ज्ञानों और अन्नादि से **ववृतीत**=सत्कार करे।

भावार्थ–विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि वे उच्च व श्रेष्ठ पदों को प्राप्त करके अपने उपदेशों द्वारा उत्तम ज्ञान का दान करते रहें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**साम्नीनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ज्ञान से रक्षा

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्। यो वामोमानं दधते प्रियः सन्॥ ५॥

पदार्थ-**यः**=जो **वाम्**=आप दोनों का **प्रियः सन्**-प्रिय होकर **महिष्वन्तं**=उत्तम परिणाम-जनक **ओमानं**=ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य **दधते**=स्वयं धारता और आपको धारण कराता है, उस **अत्रये**=त्रिविध ताप रहित, तीन ऋणों से मुक्त विद्वान् के लिये **यद् वा चित्रं भोगनं नु अस्ति**=जो आपका नाना प्रकार का भोजन है वह **नि युयोतम्**=अवश्य पृथक् करो।

भावार्थ-जो पुरुष ज्ञान को स्वयं धारण करता है तथा अन्यों को भी धारण कराता है वह आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापों से बचा रहता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

रक्षायुक्त रथ

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे। अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः॥ ६॥

पदार्थ-हे **अश्विना**=वेगवान् रथों, यन्त्रों के स्वामी स्त्री पुरुषो! आप लोग **हविर्दे**=अन्न, भूमि और उत्तम साधनों के दाता **जुरते**=वृद्ध, मान्य **च्यवानाय**=जाने को उद्यत पुरुष हितार्थ **प्रतीत्यम्**=प्रत्येक देश में पहुँचने योग्य **इतः-ऊति**-इधर-उधर से रक्षायुक्त, **वर्पः**-उत्तम रूपयुक्त रथादि **अधि धत्थः**=प्रदान करते रहो। **वां त्यत्**=आप दोनों का वही **प्रतीत्यं भूत्**-प्रसिद्धकर कर्म है।

भावार्थ-जो यन्त्रों व रथों=वाहनों के स्वामी हैं वे देश-विदेश आने-जाने के लिए यात्रियों व व्यापारियों को समय पर वाहन उपलब्ध करावें तथा उन वाहनों व यात्रियों की सुरक्षा व्यवस्था भी करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**साम्नीभुरिगासुरीविराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

कष्ट निवारण

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे। निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः॥ ७॥

पदार्थ-हे **अश्विना**=विद्वान् रथी सारथीवत् साधनयुक्त जनो! **दुरेवासः**-दुष्ट कामनायुक्त **सखायः**=मित्र लोग जिसको **मध्ये समुद्रे**=कष्टों के बीच समुद्र में **जहुः**=छोड़ देते हैं **भुज्यम्**=भुजा का सहारा चाहनेवाले **त्यं**=उस पुरुष को आप लोग **निः पर्षद् ईं**=अवश्य पार करो **यः**=जो **आराव**=बिचारा, नीरव, मूक और **युवाकुः**=तुम दोनों को चाहता, पुकारता और सहायता की याचना करता हो।

भावार्थ-कष्ट काल में जिसे मित्र लोग छोड़ गये हैं ऐसे बेसहारा को साधन युक्त जन कष्टों से निकालने में सहायक बनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**साम्नीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

स्त्री रक्षा

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः॥ ८॥

पदार्थ-हे **अश्विना**=अश्वों और यन्त्रों की विद्या जाननेवाले स्त्री-पुरुषो! आप दोनों

जसमानाय=प्रजानाश करनेवाले, **वृकाय**=चोर दम्भी पुरुष के दमन के लिये **चित्**=अवश्य **शक्तम्**=समर्थ बनो। और **हूयमाना**=आदर से बुलाये गये आप दोनों **शयवे**=सुखेच्छु पुरुष के हितार्थ **श्रुतम्**=उसकी प्रार्थनादि श्रवण करो। **यौ**=जो आप दोनों **शक्ती**=शक्ति और **शचीभिः**=वाणियों द्वारा **अपः न**=जल जैसे नदी को पूर्ण करते वैसे **स्तर्यं**=आच्छादन, भरण, पोषण और आश्रय देने और **अघ्न्याम्**=न मारने योग्य गौ के समान कन्या, स्त्री भूमि और प्रजा को **अपिन्वतम्**=पुष्ट करो।

भावार्थ–यन्त्रविद्या के जाननेवाले स्त्री–पुरुष दुष्टों व दम्भियों के चंगुल में फँसी स्त्री की रक्षा करें तथा उन दुष्टों का दमन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों का कर्त्तव्य

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

पदार्थ–हे उत्तम स्त्री–पुरुषो! **उपसां अग्रे, यथा सु-मन्मा कारुः जरते**–प्रभात वेलाओं के आगमन के पूर्व जैसे उत्तम विचारवान् पुरुष स्तुति करता है वैसे **सु-मन्मा**=उत्तम ज्ञानवान्, **बुधानः**=स्वयं बोधवान् अन्यों को बोध कराता हुआ **कारुः**=मन्त्रों का व्याख्याता विद्वान् **एषः स्यः**=वही है जो **सूक्तैः**=उत्तम मन्त्र गणों से **उपसाम् अग्रे**=ज्ञान–कामनावाले शिष्यों के समक्ष **जरते**=विद्या का उपदेश करता है। **अघ्न्या पयोभिः**=गौ जैसे दुग्धों से पालक को बढ़ाती है वैसे ही 'अघ्न्या' अविनाशी वेदवाणी, प्रभुशक्ति वा आत्मशक्ति **तं**=उसको **इषा वर्धत्**=इच्छा शक्ति से बढ़ाती है। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ–उत्तम विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह ज्ञान की कामनावाले शिष्यों को वेद वाणी द्वारा विद्या का उपदेश करके उनकी इच्छाशक्ति को सुदृढ़ करे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता अश्विनौ ही है।

[६९] एकोनसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा का कर्त्तव्य

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १ ॥

पदार्थ–जैसे **रथः हिरण्ययः**=लोह–सुवर्णादि धातु का बना रथ **वृषभिः अश्वैः याति**=बलवान् अश्वों या बैलों से चलता है, वह **घृतवर्तनिः**=जल से सिंचे मार्ग पर चलने हारा और **पविभिः रुचानः**=चक्रधाराओं से सुशोभित और **इषां वोळा**–इष्ट अन्नादि का वहन करनेवाला और **वाजिनीवान्**=बलवती शक्ति से युक्त होकर **नृ-पतिः**=मनुष्यों का रक्षक होता है वैसे ही **वाजिनीवान्**=बलवती सेना, ज्ञानसम्पन्न वाणी और भूमि का स्वामी, **नृ-पतिः**=प्रजा पालक राजा, **रथः**=रमणीय-स्वभाव, उत्तम विद्या का उपदेष्टा, प्रजा को रमाने हारा **हिरण्ययः**=हितैषी और सुखप्रद **बद्बधानः**=दुष्टों को बाधा और बन्धनादि करता हुआ, **वृषभिः अश्वैः**=विद्याओं में पारंगत वीर पुरुषों सहित **रोदसी वां**=सूर्य-भूमिवत् सम्बद्ध आप दोनों राजा–प्रजावर्गों और गृहस्थ

स्त्री-पुरुषों को **आ यातु**=प्राप्त हो। वह **घृतवर्त्तनिः**=स्निग्ध मार्ग से जानेवाला, उत्तम व्यवहारवान् और **पविभिः रुचानः**=पवित्र आचरणयुक्त, उत्तम हथियारों से सुशोभित गृहस्थ **इषा वोढा**=अभिलषित दार से विवाह करने हारा हो और राजा **इषां वोढा**=सेनाओं को अपने जिम्मे लेकर चलने हारा हो।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह सुदृढ़ धातुओं से रथों व यन्त्रों का निर्माण करावे, युद्धविद्या में पारंगत वीर पुरुषों को सेना में उत्तम पद प्रदान कर सेनापति के सहयोग से राष्ट्र की प्रजा की रक्षा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**अश्विनौ**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राज्य-प्रबन्ध

स पंप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिबन्धुरो मनसा यातु युक्तः।

विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्यामंमश्विना दधाना॥ २॥

पदार्थ–जैसे रथ **त्रि-बन्धुरः**-सारथि आदि के बैठने के योग्य तीन स्थानों से युक्त होता है जिनसे **कुत्र चित् यामं दधाता**=कहीं भी जाना चाहते हुए रथी सारथी जाते हैं वैसे ही हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! **सः**=वह विद्वान् और वीर पुरुष **भूमा**=महान् सामर्थ्य से युक्त, **पञ्च अभि**=पाँचों जनों के समक्ष ज्ञान और बल का विस्तार करता हुआ **त्रि-बन्धुरः**=तीनों वेदों का धारक और तीन प्रकार के बल का आश्रय होकर, **मनसा**=ज्ञान और प्रबल चित्त से युक्त होकर **अभि यातु**=आगे आवे। **येन**–जिसकी सहायता से आप दोनों स्त्री-पुरुष, राजा-रानी, **देवयन्तीः विशः**=कामनायुक्त प्रजाओं को **गच्छथः**=प्राप्त होते और **कुत्र चित्**=जहाँ चाहे कहीं भी **यामं दधानां**=गमन, परस्पर वैवाहिक बन्धन और राज्य-प्रबन्ध को धारण करते हुए **गच्छथः**=प्राप्त होते हो।

भावार्थ–राजा व रानी जितेन्द्रिय और सामर्थ्यवान् होवें। वे अपनी पाँचों प्रकार की प्रजाओं (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) को वेद ज्ञान तथा बल से युक्त करने की व्यवस्था करें और राज्य-प्रबन्ध में दोनों कुशल होवें।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**अश्विनौ**॥ छन्दः–**आर्षीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राजा-प्रजा का कर्त्तव्य

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः।

वि वां रथो वध्वाऽ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम्॥ ३॥

पदार्थ–जैसे **रथः वर्त्तनिभ्यां दिवः अन्तान् बाधते**=रथ चक्रधाराओं से भूमि के प्रान्त भागों को पीड़ित करता है वैसे ही हे स्त्री-पुरुषो! राज-प्रजाजनो! **वां**=आप दोनों में **रथः**–रम्य व्यवहारवान्, वा स्थिर, दृढ़ पुरुष **वध्वा**=सहयोगिनी वधू वा कार्य-भार की वाहक शक्ति के साथ **यादमानः**=यत्नवान् होता हुआ **वर्त्तनिभ्याम्**=ऐहिक और परमार्थिक व्यवहारों या देवयान पितृयाण मार्गों से **दिवः अन्तान् बाधते**=ज्ञान-सिद्धान्तों का अवगाहन करे। हे **स्वश्वा**=उत्तम अश्वों, इन्द्रियों से युक्त! हे **दस्रा**=अज्ञानादि-नाशक जनो! आप दोनों **यशसा**=यश के साथ **अर्वाग् यातम्**=आगे बढ़ो और **मधुमन्तं निधिं**–मधुर ज्ञानों से युक्त, वेद-निधि या कोश का **पिबाथः**=पालन और उपभोग करो।

भावार्थ–राजा और प्रजा दोनों मिलकर राज्य की प्रबन्ध व्यवस्था को सुदृढ़ करें। प्रयत्न

पूर्वक ज्ञान-सिद्धान्तों का चिन्तन करके अज्ञान का नाश तथा मधुर ज्ञान से युक्त वेदरूपी कोष की रक्षा करते हुए अपने लोक और परलोक को सुधारें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दीर्घायु

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम्।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात्॥ ४॥

पदार्थ-हे स्त्री-पुरुषो! **युवोः**=तुम दोनों में **सूरः दुहिता**=सूर्य की कान्तिवाली उषा के समान सुन्दरी **योषा**=पुरुष की प्रेमपूर्वक अभिलाषावाली स्त्री **परि-तक्म्यायाम्**=कामाग्नि-युक्त, यौवन दशा में, **श्रियं**=आश्रय-योग्य, सेवनीय पुरुष को **परि वृणीत**=स्वीकार करे। आप दोनों **शचीभिः**=उत्तम कर्मों और वाणियों से **देवयन्तम्**=प्रिय कामनावान् सहयोगी को **अवथः**=प्राप्त हुआ करो और **वां घ्रंसम्**=आप दोनों में तेजस्वी पुरुष को **ओमना**=रक्षण-योग्य बल सहित **वयः**=उत्तम, दीर्घायु, अन्न बलादि **परि गात्**=प्राप्त हो।

भावार्थ-स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा कान्तिमान् व तेजस्वी होकर परस्पर मधुरता का व्यवहार करें तथा उत्तम कर्मों द्वारा दीर्घायु को प्राप्त होवें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

गृहस्थ प्रशंसा

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन्॥ ५॥

पदार्थ-हे **रथिरा**=रथ पर स्थित रथी सारथी के समान सहयोगी स्त्री-पुरुषो! **वां**=आप दोनों में से **यः**=जो प्रत्येक **रथः**=स्थिर भाव से रहने और गृहस्थ में रमनेवाला हो वह **उस्राः वस्ते**=किरणों को सूर्य के समान, उज्ज्वल वस्त्रों को धारण करे। वह **युजानः**=उड़े रथ तुल्य स्वयं **युजानः**=संयुक्त होकर, ग्रन्थि जोड़कर **वर्त्तिः परियाति**=गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हो। **उषसः**=प्रभात वेला के समान कान्तिमती कन्या की **व्युष्टौ**=विशेष विवाह की कामना होने पर **तेन**=उस पुरुष से ही **नः**=हमें **शं योः**=शान्ति और सुख प्राप्त हो। हे **अश्विना**=उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! **अस्मिन् यज्ञे**=इस यज्ञ अर्थात् परस्पर संगति और दान-प्रतिदानमय सद्-व्यवहार में आप दोनों **नि वहतम्**=एक दूसरे को धारण करो, विवाहित होकर रहो।

भावार्थ-कान्तियुक्त स्त्री-पुरुष परस्पर विवाहित होकर एक-दूसरे को धारण करें। जितेन्द्रिय होकर गृहस्थरूप यज्ञ अर्थात् सद्-व्यवहार के द्वारा सुख-शान्ति को प्राप्त होवें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

गृहस्थ का कर्त्तव्य

नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम्।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः॥ ६॥

पदार्थ-**गौरा इव तृषाणा सवना**=जैसे प्यासे दो मृग जलों को प्राप्त करते हैं वैसे हे **नरा**=स्त्री-पुरुषो! **अस्माकं**=हम में से **गौरा**=विद्या वाणी में निष्णात होकर **विद्युतम् उप यातम्**=विशेष कान्ति को प्राप्त करो और **तृषाणा**=कामनावान् या अति उत्सुक होकर **अद्य**=आज

सवना–यज्ञों, ऐश्वर्यों और पुत्र–प्रसवादि गृहोचित कार्यों को **उप यातम्**=प्राप्त होओ। विद्वान् पुरुष **वां**=आप दोनों की **पुरुत्रा**=बहुत से कार्यों में **हवन्ते हि**=स्तुति करते हैं। **अन्ये**=दूसरे शत्रुजन **देवयन्तः**=द्यूतक्रीड़ा आदि व्यवहार करते हुए **वाम् मा नियमन्**=आप दोनों को न फँसा लें।

भावार्थ–स्त्री–पुरुष विद्या एवं व्यवहार में निष्णात होकर यज्ञ, पुरुषार्थ व सन्तानोत्पत्ति आदि गृहोचित कार्य करें। जुआ खेलना आदि बुरे कार्यों से सदैव बचे रहें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

परस्पर सहयोग

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥

पदार्थ–**समुद्रे अवविद्धं भुज्युम् यथा अश्विना अस्त्रिधानैः पतत्रिभिः अर्णसः पारयतः**=समुद्र में फँसे भोग्य ऐश्वर्य की कामनावाले व्यापारी को जैसे वेगयुक्त नौका यन्त्रादि के अध्यक्ष जन पतवारों द्वारा पार करते हैं वैसे हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय उत्तम शिष्यो! एवं रथी–सारथिवत् गृहस्थ–रथ में स्थित स्त्री–पुरुषो! **युवम्**=आप दोनों **समुद्रे अवविद्धं**=कामनामय समुद्र में अवपीड़ित, **भुज्युम्**=एक दूसरे का सहारा चाहनेवाले या सांसारिक भोग वा संसार में रक्षा चाहनेवाले सहचर को **अर्णसः**=पितृ ऋण से **अस्त्रिधानैः**=नष्ट न होनेवाले **अश्रमैः**=न थकनेवाले, **अव्यथिभिः**=पीड़ित न होने और अन्यों को पीड़ा न देनेवाले **पतत्रिभिः**=गमन योग्य तीन आश्रमों से और **दंसनाभिः**=उत्तम कर्मों से **पारयन्ता**=पार करते हुए **उद् ऊहथुः**=उत्तम मार्ग से ले जाओ।

भावार्थ–जितेन्द्रिय स्त्री–पुरुष गृहस्थ में स्थित होकर पितृ ऋण से उर्ऋण होने के लिए सुसन्तान को जन्म देवें तथा ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी व संन्यासी तीनों आश्रमवासियों का पालन करें और फिर गृहस्थ से आगे बढ़कर आश्रम व्यवस्था का अनुपालन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों की संगति

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जिज्ञासु स्त्री–पुरुषो! आप **युवाना**=युवा–युवति होकर **मे**=मुझ विद्वान् के **हवम् आ शृणुतम्**=उपदेश को आदर से सुनो। आप लोग **इरावत् वर्त्तिः**=जल अन्नयुक्त मार्ग के समान, उत्तम प्रेरणा–युक्त व्यवहार को **आ यासिष्टं नु**=अवश्य प्राप्त हो। **रत्नानि धत्तम्**=रत्नतुल्य श्रेष्ठ गुणों को धारण करो। **सुरीन्**=विद्वान् पुरुषों को **जरतं च**=प्राप्त होकर विद्या–लाभ करो। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं**=आप लोग **स्वतिभिः नः सदा पात**=उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–जिज्ञासु स्त्री–पुरुष युवावस्था में ही उत्तम विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त कर उनके उपदेशों से श्रेष्ठ गुणों को धारण करते हुए विद्या का संग्रह करें।

अगले सूक्त का ऋषि भी वसिष्ठ और अश्विनौ देवता ही है।

[७०] सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।

अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥ १ ॥

पदार्थ–हे **विश्ववारा अश्विना**=सबसे वरणीय उत्तम स्त्री-पुरुषो! आप दोनों **नः**=हमारे **आगतम्**=पास आओ। **वां**=आप दोनों का **पृथिव्याम्**=पृथिवी पर **तत् स्थानम्**=गृहस्थाश्रम **प्र अवाचि**=उत्तम कहा है, **यत्**=जिसमें **वाजी**=बलवान् पुरुष **शुन-पृष्ठः**=सुखद पीठवाले अश्व के समान सुखों का आश्रय होकर **अस्थात्**=रहता है। आप पति-पत्नी **ध्रुवसे**=स्थिरता के लिये **योनिम् सेदथुः**=एक गृह में विराजते हो।

भावार्थ–गृहस्थाश्रम पृथिवी पर तभी उत्तम है जब गृहस्थ स्त्री-पुरुष स्वस्थ, संयमी तथा बलवान् होवें तथा परस्पर प्रीतिपूर्वक रहें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

गृहस्थ स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे।

यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः॥ २ ॥

पदार्थ–**दुरोणे घर्मः**=जहाँ कोई चढ़ नहीं सकता ऐसे ऊँचे आकाश में सूर्य के समान **मनुषः**=मनुष्य **दुरोणे**=घर में और राजा राष्ट्र में उच्च पद पर विराज कर **अतापि**=तप करे। ऐसे ही ब्रह्मचारी **घर्मः**=ज्ञान-बल से सिक्त-स्नातक होकर **मनुषः दुरोणे**=मननशील आचार्य के गृह में **अतापि**=तप करे, उस समय **वां**=तुम दोनों को **चनिष्ठा**=श्रेष्ठ व गुरुवचनमय **सुमतिः**=शुभमति **सिषक्ति**=प्राप्त हो। **एतग्वा चित्**=अश्व के समान गृहस्थ-रथ में नियुक्त आप दोनों **सुयुजा**=उत्तम सहयोगी जनों को **युजानः**=जोड़ता हुआ, सत्कर्म में नियुक्त करता हुआ **यः**=जो **समुद्रान् सरितः**=समुद्रों को नदियों के समान **पिपर्त्ति**=पूर्ण करे वह उत्तम ज्ञानी गुरु सूर्यवत् तेजस्वी हो।

भावार्थ–गृहस्थाश्रम ऊँचा है। मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके तप करे तथा सत्कर्म करता हुआ समाज के लोगों को एक सांस्कृतिक-राष्ट्रीय विचारधारा से जोड़े और यदि इसके घर में कोई ब्रह्मचारी आवे तो उसको ज्ञान प्रदान कर तपस्वी बनने की प्रेरणा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सूर्यवत् तेजस्वी बनो

यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।

नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो! **दिवः ओषधीषु**=सूर्य-ताप को धारण करनेवाली **विक्षु**=प्रजाओं में दिन-रात्रि के समान आप दोनों भी **दिवः**=इस पृथिवी की **यह्वीषु**=बड़ी-बड़ी **ओषधीषु**=शत्रु-सन्तापक तेज की धारक सेनाओं और **यह्वीषु विक्षु**='यहु' अर्थात् सन्तानवत् पालन-योग्य प्रजाओं के बीच में **यानि**=जितने भी **स्थानानि**=आदर के पद हैं उन सब पर आप लोग **पर्वतस्य मूर्धनि**=पर्वत के शिरोभाग में सूर्यवत् तेजस्वी होकर **सदन्ता**=विराजते

हुए, **दाशुषे जनाय**=करादि व वस्त्राभूषणादि देनेवाले **जनाय**=प्रजाजन को वृद्धि के लिये **वहन्ता**=कार्य-भार को अपने कन्धों पर लेते हुए **दधाथे**=धारण करो।

भावार्थ–जितेन्द्रिय स्त्री–पुरुष राज्य–शासन के उच्च पदों को प्राप्त करें। सेना में उच्च पद पाकर शत्रुओं का नाश करें तथा प्रशासन में उच्च पद पाकर प्रजा जनों का उत्तमता के साथ पालन पोषण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नव दम्पति को उपदेश

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम्।

पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **देवा**=तेजस्वी स्त्री–पुरुषो! **ओषधीषु**=ओषधियों में और **अप्सु**=जलों में **यत्**=जो औषधियाँ और जलवत् द्रव पदार्थ, **ऋषीणां योग्या**=मन्त्रद्रष्टा ऋषियों वा प्राणों के पोषण–योग्य हों उनकी ही आप दोनों **चनिष्टं**=कामना करो और उनको ही **अश्नवैथे**=खाया–पिया करो। आप दोनों **रुरूणि रत्ना**=बहुत से रत्न और रम्य गुणों को **दधतौ**=धारण करते हुए **अस्मे**=हमारे आगे **पूर्वाणि**=पूर्व के प्रसिद्ध **युगानि**=पति–पत्नी के अनुकरणीय जोड़े का **अनु**=अनुकरण **नि चख्यथुः**=आदर्श–रूप होकर बतलाओ।

भावार्थ–गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले नवदम्पति उत्तम औषध सेवन के द्वारा स्वस्थ व पुष्ट रहें। ऋषियों, तपस्वियों को घर में बुलाकर उनसे गृहस्थ धर्म की शिक्षा लेवें तथा पूर्व गृहस्थों के समान आदर्श गृहस्थ बनें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञान प्राप्ति

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।

प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री–पुरुषो! आप दोनों **चित्**=ही **ऋषीणां**–मन्द्रद्रष्टा पुरुषों के साक्षात् किये **पुरूणि**=बहुत **ब्रह्माणि**=वेद-मन्त्रों को **शुश्रुवांसा**=श्रवण करते हुए **अभि चक्षाथे**=उनके तत्त्वज्ञान को प्राप्त करो। आप लोग **जनाय**=मनुष्य के उपकारार्थ **वरम्**–उत्तम उद्देश्य को **प्रति यातम्**=लक्ष्य करके चलो। **वरम् प्र यातम्**=उत्तम ज्ञान प्राप्त करो, **वरम् आ यातम्**=वरण–योग्य श्रेष्ठ पुरुष और स्थान को ही आओ। **अस्मे**=हमारे लिये **वाम्**=आप दोनों की **चनिष्ठा**=प्रशंसनीय **सुमतिः अस्तु**=शुभमति हो।

भावार्थ–जितेन्द्रिय स्त्री–पुरुष वेद मन्त्रों को सुनकर उनके तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करें तथा उस ज्ञान को अन्यों के लिए भी उपदेश करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

गृहस्थी को उपदेश

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति।

उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **नासत्या**=असत्याचरण न करनेवाले स्त्री–पुरुषो! **यः**=जो **यज्ञः**=पूजा-सत्संग-

योग्य **हविष्मान्**=उत्तम ज्ञान अन्न से सम्पन्न **कृत-ब्रह्मा**=वेदाध्यन में कृतश्रम और धनादि में समृद्ध **वां**=आप दोनों के प्रति **समर्यः**=नाना पुरुषों-सहित **भवति**=होता है आप दोनों ऐसे वरण-योग्य **वसिष्ठं**=सर्वोत्तम 'वसु', विद्वान् वा राजा को **उप आ यातम्**=प्राप्त होओ, हे स्त्री-पुरुषो! **युवभ्याम्**=आप दोनों के हितार्थ ही **इमा ब्रह्माणि**=ये वेदोक्त ज्ञान, अन्न, धन **ऋच्यन्ते**=ऋचाओं के रूप में प्रकट होते और प्रस्तुत किये जाते हैं।

भावार्थ–सदाचारी गृहस्थ स्त्री-पुरुष यज्ञ तथा वेदाध्ययन के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके पुरुषार्थ पूर्वक ऐश्वर्य को प्राप्त करें। इस प्रकार वे धनादि व सम्मान से समृद्ध बनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

गृहस्थ को हितकारी उपदेश

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।

इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! **इयं**=यह **मनीषा**=मन की उत्तम इच्छा और **इयं गीः**=यह उत्तम वाणी है। आप दोनों **इमां**=इस **सु-वृक्तिं**=उत्तम वाणी को **वृषणा**=बलवान् होकर **जुषेथाम्**=सेवन करें। **इमा ब्रह्माणि**=ये वेद-वचन **युवयूनि**=आप के हितार्थ हैं। **यूयं**=हे विद्वान् लोगो! आप **स्वस्तिभिः नः सदा पात**=उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–गृहस्थी स्त्री-पुरुष जितेन्द्रिय, मधुर तथा सत्यभाषी हों। वेदवाणी का श्रवण करनेवाले हों। यह वेदवाणी सबके कल्याण के लिए है।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता अश्विनौ ही है।

[७१] एकसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम्।

अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥ १ ॥

पदार्थ–**नक् उषसः अप जिहीते**=जैसे उषाकाल से रात्रि दूर चली जाती है वैसे ही **उषसः**=प्रभात-वेला-तुल्य कान्तियुक्त, पति की याचना करनेवाली **स्वसु=स्व-सुः**=स्वयं वरणीय पति को प्राप्त करनेवाली वरवर्णिनी कन्या से **नक्**=सम्बन्धी जन उसके माता, पिता, भाई आदि **अप जिहीते**=दूर हो जाते हैं। वह माता-पिता से छूटकर पति की हो रहती है। **कृष्णीः**=कृष्णवर्णा रात्रि जैसे **अरुषाय पन्थाम् ऋणक्ति**=तेजस्वी सूर्य के लिये मार्ग छोड़ती है वैसे ही **कृष्णीः**=हृदय को आकर्षण करनेवाली स्त्री **अरुषाय**=तेजस्वी पुरुष के लिये **पन्थाम्**=मार्ग **रिणक्ति**=रिक्त करती है। आप आगे-आगे और पीछे पति को लेकर चलती है। **अश्वामघा गोमघा**=अश्वों और गौओं आदि धन-सम्पन्न स्त्री-पुरुषो! हम लोग **वाम् हुवेम**=आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप **अस्मत्**=हमसे **शरुम्**=हिंसक को **युयोतम्**=दूर करो।

भावार्थ–कान्तियुक्त कन्या माता, पिता, भाई आदि को छोड़कर तेजस्वी पति की हो जाती है तथा उसके हृदय को आकर्षित एवं आनन्दित करती है। दोनों प्रीतिपूर्वक रहकर पुरुषार्थ करके ऐश्वर्यशाली होते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शिक्षक के कर्त्तव्य

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=विद्वान् स्त्री-पुरुषो! एवं गुरुजनो! आप लोग **दाशुषे मर्त्याय**=अपने को आप के प्रति समर्पण कर देनेवाले के हितार्थ **उप आयातम्**=समीप आइये और **रथेन वामम् वहन्ता**=गाड़ी आदि से जैसे उत्तम धन-सम्पदा लाई जाती है वैसे ही आप लोग **रथेन**=उत्तम उपदेश से **वामम्**=सुन्दर श्रवण योग्य ज्ञान को **वहन्ता**=प्राप्त कराते हुए **अस्मत्**=हमसे **अनिराम्**=अन्नादि के दारिद्र्य और 'इरा' अर्थात् विद्योपदेशमय वाणी के अभाव को तथा **अमीवाम्**=रोग-जनक दशा को **युयुताम्**=दूर करो और **दिवानक्तम्**=दिन-रात **माध्वी**=प्रसन्नचित्त वा 'मधु' अन्न, जल वा ज्ञान से युक्त होकर **नः त्रासीथाम्**=हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–गुरुजन अपने समर्पित शिष्यों के हित के लिए ज्ञान का उपदेश करें। जिससे वे शिष्य लोग ज्ञानी होकर रोग रहित स्वस्थ तथा दारिद्र्य रहित ऐश्वर्य सम्पन्न जीवन धारण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

आदर्श गृहस्थ

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ–जैसे रथ को बलवान् अश्व चलाते हैं और **ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं, वसुमन्तं रथं वहन्ति**=ज्ञान-पूर्वक लगे अश्वों से, सिली रासोंवाले और धनादि-सम्पन्न रथ को ले जाते हैं वैसे ही हे **अश्विना**=विद्या में व्यापक विद्वान् स्त्री-पुरुषों के स्वामी जनो! **वां**=आप के **रथं**=गृहस्थोचित कर्त्तव्य आदि को **अवमस्यां व्युष्टौ**=आगामी प्रभात वेला में **सुम्नायवः**=सुखाभिलाषी **वृषणः**=बलवान् पुरुष **वर्त्तयन्तु**=सम्पादित करें और आप दोनों **स्यूमगभस्तिम्**=सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त **वसुमन्तं रथं**=बसनेवाले, वा वसु ब्रह्मचारियों वा सुखैश्वर्य-युक्त गृहस्थाश्रम-रूप रथ को **ऋतयुग्भिः**=सत्य से जुड़े हुए, **अश्वैः**=विद्वानों की सहायता से **वहेथाम्**=धारण करो।

भावार्थ–गृहस्थ स्त्री-पुरुष ज्ञानपूर्वक अपने गृहस्थ के समस्त कार्यों को करें और इस सुख-ऐश्वर्ययुक्त गृहस्थाश्रम को विद्वानों के मार्गदर्शन में धारण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

गृहस्थ के कर्त्तव्य

यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्त्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **नृपती**=मनुष्य पति पत्नी! विवाहित स्त्री-पुरुषो! जैसे **रथः वोढा, त्रि-वन्धुरः**=रथ मनुष्यों को उठाकर ले जाने से 'वोढा' और तीन दण्डों से बने पीढ़े से युक्त होता है, वैसे ही **यः**=जो पुरुष **वां**=आप दोनों में से **रथः**=रम्यस्वभाव का, वा स्थिर होकर **वोढा**=गृहस्थ-भार सहनेवाला, **त्रि-वन्धुरः**=तीन ऋणों से बद्ध, **वसुमान्**=ऐश्वर्यवान्, **उस्त्रयामा**=सूर्यवत्

तेजस्वी होकर जाने हारा है और **यत् वां**=जो तुम दोनों में से **विश्व-पस्न्यः**=विशेष रूपवान् होकर **अधि जिगाति**=प्राप्त होता है, हे **नासत्या**=असत्य धारण न करने हारे स्त्री-पुरुषो! **एना**=उस व्यक्ति के बल से ही **नः आ उपयातम्**=हमें प्राप्त होओ।

भावार्थ–विवाहित स्त्री पुरुष गृहस्थ में स्थित होकर गृहस्थ के उत्तरदायित्व को निभाते हुए असत्य आचरण से सदैव दूर रहकर ऐश्वर्यशाली बनें।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**अश्विनौ**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

पाप व अज्ञान से पार

युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः॥ ५॥

पदार्थ–हे वेग युक्त रथों, अश्वों, वाहनों और विद्यावान् पुरुषों के स्वामी स्त्री-पुरुषो! सभा-सेनापतियो! **युवं**=आप दोनों **च्यवानं**=सन्मार्गगामी पुरुष को **जरसः**=वृद्धावस्था वा आयु के नाश से **अमुमुक्तम्**=दूर करो। **पेदवे**=दूर देश-गामी के लिये **आशुम् अश्वम्**=शीघ्रगामी अश्वतुल्य साधन को **नि ऊहथुः**–निरन्तर चलाओ और **अत्रिम्**=तीनों दोषों से रहित पुरुष को **अंहसः**=पाप और **तमसः**=अज्ञान-अन्धकार से **निः स्पर्त्तम्**=पार करो, **जाहुषम्**=त्यागी, पुरुष को **शिथिरे**=शिथिल राष्ट्र में **अन्तः नि धातम्**=भीतर केन्द्र स्थान पर नियुक्त करो।

भावार्थ–विद्यावान् स्त्री-पुरुष प्रजा जनों को ज्ञान का उपदेश प्रदान कर उन्हें वृद्धावस्था पर्यन्त स्वस्थ जीवन जीने की कला सिखावें। तथा अज्ञान अन्धकार व पाप से बचावें। ऐसे त्यागी व पुरुषार्थी पुरुष को राष्ट्र की शासन व्यवस्था में उस क्षेत्र में नियुक्त करें जहाँ पर शिथिलता हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**अश्विनौ**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

वेदवाणी का उपदेश

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ६॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! **इयं**=यह **मनीषा**=मन की उत्तम इच्छा और **इयं गीः**=यह उत्तम वाणी है। आप दोनों **इमां**=इस **सु-वृक्तिं**=उत्तम वाणी को **वृषणा**=बलवान् होकर **जुषेथाम्**=सेवन करें। **इमा ब्रह्माणि**=ये वेद-वचन **युवयूनि**=आप के हितार्थ हैं। **यूयं**=हे विद्वान् लोगो! आप **स्वस्तिभिः नः सदा पात**=उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–संयमी स्त्री-पुरुष मन में शुभ चिन्तन करते हुए मधुर वाणी के द्वारा वेद वचनों से लोगों का हित चाहते हुए मार्गदर्शन करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और अश्विनौ देवता है।

[७२] द्विसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**अश्विनौ**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

स्वस्थ शरीर

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना॥ १॥

पदार्थ–हे विद्वान् स्त्री-पुरुषो! हे **नासत्या**=नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजनेवाले प्रतिष्ठित

जनो! आप दोनों **गोमता**=उत्तम बैलोंवाले वा **अश्ववता**=घोड़ोंवाले **पुरु-चन्द्रेण**=बहुतों के आह्लादक **रथेन**=रथ से **आ यातम्**=आओ। **विश्वा नियुतः**=सब उत्तम प्रजाएँ वा सेनाएँ **वाम् अभि सचन्ते**=आप दोनों की ही सेवा करती हैं। आप दोनों **स्पार्हया**=स्पृहा-योग्य, मनोहर **श्रिया**=शोभा और **तन्वा**=स्वस्थ शरीर से **शुभाना**=शोभित होकर हमें प्राप्त होओ।

भावार्थ–विद्वान् स्त्री-पुरुष स्वस्थ व सुन्दर शरीरवाले हों। इससे अन्य प्रजा जन उन्हें आदर्श मानकर स्वस्थ व सुन्दर बनने का पुरुषार्थ करेंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

बन्धुत्व

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ यातम॒र्वाक्स॒जोष॑सा नासत्या॒ रथे॑न।

यु॒वोर्हि नः॑ स॒ख्या पित्र्या॑णि सम॒ानो बन्धु॑रु॒त तस्य॑ वित्तम् ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **नासत्या**=असत्याचरण न करने हारे स्त्री-पुरुषो! आप **देवेभिः**=विद्वान् पुरुषों के साथ **स-जोषसा**=प्रीति से सेवने योग्य, **रथेन**=रथ से, **नः आयातम्**=हमें प्राप्त होओ। **युवोः हि नः**=आप दोनों के **पित्र्याणि सख्या**=पिता पितामहादि से आये सौहार्द भाव हमारे साथ बने रहें। **युवोः नः बन्धुः समानः**=हमारे और तुम्हारे बन्धु भी समान हों **उत**=और आप दोनों **तस्य**=उस बन्धु को **वित्तम्**=भली प्रकार जानें।

भावार्थ–सदाचारी स्त्री-पुरुष विद्वानों के साथ रहते हुए मधुर व्यवहार सीखें। इससे वे प्रजाजनों के साथ प्रीतिपूर्वक उसी प्रकार वर्ताव करें जैसे एक ही दादा की सन्तान बन्धुभाव से रहती हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

वेदोपदेश

उदु॒ स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्रञ्जा॒मि ब्रह्मा॑ण्यु॒षस॑श्च दे॒वीः।

आ॒विर्वा॑स॒न्रोद॑सी॒ धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति ॥ ३ ॥

पदार्थ–**स्तोमासः**=वेद के सूक्त और **अश्विनोः स्तोमासः**=विद्वान् स्त्रियों, पुरुषों, उपदेशकों के उपदेश और **ब्रह्माणि**=वेद के मन्त्र **जामि**=बन्धुवत् **उषसः**=उत्तम प्रकाश युक्त **देवीः**=दानशील, विद्याभिलाषी प्रजाओं को **उत्-अबुध्रन्**=ज्ञानयुक्त करें। **विप्रः**=विद्वान् पुरुष **नासत्या अच्छ**=सत्याश्रयी स्त्री-पुरुषों की **आविवासन्**=सेवा करता हुआ **इमे**=इन दोनों को **रोदसी**=सूर्य-चन्द्रवत्, माता-पितावत् **जिष्ण्ये**=उत्तम-बुद्धि-युक्त, और योग्य भी **विवक्ति**=कहता है।

भावार्थ–विद्वान् स्त्री-पुरुष वेद के मन्त्रों द्वारा ज्ञान का उपदेश करके प्रजा जनों को ज्ञान से युक्त करें कि जिससे वे विद्वानों, तपस्वियों तथा माता-पिता की श्रद्धापूर्वक सेवा-शुश्रूषा करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

वैदिक आचरण

वि चेदु॒च्छन्त्य॑श्विना उ॒षासः॒ प्र वां॒ ब्रह्मा॑णि का॒रवो॑ भरन्ते।

ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद् बृ॒हद॒ग्नयः॑ स॒मिधा॑ जरन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=विद्वान् स्त्री-पुरुषो! **चेत्**=जैसे **उषासः**=प्रभात वेलाएँ **वि उच्छन्ति**=विशेष रूप से प्रकाश करें तब **कारवः**=स्तोता विद्वान् **ब्रह्माणि**=स्तुति-मन्त्र **प्र भरन्ते**=उच्चारण

करते हैं और जब **सविता देवः**=प्रकाशमान् सूर्य **ऊर्ध्वं**=ऊपर **भानुम् अश्रेत्**=कान्ति धारण करे तो **अग्नयः**=यज्ञाग्नियें **समिधा**=उत्तम समिधा-सहित होकर **बृहत्**=अच्छी प्रकार **जरन्ते**=स्तुति को प्राप्त होते हैं, अर्थात् यज्ञ किये जाते हैं, वैसे ही जब **उषसः**=कमनीय कान्ति से युक्त विदुषी स्त्रियें और प्रजाएँ **वि उच्छन्ति**-विविध अभिलाषाएँ प्रकट करती हैं तब **कारवः**=विद्वान् पुरुष **वां**=वर-वधू एवं राजा-रानी दोनों को लक्ष्य कर **ब्रह्माणि**=वेद-मन्त्रों और नाना ऐश्वर्यों को **प्र जरन्ते**=प्रकट करें। **देवः सविता**=ऐश्वर्यवान् पुरुष ही **ऊर्ध्वं-भानुं**=सर्वोपरि कान्ति को **अश्रेत्**=धारण करता है और **अग्नयः**=विद्वान् **समिधा**=अति तेज से **बृहत्**=वृद्धिकारी, आशीर्वाद-वचन का **जरन्ते**=उपदेश करते हैं।

भावार्थ-स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि प्रातः उषाकाल में ईश्वर की स्तुति मन्त्रों द्वारा करें तथा सूर्योदय होने पर वेद मन्त्रों से यज्ञ करें। इससे जीवन तेजस्वी, कान्तियुक्त तथा ऐश्वर्य सम्पन्न बनता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

जनहित

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।

आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ-हे **नासत्या अश्विना**=कभी असत्य व्यवहार न करने हारे जनो! **पश्चातात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात्**=पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिण से भी आप लोग **पाञ्चजन्येन राया**=पाँचों जनों के हितकारी धन-सहित **विश्वतः आ यातम्**=सभी ओर आया-जाया करो। **यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात**=आप हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करो।

भावार्थ-सदाचारी पुरुष मनुष्य मात्र के हित के लिए सदुपदेश करते हुए समस्त दिशाओं में आते-जाते रहें। इससे प्रजा जनों का अत्यन्त हित होगा।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता अश्विनौ ही है।

[७३] त्रिसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दुःखनिवारण

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः।

पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥

पदार्थ-हम लोग **देवयन्तः**=विद्वानों और शुभ गुणों को चाहते हुए, **स्तोमं**=स्तुत्य कार्य को **प्रति दधानाः**=प्रत्येक दिन धारण करते हुए **अस्य**=इस **तमसः**=अज्ञान, दुःख के **पारम् अतारिष्म**=पार हों। हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! **गीः**=विद्वान् पुरुष **पुरुदंसा**=बहुत कर्मों के कर्ता, **पुरु-तमा**=बहुतों में उत्तम, **पुरु-जा**=सब के आगे चलनेवाले, **अमर्त्या**=साधारण मनुष्यों से विशेष आप दोनों की **हवते**=प्रशंसा करते हैं।

भावार्थ-मनुष्य लोग विद्वानों के संग से उत्तम गुण एवं कर्मों के द्वारा अज्ञान व दुःख का निवारण करें तथा विद्वानों एवं सज्जनों का आदर किया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

यज्ञ और वन्दना

न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान्॥ २ ॥

पदार्थ–हे **नासत्या**=सत्यनिष्ठ, **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! **यः**=जो **प्रियः**=प्रिय **मनुषः**=मननशील, **होता**=ज्ञानदाता पुरुष **यजते**=यज्ञ करता, **वन्दते च**=भगवान् की स्तुति करता, या उपदेशादि करता है और जो **विदथेषु**=यज्ञों में **प्रयस्वान्**=प्रयत्नशील होकर **वाम् आ वोचे**=तुम दोनों की अभ्यर्थना करता है, आप उसके **उपाके**=समीप **मध्वः अश्नीतं**=ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करो।

भावार्थ–सत्यनिष्ठ स्त्री-पुरुष विचारपूर्वक नित्य प्रति यज्ञ एवं ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हुए ज्ञान का संग्रह करें तथा उपदेश द्वारा अन्यों का मार्गदर्शन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञानी का उपदेश

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः॥ ३ ॥

पदार्थ–हम लोग **यज्ञम् उराणाः**=यज्ञ करते हुए **पथाम्**=जीवन-मार्गों की **अहेम**=वृद्धि करें। हे **वृषणा**=बलवान् स्त्री-पुरुषो! आप लोग इस **सुवृक्तिम्**=सुमति का **जुषेथाम्**=सेवन करो। **जरमाणः वसिष्ठः**=उपदेश करने हारा, वसु, ब्रह्मचारी पुरुष **स्तोमै**=उपदेश-योग्य वचनों से **प्रेषितः श्रुष्टीवा इव**=भेजे दूत के समान, **प्रेषितः**=उत्तम इच्छा से युक्त **श्रुष्टीवा**=श्रुति-वचनों का ज्ञाता होकर **वाम् प्रति अबोधि**=आप दोनों को ज्ञानवान् करे।

भावार्थ–मनुष्य लोग नित्य प्रति यज्ञ करें। इससे सद्बुद्धि तथा ऐश्वर्य की वृद्धि तथा ज्ञानी लोगों की संगति प्राप्त होगी। इससे उनके वेद उपदेशों से ज्ञान की प्राप्ति होगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कल्याणकारी व्यवस्था

उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन॥ ४ ॥

पदार्थ–हे स्त्री-पुरुषो! **रक्षोहणा**=दुष्ट पुरुषों का नाशक, **संभृता**=परिपुष्ट, **वीडुपाणी**=बलवान् हाथोंवाले होकर **त्या**=वे दोनों आप **वह्नी**=गृहस्थ को उठाने में अश्वों के समान दृढ़, अग्नियों के समान तेजस्वी एवं विवाहित होकर **नः विशं उप गमतः**=हमारे प्रजा-वर्ग में प्राप्त होवो। **नः**=हमारे **मत्सराणि**=तृप्तिकारक **अन्धांसि**=अन्नों को **सम अग्मत**=प्राप्त करो। **शिवेन**=कल्याणकारक, सुखप्रद रूप से **नः आगतं**=हमें प्राप्त होवो, **नः मा मर्धिष्टं**=हमें पीड़ा मत दो।

भावार्थ–विवाहित स्त्री-पुरुष तप व संयम के द्वारा तेजस्वी होकर अपने जीवन एवं समाज से शत्रुओं का नाश करें तथा कल्याणकारी व सुखदायी व्यवस्था को बढ़ावें।

ऋषिः–वसिष्ठः ॥ देवता–अश्विनौ ॥ छन्दः–विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–धैवतः ॥

विद्वत परिभ्रमण

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ–हे **नासत्या अश्विना**=कभी असत्य व्यवहार न करने हारे जनो! **पश्चातात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात्**=पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिण से भी आप लोग **पाञ्चजन्येन राया**=पाँचों जनों के हितकारी धन–सहित **विश्वतः आ यातम्**=सभी ओर आया–जाया करो। **यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात**=आप हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करो।

भावार्थ–विद्वान् जन सबके हित के लिए सदैव सब दिशाओं में ज्ञान का उपदेश करते हुए घूमते रहें। इससे मनुष्य मात्र का कल्याण होगा।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और अश्विनौ देवता ही है।

[७४] चतुःसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः–वसिष्ठः ॥ देवता–अश्विनौ ॥ छन्दः–निचृद्बृहती ॥ स्वरः–मध्यमः ॥

सभापति के कर्त्तव्य

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=अश्व अर्थात् राष्ट्र और अश्वादिसैन्य के स्वामी, सेनापति–सभापति जनो! आप दोनों **उस्रा**=उत्तम पदार्थों को देने एवं गृह और राष्ट्र में स्वयं बसने और अन्यों को बसानेवाले, तेजस्वी **वां**=आप दोनों को **इमा दिविष्टयः**=ये उत्तम ज्ञान और कान्ति चाहनेवाली प्रजाएँ **हवन्ते**=बुलाती हैं और **अयं**=यह विद्वान् वर्ग भी, हे **शचीवसू**=शक्ति और वाणी के धनी युगलो! **वां**=आप दोनों को **अवसे**=रक्षा और ज्ञान के लिये **अह्वे**=पुकारता है, आप दोनों **विशं विशं हि**=प्रत्येक प्रजावर्ग में **गच्छथः**=जाया करो।

भावार्थ–सेनापति तथा सभापति दोनों का कर्त्तव्य है कि वे प्रजाजनों को उनके रहने के लिए राष्ट्र में सुविधा सम्पन्न बस्तियाँ बसावें और रक्षा तथा ज्ञान के साधन व सुविधाएँ उपलब्ध करावें।

ऋषिः–वसिष्ठः ॥ देवता–अश्विनौ ॥ छन्दः–आर्षीभुरिग्बृहती ॥ स्वरः–मध्यमः ॥

राष्ट्र नायक का कर्त्तव्य

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥

पदार्थ–हे **नरा**=उत्तम नायक जनो, उत्तम स्त्री पुरुषो! **युवं**=आप दोनों **सूनृतावते**=उत्तम सत्यवाणी से युक्त मनुष्य के हितार्थ **चित्रं**=आश्चर्यकारक और नाना **भोजनं**=पालन–सामर्थ्य और भोग–योग्य उत्तम ऐश्वर्य **ददथुः**=प्रदान करो और **अर्वाक् रथं चोदेथां**=अपने रमणीय व्यवहार को रथ के समान आगे प्रेरित करो, उसको **समनसा नियच्छतम्**=एक चित्त होकर नियम में रक्खो और **सोम्यं मधु**=‘सोम’ अर्थात् ओषधिरस से मिले मधु के समान अति गुणकारी, रोगनाशक अन्न के समान पुष्टिकारक, सोम अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्यानुरूप मधुर भोग, मधुर

सुख का **पिबतम्**=उपभोग करो।

भावार्थ–उत्तम राष्ट्र नायक का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र की प्रजाओं को पालन-पोषण हेतु उपभोग की सामग्री उपलब्ध करावे। मधुरतापूर्ण व्यवहार करे तथा सबको राजनियमों में चलावे।

ऋषिः **वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ज्ञान प्राप्ति

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम्॥ ३॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो! हे **जेन्यावसू**=बसनेवाले प्रजा-वर्गो, आप लोग **आ यातम्**=आदर पूर्वक आइये। **उप भूषतम्**=समीप विराजिये **मध्वः पिबतं**=गुरुगृह में मधुमय ज्ञानरस का **दुग्धं पयः**=दुहे हुए दूध के समान **पिबतम्**=पान करिये। हे **वृषणा**=मेघ के समान ज्ञान-सुखों के वर्षक पुरुषो! **नः मामर्धिष्टम्**=हमारा नाश न करो।

भावार्थ–प्रजा जन गुरुओं के समीप जाकर, श्रद्धापूर्वक गुरुगृह में रहकर ज्ञान की प्राप्ति करें। गुरुजनों द्वारा दिए गए ज्ञान से अपने जीवन को नष्ट होने से बचावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**आर्षीभुरिग्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

उत्तम नायक का कर्त्तव्य

अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू॥ ४॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=विद्वानों के स्वामी जनो! हे **नरा**=नायकवत् स्त्री-पुरुषवर्गो! **ये**=जो **वाम्**=आप लोगों के **अश्वासः**=अश्व, वेग से जानेवाले साधन वा विद्यावान् पुरुष **युवां बिभ्रतः**=आप दोनों को धारण करते हुए, **दाशुषः गृहं**=उस देनेवाले प्रभु के घर तक **दीयन्ति**=पहुँचा देते हैं उनकी **मक्षूयुभिः हवेभिः**=शीघ्रकारी अश्वों, साधनों वा विद्वानों से **देवा**=हे स्त्री-पुरुषो! हे **नरा**=नायक जनो! आप **अस्मयू**=हमें चाहते हुए **यातम्**=आओ-जाओ।

भावार्थ–राष्ट्र नायक प्रजाओं के हित के लिए उत्तम विद्वानों की नियुक्ति करे जिनके सान्निध्य तथा मार्गदर्शन में लोग विद्या की प्राप्ति कर ईश्वर के घर अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी बन सकें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अश्विनौ** ॥ छन्दः–**आर्षीबृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

परिव्राजक का सत्कार

अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या॥ ५॥

पदार्थ–हे **अश्विना**=स्त्री-पुरुष तथा विद्वान् और सामान्य जनो! **अध ह**=निश्चय से **यन्तः सूरयः**=आगे बढ़ते हुए, विद्वान्, परिव्राजक जन **पृक्षः सचन्त**–सर्वत्र अन्न और स्नेह-सम्पर्क प्राप्त करते हैं। हे **नासत्या**=कभी असत्य व्यवहार न करनेवाले जनो! **ता**=वे आप दोनों **अस्मभ्यम् मघवद्भ्यः**=हम ज्ञानवाले पुरुषों को **ध्रुवं**=स्थिर **यशः**=यश और अन्न **छर्दिः**=आवास के लिये घर **यंसतः**=प्रदान करो।

भावार्थ–विद्वान् तथा सामान्य गृहस्थी जन अपने द्वार पर आए हुए परिव्राजक जनों अर्थात्

विद्वान् तपस्वी अतिथियों का भोजन तथा निवास की व्यवस्था आदि से सत्कार करें। उनसे शंका-समाधान व ज्ञान प्राप्त कर यश के भागी बनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अश्विनौ** ॥ छन्दः-**आर्षीभुरिग्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

नृपति

प्र ये ययुरवृकासो रथाइव नृपातारो जनानाम्।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम्॥ ६ ॥

पदार्थ-**ये**=जो **अवृकासः**=चोर-स्वभाव से रहित, निश्छल **रथाः**=रथों के समान **स्वेन शवसा**=अपने ज्ञान-सामर्थ्य और पराक्रम से **प्र ययुः**=आगे जाते हैं और जो **नरः**=नेता जन **शूशुवुः**=खूब उन्नति को प्राप्त होते हैं **उत**=और **सुक्षितिम्**=उत्तम भूमि को **क्षियन्ति**=प्राप्त कर उसमें रहते हैं वे ही **जनानां नृपातारः**=सब मनुष्यों को पालने में समर्थ 'नृपति' होते हैं।

भावार्थ-राष्ट्र का नेतृत्व वर्ग निश्छल, ज्ञानी तथा पराक्रमी होवे। इससे राष्ट्र की उन्नति होगी, राष्ट्र में भ्रष्टाचार नहीं बढ़ेगा तथा प्रजा समृद्ध होगी।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ देवता उषा है।

[७५] पञ्चसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य १

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात्।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः॥ १ ॥

पदार्थ-**दिविजाः उषाः**=सूर्य के आश्रय प्रकट होनेवाली प्रभात वेला जैसे **आवः**=विशेषरूप से खिलती, **ऋतेन महिमानम् आविष्कृण्वाना आगात्**=तेज से स्वरूप को प्रकट करती हुई आती है, **तमः अप आवः**=अन्धकार को दूर करती और **पथ्याः अजीगः**=मार्गवर्त्ती प्रजाओं को जगाती है, वैसे ही **दिविजाः**=सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के अधीन जन्म-लाभ करके **उषाः**=कान्तियुक्त युवति **वि आवः**=विविध गुणों को प्रकट करे, वह **ऋतेन**=सत्य ज्ञान से **महिमानम्**=मातृ-सामर्थ्य को **आविः कृण्वाना**=प्रकट करती हुई, **आगात्**=आवे। **अजुष्टम्**=न सेवने योग्य **तमः**=अज्ञान को अन्धकारवत् और **द्रुहः**=अप्रीति भावों को **अप आवः**=दूर करे। वह **अङ्गिरस्तमा**=प्राणवत् प्रियतमा वा ज्ञानवती विदुषी होकर **पथ्याः**=उत्तम हितकारी, शिष्टाचारों को **अजीगः**=जागृत करे।

भावार्थ-युवति स्त्रियों को योग्य है कि वे उत्तम तपस्वी गुरुजनों के सान्निध्य में रहकर मातृत्व सामर्थ्य, ज्ञान प्राप्ति, समाज से अज्ञान अन्धकार का नाश, लोगों के परस्पर के विषादों का निपटारा, आपसी वैर-भाव का नाश करने आदि गुणों से युक्त होकर कान्तियुक्त होवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य २

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम्॥ २ ॥

पदार्थ-हे **मानुषि देवि**=मानवोचित शुभ गुणों से युक्त स्त्रि! तू **नः**=हमें **अद्य**=आज, **महे सुविताय**-बड़े सुख की प्राप्ति के लिये **बोधि**=हो। हे **उषः**=प्रभात-वेलावत् कान्तियुक्त, स्त्रि! तू

भी **महे सौभगाय** बडे सौभाग्य प्राप्त करने के लिये **प्र यन्धि**=उत्तम रीति से विवाह के बन्धन में बँध। **अस्मे**-हमारे लिये **चित्रं रयिं**=आश्चर्यकर ऐश्वर्य और **मर्तेषु**=मनुष्यों के बीच **यशस**=यशस्वी **श्रवस्युम्**=ज्ञानी पुत्र **धेहि**=धारण कर।

भावार्थ-उत्तम स्त्री को योग्य है कि वह उत्तम रीति से विवाह करके यशस्वी ज्ञानी पुत्र को उत्पन्न करे तथा मानवीय गुणों व कान्ति से युक्त होकर सन्तान में इन गुणों का धारण करावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**उषाः**॥ छन्दः-**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

स्त्री के कर्त्तव्य ३

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः॥ ३॥

पदार्थ-**दर्शताः उषसः भानवः**-दर्शनीय उषा वेला की किरण जैसे आती हैं, वे **दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः अन्तरिक्षा वि तिष्ठन्ति**=देव, सूर्य वा किरणों के योग्य प्रकाशादि कार्यों को करते हुए अन्तरिक्ष में विराजती हैं, वैसे ही **दर्शतायाः**-रूप-गुणादि में दर्शनीय **उषसः**-पति की कामनावाली, कान्तिमती कन्या वा विदुषी स्त्री से ही **त्ये**=ये नाना **एते**-ये **अमृतासः भानवः**=कभी नाश न होनेवाले, दीर्घायु, **चित्राः**=आश्चर्यकारी बलवान् वीर्यवान् होकर **आगुः**=हमें प्राप्त होते हैं। वे **दैव्यानि**-विद्वान् पुरुषों से करने योग्य **व्रतानि**=कर्मों को **जनयन्तः**=प्रकट करते हुए, **अन्तरिक्षा**-अन्तरिक्ष में वायु के समान **आ पृणन्तः**=सबको तृप्त करते हुए **वि अस्थुः**=विविध रूपों में विराजें।

भावार्थ-विदुषी स्त्री उत्तम रीति से विवाह करके बलवान्, पराक्रमी, दीर्घायु तथा मधुरभाषी सन्तान को उत्पन्न करके राष्ट्र को प्रकाशित करे अर्थात् गौरवान्वित करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**उषाः**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

पत्नि के कर्त्तव्य

एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी॥ ४॥

पदार्थ-**एषा**-यह **स्या**-वह **दिवः दुहिता**=सूर्य की पुत्रीवत् उषा के समान तेजस्वी पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ **पराकात् युजाना**=दूर देश से विवाह-बन्धन में संयुक्त होकर विदुषी स्त्री, शासक-शक्ति के समान **सद्यः**-अति शीघ्र गुणों से **पञ्चक्षितीः**=पाँचों प्रकार के निवासियों को **परि जिगाति**-वश करती है। वह **जनानां**-प्रजाओं के **वयुना**=ज्ञानों और कर्मों को **अभिपश्यन्ती**=देखती हुई और **भुवनस्य**-भुवन, जन समूह का **पत्नी**=पालन करनेवाली हो।

भावार्थ-विदुषी स्त्री दूर देश में रहनेवाले श्रेष्ठ शासक से उत्तम रीति से विवाह करके अपने विद्वत्ता, प्रियता आदि गुणों के द्वारा समस्त परिजनों व प्रजाजनों को वश में करके उत्तम ज्ञान और कर्मों के द्वारा प्रजा पालन के कार्य में पति को सहयोग व सम्मति प्रदान करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**उषाः**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

स्त्री के कर्त्तव्य ४

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम्।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना॥ ५॥

पदार्थ–**सूर्यस्य**=जैसे सूर्य की **योषा**=स्त्री **उषा**=प्रभात-वेला **वह्निभिः**=यज्ञाग्नियों से **गृणाना**=स्तुति की जाती हुई, **जरयन्ती**=रात्री का नाश करती हुई, **ऋषि-स्तुता**=विद्वानों की भगवत्-स्तुति से युक्त होती है, वैसे ही **सूर्यस्य**=सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की **योषा**=स्त्री, **उषा**=कान्ति-युक्त होकर **वह्निभिः**=विवाह-योग्य उत्सुक पुरुषों द्वारा **गृणाना**=स्तुति की जाती है। वह **मघोनी**=उषावत् पूज्य धन से युक्त, **वाजिनीवती**=बलयुक्त और ज्ञानयुक्त क्रिया करनेवाली **जरयन्ती**=गुणों से अवगुणों, अज्ञान, शोक, मोहादि को नाश करती हुई, **ऋषि-स्तुता**=विद्वानों द्वारा उपदेश प्राप्त कर **उच्छति**=गुणों का प्रकाश करे।

भावार्थ–स्त्रियों को योग्य है कि वे विद्वान् गुरुजनों के उपदेशों से सद्गुणों को अपने जीवन में धारण करके तेजस्वी पुरुष से विवाह करे तथा अपने उत्तम गुणों से परिवार तथा प्रजा जनों के अज्ञान शोक, मोह आदि का नाश करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

पुत्रोत्पत्ति का उपदेश

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः।

याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय॥ ६ ॥

पदार्थ–**अश्वाः**=अश्वसमान बलवान् अंगवाले, **चित्राः**=आश्चर्यजनक बल और गुणों से सम्पन्न, **अरुषासः**=रोषरहित, सौम्य-स्वभाव, **उषसः**=स्वयं उत्तम पदार्थों के इच्छुक पुरुष **द्युतानां**=कान्तिमती, **उषसम्**=कामनावान् उत्तम वधू को **वहन्ताः**=विवाह द्वारा ग्रहण करते हुए **प्रति अदृश्रन्**=देखे जावें। वह वधू **शुभ्रा**=शुभगुणों से सुभूषित, **विश्वपिशा**=नाना-रूप सुन्दर **रथेन**=रथ से **याति**=जावे और **विधते जनाय**=विशेष प्रेम के धारक पुरुष के लिये **रत्नं दधाति**=उत्तम रत्न, उत्तम धन, उत्तम व्यवहार, उत्तम गुण और उत्तम पुत्र-रत्न **दधाति**=धारण करे।

भावार्थ–उत्तम गुण, कर्म, स्वभाववाले बलवान् पराक्रमी पुरुष को योग्य है कि वह कान्तियुक्त उत्तम स्त्री से विवाह करके शुभ गुणयुक्त उत्तम पुत्र को उत्पन्न करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वधू की इच्छा

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः।

रुजद् दृळ्हानि दददुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त॥ ७ ॥

पदार्थ–वह **सत्येभिः**=सत्य व्यवहारवान् **महद्भिः**=बड़े गुणवानों से **महती**=पूज्य, **देवेभिः**=उत्तम गुणों, विद्वानों और **यजत्रैः**=दानशील पुरुषों के साथ **सत्या**=सत्य शीलवती, सभ्य, **महती**=गुणों में महान्, **यजता**=दानशील **देवी**=विदुषी कन्या सत्संग लाभ करे। वह **दृळानि**=दृढ़ संकटों को भी **रुजत**=नाश करती हुई **ददद्**=सुख देवे। **गावः**=वृषभ, जैसे **उस्त्रियाणां मध्ये उषसं वावशन्त**=गौवों के बीच में से कामनावती कपिला गौ को ही चाहते हैं वैसे ही **गावः**=विद्वान् एवं बलवान् जन भी **उस्त्रियाणाम्**=घर बसाने की इच्छुक कन्याओं में से **उषसं**=विशेष कामनावान् वधू के **प्रति वावशन्त**=प्रति कामना करें।

भावार्थ–विदुषी स्त्री विद्वानों की संगति में रहकर उत्तम गुणों को धारण करे तथा विकट संकटों को भी अपने धैर्य, पुरुषार्थ आदि गुणों से नष्ट करके घर बसाने में समर्थ होवे। विद्वान् पुरुष ऐसी कन्याओं को ही विवाह के लिए चुनें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

स्त्रियों का कर्त्तव्य

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

पदार्थ-हे **उषः**=कान्तिमति, कामनावाली, विदुषि वधू! तू **नः**=हमारे **गोमत्**=गौओं से युक्त, **वीरवत्**=वीर पुत्रों से युक्त **रत्नं**=उत्तम धन, व्यवहार, पतिसंगादि गृहस्थोचित कर्म **धेहि**=धारण कर। तू **अस्मे**=हमारे हितार्थ, **अश्वावत्**=अन्नों से युक्त और **पुरु-भोजः**=बहुतों से भोगने योग्य ऐश्वर्य को भी **धेहि**=धारण कर। **नः बर्हिः**=हमारा यज्ञ और वृद्धिशील राष्ट्र, पद (Position) आदि **पुरुषता**=पुरुषों में **निदे मा कः**=निन्दा योग्य मत बना। हे विद्वान् पुरुषो! आप **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो। उषा-सूक्तों के प्रायः सब मन्त्र राजशक्ति और विशोका प्रज्ञा, तथा परमेश्वरी शक्ति युक्त पदार्थों में भी लगते हैं।

भावार्थ-विदुषी स्त्री गृहस्थ धर्म को धारण करनेवाली होवे। वीर पुत्र को उत्पन्न करे, घर के व्यय आदि का सन्तुलित बजट बनावे, अपने व्यवहार से परिवार को जोड़कर रखे तथा नित्य घर में यज्ञ करे। इस प्रकार अपने घर की प्रतिष्ठा को बढ़ावे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता उषा ही है।

[७६] षट्सप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ईश्वरीय शक्ति

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥

पदार्थ-उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। **सविता**=संसार का उत्पादक, **देवः**=सुखों का दाता, लोकों का प्रकाशक, **विश्वानरः**=विश्व और समस्त जीवों का नायक, सञ्चालक परमेश्वर **विश्व-जन्यम्**=सब जनों में विद्यमान, विश्व के उत्पादक **अमृतं**=अविनाशी, **ज्योतिः**=परम प्रकाशमय तेज को **उत् अश्रेत् उ**=सर्वोपरि धारण करता है। वह अपने **क्रत्वा**=कर्म और ज्ञान-सामर्थ्य से **देवानां**=समस्त लोकों और विद्वान् पुरुषों के बीच **चक्षुः**=सबको आँखवत् देखनेवाला **उषाः**=पापों का दाहक, उषा-समान कान्तियुक्त, **भुवनं**=समस्त भुवनों को **आविः अकः**=प्रकट करता है।

भावार्थ-परमेश्वर अपनी परमेश्वरी शक्ति से सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, ज्ञान प्रदान तथा सब जीवों को देखता हुआ उनके कर्मों का फल प्रदान करता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

नव दम्पति का कर्त्तव्य

प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

पदार्थ-जैसे उषा के प्रकट होने पर **वसुभिः इष्कृतासः पन्थाः देवयानाः प्र अदृश्रन्**=मनुष्य निर्मित और मनुष्यों से चलने योग्य मार्ग दिखाई देते हैं। वह **उषसः केतुः अभूत्**=तेजस्वी

सूर्य का ज्ञापक होती और **अधि हर्म्येभ्यः पुरस्तात् प्रतीची आ अगात्**=बड़े-बड़े महलों के ऊपर से पूर्व से पश्चिम की ओर आती है, वैसे ही वर के लिये वधू और वधू के लिये वर दोनों ही उत्सुक, एवं कामनायुक्त होने से दोनों ही 'उषा' हैं, अतः ऐसे **उषसः**=कामना से उत्सुक पुरुष के **पुरस्तात्**=आगे **केतुः**=ध्वजा-समान गुणों की दर्शक विदुषी वधू **अभूत् उ**=होवे। वह **प्रतीची**=प्रत्यक्ष में आदृत होती हुई, **हर्म्येभ्यः अधि आगात्**=महलों में रहने के लिये अधिष्ठात्री रानी होकर आवे। इसी प्रकार **उषसः**-कान्तिमती, कामनावती प्रिय वधू का **केतुः**=ध्वजा के समान ज्ञानवान् पुरुष हो, वह भी पूर्व से पश्चिम को आनेवाले सूर्य के समान **हर्म्येभ्यः अधि आगात्**=महलों को आये। **वसुभिः**=विद्वानों द्वारा **इष्कृतासः**=सुशोभित और **देवयानाः**=विद्वानों द्वारा चलने योग्य **मे पन्थाः**=मेरे धर्ममार्ग, किरणों से प्रकाशित मार्गों के समान मेरे लिये **अमर्धन्तः**=पीड़ादायक न होते हुए **मे**=मुझे **प्रअदृश्रन्**=उत्तम रीति से दृष्टिगोचर हों।

भावार्थ-नव दम्पति वर और वधू परस्पर प्रीतियुक्त तेजस्वी कान्तिमान होकर एक दूसरे को मार्गदर्शन करें। अपने उत्तम घरों में विद्वानों के ज्ञानोपदेश द्वारा धर्ममार्ग को जानकर उस पर आचरण करें तथा जीवन को प्रकाशित करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

नव वधु का कर्त्तव्य

तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य।
यतः परि जारइवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव॥ ३॥

पदार्थ-**सूर्यस्य या प्राचीनम् उदिता**=जैसे सूर्य के पूर्व में उदय होने पर जो प्रकट होते हैं **तानि इत् अहानि**=वे दिन कहाते हैं। **उषा जारः इव परि आचरन्ती**=उषा भी रात्रि को जारण करनेवाले सूर्य के समान ही आचरण करती हुई **न पुनः यती इव ददृक्षे**=फिर नहीं लौटती-सी दीखती है, वैसे हे **उषः**=पति की कामनावाली वधू! **या**=जो तू **सूर्यस्य प्राचीनम् इत्**=सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष के पूर्व भाग में आकर आगे आती है **तानि इत् बहुलानि अहानि**=वे ही बहुत दिन उत्तम हैं। **यतः**=क्योंकि उन दिनों में तू **जारः इव**=तेरी आयु को अपने साथ पूर्णरूपेण व्यतीत करनेवाले सूर्यवत् तेजस्वी पति के समान ही तू भी **आचरन्ती**=धर्माचरण करती हुई **न पुनः यती इव**=उसे भविष्य में कभी न त्यागती-सी **परि ददृशे**=सदा संग दिखाई दे।

भावार्थ-नव वधू को योग्य है कि वह पति के प्रत्येक कार्य में बढ़-चढ़कर सहयोग करे। पति का कभी तिरस्कार न करे तथा गृहस्थ धर्म का आचरण करती हुई सदैव पति के अनुकूल व्यवहार करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ज्ञानी पुरुष

त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्॥ ४॥

पदार्थ-जो **ऋतावानः**=सत्य, वेद, तप आदि का सेवन करनेवाले **पूर्व्यासः कवयः**=पूर्व के विद्वानों से शिक्षित, क्रान्तदर्शी पुरुष हैं **ते इत्**=वे ही **देवानां**=विद्वान् पुरुषों के **सधमादः आसन्**=साथ आनन्द प्राप्त करनेवाले होते हैं। वे ही **पितरः**=माता-पितावत् पालक बनकर **गूढं**

ज्योतिः=भीतर छिपे तेज को **अनु अविन्दन्**-प्राप्त करते हैं। जो **सत्य-मन्त्राः**-सत्य, मननशील होकर **उषासम् अजनयन्**=अज्ञान और पाप को दूर करनेवाली 'विशोका' प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

भावार्थ–श्रेष्ठ पुरुषों को योग्य है कि वे सत्य ज्ञानी तपस्वी वेद के विद्वानों के सान्निध्य में रहकर अपने अन्दर के तेज को प्राप्त करके सत्य का चिन्तन करते हुए अज्ञान की नाशक 'विशोका' नाम की बुद्धि को प्राप्त करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

श्रेष्ठ जीवन

समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।

ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

पदार्थ–जो पुरुष **समाने**=एक समान **ऊर्वे**=समूह या वर्ग में **अधि**=अध्यक्ष के अधीन **संगतासः**=मिलकर **सजानते**-सम्यक् ज्ञान और परिचय करते हैं **ते**=वे परस्पर नाश की **न यतन्ते**=चेष्टा नहीं करते। **ते**=वे **देवानां व्रतानि**=विद्वानों के कार्यों का **न मिनन्ति**=नाश नहीं करते। वे **वसुभिः**-धनों द्वारा **यादमानाः**=यत्नवान् होते हुए **अमर्धन्तः**=हिंसा न करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

भावार्थ–उत्तम पुरुषों को योग्य है कि वे अध्यक्ष के अधीन रहकर विद्वानों के द्वारा बाँधी गई मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए अहिंसक भाव से पुरुषार्थ करते हुए श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उषा काल में

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।

गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **सुभगे**=उत्तम भाग्यवति! **तुष्टुवांसः**–स्तुतिकर्ता, **उषर्बुधः**=प्रभात में जागनेवाले **वसिष्ठाः**=विद्वान् गृहस्थ, ब्रह्मचारी **त्वा**–तेरी **स्तोमैः**–स्तुत्य वचनों से **इडते**=स्तुति करते हैं। हे **उषः**=पापनाशिके! तू **वाजयन्ती**=ऐश्वर्य और ज्ञान की पालक **गवां नेत्री**=गो-तुल्य सौम्य वाणियों को प्रस्तुत करनेवाली होकर **नः**–हमारे बीच **उच्छ**=गुणों का प्रकाश कर। हे **सुजाते**–माता-पिता की उत्तम पुत्री! तू **प्रथमा**=सर्वश्रेष्ठ गिनी जाकर **जरस्व**=प्रिय पुरुष के गुणों का वर्णन कर।

भावार्थ–विद्वान् गृहस्थी तथा ब्रह्मचारी जन प्रातःकाल की उषा वेला में ऐश्वर्य तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्तुति करें अर्थात् कार्य योजना का निर्माण करें तथा उस योजना के अनुसार पुरुषार्थ करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कान्तिमति वधू

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।

दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

पदार्थ–**एषा**=वह **उषा**=कान्तिमती, वधू **राधसः नेत्री**=धन प्राप्त करानेवाली और वह **सूनृतानां नेत्री**=ज्ञानमय वचनों और सत्य-विद्याओं को प्राप्त करानेवाली **उच्छन्ती**-स्वयं उत्तम गुणों की

प्रकाशक **वसिष्ठैः**=उत्तम ब्रह्मचारियों और सन्तान के उत्तम माता-पिताओं द्वारा **रिभ्यते**=स्तुति की जाती है, वह **अस्मे**-हमारे **दीर्घ-श्रुतं**=दीर्घकाल तक श्रवण-योग्य **रयिम्**=ऐश्वर्य को **दधाना**=धारण करनेवाली हो। हे विद्वान् पुरुषो! आप **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ–नव वधू ज्ञानपूर्वक उत्तम तथा मधुर वचनों द्वारा अपनी विद्या तथा गुणों को प्रकाशित करे। इससे परिवार के समस्त छोटे-बड़े जन उसके प्रशंसक बन जाएँगे। इससे परिवार ऐश्वर्यशाली तथा उन्नत बनकर प्रतिष्ठित होगा।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ और देवता उषा है।

[७७] सप्तसप्ततिमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**उषाः**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

परमेश्वरी शक्ति

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि॥ १॥

पदार्थ–जैसे **उषा**=प्रभात वेला **उप रुरुचे**=पतिवत् सूर्य के समीप स्त्रीवत् शोभित होती है। वह **विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती**=समस्त जीव लोक को निद्रा से उठाकर विचरने के लिये प्रेरित करती है। **समिधे**=प्रकाश करने के लिये **अग्निः अभूत्**=सूर्य-रूप अग्नि प्रकट होता है, **मानुषाणां**=मनुष्यों के लिये **तमांसि बाधमाना ज्योतींषि**=अन्धकारों को दूर करनेवाले प्रकाशों को **अकः**=प्रकट करता है, वैसे ही परमेश्वरी शक्ति **युवतिः योषा न**=युवती स्त्री के समान **विश्वं जीवं**=समस्त विश्व और जीव-संसार को **चरायै प्रसुवन्ती**=कर्म-फल-भोग के लिये उत्पन्न करती हुई **उप उ रुरुचे**=सर्वत्र शोभा दे, **अग्निः**=वह परमेश्वर अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप **समिधे**=ज्ञान प्रकाश करने के लिये **अभूत्**=हो और वही **मानुषाणाम्**=मनुष्यों के हृदय के **तमांसि**=अज्ञानान्धकारों को **बाधमाना**=दूर करता हुआ **ज्योतिः**=वेदमय ज्ञान प्रकाश को **अकः**=उपदेश करता है।

भावार्थ–परमेश्वर अपनी परमेश्वरी शक्ति से संसार के समस्त जीवों के कर्मफल भोग की व्यवस्था करता है। तथा मनुष्यों के अज्ञान का नाश करने के लिए सृष्टि के आदि में वेद-ज्ञान का प्रकाश भी करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**उषाः**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

नव वधू का कर्त्तव्य

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि॥ २॥

पदार्थ–**अह्नां नेत्री**=प्रभात वेला जैसे दिनों की प्रारम्भिक नायिका, **गवां माता**=किरणों को अपने में से माता के समान पैदा करती है, वह **हिरण्य-वर्णा**=सुवर्ण-समान चमकती हुई **सुदृशीक-सन्दृग्**=आँखों को सब पदार्थ अच्छी प्रकार दिखलाती है, वह **प्रतीची**=प्रत्यक्ष होती हुई, **स-प्रथा**=विस्तृत होकर **रुशद् वासः बिभ्रती**=मानो चमकीला वस्त्र पहने **विश्वं शुक्रम् अश्वैत्**=समस्त संसार को दीप्तियुक्त कर चमका देती और बढ़ती है वैसे ही परमेश्वरी शक्ति और नव वधू माता भी **अह्नां**–न नाश होनेवाले, नित्य जीवों, न मरने योग्य बालक जीवों को **नेत्री**=प्राप्त

करानेवाली, **गवां**=लोकों और गौ आदि पशुओं को भी **माता**=माता के समान पालक। **सुदृशीक-संदृग्**=सम्यक् दृष्टि से युक्त, रमणीय वर्णवाली हो। वह **प्रतीची**=प्रत्येक की दृष्टि में पूजनीय, **रुशद्-वासः**=उज्ज्वल वस्त्रादि **बिभ्रती**=धारण करती हुई, **सप्रथा**=समान रूप से विख्यात होकर **उत्-अस्थात्**=उत्तम स्थिति प्राप्त करे और **शुक्रम् अश्वैत्**=शुद्ध आचरण करे।

भावार्थ–माता बननेवाली नव वधू अपनी होनेवाली सन्तान को दीर्घायु तथा स्वस्थ, पुष्ट बनाने के लिए श्रेष्ठ चिन्तन व शुद्ध आचरण करे। अपनी दृष्टि व वस्त्रादि को उज्ज्वल रखे इससे समाज में उसका सम्मान व प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नव वधू

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम्।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

पदार्थ–जैसे **उषा**=प्रभात की सूर्य-कान्ति **रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि**=किरणों से प्रकाशित दिखाई देती है, वह **चित्रामघा विश्वम् अनु प्रभूता**=विश्व में प्रकट चित्र-विचित्र-वर्णयुक्त प्रकाशों से मानो पूज्य धनयुक्त होती है। वह **सुभगा**=उत्तम भद्रवर्ण-युक्त होकर **देवानां चक्षुः**=मनुष्यों की आँखों को **श्वेतं वहन्ती**=श्वेत प्रकाश देती और **सुदृशीकम् श्वेतं अश्वम् नयन्ती**=दर्शनीय, प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त कराती है वैसे ही **उषा**=पति-कामना से युक्त नववधू, **सु-भगा**=सौभाग्यवती, **देवानां**=विद्वान् पुरुषों के बीच **चक्षुः**=सौम्य दृष्टि करती हुई और **श्वेतम्**=शुद्ध चरित्रवान् **सु-दृशीकम्**=उत्तम दर्शनीय, **अश्वम्**=अश्ववत् सुदृढ़ शरीरवाले पुरुष के प्रति अपनी **चक्षुः नयन्ती**=चक्षु को पहुँचाती हुई, प्रेम से वरण करती हुई, **चित्रा-मघा**=नाना धनों से युक्त और **रश्मिभिः व्यक्ता**=कान्तियों से सुशोभित, **विश्वम् अनु प्रभूता**=सबके समक्ष प्रकट होकर **अदर्शि**=दीखे।

भावार्थ–वधू बनने की इच्छुक कन्या अपनी विवेक शक्ति के द्वारा शुद्ध चरित्रवाले विद्वान्, बलवान्, कान्तियुक्त, सुदृढ़ शरीरवाले युवक को पति के रूप में वरण करे। जब लोगों के मध्य में आवे तो सौम्य दृष्टि रखे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजशक्ति

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **मघोनि**=धन की स्वामिनि राजशक्ते! हे विदुषि! तू **अन्ति-वामा**=अपने समीप भोग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों को रखती हुई **अमित्रम् दूरे**=शत्रु को दूर करती हुई **उच्छ**=स्वयं चमक। तू **उर्वीं**=बड़ी भूमि और विशाल **गव्यूतिम्**=मार्ग को **नः**=हमारे लिये **अभयं कृधि**=भय-रहित कर। **द्वेषः यवय**=द्वेष-भावों और द्वेषियों को दूर कर। **वसूनि आभर**=ऐश्वर्य प्राप्त करा, **गृणते**=उपदेष्टा पुरुष को **राधः चोदय**=ऐश्वर्य दे।

भावार्थ–विदुषी स्त्री अपनी राजशक्ति के द्वारा प्रजाओं को समस्त भोग्य पदार्थ, सुरक्षा तथा भूमि व निवास सहित समस्त ऐश्वर्य प्रदान करके समाज से विषमता व वैर-भावों=झगड़ों को दूर करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

विदुषी स्त्री

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः॥ ५॥

पदार्थ-हे **उषः देवि**=शुभ गुणों से युक्त विदुषि! तू **श्रेष्टेभिः**=श्रेष्ठ गुणों से **वि भाहि**=विशेष चमक। तू **नः**=हमें **आयुः प्रतिरन्ती**=दीर्घ जीवन देती हुई और हे **विश्ववारे**=विश्व अर्थात् हृदय में प्रविष्ट पति द्वारा एकमात्र वरणीय! **नः**=हमारी **इषं**=अन्न और **गोमत् अश्वावत् रथवत् च**=गौओं, अश्वों और रथों से युक्त **राधः**=समृद्धि को **दधती**=धारण करती हुई, **वि भाहि**=विशेष चमक।

भावार्थ-विदुषी स्त्री अपने श्रेष्ठ गुणों व व्यवहार से दूसरों के हृदय को प्रभावित करके अपने ज्ञानोपदेश से लोगों को पुरुषार्थी बनाकर समस्त भौतिक ऐश्वर्य से समृद्ध बनावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

कान्तिमति स्त्री

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ६॥

पदार्थ-हे **उषः**=उषा के समान कान्तिमति! हे **सुजाते**=शुभ गुणों सहित, उत्तम जन्मवाली! हे **दिवः दुहितः**=सूर्यवत् विद्वान् और वीर पुरुष की पुत्रि! एवं पति-कामनाओं को पूर्ण करने हारि! **वसिष्ठाः**=उत्तम-उत्तम वसु, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, पिता जन **यां त्वा वर्धयन्ति**=जिस तुझको बढ़ाते हैं, **सा**-वह तू **अस्मासु**=हमारे बीच **ऋष्वं**=बड़े भारी **बृहन्तं**=महान् **रयिम्**=ऐश्वर्य को **धाः**=धारण कर और हममें भी धारण करा। हे विद्वान् लोगो! **यूयम् नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारा सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ-विद्वान् वीर पिता की पुत्री गृहस्थी जनों के ज्ञान, अनुभव एवं धन के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होकर बड़ी प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य को धारण करे।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ तथा देवता उषा है।

[७८] अष्टसप्ततितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

गुणवती स्त्री

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि॥ १॥

पदार्थ-**अस्याः**=उस विदुषी स्त्री के **प्रथमाः केतवः**=श्रेष्ठ गुण रश्मिवत् **प्रति अदृश्रन्**=दिखाई दें। **अस्याः**=इसके **अञ्जयः**=गुण प्रकाशवत् **वि-श्रयन्ते**=विविध प्रकार से प्रकट हों। हे **उषः**=कान्तिमति! तू **ज्योतिष्मता**=तेजस्वी, ज्ञानी **बृहता**=बड़े **अर्वाचा**=अश्व से चलनेवाले **रथेन**=रथ के समान दृढ़, रम्य, पति के साथ मिलकर **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **वामम्**=उत्तम गुणों को **वक्षि**=धारण कर।

भावार्थ–विदुषी स्त्री तेजस्विनी, ज्ञानी तथा पुष्ट शरीरवाली होकर, पति के साथ मिलकर अपने श्रेष्ठ गुणों को प्रदर्शित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वान् स्त्री-पुरुष

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।

उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥ २ ॥

पदार्थ–उषा ज्योतिषा विश्वा तमांसि अप बाधमाना याति=उषा अर्थात् प्रभात की सौरी प्रभा जैसे प्रकाश से अन्धकारों को दूर करती हुई व्यापती है वैसे ही **देवी**–विदुषी स्त्री **ज्योतिषा**=अपने तेजः-प्रभाव से **विश्वा दुरिता**=सब दुःखों और दुष्ट आचारों को **अप बाधमाना**=दूर करती हुई **याति**=प्राप्त होती है। **समिद्धः अग्निः**=प्रज्वलित अग्नि के समान विद्वान् **सीम् प्रति जरते**=सब प्रकार से सर्वत्र उपदेश करे और **मतिभिः**=ज्ञानों से युक्त **विप्रासः**=विद्वान् पुरुष **गृणन्तः**=उपदेश करते हुए **प्रति जरन्ते**–प्रश्न किये जाने पर, उत्तर द्वारा उपदेश करते हैं।

भावार्थ–विदुषी स्त्री अपने ज्ञान तथा सदाचार के तेज से अज्ञान व दुष्ट आचारों का नाश करे तथा विद्वान् पुरुष ज्ञान का उपदेश करे व प्रश्नों का उत्तर देकर शंकाओं का समाधान करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नव वधू का व्यवहार

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।

अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

पदार्थ–एताः त्याः=ये वे **विभातीः उषसः**=चमकती उषाओं के तुल्य उज्ज्वल, **ज्योतिः यच्छन्तीः**=कान्ति प्रदान करती हुई नववधुएँ **प्रति अदृश्रन्**=दीखें। वे **सूर्यम्**=सूर्य समान तेजस्वी **यज्ञम्**=पूजनीय **अग्निम्**=नायक को **अजीजनन्**=अपने पीछे आता हुआ प्रकट करती हैं। **अजुष्टम्**=न करने योग्य **तमः**=शोक आदि **अपाचीनं अगात्**=दूर चला जाता है अर्थात् उनके आने पर हर्ष होता है।

भावार्थ–नव वधू अपने सद्गुणों के द्वारा अपनी कान्ति प्रभाव को प्रकट करे जिससे उसका तेजस्वी पति प्रसन्न एवं तृप्त हो और दोनों हर्षित रहें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

पति-पत्नी का समर्पण

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।

आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थ–दिवः दुहिता=सूर्य-पुत्री के समान कान्तिमती **मघोनी**=ऐश्वर्य-स्वामिनी, सौभाग्यवती, सुभगा **अचेति**=जानी जाती है। उस **विभातीम्**=विविध प्रकार से भासित **उषसम्**=प्रभात वेला के तुल्य ही अनुरागवती को **विश्वे पश्यन्ति**=सब देखते हैं। **यम्**=जिसको **अश्वासः**=विद्या-निष्णात जन अश्वों के तुल्य सहयोगी होकर सन्मार्ग पर ले जाते हैं उस **रथम्**–रथवत् सुदृढ़ शरीरवाले और **स्वधया**=अपने सर्वस्व को धारण करनेवाले, स्त्री के साथ **युज्यमानम्**=योग प्राप्त करनेवाले **रथम्**=रमणकारी पति को **आ अस्थात्**-प्राप्त करे।

भावार्थ–कान्तिमती स्त्री अपने विद्वान् पति के प्रति अनुरागवाली होकर रहे तथा पति–पत्नी दोनों एक दूसरे के प्रति समर्पण भाव से रहकर सुखी जीवन व्यतीत करें। इससे विद्वानों में इनकी प्रशंसा होगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–उषाः ॥ छन्दः–विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

शुद्ध चित्त का आचरण

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थ–हे विदुषि! **सु-मनसः**=उत्तम चित्तवाले **अस्माकासः**=हमारे सम्बन्धी जन और **मघ-वानः**=उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् और **वयं च**=हम लोग सभी **अद्य**=आज के दिन **त्वा प्रति बुधन्त**=तेरे साथ उत्तम परिचय प्राप्त करें। हे **विभातीः उषसः**=चमकनेवाली प्रभात–वेलाओं के समान कुलवधुओ! आप लोग **तिल्विलायध्वम्**=तिलों से सुशोभित भूमि के समान स्नेहोत्पादक भूमि के समान होवो। **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारी सदा उत्तम साधनों से पालन करो।

भावार्थ–विदुषी कुल वधू अपने निर्मल चित्त तथा उत्तम ज्ञान के द्वारा मधुर व प्रिय व्यवहार से पति के परिवार को अपनी ओर आकर्षित करे।

[७९] एकोनाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–उषाः ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

हितकारिणी वधू

व्युषा आवः पथ्या जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती।
सुसन्दृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥

पदार्थ–**जनानां पथ्या**=मनुष्यों को प्रकाश से सत्पथ बतलानेवाली **उषा**=प्रभात–वेला के तुल्य **पथ्या**=धर्म–पथ बतलाने में हितकारिणी वधू **वि-आवः**=विविध गुणों का प्रकाश करे। वह **मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती**=मनुष्यों के पाँचों प्रकार के प्रजाजनों को बोध कराती हुई, **सु-सं-दृग्भिः**=उत्तम सम्यग् दर्शनयुक्त, **उक्षभिः**=पुरुष–पुंगवों द्वारा **भानुम् अश्रेत्**=विशेष दीप्ति धारण करे और **सूर्यः**=आकाश और भूमि को प्रकाश से सूर्य के तुल्य पुरुष **रोदसी**=माता–पिता दोनों के कुलों को **चक्षसा**=सम्यग् दृष्टि से, **वि-आवः**=विशेष रूप से उज्ज्वल करती है।

भावार्थ–गृहस्थ के धर्म को जाननेवाली स्त्री पति के घर जाकर सबको अपने मधुर व्यवहार से आकर्षित करके सबका हित करती है और अपने तेजस्वी गुणों के द्वारा पिता तथा पति दोनों के कुलों को प्रतिष्ठा प्राप्त कराती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–उषाः ॥ छन्दः–विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

नव वधू का व्यवहार

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥ २ ॥

पदार्थ–**उषसः**=प्रभात वेलाएँ जैसे **दिवः अन्तेषु**=आकाश के प्रान्त भागों में **अक्तून् वि अञ्जते**=रात्रि–भागों या प्रकाशों को प्रकट करती हैं वैसे ही **उषसः**=कामनायुक्त नववधुएँ **अन्तेषु**=प्रान्त भागों में विद्यमान **विशः न**=प्रजाओं के समान **दिवः अन्तेषु**=दिन के अन्त में,

अक्तून्–उज्ज्वल गृह–दीपकों को प्रकाशित करती हैं और **युक्ता यतन्ते**=नियुक्त भृत्यजनों के समान नववधुएँ पति की आज्ञा में रहकर गृह–कार्य करती हैं। हे नववधू! जैसे **गावः तमः आवर्त्तयन्ति**=किरणें अन्धकार दूर करती हैं और **ज्योतिः यच्छन्ति**=प्रकाश देती हैं, वे **सूर्यस्य बाहू इव**–सूर्य की बाहुओं के समान हैं वैसे ही **ते**–तेरी **गावः**–वाणियाँ **तमः सम् आ वर्त्तयन्ति**=शोकादि दुःख दूर करें और **ज्योतिः**=प्रकाशवत् स्फूर्त्ति दें। हे **उषः**=नववधू! तू भी **सविता इव**=प्रजोत्पादक पति के तुल्य हो, **बाहू**=एक शरीर में दो बाहुओं के तुल्य तुम दोनों मिलकर रहो।

भावार्थ–नव वधू पति के घर में आकर अपने सद्गुणों का प्रकाश करे। पति की आज्ञा का पालन करती हुई घर के कार्यों को कुशलता से करे। मीठी वाणी व मधुर व्यवहार से सबको प्रसन्न करती हुई उत्तम सन्तान को उत्पन्न करे तथा समस्त कार्यों में पति का हाथ बँटावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**उषाः**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

विदुषी वधू

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि॥ ३॥

पदार्थ–**उषा**=उषा के तुल्य कान्तिमती कन्या **इन्द्र-तमा**–ऐश्वर्यवती, रानी के तुल्य और **मघोनी**=धनैश्वर्य से युक्त **अभूत**=हो। वह **सुविताय**=ऐश्वर्य–प्राप्त करने के लिये **श्रवांसि**=यशों और धनों को **अजीजनत्**=उत्पन्न करे। वह **दिवः दुहिता**–सूर्य की पुत्रीवत् प्रभा के तुल्य उज्ज्वल कामनावान् पति के मनोरथों को पूर्ण करनेवाली, ज्ञानवती स्त्री **अंगिरस्तमा**=अति विदुषी होकर **सुकृते**=पुण्यादि की वृद्धि के लिये **वसूनि**=ऐश्वर्यों को **दधाति**=धारण करे।

भावार्थ–विदुषी स्त्री पति के घर जाकर पति के मनोरथों को पूर्ण करे। अपने ज्ञान और विद्या के द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त करके श्रेष्ठ कर्मों द्वारा पुण्य की वृद्धि करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**उषाः**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

गृह स्वामिनी

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः॥ ४॥

पदार्थ–जैसे 'उषस्' अर्थात् कान्तियुक्त विद्युत् को **वृषभस्य रवेण**=वर्षणशील मेघ के घोर गर्जन के साथ ही **जज्ञुः**=जानते हैं और वह **दृढस्य अद्रेः दुरः वि और्णोत्**=दृढ़ मेघ पर्वतादि के जलावरोधक मार्गों को खोल देती हैं वैसे ही हे विदुषी वधू! **यां त्वा**=जिस तुझको **वृषभस्य**=उत्तम पुरुष के **रवेण**=उपदेश या नाम शब्द से लोग **जज्ञुः**=जान लेते हैं वह तू **दृढस्य अद्रेः**=दृढ़ 'अद्रि' अर्थात् पर्वतवत् विशाल भवन के **दुरः**=नाना द्वारों को **वि और्णोः**–उद्घाटन कर, तू गृहपति की स्वामिनी हो और **यावत्**=जितना तू **गृणाना**=स्तुतियुक्त होकर **स्तोतृभ्यः अरदः**=विद्वानों को देवे **तावत् राधः**=उतना ही धन **अस्मभ्यं**=हमें प्रदान कर।

भावार्थ–विदुषी वधू अपने श्रेष्ठ गुणों व कर्मों से इतनी विख्यात होवे कि लोग उसके नाम से परिचित हो जावें। वह अपने घर की स्वामिनी होकर परोपकार में दान देवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दानशील स्त्री

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ-हे विदुषि! तू **देवं-देवं**=प्रत्येक विद्वान् पुरुष को **राधसे**=दान-योग्य धन **चोदयन्ती**=स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और **अस्मद्र्यक्**=हमारे प्रति **सूनृता**=उत्तम वचन कहती हुई, **वि उच्छन्ती**=विशेष गुण प्रकट करती हुई **नः सनये**=हमें दान देने के लिये **धियः धाः**=लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प कर। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! **यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात**=आप सदा उत्तम साधनों से हमारा पालन करें।

भावार्थ-विदुषी स्त्री अपने घर पर विद्वानों को दान स्वीकार करने की प्रार्थना किया करे और मधुरता के साथ लोक व्यवहार को वेद के अनुसार करने का शुभ संकल्प करे।

[८०] अशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सुसंतान का निर्माण

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन्।
विवर्तयन्ती रजसी समन्ते आविष्कृण्वती भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

पदार्थ-जैसे **रजसी समन्ते**=आकाश और भूमि के प्रान्त भागों तक **वि-वर्तयन्ती**=व्यापी हुई और **विश्वा भुवना आविः कृणवती**=समस्त पदार्थों को प्रकट करती हुई **प्रति उषसं**=प्रत्येक प्रभात वेला को प्राप्त कर **विप्रासः**=विद्वान् **स्तोमेभिः गीर्भिः**=स्तुतियुक्त मन्त्रों, वाणियों से **अबुध्रन्**=ज्ञान प्राप्त करते हैं और अन्यों को कराते हैं वैसे ही **वसिष्ठाः**=ब्रह्मचारी वा पितावत् **प्रथमाः**=प्रथम कोटि के, उत्तम, विस्तृत ज्ञानवाले **विप्रासः**=विद्वान् पुरुष, **समन्ते**=समीपस्था **रजसी**=मातृ-पितृपक्ष के बन्धुजनों वा अति समीपस्थ **रजसी**=गर्भ में प्राप्त शुक्र और रज दोनों के अंशों को **विवर्त्तयन्ती**=विविध रूपों में परिणत करती हुई और **विश्वा भुवनानि**=गर्भगत भ्रूण के सब रूपों को प्रकट करती हुई उस सन्तान की इच्छुक माता को **प्रति**=लक्ष्य कर **स्तोमेभिः**=स्तुति-योग्य वचनों, व्यवहारों और **गीर्भिः**=वेद-वाणियों से **अबुध्रन्**=ज्ञान प्रदान करें, जिससे सन्तति का पोषण उत्तम और उस पर संस्कार भी उत्तम पड़ें।

भावार्थ-विद्वान् जन स्त्री जनों को माता बनने के लिए उत्तम कोटि के उपदेश द्वारा गर्भस्थ भ्रूण के पालन तथा संस्कारित संतान उत्पन्न करने के लिए वेद वाणियों के द्वारा सन्मार्गदर्शन करें तथा सन्तान उत्पन्न होने के उपरान्त उसका सुपोषण व सुसंस्कारवान् बनाने की विद्या भी प्रदान करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

नव गृहिणी का जागरण

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

पदार्थ-जैसे **उषा**=प्रभात-वेला, **ज्योतिषा तमः**=प्रकाश से अन्धकार को दूर करती,

नव्यम् आयुः दधाना=सब प्राणियों को नया जीवन देती, **अग्रे**=सूर्य के आगे आती, फिर सूर्य, यज्ञ और यज्ञाग्नि को प्रबुद्ध कराती है वैसे ही **उषा स्या युवतिः**=वह यह युवति, वधू **नव्यम् आयुः दधाना**=नयी आयु धारण करती हुई **ज्योतिषा**=कान्ति से **तमः गूढ्वी**=गहरे शोक, मोहादि को दूर करके **अबोधि**=जागे और पति को जागृत करे। वह **अह्रयाणा**=लज्जा वा प्रमाद त्यागकर **युवतिः**=नवयुवति गृहिणी, **अग्रे एति**=आगे आवे, **सूर्यम्**=सूर्यवत् अपने पति को **प्राचिकितत्**=जगावे, **यज्ञम् अग्निम्**=और बाद में वही यज्ञ अर्थात् परमेश्वर और अग्निहोत्र की अग्नि को भी जगावे।

भावार्थ–नवयुवति गृहिणी अपने ज्ञान व कान्ति से रोग-शोक आदि को दूर करके प्रमाद रहित होकर पति से पहले जागे। फिर पति को जगावे। उसके बाद नित्य प्रति ब्रह्मयज्ञ में आत्म अग्नि तथा देवयज्ञ में भौतिक अग्नि को जागृत किया करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

उत्तम गृहिणी

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

पदार्थ–अश्वावतीः=अश्वों अर्थात् विद्यादि में निष्णात उत्तम पुरुषों से युक्त, **गोमतीः**=देववाणियों से युक्त, **वीरवतीः**=उत्तम पुत्रों से युक्त, **भद्राः**=कल्याण देनेवाली **उषासः**=पति-पुत्रादि को चाहनेवाली देवियाँ **नः सदम् उच्छन्तु**=हमारे घरों को सदा प्रकाशित करें। वे **घृतं दुहानाः**=घृतवत् स्नेह, जल आदि पुष्टिकारक पदार्थों की वृद्धि करती हुई स्वयं भी **विश्वतः**=सब प्रकार से **प्रपीताः**=सन्तुष्ट, हृष्ट-पुष्ट होकर रहें। हे उत्तम देवियो! **यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात**=हमारी सदा उत्तम साधनों से पालना करो।

भावार्थ–उत्तम गृहिणी अपने घरों को विद्वान् पुरुषों, सुसन्तानों व वेदवाणियों के द्वारा प्रकाशित करती हैं। वे घृत, दुग्ध, अन्न, जल आदि पदार्थों की सुव्यवस्था करके सबको स्वस्थ रखती हुई स्वयं भी हृष्ट पुष्ट रहती है।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ तथा उषा देवता है।

अथ पञ्चमाष्टके षष्ठोऽध्यायः

[८१] एकाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**विराड्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

विदुषी स्त्री का कर्त्तव्य

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

पदार्थ–जैसे **दिवः दुहिता**=सूर्य की पुत्री के समान प्रकाश से जगत् को पूर्ण करनेवाली उषा **आयती**=आती हुई और **उच्छन्ती**=प्रकट होती हुई **प्रति अदर्शि उ**=स्पष्ट दिखाई देती है, वह **महि तमः**=बड़े अन्धकार को **अप व्ययति उ**=दूर करती है और **चक्षसे**=सबको दिखलाने के लिये **ज्योतिः कृणोति**=प्रकाश करती है वैसे ही **सूनरी**=उत्तम विदुषी स्त्री, **दिवः दुहिता**=सब कामनाओं, व्यवहारों को पूर्ण करनेवाली, **आयती**=आती हुई, **उच्छन्ती**=गुणों को प्रकट करती हुई, **प्रति अदृर्शि**=प्रतिदिन दिखाई दे। वह **चक्षसे**=सम्यग् दर्शन करने और अन्यों को उपदेश

करने के लिये **महि तमः अपो व्ययति**=बहुत अन्धकार, अज्ञान को दूर करे और **ज्योतिः कृणोति**=ज्ञान-प्रकाश करे।

भावार्थ-विदुषी स्त्री अपने उत्तम व्यवहारों तथा शुभ संकल्पों के द्वारा समस्त कामनाओं को पूर्ण करे, और अपने सद्‌गुणों के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करे। अपने ज्ञान के उपदेश द्वारा अन्यों के अज्ञान का नाश कर ज्ञान का प्रकाश करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**भुरिग्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

स्त्री का राज्यपालन में सहयोग

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि॥ २॥

पदार्थ-जैसे **अर्चिवत्**=तेजो-युक्त **नक्षत्रम्**=नक्षत्र रूप **सूर्यः**=सूर्य **उस्त्रियाः सचा उत्सृजते**=किरणों को एक साथ ऊपर फेंकता है, हे **उषः**=उषः! **तव इत् सूर्यस्य उषि**=तेरे और सूर्य के उषा काल में जैसे **भक्तेन सं गमेमहि**=हम भजन-योग्य प्रभु से संगति लाभ करें, वैसे ही हे **उषः**=कान्तिमति, उत्तम विदुषि नववधु! जब **उद्-यत्**=उगता हुआ **अर्चिवत्**=अन्यों के सत्कार योग्य **नक्षत्रम्**=नक्षत्र के समान व्यापक राज्य पालन-सामर्थ्य हो और **सचा**=साथ ही **सूर्यः**=सूर्य-तुल्य तेजस्वी पुरुष **उस्त्रियाः**=उन्नतिशील प्रजाओं को किरणों के समान **उत्सृजते**=उन्नति की ओर ले जाता है, तब **तव इत् विउषि, सूर्यस्य च वि-उषि**=तेरी और तेरे पति तेजस्वी पुरुष की विशेष इच्छा और प्रताप होने पर **भक्तेन सं गमेमहि**=हम ऐश्वर्यादि लाभ करें।

भावार्थ-विदुषी नव वधू अपने तेजस्वी पति के साथ मिलकर राज्यपालन व प्रजाओं को उन्नतिशील बनाने में सहयोग करे। राज्य को ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने में सम्मति देकर पति की इच्छा को पूर्ण करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**आर्षीबृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

दानशील स्त्री

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः॥ ३॥

पदार्थ-हे **दिवः दुहितः**=सूर्यवत् तेजस्वी की कामनाएँ पूर्ण करनेवाली, हे **उषः**=तेजस्विनि! हम लोग **जीराः**=शीघ्रकारी होकर **त्वा प्रति**=तुझे **अभुत्स्महि**=जानते हैं कि हे **वनन्वति**=धन की स्वामिनि! **या**=जो तू **पुरु स्पार्हं**=बहुत अधिक, चाहने योग्य ऐश्वर्य **वहसि**=धारती है, वह तू **रत्नं न**=रमणीय रत्नवत् और **मयः**=सुखकारी पदार्थ **दाशुषे**=दान देनेवाले के लिये ही **वहसि**=धारती है।

भावार्थ-तेजस्विनी स्त्री को चाहिए कि वह अपने धन को पात्र लोगों में दान करे जिससे वे प्रजाजन ऐश्वर्य सम्पन्न होवें। इस प्रकार अपने और दूसरों के सुख में वृद्धि होती है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**उषाः** ॥ छन्दः-**आर्षीभुरिग्बृहती** ॥ स्वरः-**मध्यमः** ॥

सुपुत्रवती स्त्री

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः॥ ४॥

पदार्थ–या=जो तू हे **देवि**=दानशीले! हे **महि**–पूजनीये! जैसे उषा **प्रख्यै**=सब पदार्थों को बतलाने और **दृशे**–देखने के लिये **स्वः उच्छन्ती**=स्वयं प्रकट होती, सूर्य को प्रकट करती है वैसे ही **उच्छन्ती**=गुणों का प्रकाश करती हुई **प्रख्यै**–उत्तम ख्याति पाने और **दृशे**=दर्शन के लिये **महना**=अपने व्यवहार से **स्वः**=आदित्यवत् तेजस्वी पुरुष, या पुत्र को **कृणोषि**=उत्पन्न करती है। **रत्नभाजः**–पुत्रादिरत्न को धारण करनेवाली तुझसे हम **ईमहे**=याचना करें और **वयम्**=हम **मातुः सूनवः न**=माता के पुत्रों के तुल्य **स्याम**=तेरे कृपापात्र बनें।

भावार्थ–उत्तम स्त्री अपने जीवन में सद्गुणों को धारण करके सुसंस्कारित तेजस्वी पुत्र रत्न को उत्पन्न करे। अन्यों को भी दान आदि से पुत्रों के समान पुष्ट करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**निचृद्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ऐश्वर्य दान

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम्।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **उषः**=हे विदुषि! हे प्रभुशक्ते! तू हमें **तत्**–वह **चित्रम्**–अद्भुत, सञ्चय–योग्य, **राधः**=ऐश्वर्य **आ भर**=दे **यत् दीर्घश्रुत्तमम्**=जो दीर्घ काल तक श्रवण योग्य हो। हे **दिवः दुहितः**=सूर्य की पुत्री उषावत् तेजस्वी पिता की कन्ये! एवं तेजस्वी पुरुष की कामना पूर्ण करनेहारी! **यत् ते मर्त्त-भोजनम्**=जो तेरा मनुष्यों को पालन करनेवाला सामर्थ्य है **तत्**=वह तू हमें **रास्व**=दे, **भुनजामहै**=हम उसका भोग करें।

भावार्थ–विदुषी स्त्री अपने ज्ञान एवं धन को सुपात्रों में इतना बाँटे कि लोग दीर्घकाल तक स्मरण करें। यह दूसरों को पालन करने का गुण उसके यश को चिर स्थाई बना देगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**उषाः** ॥ छन्दः–**आर्षीभुरिग्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ऐश्वर्य का वितरण

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्त्रिधः ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **सूनृतावति**=ऋत, ज्ञान और धन की स्वामिनि! तू **सूरिभ्यः**=विद्वान् पुरुषों के लिये **अमृतम्**=अमृतमय **श्रवः**=श्रवण–योग्य ज्ञान, आयुप्रद अन्न, **वसुत्वनं**=ऐश्वर्ययुक्त कीर्त्ति और **गोमतः वाजान्**=पशु–भूमिसम्पन्न ऐश्वर्य दे। तू **मघोनः**=ऐश्वर्यवालों को **चोदयित्री**=अपने अधीन चलाती हुई **स्त्रिधः**=हिंसक दुष्टों को **अप उच्छत्**–दूर कर।

भावार्थ–ज्ञानवती स्त्री विद्वान् पुरुषों को उत्तम अन्न, धनैश्वर्य, गाय व भूमि का दान प्रदान करके यश प्राप्त करती है तथा दुष्टों को हिंसा आदि से दूर रखने हेतु भी ऐश्वर्य बाँटती है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता इन्द्रावरुणौ है।

[८२] द्व्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

इन्द्र-वरुण का कर्त्तव्य

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्रा-वरुणा**=इन्द्र, शत्रु के हनन करने हारे! हे वरणीय सर्वश्रेष्ठ! **युवम्**=आप दोनों **अध्वराय**=हिंसा से रहित **नः**=हमारे **विशे जनाय**=प्रजाजन को **महि शर्म**=बड़ा सुख **यच्छतम्**=दो। **दीर्घ-प्रयज्युम्**=दीर्घ-काल से उत्तम संगतिवाले, एवं चिरकाल से कर, वृत्ति आदि देनेवाले पुरुष की **यः**–जो **वनुष्यति**=मर्यादा का अतिक्रमण करके हिंसा करे या उससे अधिकार से अधिक माँगे, उसको और **दूढ्यः**=दुष्ट कर्म करनेवालों को **वयं**=हम **पृतनासु**=संग्रामों के बीच **जयेम**=विजय करें।

भावार्थ–राजा तथा सेनापति दोनों को योग्य है कि वे प्रजा का उत्तमता के साथ पालन करें। कर देनेवाले प्रजा जनों से यदि कोई अतिक्रमण करके अधिक माँग करे तो उस भ्रष्टाचारी को दण्डित करें तथा राष्ट्र में दुष्टों का नाश करके प्रजा को सुखी करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

इन्द्र और वरुण का स्वरूप

सम्राळ्न्यः स्वराळ्न्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥

पदार्थ–इन्द्र और वरुण का स्वरूप। **इन्द्रा-वरुणा**=इन्द्र और वरुण दोनों **महान्तौ**=गुणों और बलों में महान् सामर्थ्यवान् और दोनों **महावसू**=बड़े भारी वसु अर्थात् धन और अधीन बसे प्रजा के स्वामी हैं। एक के पास धनबल, दूसरे के पास जनबल, एक कोशवान् और दूसरा दण्डवान्, एक अर्थपति दूसरा बलाध्यक्ष है। **वाम्**=आप दोनों में से **अन्य सम्राट्**=एक तो 'सम्राट्' और **अन्यः स्वराट्**=दूसरा 'स्वराट्' **उच्यते**=कहलाता है। अच्छी प्रकार देदीप्यमान होने से सम्राट् और 'स्व' धन और 'स्व' अपने जन से राजावत् प्रकाशमान होने से 'स्वराट्' है। **वाम्**=आप दोनों के **परमे**=सर्वोत्कृष्ट **वि-ओमनि**=विशेष रक्षण में रहते हुए **विश्वे देवासः**=सब विद्वान्, वीर और व्यवहारवान् मनुष्य **ओजः सं दधुः**=पराक्रम या तेज एक साथ धारें और **बलं सं दधुः**=अपना बल एक साथ लगावें।

भावार्थ–राजा और सेनापति दोनों का सामर्थ्य बहुत बड़ा है। दोनों मिलकर राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने के लिए राष्ट्र के विद्वानों, वीरों तथा ऐश्वर्यशाली प्रजाओं के सामर्थ्य को एक साथ लगाने की प्रेरणा करें। इससे राष्ट्र सुदृढ़ बनेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**आर्चीभुरिग्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

इन्द्र-वरुण के कार्य

अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम्।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥

पदार्थ–आप दोनों **अपां**=प्रजाओं के यातायात के लिये **खानि**=जल मार्गों के समान नाना मार्ग **अनु अतृन्तम्**=उनके अनुकूल बनाते हो और **दिवि**=शासन और व्यवहार में **प्रभुम्**=सामर्थ्यवान् **सूर्यम्**=सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष को **ऐरयतम्**=प्रेरित करते हो। **अस्य**=इस **मायिनः**=प्रजावान् और शिल्पशक्ति के स्वामी के **मदे**=सन्तुष्ट रहने पर ही **इन्द्रा वरुणा**=इन्द्र और वरुण, अर्थ और बल के अध्यक्ष जन **अपितः**=अरक्षित प्रजाओं को भी **अपिन्वतम्**=बढ़ाते और **धियः पिन्वतम्**=नाना कर्मों, शिल्पों को पुष्ट करते हैं।

भावार्थ–राजा और सेनापति दोनों प्रजाओं के लिए यातायात के विभिन्न मार्गों (जल मार्ग,

आकाश मार्ग तथा सडक मार्ग) को निष्कंटक करें। पिछड़े वर्ग तथा जंगली जातियों को भी नाना प्रकार के शिल्प आदि कार्यों का प्रशिक्षण देकर राष्ट्र की मुख्य धारा में जोड़ने की योजना बनावें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**आर्षीविराड्जगती** ॥ स्वरः-**निषादः** ॥

इन्द्र-वरुण का आह्वान

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः।

ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे॥ ४॥

पदार्थ-हे **इन्द्रा-वरुणा**=इन्द्र ऐश्वर्यवन्! हे वरुण, शत्रु-जनों, दुष्टों, और विघ्नों के वारक अध्यक्षो! **वह्नयः**-नाना कार्यों को वहन करनेवाले प्रधान पुरुष **युत्सु**=युद्धों, **पृतनासु**-सेनाओं और प्रजाओं में **युवाम्**=तुम दोनों को **हवन्ते**-बुलाते हैं और **मित-ज्ञवः**=मित ज्ञानवाले, ज्ञानी वा विनय से गोड़े सिकोड़ कर बैठनेवाले, सभ्य, या परिमित कदमवाले जन **क्षेमस्य प्रसवे**=अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिये **युवाम्**=आप दोनों को याद करते हैं। **कारवः**=क्रिया-कुशल, शिल्पी और वेद-मन्त्रों के द्रष्टा हम विद्वान् जन **उभयस्य वस्वः ईशाना**=ऐहिक और पारमार्थिक वा चर और अचर दोनों के स्वामी आप दोनों **सु-हवा**=सुख से पुकारे जाने योग्य सुखदाताओं को **हवामहे**=पुकारते हैं।

भावार्थ-राजा और सेनापति मिलकर शत्रुओं व दुष्टों को अपने अधीन करें जिससे वे प्रजा को दु:ख न दे सकें। साधनहीन प्रजा को धन देकर सुखी करें। विभिन्न विद्याओं में निष्णात विद्वानों के द्वारा शिल्प आदि विद्याओं तथा वेद मन्त्रों का उपदेश कराने की व्यवस्था करें जिससे प्रजा सुखी होवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**आर्षीविराड्जगती** ॥ स्वरः-**निषादः** ॥

इन्द्र-वरुण का रहस्य

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना।

क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते॥ ५॥

पदार्थ-आधिदैविक दृष्टान्तों से इन्द्र-वरुण का रहस्य। जैसे **मित्रः**=सबका मित्र सूर्य **वरुणं**=आकाश के आच्छादक मेघ को **क्षेमेण दुवस्यति**=प्रजा के पालन-सामर्थ्य, अन्न-जलादि से युक्त करता है और **अन्यः**-दूसरा **उग्रः**=प्रबल वायु **मरुद्भिः**-मध्यस्थानीय वायुओं से **शुभम् ईयते**=जल को प्राप्त कराता है और सूर्य, वायु या विद्युत् दोनों **मज्मना**=बल से **भुवनस्य इमा विश्वा जातानि**-संसार के इन समस्त प्राणियों को **चक्रथुः**=उत्पन्न करते हैं, ऐसे ही **यत् इन्द्रावरुणा**=जो इन्द्र और वरुण ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष जन **मज्मना**-धन और सैन्य-बल से **इमानि विश्वा जातानि**-इन समस्त जनों को **चक्रथुः**=अपने अधीन और समृद्ध करते हैं। वे कैसे करते हैं? **मित्रः**=सबको मरने या नाश होने से बचानेवाला, ब्राह्मण-वर्ग **वरुणं**-दुष्टों के वारक दण्डवान् क्षत्रवर्ग को **क्षेमेण**-प्रजा के योग्यक्षेम, रक्षा या प्राप्त धन के सामर्थ्य से **दुवस्यति**-युक्त करता है, उसको प्रजा की रक्षा और पालन का अधिकार सौंपता है और **अन्यः**-दूसरा **उग्रः**=बलवान् पुरुष **मरुद्भिः**-शत्रुमारक सुभटों से युक्त होकर **शुभम् ईयते**-शोभित पद को प्राप्त करता है।

भावार्थ-इन्द्र और वरुण=राजा और सेनापति ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष हैं। ये दोनों धन और रक्षा कार्यों से प्रजाओं को अधीन रखें। ब्राह्मण वर्ग तथा क्षत्र वर्ग को विभिन्न पदों पर

नियुक्त कर प्रजा की समृद्धि हेतु अज्ञान एवं शत्रुओं से रक्षा करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

इन्द्र-वरुण का पराक्रम

मुहे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम्।

अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥ ६ ॥

पदार्थ–**अस्य वरुणस्य**=इस 'वरुण' की **यत्**=जो **ध्रुवम् स्वम्**=स्थिर सम्पदा है उस **महे शुल्काय**=बड़े ऐश्वर्य और **त्विषे**=तेजोवृद्धि के लिये **नु**='इन्द्र और वरुण' दोनों ही **ओजः**=पराक्रम करते हैं। कैसे करते हैं कि–**अन्तः**=एक तो **श्नथयन्तम् अजामिम्**=हिंसा करनेवाले शत्रु को **आ अतिरत्**=सब ओर से नष्ट करता है और **अन्यः**=दूसरा **दभ्रेभिः**=हिंसाकारी शस्त्रास्त्रों से **भूयसः प्र वृणोति**=बहुत शत्रुओं को आच्छादित करता और उनको दूर से ही वारण करता है।

भावार्थ–राष्ट्र के स्थिर ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए राजा और सेनापति दोनों मिलकर पराक्रम करें। राजा शासन व्यवस्था के द्वारा राष्ट्र के आन्तरिक शत्रुओं को नष्ट करे और सेनापति शस्त्रास्त्रों के द्वारा बाहरी शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

हिंसा रहित प्रजा पालन

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन।

यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **देवा**=दानशील, विजय-कामनावाले **इन्द्रा-वरुणा**=शत्रुहन्ता और विघ्नवारक अध्यक्षो! आप दोनों **यस्य मर्तस्य अध्वरं**=जिस राष्ट्र या मनुष्य-वर्ग के 'अध्वर' अर्थात् हिंसा-रहित प्रजा-पालन के कार्य को **गच्छथः**=जाते हो और **वीथः**=रक्षा करते हो **तम् मर्तम्**=उस मनुष्य तक **न अंहः नशते**=न पाप पहुँचता है **न दुरितानि**=न बुरे फल **कुतः चन न तपः**=न किसी से सन्ताप **तं न परिह्वृतिः नशते**=और न उसको किसी की कुटिल चाल सताती है।

भावार्थ–जिस राष्ट्र के राजा व सेनापति जागरूक व पराक्रमी होते हैं उस राष्ट्र में पाप, हिंसा, भ्रष्टाचार व कुटिल जन नहीं पनप सकते। उसकी प्रजा सुखी होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**विराड्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

इन्द्र-वरुण प्रजा के वचन सुनें

अर्वाङ् नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः।

युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्रा-वरुणा**=ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारक! **नरा**=नायको! **यदि**=यदि आप दोनों **मे जुजोषथः**=मुझसे प्रेम करते हो तो **मे हवं शृणुतम्**=मेरा वचन सुनो और **दैव्येन**=विद्वान्, वीर पुरुषों से बने **अवसा**=रक्षा आदि साधन-सहित **अर्वाङ् आगतम्**=हमारे पास आओ। **युवोः**=आप दोनों की **हि**=निश्चय से **यत्**=जो **सख्यम्**=मित्रता और **मार्डीकम् आप्यम्**=सुखकारी बन्धुता है, उसे हमें **नि यच्छतम्**=दो।

भावार्थ–राष्ट्र में राजा और सेनापति मित्रवत् रहें इससे प्रजा का मनोबल बढ़ता है। ये दोनों

प्रजाओं के मध्य में जाकर उनकी समस्याओं को सुना करें तथा उनका यथोचित समाधान किया करें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्द:-**निचृज्जगती** ॥ स्वर:-**निषादः** ॥

राजा-सेनापति द्वारा संकट निवारण

अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरायोधा भवतं कृष्ट्योजसा।

यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु॥ ९ ॥

पदार्थ-हे **कृष्टयोजसा इन्द्रावरुणा** 'कृष्टि' अर्थात् शत्रु का कर्षण, पीड़ा करनेवाली सेनाओं, पराक्रमवाले इन्द्र और वरुण, शत्रुहन्ता, शत्रुवारक अध्यक्षो! आप दोनों **अस्माकं भरे-भरे**=हमारे प्रत्येक संग्राम में **पुरोयोधा भवतम्**=आगे रहकर लड़नेवाले होवें। **यत्**=जो **नरः**-मनुष्य **उभये**=सबल, निर्बल दोनों ही **तोकस्य तनयस्य सातिषु**-पुत्र-पौत्र तक के सेवन-योग्य स्थिर भूमि आदि को प्राप्त करने हेतु **स्पृधि**=आपसी स्पर्धा में **वां हवन्ते**=तुम दोनों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-राजा और सेनापति राष्ट्र व प्रजाओं के संकट काल में आगे रहकर समर्थ तथा निर्बल दोनों प्रकार के प्रजा जनों का संकट निवारण करने में तत्पर रहें।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्द:-**आर्षीविराड्जगती** ॥ स्वर:-**निषादः** ॥

वेदानुसार व्यवस्था

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।

अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे॥ १० ॥

पदार्थ-**इन्द्र**=ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी **वरुणः**=मेघवत् उदार, वरणीय, **मित्रः**=स्नेही, **अर्यमा**=शत्रुओं के नियन्त्रण में कुशल पुरुष **अस्मे**=हमें **महि द्युम्नं**=बड़ा ऐश्वर्य और **सप्रथः शर्म**=विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि **यच्छन्तु**=प्रदान करें। ये सब **ऋत-वृधः**=सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाने और स्वयं बढ़नेवाले होकर **अदितेः**=अखण्ड शासनकर्त्ता, प्रजा के माता, पिता एवं पुत्रवत् पालक के **अवध्रं**=न नाश होनेवाले **ज्योतिः**=ज्ञान और प्रताप को प्रदान करें। हम भी उसी **देवस्य**=दाता **सवितुः**=प्रभु की **श्लोकं**=वाणी-वेद तथा आज्ञा का **मनामहे**-मान तथा मनन करें।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि वह प्रजाओं के लिए घरों तथा ऐश्वर्य का दान करे। उन्हें उचित न्याय प्रदान कर अपने शासन को स्थिर करे। प्रजा पालक होकर ज्ञान के विस्तार हेतु वेदवाणी के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था करे।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता इन्द्रावरुणौ है।

[८३] त्र्यशीतितमं सूक्तम्

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्द:-**विराड्जगती** ॥ स्वर:-**निषादः** ॥

राष्ट्र रक्षा

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः।

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम्॥ १ ॥

पदार्थ-जैसे **प्राचा**-पूर्व दिशा से **आप्यं पश्यमानासः**=जलों के लक्षण देखते हुए **गव्यन्तः**=भूमि-कर्षणादि के इच्छुक **पृथुपर्शवः**=बड़े हल, फावड़े आदि लेकर भूमि खोदने जाते हैं वैसे ही हे **नरा**=नायक जनो! **प्राचा**-सम्मुख से परस्पर **आप्यं**=बन्धुभाव वा प्राप्तव्य लक्ष्य को

पश्यमानासः=देखते हुए **गव्यन्तः**=भूमि-विजय की कामनावाले **पृथु-पर्शवः**=बड़े-बड़े परशु आदि शस्त्रास्त्र लिये **ययुः**=आगे बढ़ें। जैसे वायु और विद्युत् दोनों **वृत्रा हतम्**=मेघस्थ जलों पर आघात करते हैं वैसे ही **युवां**=हे इन्द्र और वरुण! शत्रुहनन और शत्रु-वारण करनेवालो! आप दोनों **दासा**=विनाशकारी और **आर्याणि**='अरि' अर्थात् शत्रु-पक्ष के **वृत्रा**=बढ़ते हुए सैन्यों को **हतम्**=मारो और **दासा च**=भृत्यादि तथा **आर्याणि**='आर्य' स्वामी वा वैश्यों के उपयोगी **वृत्रा**=नाना धनों को भी **हतम्**=प्राप्त करो। हे **इन्द्रावरुणा**=ऐश्वर्यवन्! हे श्रेष्ठ पुरुष! तुम दोनों **सुदासम्**=उत्तम दानशील, धनी तथा उत्तम भृत्य आदि की भी **अवसा अवतम्**=रक्षा साधनों द्वारा रक्षा करो।

भावार्थ–पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष को देखकर किसान वर्षा होने का अनुमान लगाकर अपने खेत में हल व फावड़े लेकर जावे तथा कृषि कार्य करे। सामने से शत्रुसेना को विजय करने के लिए परुशा आदि शस्त्रास्त्र लेकर सेनापति सेना के साथ आगे बढ़े। इससे वैश्य, सेवक वर्ग आदि प्रजाओं तथा राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा होगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

संग्राम में ध्वज लेकर प्रयाण

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम्।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम्॥ २॥

पदार्थ–**यत्र**=जिस संग्राम में **कृत-ध्वजः नरः**=झण्डे हाथ में लिये नायक जन **सम् अयन्त**=एक साथ प्रयाण करते हैं और **यस्मिन् आजा**=जिस संग्राम में **किं च न प्रियं भवति**= शायद कुछ ही प्रिय होता हो, **यत्र**=जहाँ **स्वर्दृशः**=सूर्यवत् तीक्ष्ण दृष्टिवाले तेजस्वी पुरुष से **भुवना**=समस्त लोक, प्राणी **भयन्ते**–भय करते हैं **तत्र**=ऐसे संग्रामों में **इन्द्रा-वरुणा**–इन्द्र, वरुण नाम पदाधिकारी जन **नः अधि वोचतम्**=हमारे अध्यक्ष होकर शासन आदि करें।

भावार्थ–इन्द्र और वरुण=राजा और सेनापति अपने ध्वज लेकर संग्रामों में विजय के लिए प्रयाण करें। इससे समस्त प्रजाजन इन दोनों का सम्मान करेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**विराड्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

संग्रामों में स्थिर

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम्॥ ३॥

पदार्थ–जब **भूम्याः अन्ताः**=भूमि के प्रान्त भाग **ध्वसिराः सम् अदृक्षन्त**=सब नष्ट-भ्रष्ट दिखाई देवें **दिविः घोषः आरुहत्**=आकाश या पृथ्वी में बड़ा कोलाहल गूँज रहा हो और **अरातयः**=शत्रु लोग **जनानाम् उप**=राष्ट्रवासी मनुष्यों के पास तक और **माम् उप अस्थुः**=मुझ प्रजावर्ग तक आ पहुँचें ऐसी दशा में भी हे **इन्द्रा-वरुणा**=शत्रु के नाशक और वारक जनो! **हवन-श्रुता**=आह्वान पुकार सुननेवाले आप दोनों दयार्द्र होकर **अवसा आगतम्**=रक्षा-सामर्थ्य सहित प्राप्त होओ।

भावार्थ–यदि शत्रु सेना कोलाहल करती हुई तथा भूमि को नष्ट-भ्रष्ट करती हुए राष्ट्र के अन्दर प्रजाओं तक पहुँच जावे तो भी राजा और सेनापति मनोबल सुदृढ़ रखते हुए शत्रु को परास्त करने का सामर्थ्य जुटावें और प्रजा व राष्ट्र की रक्षा करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

सेना का कर्त्तव्य

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम्।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्रावरुणा**=शत्रु का हनन और वारण करनेवाले वीर वर्गो! आप दोनों **वधनाभिः**=शत्रु को दण्ड देने और नाश करनेवाली नीतियों और सेनाओं से **अप्रति**=अप्रत्यक्ष रूप से **भेदं**=शत्रु को छिन्न-भिन्न **वन्वन्ता**=करते हुए, वा **भेदं वन्वन्ता**=राष्ट्र-भेदक शत्रु का नाश करते हुए **सु-दासम्**-शुभ दानशील भृत्यादि से युक्त राजा की **प्र अवतम्**=अच्छी प्रकार रक्षा करो। **हवीमनि**=परस्पर प्रतिस्पर्द्धा-योग्य संग्राम में **एषां**=इन विद्वान् प्रजाजनों के **ब्रह्माणि**=ज्ञान-वचनों को **शृणुतं**=सुनो। **तृत्सूनां**=शत्रुओं को मार गिरानेवाले वीर सैन्यों और संशयोच्छेदी विद्वानों की **पुरोहितिः**–सबसे आगे स्थिति और अग्रासन पर विराजना **सत्या अभवत्**=सफल हो।

भावार्थ–सेना को योग्य है कि वह युद्धों में शत्रु नाशक नीति को अपनाते हुए राजा की यत्न पूर्वक रक्षा करे। और प्रजाजनों द्वारा दी गई सूचनाओं को विद्वान् जन राजा तक पहुँचावें। इस प्रकार राजा और विद्वान् दोनों का सम्मान होवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**आर्चीजगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

प्रजा की रक्षा

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥ ५ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्रावरुणा**–इन्द्र, शत्रुहन्तः! हे वरुण शत्रुओं के वारक **अर्यः**=शत्रु के किये **अघानि**=पापाचार और **वनुषाम्**-हिंसक जनों या माँगनेवालों में से भी **अरातयः**=दूसरों का अधिकार हरकर न देनेवाले जन ही **मा**=मुझ राष्ट्र-वासी जन को **अभि आ तपन्ति**=सताते हैं। **युवं हि**=आप दोनों निश्चय से **उभयस्य**=मुझ प्रजाजन और मुझे सतानेवाले **वस्वः**=राष्ट्र में बसनेवाले दोनों के ऊपर **राजथः**=राजावत् शासन करो, **अध**=इसलिए आप दोनों **पार्ये दिवि**=पालनेवाले शासन व्यवहार के पद पर स्थित होकर **नः अवतं स्म**=हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–राजा और सेनापति का कर्त्तव्य है कि वे प्रजाओं को बाहरी शत्रुओं के आक्रमणों व राष्ट्र के आन्तरिक हिंसक जनों के त्रास से बचावें। उत्तम शासन व उत्तम सुरक्षा से प्रजा व राष्ट्र की रक्षा करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

प्रजाहित

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥ ६ ॥

पदार्थ–**यत्र**=जिन संग्रामों में **दशभिः राजभिः**=दसों राजाओं वा तेजस्वी पुरुषों से **नि बाधितम्**=अति पीड़ित **सुदासं**=उत्तम दानशील पुरुष की **तृत्सुभिः**=शत्रु को काटनेवाले वीर भटों से **प्र अवतम्**=रक्षा करते हो, उन **आजिषु**=युद्धों में **इन्द्रं च**=ऐश्वर्यवान् और **वरुणं च**= श्रेष्ठ **युवां**=आप दोनों को **वस्वः सातये**-धनैश्वर्यादि के लाभ के लिये **उभयासः**=वादी

प्रतिवादी दोनों पक्ष के लोग **हवन्ते**=पुकारते हैं।

भावार्थ–संग्रामों में पीड़ित जनों को हुए नुकसान की भरपाई के लिए राजा को योग्य है वह प्रजा के मध्य में जाकर दिग्दर्शन करे तथा प्रजाजनों को उचित सहयोग व सहायता करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**आर्षीजगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

नीति कुशल राजा

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु॥ ७॥

पदार्थ–अयज्यवः=देवपूजा और संगति न करनेवाले **दश राजानः**=दस तेजस्वी पुरुष भी **सम् इताः**=एक साथ आकर **सुदासम् न युयुधुः**=उत्तम दानशील तथा शत्रु–नाश में कुशल राजा से नहीं लड़ सकते। **अद्मसदाम्**–समान अन्न पर स्थित **नृणाम्**=मनुष्यों की **उपस्तुतिं**–समीप-समीप बैठकर की गई प्रार्थना भी **सत्या**=फलजनक होती है। **एषाम्**=इनके **देवहूतिषु**=विद्वान् वीरों को आह्वानों, यज्ञों, संग्रामों के अवसरों पर **देवाः**=वीर पुरुष **अभवन्**=सहायक होते हैं।

भावार्थ–युद्धनीति व राजनीति में कुशल राजा के साथ दस महारथी भी एक साथ युद्ध करें तो भी नहीं हरा सकते क्योंकि इस राजा के सहायक वीर वहीं कहीं आस–पास ही होते हैं जो संकेत पाते ही शत्रु पर टूट पड़ेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**आर्षीजगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

कूटनीतिक राजा

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः॥ ८॥

पदार्थ–परियत्ताय=सब ओर से नियन्त्रित, **दाश-राज्ञे**=दशों राजाओं के बीच प्रबल, **सुदासे**=उत्तम दानशील राजा को हे **इन्द्रावरुणा**=ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारणकारी मनुष्य वर्गों! **अशिक्षतम्**=आप दोनों ज्ञान, बल दो **यत्र**=जिसके अधीन **श्वित्यञ्चः**=उज्ज्वल यश, या समृद्धि को प्राप्त **कपर्दिनः**–उत्तम जटाजूट वा उत्तम धन सम्पन्न और **धीवन्तः**–बुद्धिमान्, **तृत्सवः**= शत्रुनाशक, त्रिविध ऐश्वर्यों के स्वामी लोग **नमसा**=आदर पूर्वक अन्न, वज्र, शस्त्रादि-सहित **असपन्त**=समूह बनाकर रहते हैं। (कपर्दिनः–कपर्दः–जटाजूटः अथवा कपर्दः धनम्। कौड़ी इत्युपलक्षणम्। तद्वन्तः) पैसेवाले। अध्यात्म में–दश प्राण, दश इन्द्रियें दश राजा हैं, वे दस स्थानों पर पृथक्–पृथक् विद्यमान हैं। परस्पर उनका कोई सीधा सम्बन्ध न होने से 'अयज्यु' हैं। वे एक ही साथ हमें प्राप्त **सम्-इताः**=हैं। आत्मा 'सुदास' है, प्राण अपान इन्द्र–वरुण हैं। सुखप्रद ज्ञानतन्तु 'तृत्सु' हैं वे सुखपूर्वक होने से 'कपर्दी' हैं। वे 'नमसा, धिया' अन्न और बुद्धि के बल से आत्मा के अधीन हैं।

भावार्थ–प्रजाहितैषी राजा पर यदि दस शत्रु राजा भी एक साथ मिलकर आक्रमण करें तो भी वह नहीं हार सकता। क्योंकि सेना, प्रजा तथा गुप्तचर मिलकर उन शत्रुओं की शक्ति को ध्वस्त कर देंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**विराड्जगती** ॥ स्वरः-**निषादः** ॥

यज्ञव्रतों की रक्षा

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।

हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम्॥ ९ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्रा-वरुणा**=ऐश्वर्यवन्! हे वरुण! दुष्टों के वारक! आप दोनों में से **अन्यः**-एक तो **समिथेषु**-संग्राम और यज्ञों में **वृत्राणि जिघ्नते**=बढ़ते, विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता है और **अन्यः**=दूसरा विद्वान् आचार्य-**सदा व्रतानि अभि रक्षते**-सदा व्रतों की रक्षा करता है। हम लोग **सुवृक्तिभिः**=उत्तम स्तुतियों से **वां हवामहे**=आप दोनों को बुलाते, अपनाते, धन, मान आदि देते हैं। हे इन्द्र! हे वरुण! सेना-सभाध्यक्षो! **अस्मे**-हमें आप दोनों **शर्म यच्छतम्**=सुख दो।

भावार्थ-राजा व सेनापति दोनों मिलकर प्रजाजनों के यज्ञ की रक्षा करें। जो यज्ञों में विघ्न डालनेवाले कुटिल जन हैं उन्हें दण्डित करें, तथा विद्वानों के द्वारा प्रजाजनों के व्रतों की रक्षा करें। इससे राजा प्रजा में प्रतिष्ठित होता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**आर्षीजगती** ॥ स्वरः-**निषादः** ॥

माता-पिता के समान राजा

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।

अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे॥ १० ॥

पदार्थ-**इन्द्र**=ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी **वरुणः**=मेघवत् उदार, वरणीय, **मित्रः**=स्नेही, **अर्यमा**= शत्रुओं के नियन्त्रण में कुशल पुरुष **अस्मे**=हमें **महि द्युम्नं**-बड़ा ऐश्वर्य और **सप्रथः शर्म**-विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि **यच्छन्तु**=प्रदान करें। ये सब **ऋत-वृधः**-सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाने और स्वयं बढ़नेवाले होकर **अदितेः**=अखण्ड शासनकर्त्ता, प्रजा के माता, पिता एवं पुत्रवत् पालक के **अवध्रं**=न नाश होनेवाले **ज्योतिः**-ज्ञान और प्रताप का प्रदान करें। हम भी उसी **देवस्य**-दाता **सवितुः**=प्रभु की **श्लोकं**=वाणी-वेद तथा आज्ञा का **मनामहे**-मान तथा मनन करें।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि वह अपने राष्ट्र में प्रजा के लिए गृह निर्माण, उद्योग विस्तार करके आजीविका व निवास स्थान प्रदान करे। प्रजा को न्याय व सुरक्षा प्रदान कर माता-पिता के समान पालन करे।

अगले सूक्त का भी ऋषि वसिष्ठ व देवता इन्द्रावरुणौ है।

[८४] चतुरशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

इन्द्र वरुण का वरण

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।

प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति॥ १ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्रावरुणा**=ऐश्वर्यवन्! हे सर्वश्रेष्ठ! **राजानौ वां**=दीप्तियुक्त आप दोनों को मैं **हव्येभिः नमोभिः**=अन्नों, शस्त्रों, उत्तम वचनों और आदर-युक्त विनय कार्यों से **ववृत्यां**=वरण करता हूँ। **विषु-रूपा घृताची**=बहुत प्रकार की तेजस्विनी वा स्नेहयुक्त प्रजा **वां**=आप दोनों को

बाह्वोः प्रदधाना=बाहुओं के समान शत्रुओं को पीड़ा देनेवाले प्रधान पदों पर स्थापित करती हुई, पुरुष को स्त्री के समान **परि जिगाति**=सब प्रकार से प्राप्त हो। जैसे स्त्री **वि-सु-रूपा**=विशेष सुन्दरी, **घृताची**=घृताक्त, अंग-प्रत्यंग स्नातानुलिप्त होकर पुरुष को **बाह्वोः प्रदधाना**=बाहुपाश में लेती हुई उसे **त्मना**-स्वयं **परि जिगाति**-अपनाती है वैसे ही प्रजा भी अनुरक्त होकर उक्त इन्द्र-वरुण दोनों को, बाहुवत् सैन्यादि के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर, अपनावे।

भावार्थ-तेजस्वी राजा और सेनापति को प्रजाजन अन्न, शस्त्र तथा आदरयुक्त वचनों एवं आदेश पालन रूप कार्यों से राष्ट्राध्यक्ष व सेना अध्यक्ष के पदों पर नियुक्त करके स्वीकार करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

प्रजाहित के कार्य

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः।

परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम्॥ २ ॥

पदार्थ-**यौ**=जो आप दोनों **अरज्जुभिः**=बिना रस्सियों के **सेतृभिः**=बन्धन करनेवाले राज-नियमों और व्रत-बन्धनों से **सिनीथः**=बाँध लेते हो **युवोः**=उन आप दोनों का **राष्ट्रम्**=राष्ट्र **बृहत्**=बड़ा एवं **द्यौः**=सूर्य तुल्य देदीप्यमान होकर **इन्वति**=सबको प्रसन्न करता है। **वरुणस्य हेडः**=श्रेष्ठ जन का हमारे प्रति क्रोध का भाव **नः परि वृज्याः**=हम से दूर रहे। **इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् राजा वा सेनापति **नः**=हमारे लिये **उरुं लोकं कृणवत्**=निवास हेतु विशाल लोक करे, भूमि को बसने योग्य बनावे।

भावार्थ-राजा और सेनापति सुदृढ़ राजनियमों का पालन कराके प्रजा को नियम में रखें। उत्तम व्यवहार व जनहितकारी कार्यों से प्रजा को प्रसन्न रखें तथा ऊबड़-खाबड़ भूमि को व्यवस्थित कराके उस पर बस्तियाँ बनाकर प्रजाओं को बसावें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

यज्ञों का सम्पादन

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता।

उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम्॥ ३ ॥

पदार्थ-हे विद्वान्, श्रेष्ठ और दुःख निवारक जनो! आप दोनों **नः विदथेषु**=हमारे गृहों में **चारुं यज्ञं कृतं**=उत्तम यज्ञ सम्पादन करो और **सूरिषु**=विद्वानों को **प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतम्**=उत्तम धन दो। **नः**=हमें **देवजूतः रयिः**=विद्वानों से उपदेश और सेवन योग्य ऐश्वर्य **नः उपो एतु**=प्राप्त हो। आप दोनों **स्पार्हाभिः**=चाहने योग्य उत्तम रक्षाओं द्वारा **प्र तिरेतम्**=हमें बढ़ाओ।

भावार्थ-राजा को योग्य है कि वह राज्य में विद्वानों की नियुक्ति करे जो प्रजाओं के मध्य जाकर उनके घरों में उत्तम यज्ञों का सम्पादन कराके तथा ज्ञान का उपदेश करके प्रजाओं को पुरुषार्थी एवं वीर बनने की प्रेरणा करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

अखण्ड शासन-नीति

अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम्।

प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि॥ ४ ॥

पदार्थ–इन्द्रा-वरुणा=हे ऐश्वर्यवन्! हे वरणीय! आप दोनों **अस्मे**=हमें **पुरु-क्षम् वसुमन्तं**–बहुत अन्नसम्पदा और सुवर्णादि से युक्त, **विश्ववारं**–सबसे वरणीय **रयिं**=ऐश्वर्य **धत्तं**=दो। **यः**=जो **आदित्यः**=सूर्य समान तेजस्वी और 'अदिति' अखण्ड शासन–नीति में कुशल और 'अदिति' भूमि का पुत्रवत् प्रिय वा शासक होकर **अनृता**–प्रजा के असत्य व्यवहारों को **प्र मिनाति**=नष्ट करता है वह **शूरः**=वीर पुरुष **अमिता वसूनि दयते**=अमित धन देता है।

भावार्थ–राजा को योग्य है वह अपनी अखण्ड शासन नीति के द्वारा प्रजाओं के असत्य व्यवहारों को नष्ट करके उन्हें राष्ट्र भक्त, पुरुषार्थी तथा वीर बनने की प्रेरणा देकर पुत्रवत् प्रजा का पालन करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

श्रेष्ठ की प्रशंसा

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–मे=मेरी **इयं गीः**=यह वाणी **इन्द्रं**=शत्रुनाशक और **वरुणं**=श्रेष्ठ पुरुष को **अष्ट**=लक्ष्य करके हो। वह **तूतुजाना**=ज्ञान को देती हुई **तनये तोके**=पुत्र–पौत्रादि तक को **प्र अवत्**=प्राप्त हो। **वयम्**=हम **सु-रत्नासः**=शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए **देववीतिं गमेम**–विद्वानों के ज्ञान–प्रकाश और सत्कामना को **गमेम**=प्राप्त करें। हे विद्वान् लोगो! **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात**–हमारी सदा उत्तम साधनों से पालना करो।

भावार्थ–मनुष्य जनों को योग्य है कि विद्वानों की संगति में रहकर ज्ञान का प्रकाश एवं सद्प्रेरणाएँ प्राप्त करें। अपनी वाणी से सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करें। पूर्ण पुरुषार्थ से धन प्राप्त करके अपने पुत्र व पौत्रों को भी सत्यपथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान करें।

अगले सूक्त के ऋषि, देवता यही हैं।

[८५] पञ्चाशीतिततमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वान् की प्रेरणा

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत्।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

पदार्थ–हे ऐश्वर्यवन्! हे श्रेष्ठ जन! मैं **इन्द्राय वरुणाय**=इन्द्र और वरुण ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये **सोमं जुह्वत्**=ऐश्वर्य देता हुआ **वाम्**=आप दोनों की **अरक्षसं मनीषाम्**=दुष्ट-संग–रहित बुद्धि को **पुनीषे**=पवित्र करूँ। **घृत-प्रतीकाम्**=स्नेह से सबको उत्तम लगनेवाली, **उषसं देवीं**=शत्रु को दग्ध करने और विजय की कामनावाली मन की प्रज्ञा को मैं स्वच्छ करूँ। **ता**=वे दोनों **अभीके यामन्**=युद्ध–प्रयाण–काल में **नः उरुष्यताम्**–हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–विद्वान् पुरुष राजा तथा सेनापति दोनों को दुष्टों के संग से दूर रहने की प्रेरणा देकर उनकी बुद्धि को पवित्र करे, जिससे उनके मन में शत्रु का नाश करके विजय की कामना होती रहे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

राष्ट्र ध्वज की रक्षा

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति।

युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः॥ २॥

पदार्थ—अत्र=इस **देव-हूये**=मनुष्यों के स्पर्धा-रूप संग्राम में लोग **स्पर्धन्ते उ वा**=स्पर्द्धा करते हैं तब **येषु ध्वजेषु**=जिन ध्वजाओं पर **दिद्यवः पतन्ति**=चमकती बिजलियों के समान वे पड़ते हैं, हे **इन्द्रा-वरुणा**=शत्रुहन्तः! हे शत्रुवारक! **युवं**=तुम दोनों **तान् अमित्रान्**=उन शत्रुओं को **हतम्**=मारो और **विषूचः पराचः शर्वा**=शत्रुओं को हिंसक शस्त्रों से दूर भगाओ।

भावार्थ—शत्रुसेना यदि राष्ट्र ध्वज को काटकर गिराने का प्रयत्न करे तो राजा और सेनापति शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करके उन शत्रुओं को मार गिरावे तथा राष्ट्र ध्वज की रक्षा करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

इन्द्र और वरुण का कार्य विभाजन

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः।

कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति॥ ३॥

पदार्थ—स्व-यशसः=अपने धनैश्वर्य से यशस्वी, **देवीः**=दानशील, **देवताः**=मानुष-प्रजाएँ **सदः सु**=सभा-भवनों वा उत्तम पदों पर **इद्रं वरुणं धुः**=ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुष को स्थापित करें। उन दोनों में से **एकः**=एक इन्द्र नाम अध्यक्ष **प्रविक्ताः**=अच्छी प्रकार विभक्त **कृष्टीः धारयति**=हलाकर्षित भूमियों को मेघ तुल्य प्रजाओं को धारण करे और **अन्यः**=दूसरा वरुण, शत्रुवारक अध्यक्ष **अप्रतीनि वृत्राणि**=छिपे शत्रुओं को दण्डित करे। इन्द्र का काम प्रजा को विभक्त कर शासनव्यवस्था करना और वरुण का काम दुष्टों का दमन है।

भावार्थ—राजा अपने राज्य की सुव्यवस्था के लिए सम्पूर्ण राज्य को छोटे-छोटे वर्गों=क्षेत्रों में बाँट का सुन्दर प्रशासन की व्यवस्था करे तथा सेनापति राष्ट्र के बाहरी तथा आन्तरिक शत्रुओं का दमन करके राष्ट्र की रक्षा करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः—**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

समृद्ध राष्ट्र का निर्माण

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान्।

आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान्॥ ४॥

पदार्थ—हे **आदित्याः**=अखण्ड राजनीति और भूमि के हितैषी जनो! **यः**=जो **होता**=दानशील पुरुष **शवसा**=स्व बल से तुम दोनों के प्रति **नमस्वान्**=अन्नादि सत्कार से युक्त होता है **सः**=वह **सु-क्रतुः**=शुभ-कर्मकारी और **ऋतचित् अस्तु**=सत्य ज्ञान का उपार्जक हो और जो **अवसे**=रक्षा के लिये **वां आववर्त्तत्**=तुम दोनों को प्राप्त होता है, वह **प्रयस्वान्**=प्रयत्नशील होकर **सुविताय इत् आत्**=सुख प्राप्त करने में समर्थ, **हविष्मान्**=अन्नसम्पन्न हो।

भावार्थ—राष्ट्र भक्त धनी जन राष्ट्र के लिए कर के रूप में धन का दान करें तथा राष्ट्र के पालन एवं समृद्धि में सहयोगी बनें। वीर पुरुष राष्ट्र रक्षा के लिए सेना में भर्ती होकर मातृभूमि की सेवा करे। कर्मचारी लोग परिश्रम और पुरुषार्थ से कृषि एवं उद्योग को बढ़ावें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रावरुणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

श्रेष्ठ की प्रशंसा

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ-मे-मेरी **इयं गीः**=यह वाणी **इन्द्रं**=शत्रुनाशक और **वरुणं**=श्रेष्ठ पुरुष को **अष्ट**=लक्ष्य करके हो। वह **तूतुजाना**=ज्ञान को देती हुई **तनये तोके**=पुत्र-पौत्रादि तक को **प्र अवत्**=प्राप्त हो। **वयम्**=हम **सु-रत्नासः**=शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए **देववीतिं गमेम**-विद्वानों के ज्ञान-प्रकाश और सत्कामना को **गमेम**-प्राप्त करें। हे विद्वान् लोगो! **यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात**-आप सदा हमारी उत्तम साधनों के द्वारा पालन एवं रक्षा करें।

भावार्थ-राष्ट्र भक्त जन शत्रुओं की निंदा व श्रेष्ठ पुरुषों की प्रशंसा करें। पुरुषार्थ पूर्वक धन कमाएँ तथा विद्वानों के उपदेशों से सत्प्रेरणा प्राप्त करें।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता वरुण है।

[८६] षडशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सर्वधारक परमेश्वर

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥

पदार्थ-वरुण परमेश्वर **अस्य महिना**=इसके महान् सामर्थ्य से **जनूंषि**=जन्मधारी समस्त प्राणी **धीरा**=बुद्धि और कर्म द्वारा प्रेरित होते हैं। **यः**=जो **चित्**=पूजनीय **उर्वी रोदसी**=विशाल आकाश और भूमि को **तस्तम्भ**=थामे है, वह ही **बृहंतं**=बड़े **ऋष्वं**=महान् **नाकम्**=सुखस्वरूप परमानन्द को **प्र नुनुदे**=देता है। वह ही **भूम नक्षत्रं च**=बहुत से नक्षत्रों को **पप्रथत्**=फैलाता है।

भावार्थ-इस भूमि, आकाश तथा नक्षत्रों को महान् सामर्थ्यवाला परमेश्वर ही रचकर टिकाता है। वही सुखों का दाता तथा परमानन्द का प्रदाता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

भक्त की तड़प

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥ २ ॥

पदार्थ-उत=और **स्वया तन्वा**=मैं अपने इस देह से **तत्**=उसका **कदा**=कब **संवेद**=साक्षात् करूँ और **कदा नु**=कब मैं **वरुणे अन्तः**=उस वरणीय श्रेष्ठ पुरुष के हृदय में **भुवानि**=एक हो सकूँगा। वह प्रभु, **अहृणानः**=मेरे प्रति कोप-रहित होकर **मे हव्यं**=मेरे स्तुतिवचन को **किं जुषेत**=क्योंकर प्रेम से स्वीकार करेगा और मैं **कदा**=कब **सुमनाः**=शुभ-चित्त होकर उस **मृडीकं**=आनन्दमय का **अभि ख्यम्**=साक्षात् करूँगा।

भावार्थ-ईश्वर का भक्त अपने प्रभु से पूछता है कि हे प्रभो! कब वह अवसर आएगा जब

मैं आपका साक्षात् अपने अन्तःकरण में कर सकूँगा? तथा कब आप मेरी स्तुतियों को प्रेम से स्वीकार करेंगे?

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ईशदर्शन की अभिलाषा

पृच्छे तदेनो॑ वरुण दि॒दृक्षूपो॑ एमि चिकि॒तुषो॑ वि॒पृच्छ॑म्।

स॒मा॒नमिन्मे॑ क॒वय॑श्चिदाहु र॒यं ह॒ तुभ्यं॒ वरु॑णो हृणीते॥ ३॥

पदार्थ—हे **वरुण**=वरणीय प्रभो! मैं **निदृक्षु**=दर्शनाभिलाषी होकर **तद् एनः पृच्छे**=तुझसे वह पाप पूछता हूँ जिसके कारण मैं बँधा हूँ। मैं **उष-उ एमि**=जिज्ञासु होकर तेरे पास आया हूँ और मैं **चिकितुषः**=ज्ञानी पुरुषों से भी **वि पृच्छम्**=पूछता रहा हूँ। **कवयः चित् ये समानम् इत् आहुः**=विद्वान् मुझे एक समान ही कहते हैं कि **अयं वरुणः**=यह वरुण, श्रेष्ठ प्रभु ही **तुभ्यं हृणीते**=तुझ पर रुष्ट है।

भावार्थ—उपासक अपने प्रियतम से पूछे कि हे वरणीय प्रभो! मेरे कौन से पाप का फल है कि मैं आपके दर्शन से वंचित हूँ। विद्वान् लोग तो यही कहते हैं कि वह श्रेष्ठ प्रभु ही पात्रता आने पर तेरा वरण करेंगे। हे प्रभो! मुझ दर्शनाभिलाषी को दर्शन दो।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

अविनाशी से याचना

किमाग॑ आस वरुण॒ ज्येष्ठं॒ यत्स्तो॒तारं॒ जिघां॑ससि॒ सखा॑यम्।

प्र तन्मे॑ वोचो दूळभ स्वधा॒वोऽव॑ त्वाने॒ना नम॑सा तु॒र ई॑याम्॥ ४॥

पदार्थ—हे **वरुण**=सर्वश्रेष्ठ प्रभो! **किम् आगः आस**=वह क्या अपराध है? **यत्**=जिसके कारण **ज्येष्ठं स्तोतारं**=बड़े-बड़े स्तुतिकर्त्ता **सखायं**=मित्र को भी **जिघांससि**=दण्ड देना चाहता है। हे **दूडभ**=दुर्लभ! हे अविनाशिन्! हे दूरभ! सदा दूर, विद्यमान! हे **स्वधावः**=अन्नपते, जीवन के स्वामिन्! **मे तत् प्रवोचः**=मुझे वह उपाय बतला जिससे **अनेनाः**=निष्पाप होकर **नमसा**=भक्ति से **तुरः**=शीघ्र **त्वा अव इयाम्**=तुझ तक पहुँच जाऊँ।

भावार्थ—उपासक प्रभु से पूछे कि हे वरुण प्रभो! किन अपराधों के कारण भक्त भी दण्ड पाता है? हे अविनाशी मुझे वह उपाय बताओ कि जिससे मैं निष्पाप होकर आप तक पहुँच सकूँ।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

आत्म निरीक्षण

अव॑ द्रुग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा॒ नोऽव॒ या व॒यं च॑कृ॒मा त॒नूभिः॑।

अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम्॥ ५॥

पदार्थ—हे **राजन्**=प्रकाशस्वरूप प्रभो! तू **नः**=हमारे **पित्र्या**=माता-पिता के दोष के कारण प्राप्त, **द्रुग्धानि**=तेरे प्रति किये द्रोह आदि अपराधों को **अव सृज**=दूर कर और **वयं**=जिन अपराधों को हम **तनूभिः चकृम**=देहों से करते हैं उनको भी **अव सृज**=दूर कर। **तायुं न पशु-तृपं**=चोरी की नियत से पशु को घासादि खिलानेवाले, सन्देह मात्र में बद्ध चोर के समान बँधन में बँधे, **पशु-तृपं**=अपने इन्द्रियरूप पशुओं को भोग-विलासों से तृप्त करते हुए **तायुं**=तेरे ऐश्वर्य को बिना पूछे भोगनेवाले चोरवत् मुझ **वसिष्ठं**=अति उत्तम 'वसु', तुझमें ही बसनेवाले तेरे भक्त

को तू **दाम्नः वत्सं न**=रस्से से बछड़े के समान, दयालु पशुपालकवत् **अव सृज**-बँधन से मुक्त कर।

भावार्थ-उपासक आत्म निरीक्षण करे कि माता-पिता के दोष के कारण मैंने कौन-सा पाप किया। इन्द्रियों की भोग-विलासों की तृप्ति के लिए कौन-सा पाप किया। परमात्मा की प्रेरणा रूप आत्मा की आवाज को दबाकर मैंने कौन-सा पाप कर्म किया है? इस प्रकार के चिन्तन से उपासक पाप कर्मों से बचकर बंधनों से मुक्त हो जाएगा।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

अनृत=दुःज के कारण

न स स्वो दक्षो॑ वरुण ध्रुतिः सा सुरा॑ मन्युर्वि॑भीदको॑ अचि॑त्तिः।

अस्ति ज्याया॒न्कनी॑यस उपा॒रे स्वप्न॑श्च॒नेदनृ॑तस्य प्रयो॒ता ॥ ६ ॥

पदार्थ-हे **वरुण**=न्यायकारिन् प्रभो! **अनृतस्य**=विवेक रहित, असत्य और अविवेकमय दशा को **प्रयोता**=ला देनेवाला **सः स्वः दक्षः न**=केवल वह अपना कर्म ही नहीं, प्रत्युत और बहुत कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जीव अनृत, पाप, दुःखादि मार्ग में आता है। वे कारण कौन-कौन से हैं? जैसे-(१) अपने किये काम तो हैं ही, या **सः स्वः दक्षः**=वह स्वस्वरूप कर्त्ता आत्मा। (२) **सा ध्रुतिः, सुरा**=वह द्रुतगति से जानेवाले जल के समान आत्मा की 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने की ध्रुति, प्रवृत्ति अर्थात् रजोगुणी काम-वासना भी कारण है। (३) **विभीदकः मन्युः**-वह मन्यु, क्रोध, जिससे सब प्राणी भय खाते हैं वह भी एक कारण है। (४) **अचित्तिः**=ज्ञान न रहना भी एक कारण है। (५) **कनीयसः उप-धारे**=छोटे, अल्पशक्तिवाले जीव के समीप **स्वप्नः चन इत्**=अज्ञान में सोते के समान **ज्यायान् अस्ति**=बड़ा भी अर्थात् उसके माता-पिता, भाई-बन्धु आदि स्वयं अज्ञान वा पाप में मूढ़ रहने से दूसरे को मार्ग दिखाने में असमर्थ होते हैं। छोटा भी संग दोष से उसी ओर जाता है। कोई भी **अनृतस्य प्रयोता न**=अज्ञान को दूर करनेवाला नहीं होता।

भावार्थ-उपासक अनृत दुःज के कारण खोजता हुआ इस निष्कर्ष पर पहुँचा-अपने किए कर्म, रजोगुणी वासना, क्रोध, अज्ञान, निकृष्ट की संगति, बड़ों के द्वारा मार्गदर्शन न मिलना आदि के कारण ही जीव दुःख भोगता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

पाप रहित होके ही ईश्वर साक्षात्

अरं॑ दा॒सो न मी॒ळ्हुषे॑ करा॒ण्य॒हं दे॒वाय॒ भूर्ण॒येऽना॑गाः।

अचे॑तयद॒चितो॑ दे॒वो अ॒र्यो गृत्सं॑ रा॒ये क॒वित॑रो जुनाति ॥ ७ ॥

पदार्थ-**अहं**=मैं **अनागाः**=पाप-रहित होकर **भूर्णये**=पालक **देवाय**=प्रकाशक परमेश्वर के लिये **मीढुषः दासः न**=दाता स्वामी के दास के समान **अरं कराणि**=बहुत सेवा करूँ। वह **देवः**=प्रभु, **अर्यः**-स्वामी **अचितः**-अज्ञानी जनों को **अचेतयत्**-ज्ञान देता है और वह **कवि-तरः**-सर्वाधिक विद्वान् होकर **गृत्सं**=स्तुतिकर्त्ता भक्त को **राये जुनाति**=ऐश्वर्य के लिये सन्मार्ग पर ले जाता है।

भावार्थ-मनुष्य पाप रहित होकर ही परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए परमात्मा प्रदत्त आत्मा में जो प्रेरणा होती है उसे सुनकर ही जीव पाप रहित हो सकता है। वह प्रेरणा है-

लज्जा, भय, शंका व आनन्द, उत्साह, निर्भयता।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

हृदय में ईश्वर पूजा

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।

शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

पदार्थ-हे **वरुण**=कष्टों के वारक! हे **स्वधावः**=जीवों के स्वामिन्! हे अन्नपते! **अयं सः स्तोमः**=यह वह स्तुति-वचनादि **तुभ्यम्**=तेरे लिये **हृदि चित् उप-श्रितः अस्तु**=हृदय में पूजार्थ स्थिर रहे। वह **नः क्षेमे शं उ अस्तु**=हमारे धन-प्राप्ति-काल में शान्तिदायक हो। हे विद्वान् जनो! **सदा यूयं नः पात स्वस्तिभिः**=आप हमारी सदैव उत्तम साधनों से रक्षा एवं पालना करो।

भावार्थ-उपासक ईश्वर की पूजा अपने हृदय मन्दिर में किया करे। पवित्र हृदय से ही ईश्वर की स्तुति के वचन बोले तभी जीवन में शान्ति प्राप्त होगी।

अग्रिम सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता वरुण है।

[८७] सप्ताशीतितमं सूक्तम्

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

वरुण के कार्य

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम्।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

पदार्थ-वरुणः=व्यापक परमेश्वर **सूर्याय**=सूर्य के **पथः**=मार्गों को **रदत्**=बनाता है। वही **समुद्रिया**=समुद्र की ओर जानेवाली **नदीनां अर्णांसि**=नदियों के जलों को बहाता है। **सर्गः न सृष्टः अर्वतीः ऋतायन्**=जैसे बरसा हुआ जल नीची, बहती नदियों की ओर जाता है वैसे **सर्गः**=जगत् का बनानेवाला **सृष्टः**=जगत् का स्वामी **अर्वतीः**=अधीन महती शक्तियों और प्रकृति की विकृतियों को **ऋतायन्**=ज्ञानपूर्वक सञ्चालित करता हुआ **अहभ्यः महीः अवनीः चकार**=दिनों से रात्रियों को पृथक् करता है।

भावार्थ-जब व्यक्ति सूर्य के उदय से अस्ताचल की ओर जाना, नदियों का समुद्र की ओर बहना, दिन का प्रकाशित और रात्रि का अन्धकारमय होना देखता है तो प्रश्न होता है कि यह सब कौन कर रहा है? उत्तर में केवल वरुण परमेश्वर ही आता है।

ऋषि:-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

व्यापक परमेश्वर

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्।

अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥

पदार्थ-हे **वरुण**=सर्वव्यापक प्रभो! **वातः रजः**=जैसे वायु धूलि को **आ नवीनोत्**=सब तरफ उड़ाता है वैसे ही **वातः**=बलशाली **ते आत्मा**=तेरा व्यापक सामर्थ्य **रजः**=ब्रह्माण्डों में फैले, धूलि-कणवत् लोकों को **आ नवीनोत्**=सञ्चालित करता है। अध्यात्म में-**ते आत्मा वातः**=तेरा आत्मा, जीवभूत प्राण देह में **रजः आ नवीनोत्**=रक्तप्रवाह को प्रेरित करता है। **यवसे पशुः न ससवान् भूर्णिः**=घास, भूसा आदि पर पलनेवाला पशु जैसे अन्नादि से लादा जाकर स्वामी

के भरण-पोषण में समर्थ होता है वैसे ही यह **वातः**=वायु वा **ते आत्मा**=तेरा महान् सामर्थ्य ही **ससवान्**-अन्नादि ऐश्वर्य से समृद्ध होकर **भूर्णिः**-विश्व के भरण-पोषण में समर्थ होता है। **इमे बृहती मही रोदसी अन्तः**-इन विशाल, सुख देनेवाले आकाश-भूमि या सूर्य-भूमि के बीच **ते**=तेरे **विश्वा**-समस्त **प्रियाणि**-प्रिय **धाम**=तेज और विश्वधारक लोक, सामर्थ्य हैं।

भावार्थ-समस्त लोक-लोकान्तरों का सञ्चालन ईश्वर अपनी परमेश्वरी शक्ति से कर रहा है। विश्व का भरण-पोषण भी वही करता है। उसीका तेज सूर्य आदि में चमक रहा है। यह सब उसकी व्यापकता से ही सम्भव है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ऋतावान् विद्वान्

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥

पदार्थ-वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः=जैसे दुष्टों के निवारक राजा के 'स्पश्'-गुप्तचर, अभिप्रायवान् होकर **उभे सु-मेके पश्यन्ति**=ऊपर से देखने में अच्छे-अच्छे और बुरे शास्य शासक दोनों वर्गों को देखते हैं वैसे ही **ये**=जो **प्र-चेतसः**=उत्तम ज्ञानवान् पुरुष **मन्म**-मनन योग्य ज्ञान की **इषयन्त**=अन्नवत् चाहना करते हैं वे **ऋतावानः**=वेदमय तप का सेवन करते हुए, **यज्ञ-धीराः**=त्यागयुक्त कर्म को करते, उसका अन्यों को उपदेश करते हुए **वरुणस्य स्पशः**=प्रभु के सिपाहियों के समान, उसकी बनाई सृष्टि और व्यवस्थाओं का साक्षात् दृष्टा **स्मदिष्टाः**=एक साथ समान इष्ट वा समान उत्तम लक्ष्यवाले होकर **उभे**=दोनों **सु-मेके**-सुखप्रद मेघादि से युक्त **रोदसी**-सूर्य और भूमि के समान **सुमेके**=शुभ वीर्यसेचन में समर्थ, सन्तानोत्पादक माता-पिता को सृष्टि का कारण यथावत् **परि पश्यन्ति**-देखते हैं।

भावार्थ-वेदज्ञान के धारण करनेवाले तपस्वी जन ईश्वर के द्वारा निर्मित सृष्टि का सूक्ष्मता के साथ साक्षात् कर लेते हैं। उन्हें बरसते हुए मेघों में तथा माता पिता द्वारा की गई सन्तानोत्पत्ति में भी उस परमेश्वर की सृष्टि रचना का सामर्थ्य ही दृष्टिगोचर होता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ब्रह्म के रहस्यों का उपदेश

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥

पदार्थ-मे मेधिराय-मुझ बुद्धिमान् पुरुष को **वरुणः**-वरणीय प्रभु **उवाच**=उपदेश करता है कि **अघ्न्या**=अविनाशी, परमेश्वरी या प्रकृति शक्ति **त्रिः सप्त नाम**=तीन गुना सात अर्थात् २१ स्वरूपों को **बिभर्त्ति**=धारण करती है। **विप्रः विद्वान्**=विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् **उपराय**=समीप-स्थित **युगाय**=मनोयोग से विद्या-ग्रहण करनेवाले शिष्य को **शिक्षन्**=उपदेश देता हुआ **पदस्य**-परमप्राप्य ब्रह्म के **गुह्या न**-रहस्यों का **वोचत्**=उपदेश करे।

भावार्थ-बुद्धिमान् पुरुष इस सृष्टि को देखकर परमेश्वर की रचना सामर्थ्य का दिग्दर्शन करता है तथा अपने शिष्यों को सृष्टि के रहस्यों को प्रकट करता हुआ ज्ञानोपदेश प्रदान करता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सृष्टि वरुण में स्थित है

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम्॥ ५ ॥

पदार्थ-तिस्रः द्यावः=तीनों लोक, भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ **अस्मिन् अन्तः निहिताः**=वरुण परमेश्वर के ही भीतर स्थित हैं और **तिस्रः भूमीः**=तीनों भूमियाँ **उपराः**=एक दूसरे के समीप स्थित **षड् विधानाः**=छह-छह प्रकार के ऋतु आदि विधानों सहित उसके ही भीतर हैं। **गृत्सः**=ज्ञान का उपदेष्टा **राजा**=सर्वोपरि शासक **वरुणः**=वरण-योग्य प्रभु ही **दिवि**=आकाश में **प्रेङ्खं**=उत्तम गति से जानेवाले **एतं**=उस **हिरण्ययम्**=तेजोमय सूर्य को, अन्तरिक्ष में गतिमान्, हित, रमणीय रूप वायु को और भूमि पर तेजोमय अग्नि को **शुभे**=दीप्ति, जल और कान्ति के लिये **चक्रे**=बनाता है।

भावार्थ-विद्वान् पुरुष समस्त लोकों तथा उन लोकों में उपस्थित दीप्ति, जल, कान्ति आदि सामर्थ्यों को उस व्यापक परमेश्वर में ही देखता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सृष्टि का पालक व्यापक परमात्मा

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा॥ ६ ॥

पदार्थ-द्यौः इव सिन्धुं=सूर्य जैसे अकेला समस्त आकाश में व्यापता है वैसे ही परमेश्वर **द्यौः**=तेजस्वरूप, **वरुणः**-सर्वव्यापक होकर **सिन्धुं**=वेगवाले प्रकृति के बने जगत्-प्रवाह को **अव स्थात्**=व्यवस्थित करता है। वह **द्रप्सः न श्वेतः**=जलविन्दुवत् रसस्वरूप व कान्तिमय है। वह **मृगः**=सिंहवत् बलवान् वा **मृगः**=ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य और **मृगः**=पावन स्वरूप, **तुविष्मान्**=सर्व शक्तिमान् है। वह **गम्भीर-शंसः**=गम्भीर समुद्र तुल्य अगाध और प्रशंसा-योग्य, **रजसः विमानः**=इस समस्त लोक-समूह का विशेष निर्माता है, वह **सुपार-क्षत्रः**=सुख से सर्वपालक, बलैश्वर्यवान्, **अस्य सतः राजा**=इस व्यक्त संसार का राजावत् शासक है।

भावार्थ-परमेश्वर सृष्टि में व्यापक है। ज्ञानी जन उसी की खोज करते हैं क्योंकि वह सबका पालक तथा शासक है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वरुणः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

अखण्ड नियमों में चलकर निष्पाप रहें

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७ ॥

पदार्थ-यः=जो परमेश्वर **आगः चकृषे चित्**=अपराध करनेवाले के भले के लिये **मृडयाति**=उस पर दया करता है, उस **वरुणे**=प्रभु के अधीन हम **अनागाः स्याम**=निष्पाप रहें। उस **अदितेः**=अखण्ड प्रभु के **व्रतानि अनु**=नियमों के अनुकूल **ऋधन्तः**=समृद्ध, हे विद्वान् जनो! **यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात**=आप सदैव उत्तम साधनों से हमारी रक्षा एवं पालन करो।

भावार्थ-मनुष्य लोग परमात्मा के बनाए हुए नियमों में चलकर स्वयं को निष्पाप बनावें।

यही एक मात्र उपाय है।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता वरुण ही है।

[८८] अष्टाशीतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वरुणः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

आत्मसमर्पण

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व।

य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम्॥ १ ॥

पदार्थ–यः=जो परमेश्वर **ईम्**=इस **अर्वाञ्चं**–अभिमुख आये **यजत्रं**=आत्मसमर्पक और सत्संगतिवाले पुरुष को **सहस्र-मघं**=सहस्रों धनों से सम्पन्न, **वृषणं**=मेघवत् उदार और **बृहन्तम् करते**=बड़ा बना देता है उस **वरुणाय**–ऐश्वर्यदाता **मीढुषे**–ऐश्वर्यों की वृष्टि करनेवाले, परमेश्वर के निमित्त **प्रेष्टां**=अति प्रिय **मतिं**–स्तुति और बुद्धि का **प्र भरस्व**=प्रयोग कर।

भावार्थ–जो उपासक सत्संगति में रहते हुए ईश्वर के प्रति सर्वभाव से समर्पण करते हैं उसी की स्तुति करते हैं वे ऐश्वर्यशाली होकर उदार तथा महान् बनते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वरुणः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ईश-तेज का मनन

अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि।

स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात्॥ २ ॥

पदार्थ–अध नु=और मैं **अस्य**–इस **अग्नेः**–तेजोमय **वरुणस्य**=परमेश्वर के विषय में **जगन्वान्**–ज्ञान प्राप्त कर और उसकी शरण जाकर उसके **सं-दृशम्**–सम्यक्–दर्शन–योग्य **अनीकं**= तेज का **मंसि**=मनन करता हूँ। **यद्**–जैसे **अश्मन् अन्धः वपुः दृशये निनीयात्**=चक्की आदि में पीसा अन्न या कुटी ओषधि, या **अश्मन् अन्धः**=मेघ के आधार पर उत्पन्न अन्न शरीर को उत्तम, दर्शन योग्य बनाता है वैसे ही **यत्**=जो **अधिपाः**=सर्वोपरिपालक **स्वः**–सुखकारी है वह **अन्धः**=अन्नवत् प्राणों का धारक होकर **दृशये**=साक्षात् करने के लिये **मा**=मुझे **वपुः**=रूप, शरीर आदि **निनीयात्**–प्राप्त कराता है।

भावार्थ–उपासक जन ईश्वर के प्रति समर्पण करके सदैव उसके तेजोमय स्वरूप का दिग्दर्शन करें और उसी का मनन किया करें क्योंकि यह अन्नमय शरीर परमेश्वर ने इसी निमित्त दिया है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वरुणः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

जल गमन काल में भी ईश चिन्तन

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।

अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्॥ ३ ॥

पदार्थ–अहं=मैं और **वरुणः च**=वरणीय स्वामी, दोनों दो मित्रों के समान वा पति–पत्नीवत् **यत् नावम् आ रुहाव**=जब नाव पर चढ़ें **यत् समुद्रम् मध्यम् ईरयाव**=और जब समुद्र के बीच उसको चरावें **यत् अधि अपां**–जब जलों के ऊपर **स्नुभिः चराव**=गमनशील यानों से विचरें तो **शुभे**=शोभा और **कम्**–सुख पाने के लिये **प्रेङ्खे**–झूले पर **प्रेङ्खयावहे**=हम दोनों

झूलें।

भावार्थ—यात्रा काल में भी जब मनुष्य नाव आदि के द्वारा जलों में विचरण करता है। तब भी उस परम मित्र परमेश्वर को अपने साथ अनुभव करता हुआ उसी का मनन करे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

वेदवाणी रूप नौका

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।

स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः॥ ४॥

पदार्थ—**वरुणः**=वरणीय आचार्य के **वसिष्ठं**=अधीन वस कर ब्रह्मचारी शिष्य को **नावि**=ज्ञान–सागर से पार उतारनेवाली वेदवाणी रूप नौका में **ह**=अवश्य **आधात्**=स्थापित करे। वह स्वयं **स्वपाः**=कर्मशील होकर **महोभिः**=बड़े–बड़े गुणों से **वसिष्ठं ऋषिं चकार**=उत्तम ब्रह्मचारी को वेद–मन्त्रार्थों को यथार्थ देखने में विद्वान् बनावे। **विप्रः**=विद्याओं से शिष्य को पूर्ण करनेवाला आचार्य **अन्हां सू-दिनत्वे**=दिनों को शुभ बनाने के लिये **यात् द्यावा नु यात् उषसः नु**=आये दिनों और आयी रातों में भी **स्तोतारं ततनन्**=अध्ययनशील शिष्य को विस्तृत ज्ञानवान् करे।

भावार्थ—विद्वान् आचार्य अपने ब्रह्मचारी शिष्यों को दिन–रात अध्ययन कार्य में जुटे रहकर तप करने की प्रेरणा करे। वह गुरु उत्तम उपदेश करके संसार सागर से पार उतरने की नौका के रूप में वेद ज्ञान प्रदान करके शिष्य को पूर्ण ज्ञानवान् बनावे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

प्राणपति सखा

क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित्।

बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते॥ ५॥

पदार्थ—हे **वरण**=वरणीय! हे **स्वधावः**=प्राणपते! **नौ**=हम दोनों के **त्यानि सख्यानि**=वे नाना मित्रता के भाव **क्व बभूवुः**=कहाँ हुए, **यत्**=जो हम दोनों **पुराचित्**=मानो पूर्वकाल से **अवृकं**=परस्पर चोरी का भाव न रखते हुए **सचावहे**=मिलकर रहें। हे **वरुण**=वरणीय! हे **स्वधावः**=अमृत के स्वामिन्! हम **बृहन्तं**=महान् **मानं**=परिमाणवाले **सहस्रद्वारं**=सहस्रों द्वारवाले **गृहं जगाम**=घर को प्राप्त हों।

भावार्थ—परमात्मा प्राणों का भी प्राण है ऐसा जानकर उपासक जीव उस परमेश्वर से मित्रता करे। इससे मनुष्य चोरी आदि पाप भावों से बचकर अनन्त सुख को प्राप्त कर सकेगा।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

सदा रहनेवाला मित्र

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते।

मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम्॥ ६॥

पदार्थ—हे **वरुण**=प्रभो! राजन्! तू **नित्यः**=सदा का **आपिः**=बन्धु **प्रियः**=प्रिय **सन्**=होकर हमें प्राप्त है, उस **त्वाम्**=तेरे प्रति **ते सखा**=तेरा मित्र यह जीव **आगांसि कृणवत्**=नाना अपराध करता है। हे **यक्षिन्**=यक्ष 'अर्थात्' पूजा करनेवाले भक्त जनों के स्वामिन्! हम लोग **ते**=तेरे ऐश्वर्य का **एनस्वन्तः**=पापी होकर **मा भुजेम**=भोग न करें। तू **विप्रः**=मेधावी **स्तुवते**=स्तुतिशील को

वरूथं यन्धि=वरणीय एवं दुःखों को दूर करने योग्य उत्तम गृह और बल दे।

भावार्थ—परमेश्वर जीव का सदा रहनेवाला मित्र है किन्तु यह अज्ञान के कारण ईश्वर को भूलकर नाना प्रकार के अपराध कर बैठता है इससे वह परमात्मा के द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य का भोग नहीं कर पाता। मनुष्य लोग सुखी रहने के लिए ईश की स्तुति-स्मरण सदैव किया करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

परमेश्वर जीवों के कर्म बन्धन काटता है

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत्।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

पदार्थ—परमेश्वर जीवों के कर्म-बन्धन किस प्रकार काटता है? हम लोग **आसु ध्रुवासु क्षितिषु**=इन धारने योग्य, कर्म और भोग-भूमियों में **क्षियन्तः**=निवास करते हुए वा ऐश्वर्ययुक्त, वा क्षीण होते हुए, कभी ऊर्ध्वगति, कभी नीच गति प्राप्त करते हुए, **अदितेः उपस्थात्**=भूमि से **अवः वन्वानाः**=तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करते हैं और जैसे **अदितेः उपस्थात् अवः अन्वानाः**= सूर्य से दीप्ति प्राप्त करते हैं वैसे ही **अदितेः**=अखण्ड परमेश्वर से हम **अवः**—रक्षा सुख, प्रेम **वन्वानाः**=प्राप्त करते रहें। वह **वरुणः**=प्रभु **अस्मत् पाशं**=हम से पाश को **वि मुमोचत्**=छुड़ाता है। हे विद्वान् पुरुषो! **नः यूयं सदा स्वस्तिभिः पात**=आप लोग हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करो।

भावार्थ—जीव कर्म के अनुसार भोग व भूमियों को भोगता हुआ ऊँची व नीची योनियों में जाता है। दुःख और सुख को भोगता है। किन्तु जब वह परमेश्वर की रक्षा व प्रेम का अनुभव करने लगता है तो ईश्वर उसको कर्म पाश-बन्धन से मुक्त कर देता है।

आगामी सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता वरुण है।

[८९] एकोननवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता **वरुणः** ॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

दयालु की दया

मो शु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्। मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥

पदार्थ—हे **वरुण**=सर्वश्रेष्ठ! हे **राजन्**=देदीप्यमान! हे **सुक्षत्र**=उत्तम धन, ऐश्वर्य, बल से सम्पन्न! **अहम्**=मैं **मृन्मयं गृहम्**—मिट्टी के बने गृह के तुल्य नश्वर, मृत्यु से आक्रान्त, वा ग्रहण-योग्य, वा आत्मा को पकड़े हुए इस देह को **मोषु गमम्**—कभी न प्राप्त करूँ तो अच्छा हो! हे प्रभो! **मृड**=सबको सुखी करने हारे दयालो! तू **मृडय**=सुखी कर, हम पर दया कर।

भावार्थ—जीवों को आवागमन से छूटने के लिए वरुण परमात्मा की दया प्राप्त करनी चाहिए इसके लिए देहाभिमान को छोड़ने तथा ईश्वर की दीप्ति से जुड़ने का प्रयास करना चाहिए।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**वरुणः** ॥ छन्दः—**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः—**षड्जः** ॥

शरणागत को सुखी कर

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः। मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥

पदार्थ—हे **अद्रिवः**=पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के स्वामिन्! प्रभो! **यत्**=जब मैं **प्रस्फुरन् इव**=तड़पता हुआ-सा, **दृतिः न ध्मातः**—कुप्पे के समान फूला हुआ, फूँक से भरे चर्मवाद्य के समान रोता-

गाता **एभि**=शरण आऊँ, हे **सुक्षत्र**=सुबल! सुधन! तू मुझे **मृड मृडय**=सुखी कर।

भावार्थ–जब मनुष्य अहंकार अभिमान में फूलकर कुप्पा हो जाता है तो अन्दर से जलने लगता है, तड़पता है। ऐसी स्थिति में केवल प्रभु की शरण में ही सुखी करने का सामर्थ्य है अतः उसी की पुकार कर।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वरुणः** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

उत्तम बालवाले मुझ पर कृपा कर

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे। मृळा सुक्षत्र मृळय॥ ३॥

पदार्थ–हे **समह**=पूज्य! **दीनता**=दीन होने के कारण मैं **क्रत्वः**=सत् कर्म और सत् ज्ञान के **प्रतीपं जगम**=विपरीत चला गया हूँ और **शुचे**=शोक करता हूँ। अथवा हे **शुचे**=शुद्ध प्रभो! हे **सु-क्षत्र**=बलशालिन्! तू **मृड, मृडय**=सुखी कर, कृपा कर।

भावार्थ–दुर्बल मानसिकता का मनुष्य सत्कर्मों को छोड़ दुष्कर्मों में लग जाता है इससे महान् दुःख पाता है। अतः मनुष्य उत्तम बलवाले परमेश की शरण में जाकर उसकी कृपा का पात्र बनने का प्रयास करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वरुणः** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

पानी में मीन पियासी

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्। मृळा सुक्षत्र मृळय॥ ४॥

पदार्थ–हे **सुक्षत्र**=उत्तम बल के स्वामिन्! **अपां मध्ये तस्थिवांसं**=जलों के बीच में खड़े **जरितारं**=रोगादि से जीर्ण होते हुए पुरुष को जैसे **तृष्णा अविदत्**=प्यास सताती है वैसे ही हे प्रभो! **जरितारं**=तेरे स्तोता **अपां मध्ये तस्थिवांसं**=आप्त पुरुषों के बीच या प्राणों से पूर्ण शरीर के बीच रहनेवाले मुझको भी **तृष्णा**=भूख-प्यास के समान विषय-भोगादि की लालसा प्राप्त है, हे प्रभो! हे **मृड, मृडय**=सबको सुखी करने हारे! तू मुझे सुखी कर।

भावार्थ–परमात्मा परम आनन्द का सागर है किन्तु विषय भोगों में फँसा हुआ अज्ञानी जीव उसके आनन्द को वैसे ही प्राप्त नहीं कर पाता जैसे तृषा रोग का जीर्ण रोगी पानी में खड़ा रहकर भी प्यास से तृषित ही रहता है। अतः भोग-विलास को छोड़ ईश शरण में जाकर सुखी हो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वरुणः** ॥ छन्दः–**पादनिचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

सत्पुरुषों से द्रोह न कर

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः॥ ५॥

पदार्थ–हे **वरुण**=प्रभो! **दैव्ये जने**=विद्वान् सत्पुरुष के हितकारी जन के ऊपर रहकर हम **मनुष्याः**=मनुष्य **यत् किं च**–जो कुछ भी **इदं अभिद्रोहं**–इस प्रकार का द्रोह आदि **चरामसि**=करते हैं और **अचित्ती**=बिना ज्ञान के **यत् तव धर्मा युयोपिम**=जो तेरे बनाये नियमों को उल्लंघन करते हैं, हे **देव**=प्रभो! राजन्! **तस्माद् एनसः**=उस अपराध या पाप से **नः मा रीरिषः**=हमें दुःखित मत कर।

भावार्थ–जो मनुष्य विद्वान् सत्पुरुषों से द्रोह करता है तथा ईश्वर के बनाए सृष्टि-नियम का उल्लंघन करता है वह अज्ञानी सदैव दुःखी एवं अशान्त रहता है। अतः मनुष्य ईश्वर की शरण में जाकर उसके नियमों का पालन व विद्वानों का सत्कार करते हुए दुःखों से दूर रहे।

अग्रिम सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता वायु, इन्द्रवायू हैं।

षष्ठोनुवाकः

[९०] नवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सेनापति के गुण

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय॥ १॥

पदार्थ–हे **वायो**=ऐश्वर्यवन्! हे वायुवत् बलवान् वीर सेनापते! **शुचयः**=शुद्ध आचारवान्, धार्मिक **वीरया=वीराः**=वीर **मधुमन्तः**=बलवान्, मधुर प्रकृति, **सुतासः**=योग्य पदों पर अभिषिक्त पुरुष **अध्वर्युभिः**=प्रजा की हिंसा पीड़ा न चाहनेवाले सोम्यवृत्ति विद्वानों सहित **वाम् प्र दद्रिरे**=तुम दोनों को प्राप्त होते हैं। हे **वायो**=वायुवत् बलवन्! तू **नियुतः**=सहस्रों अश्वादि सेनाओं को **वह**=सन्मार्ग पर ले चल और **सुतस्य अन्धसः**=ऐश्वर्य से समृद्ध अन्न को **याहि**=प्राप्त कर और **मदाय**=तृप्ति के लिये उसका **पिब**=उपभोग कर।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह वीर, बलवान्, सत्यवादी, सदाचारी, प्रजा को न सतानेवाले पुरुष को सेनापति पद पर नियुक्त करे। वह सेनापति प्रजाओं को विद्वानों के सहयोग से सन्मार्ग पर चलाकर ऐश्वर्य सम्पन्न बनावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वान् के संग से लाभ

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य॥ २॥

पदार्थ–हे **वायो**=विद्वन्! **यः**=जो **शुचि-पाः**=शुद्ध आचार, व्यवहार का पालक पुरुष **ते ईशानाय**=तुम सर्वैश्वर्यवान् का **शुचिं सोमं**=शुद्ध अन्नादि, ऐश्वर्य और **प्रहुतिं**=सर्वोत्तम दान **आनट्**=प्राप्त कराता है, **तं**=उसको तू **मर्त्येषु**=मनुष्यों के बीच **प्रशस्तं कृणोषि**=कर्मकुशल बना देता है और वह **जातः-जातः**=उत्तम रूप से प्रकट होकर **अस्य**=इस प्रजाजन के बीच **वाजी**=ज्ञानवान्, बलवान् **जायते**=हो जाता है।

भावार्थ–विद्वानों के संग में आनेवाला मनुष्य व्यवहार कुशल होकर ज्ञानी व दानी स्वभाववाला होजाता है। इससे वह प्रजा जनों के मध्य में जाकर प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–त्रिष्टुप्॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तीन सभाएँ

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके॥ ३॥

पदार्थ–**इमे रोदसी**=आकाश व भूमि के तुल्य ये माता-पिता, राजसभा-प्रजासभा दोनों **राये**=राष्ट्र में ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये **नु**=ही **यं**=जिसको **जज्ञतुः**=उत्पन्न करते और **यं देवम्**=जिस विजिगीषु को **धिषणा देवी**=सर्वोपरि विद्यमान विद्वत्सभा भी **राये**=ऐश्वर्य-रक्षा के लिये

धाति=स्थापित करती है, उस **वायुं**=शत्रु को वायुवत् मूल से उखाड़ने में समर्थ पुरुष को **स्वाः**=उसकी अपनी **नियुतः**=लक्षों सेनाएँ और प्रजाएँ **सञ्चत**=प्राप्त होती हैं **उत**=और उसी **श्वेतं**=शुद्धाचारी को **निरेके**=श्रेष्ठ पद पर **वसु-धितिम्**=ऐश्वर्य की ख्यातिवाला जानकर प्राप्त होते हैं।

भावार्थ–राष्ट्र में समस्त व्यवस्थाएँ सुचारु रूप से चलाने के लिए तथा राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर प्रतिष्ठित करने के लिए राजसभा, प्रजासभा तथा विद्वत्सभा इन तीनों का गठन होना चाहिए। ये सभाएँ मिलकर सदाचारी, वीर, पराक्रमी तथा नीति निपुण व्यक्ति को राजा के पद पर नियुक्त करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

छोटी उम्र में ईश्वर का ध्यान

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥

पदार्थ–जैसे **उषसः**=प्रभात वेलाएँ वा सूर्य की दाहक कान्तियें **सु-दिनाः उच्छन्**=उत्तम दिनवाली होकर प्रकट होती हैं, **अरि-प्राः**=पाप-रहित **दीध्यानाः**=देदीप्यमान, **उरु ज्योतिः विविदुः**=बहुत बड़े विशाल प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त करती **उशिजः**=कान्तियुक्त होकर **गव्यम् ऊर्वम् विवव्रुः**=रश्मियों के बड़े धन को फैलाती है **अनु प्रदिवः आपः सस्रुः**=अनन्तर आकाश से मेघ जल बरसते हैं वैसे ही **उषसः**=उषावत् जीवन के प्रारम्भ भाग में वर्त्तमान नर-नारीगण **सु-दिना**=शुभ दिन युक्त होकर **उच्छन्**=अपने गुण प्रकट करें और वे **दीध्यानाः**–ईश्वर-ध्यान करते हुए **उरु ज्योतिः**=बड़ी भारी ज्ञान-ज्योति को **विविदुः**=प्राप्त करें। वे **उशिजः**=प्रीतियुक्त होकर **गव्यम् ऊर्वम्**=वेदवाणी के धन को **विवव्रुः**=विविध प्रकार से वितरण करें, उसकी व्याख्या करें। **तेषाम् अनु**=उनके पीछे-पीछे ही **प्र-दिवः**=उत्तम फल की कामनावाली **आपः**=आप्त प्रजाएँ **सस्रुः**=चलें।

भावार्थ–स्त्री-पुरुष जीवन के प्रारम्भ काल अर्थात् छोटी उम्र से ही ईश्वर का ध्यान किया करें। इससे उनमें ईश्वर का दिव्य तेज चमकने लगेगा तथा वे ब्रह्मचारी होकर वेदवाणी का स्वाध्याय प्रीतिपूर्वक करते हुए अन्यों के सामने वेद की विविध व्याख्याएँ प्रकट करके प्रजाओं को आप्त प्रजा बना सकेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रवायू** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

आत्म योगी राष्ट्र को धारें

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थ–**ते**=वे ज्ञानवान्, विद्वान् लोग **सत्येन मनसा**=सत्य चित्त और सत्य ज्ञान से **दीध्यानाः**= चमकते हुए **स्वेन युक्तासः**=अपने आत्मसामर्थ्य से युक्त होकर **दीध्यानाः**=चमकते हुए वा आत्मयोग का अभ्यास करते हुए **युक्तासः**=योगी होकर **स्वेन क्रतुना**=अपने ज्ञान और बल से **वहन्ति**=रथ को अश्वों के तुल्य देह को धारण करते हैं। हे **इन्द्र-वायू**=ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! **ईशानयोः वाम्**=शासक-रूप आप दोनों के **वीरवाहं रथं**=वीरों के धारक, रथवत् रमणीय उपदेश वा स्थिर पद वा राष्ट्र को **वहन्ति**=धारण करते और सञ्चालित करते हैं और वे

पृक्षः=प्रीतियुक्त होकर **अभि सचन्ते**=परस्पर समवाय बनाकर रहते हैं।

भावार्थ–ज्ञानी लोग सत्य ज्ञान से युक्त चित्तवाले होकर आत्म साधना करके योगी बनें। ऐसे योगीजन राजा व सेनापति आदि पदों को प्राप्त करके राष्ट्र को धारण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रवायू**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

समृद्ध राष्ट्र

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः॥ ६॥

पदार्थ–ये–जो **ईशानासः**–ऐश्वर्यवान् और शासन–अधिकार से युक्त होकर **नः**=हमारे सर्वस्व राष्ट्र और सुखादि को **गोभिः**=गौओं और भूमियों **अश्वेभिः**=घोड़ों **वसुभिः**=विद्वानों, **हिरण्यैः**–सुवर्णादि धातुओं और रमणीय साधनों से **विश्वम् आयुः**=पूर्ण जीवन **दधते**=धारण करते हैं हे **इन्द्रवायू**=ऐश्वर्यवान् बलवान् प्रधान नायक पुरुषो! वे **सूरयः**=विद्वान् **अर्वद्भिः वीरैः**=शत्रुनाशक वीर पुरुषों द्वारा **पृतनासु**=संग्रामों में **सह्युः**=विजय करें।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह सम्प्रभुता=पूर्ण शासन–अधिकार के साथ सम्पूर्ण राष्ट्र को गौ, भूमि, अश्व, विद्वान्, स्वर्ण आदि समस्त साधनों से सम्पन्न करे तथा शत्रुओं को विजय करने का सामर्थ्य प्राप्त करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रवायू**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

उत्तम ब्रह्मचारी

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७॥

पदार्थ–हम लोग **अर्वन्तः**=शत्रुनाशक वीर पुरुषों और अश्वों के समान बलवान्, **श्रवसः भिक्षमाणाः**=श्रवण योग्य ज्ञान की योग्य गुरुओं और अन्न की गृहस्थों से याचना करते हुए, **वसिष्ठाः**=उत्तम ब्रह्मचारी होकर **सु-अवसे**=उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं **वाजयन्तः**=ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए **इन्द्रवायू हुवेम**=ऐश्वर्यवान् और बलवान् जनों को प्राप्त करें। **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करें।

भावार्थ–मनुष्यों को योग्य है कि वे विद्वान् गुरुओं की शरण में जाकर ज्ञान की याचना करें तथा उत्तम ब्रह्मचारी बनकर गृहस्थों से अन्न की भिक्षा ग्रहण करते हुए जीविकोपार्जन करें। इस प्रकार तप करते हुए उत्तम ज्ञान, बल, पराक्रम आदि में पारंगत होकर राष्ट्र को ऐश्वर्य सम्पन्न बनावें।

आगामी सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता वायु तथा इन्द्रवायू है।

[९१] एकनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**वायुः**॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

तेजस्वी सेनानायाक

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण॥ १॥

पदार्थ–**ये**=जो **नमसा**=शत्रु को नमानेवाले बल से **पुरा**=पहले **वृधासः**=बढ़ने हारे **अनवद्यासः**=अनिन्दिताचरणवाले, **देवाः**=धन, पुत्र आदि के अभिलाषी **आसन्**=रहते हैं **ते**=वे **वायवे**=वायु तुल्य बलवान् वा प्राणवत् प्रिय, **मनवे**=मननशील, **बाधिताय**=पीड़ित प्रजा की रक्षा के लिये **उषसं**=प्रभात के समान तेजस्विनी सेना को **सूर्येण**=तेजस्वी नायक पुरुष के साथ **बाधिताय मनवे**=खण्डित वंशवाले मनुष्य की वंशवृद्धि के लिये **उषसं**=सन्तान की कामनायुक्त स्त्री को **सूर्येण**=पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष के साथ **अवासयन्**=रखें।

भावार्थ–राष्ट्र में तेजस्वी सेनानायक के नेतृत्व में तेजस्विनी सेना हो जो शत्रु को संग्रामों में झुका सके। प्रजा की रक्षा कर सके। प्रजाजन निर्भीकता के साथ सन्तान का पालन-पोषण कर सकें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रवायू** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा व सेनापति का कर्त्तव्य

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः।

इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम्॥ २॥

पदार्थ–**उशन्ता**=सबको चाहनेवाले **दूता**=शत्रु सन्तापक, **गोपा**=प्रजा-रक्षक, **इन्द्रवायू**=ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष **मासः च शरदः च**=वर्षों और मासों तक **पूर्वीः**=पूर्व विद्यमान प्रजा की **पाथः**=रक्षा करें। हे **इन्द्र-वायू**=ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! **वाम् इयाना**=आप दोनों को प्राप्त होता हुआ, **सुस्तुतिः**=उत्तम उपदेश **मार्डीकम्**=सुख और **सुवितं**=उत्तम, **नव्यम्**=स्तुत्य आचार **ईट्टे**=चाहता है।

भावार्थ–राजा और सेनापति दोनों प्रजा की अच्छी प्रकार से रक्षा करें तथा शत्रु को नष्ट करें। इससे राष्ट्र में विद्वान् लोग ज्ञान का उपदेश देकर प्रजाओं को धर्म कार्य में लगा सकेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

कुशल सेनानायक

पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।

ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः॥ ३॥

पदार्थ–**नियुताम् अभिश्रीः**=नियुक्त सैन्यों के बीच सबके आश्रय-योग्य एवं उत्तम राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न **श्वेतः**–उज्ज्वल वस्त्र धारे **सुमेधाः**=बुद्धिमान् शत्रुनाशक पुरुष **रयि-वृधः**=ऐश्वर्य बढ़ानेवाले, **पीवः अन्नान्**=अन्नादि से हृष्ट-पुष्ट पुरुषों का **सिषक्ति**=समवाय बनाकर रहता है और **ते**=वे **नरः**=नायक पुरुष **समनसः**=एक चित्त होकर **वायवे**=नायक पुरुष की वृद्धि के लिये **वि तस्थुः**=उसके आस-पास स्थित होते हैं। वे **विश्वा**=सभी **सु-अपत्यानि**=उत्तम-उत्तम सन्तानों के समान **चक्रुः**=काम करते हैं।

भावार्थ–कुशल सेनानायक शत्रु को जीतने के लिए ऐसी रणनीति बनाता है कि विजय अवश्य मिले। इसके लिए वह अपनी सेना को छोटे-छोटे वर्गों में बाँटकर अलग-अलग महत्त्वपूर्ण स्थलों पर नियुक्त करता है। साथ ही प्रजाजनों में से हृष्ट-पुष्ट युवाओं को भी वर्गों में बाँटकर नियुक्त करता है। ये सब संकेत मिलने पर यथा समय सेनानायक के आदेश का पालन कर विजय में सहयोगी होते हैं। इसे 'गुरिल्ला युद्ध' कहते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रवायू** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सत्ता का अधिकारी

याव॒त्तर॑स्त॒न्वो॒३॒॑ याव॒दोजो॒ याव॒न्नर॒श्चक्ष॑सा॒ दीध्या॑नाः ।
शुचिं॒ सोमं॑ शुचिपा पातम॒स्मे इन्द्र॑वायू॒ सद॑तं ब॒र्हिरे॒दम् ॥ ४ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्रवायू**-ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! हे नायको! **यावत्**=जितना **तन्वः तरः**=शरीर का बल हो और **यावत् ओजः**-जितना पराक्रम हो और **यावत्**=जब तक **नरः**=नेता लोग **चक्षसा**=उत्तम ज्ञान-दर्शन से **दीध्यानाः**=देदीप्यमान हों तब तक आप दोनों **शुचिं**=शुद्ध, **सोमम्**=प्रजाजन का **पातम्**=पालन करो और **शुचिं सोमं पातं**-शुद्ध अन्न, ऐश्वर्य का उपभोग करो **इदं**=इस **बर्हिः**=वृद्धिशील प्रजा पर **सदतम्**=अध्यक्ष बनकर विराजो।

भावार्थ-राष्ट्रनायक व सेनानायक तभी तक सत्ता का सुख भोगते हुए अपने पदों पर रहने के अधिकारी हैं जब तक प्रजा का पालन अन्न-जल व ऐश्वर्य का उत्तम प्रबन्ध करें तथा समाज के नेताओं=विद्वानों का समर्थन=विश्वास हो।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रवायू** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

उत्तम सेना

नि॒यु॒वा॒ना नि॒युतः॑ स्पा॒र्हवी॑रा॒ इन्द्र॑वायू स॒रथं॑ यातम॒र्वाक् ।
इ॒दं हि वां॒ प्रभृ॑तं॒ मध्वो॒ अग्र॒मध॑ प्रणी॒ना वि मु॑मुक्तम॒स्मे ॥ ५ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्रवायू**=विद्युत् और वायु के तुल्य बलवान् नायक पुरुषो! **स्पार्हवीराः**=मनोहर वीर पुरुषों से युक्त **नियुतः**=अश्व सेनाओं को **नियुवाना**=सञ्चालित करते हुए आप दोनों **स-रथं**=रथसहित **अर्वाक् यातम्**-आगे बढ़ो। **इदं हि**=यह कार्य ही **मध्वः अग्रं प्रभृतम्**=आप दोनों को अन्न या आजीविका प्राप्त करने का साधन है। **अध**=और **प्रीणाना**=प्रजा को प्रसन्न करते हुए **अस्मे वि मुमुक्तम्**=हमें विविध बन्धनों से मुक्त करो।

भावार्थ-राजा तथा सेनापति राष्ट्र की सेना को उत्तम वीरों, अश्वों एवं शस्त्रास्त्रों से अच्छी प्रकार से सुसज्जित करके रणक्षेत्र में आगे बढ़ें। प्रजा की रक्षा करें। राष्ट्र में राजनियमों का कठोरता से पालन कराकर राष्ट्र को सुदृढ़ बनावें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रवायू** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

सुशिक्षित सेना

या वां॑ श॒तं नि॒युतो॒ याः स॒हस्र॒मिन्द्र॑वायू वि॒श्ववा॑राः॒ सच॑न्ते ।
आभि॑र्यातं सुवि॒दत्रा॑भिर॒र्वाक्पा॒तं न॑रा॒ प्रति॑भृतस्य॒ मध्वः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्रवायू**=विद्युत्, पवन के समान तेजस्वी, बलशाली पुरुषो! **याः**-जो **वां**=आप दोनों के **शतं**-सैकड़ों और **याः सहस्रं**=जो सहस्रों **नियुतः**=अश्वों के सैन्यगण **विश्ववाराः**=शत्रुओं के वारण में समर्थ होकर **सचन्ते**=संघ बनाकर रहते हैं **आभिः**-इन **सु-विदत्राभिः**=उत्तम ऐश्वर्य लाभ करानेवाली सुशिक्षित सेनाओं से आप दोनों **अर्वाक् यातं**=आगे बढ़ो। हे **नरा**=नायक पुरुषो! आप दोनों **प्रतिभृतस्य**=वेतन द्वारा परिपुष्ट **मध्वः**=सैन्य बल की **पातम्**=रक्षा करो।

भावार्थ-सेनानायक अपनी पैदल तथा अश्वारोही सेना को गणों तथा संघों में बाँटकर उत्तम प्रशिक्षण प्रदान कर सेना को सुशिक्षित करे। अपने सैनिकों को वेतन बढ़ाकर उत्साहित करता रहे।

ऋषिः-वसिष्ठः॥ देवता-इन्द्रवायू॥ छन्दः-विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः-धैवतः॥

ब्रह्मचारी सैनिक

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥

पदार्थ-हम लोग **अर्वन्तः**=शत्रुनाशक वीर पुरुषों और अश्वों के समान बलवान्, **श्रवसः भिक्षमाणाः**=श्रवण योग्य ज्ञान की योग्य गुरुओं और अन्न की गृहस्थों से याचना करते हुए, **वसिष्ठाः**=उत्तम ब्रह्मचारी होकर **सु-अवसे**=उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं **वाजयन्तः**=ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए **इन्द्रवायू हुवेम**=ऐश्वर्यवान् और बलवान् जनों को प्राप्त करें। **यूयं**=आप लोग **नः सदा स्वस्तिभिः पात**=सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करें।

भावार्थ-वीर सैनिक ब्रह्मचारी होकर पूर्ण मनोयोग से उत्तम प्रशिक्षक गुरुओं से युद्ध विद्या के समस्त रहस्यों को जानें और युद्धाभ्यास किया करें।

अगले सूक्त के ऋषि देवता वसिष्ठ वायु हैं।

[९२] द्विनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः-वसिष्ठः॥ देवता-वायुः॥ छन्दः-निचृत्त्रिष्टुप्॥ स्वरः-धैवतः॥

सत्यासत्य विवेकी विद्वान्

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम्॥१॥

पदार्थ-हे **शुचिपाः**=शुद्ध चरित्रवन्! धार्मिक की रक्षा करनेवाले! हे **वायो**=तुष से अन्नों को पृथक् करनेवाले वायु के समान सत्य, असत्य के विवेकवाले विद्वन्! तू **नः उप आ भूष**=हमें प्राप्त हो। हे **विश्व-वार**=वरण योग्य! पापों के वारक! **ते सहस्रं नियुतः**=तेरे अधीन सहस्रों आज्ञा पालक हैं। हे **देव**=विद्वन्! तू **यस्य पूर्वपेयं**=जिसके पूर्व पालन वा भोग योग्य अंश को **दधिषे**=धारण करता है, मैं उसी **मद्यम्**=तृप्तिकारक, हर्षजनक **अन्धः**=अन्न को **ते उतो अयामि**=तेरे लिये प्राप्त कराऊँ।

भावार्थ-मनुष्यों को योग्य है कि वे शुद्ध चरित्रवाले सत्य-असत्य के विवेकी विद्वानों की शरण में जाकर उनके अधीन रहकर उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए ज्ञान प्राप्त करें तथा पाप रहित होकर पुरुषार्थ पूर्वक अन्न-धन का संचय करें।

ऋषिः-वसिष्ठः॥ देवता-इन्द्रवायू॥ छन्दः-विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः-धैवतः॥

अहिंसक राष्ट्रपालक

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः॥२॥

पदार्थ-**यत्**=जिस **मध्वः**=शत्रुपीड़क बल और मधुर ऐश्वर्य के **अग्रियं**=प्रमुख पद तथा श्रेष्ठ भाग को **देवयन्तः**=शुभ गुणों और उत्तम फलों की आकांक्षावाले **अध्वर्यवः**=प्रजा की हिंसा से रहित राष्ट्र-पालक जन **वां प्र भरन्ति**=आप दोनों के लिये प्राप्त कराते हैं, उस **सोमम्**=ऐश्वर्य या बल वीर्य को **इन्द्राय वायवे**=सूर्य वायुवत् तेजस्वी और बलवान् पुरुष के **पिबध्यै**=उपभोग के लिये **अध्वरेषु**=यज्ञादि उपकारक कार्यों में **वीरः सोता**=विद्वान् वीर शासक, **प्र अस्थात्**=प्राप्त

करे।

भावार्थ–राष्ट्र में विभिन्न शासकीय पदों पर श्रेष्ठ लोगों को नियुक्त करके राजा प्रजा का उत्तमता से पालन करें। वे नियुक्त प्रशासक जन प्रजा की हिंसा न करें। यज्ञादि कार्यों में सहयोगी होकर विद्वानों का सम्मान करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ऐश्वर्यशाली राष्ट्र

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **वायो**=बलवन्! **याभिः नियुद्भिः**=जिन अश्वादि सेनाओं सहित **दुरोणे**=गृहवत् राष्ट्र में विद्यमान **दाश्वांसम्**=कर आदि के दाता प्रजाजन को **अच्छ प्र यासि**–भली प्रकार प्राप्त होता है उन द्वारा ही तू **नः**=हमें **सुभोजसं रयिम्**=उत्तम भोग्य पदार्थों और रक्षा-साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य को **नि युवस्व**=दे और **वीरं**=वीरजन, **गव्यं राधः**=गौ आदि और **अश्व्यं च राधः**=अश्वों से बनी सम्पदा भी **नि युवस्व**=दे।

भावार्थ–राजा को योग्य है कि वह अपने राष्ट्र को समृद्ध एवं सुदृढ़ बनाने के लिए अश्वादि से सुसज्जित वीर सेना को बढ़ावे तथा व्यापार आदि कार्यों की वृद्धि की योजना बनावे, जिनसे कर के रूप में धन प्राप्त करके प्रजाजनों को ऐश्वर्यशाली तथा अन्य योजनाओं को सफल बनाया जा सके।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रजापालक राजा

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥ ४ ॥

पदार्थ–**ये**=जो **वायवः**=बलवान् पुरुष **इन्द्र-मादनासः**=प्राणों के समान शत्रुहन्ता, प्रजा को प्रसन्न करने में समर्थ **आदेवासः**=सब ओर विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषों को रखते और **अर्यः**=शत्रु के **नितोशनासः**=मारनेवाले हों ऐसे **सूरिभिः**=शासकों और विद्वानों द्वारा हम **वृत्राणि घ्नन्तः**=विघ्नकारक शत्रुओं का नाश करते हुए **युधा**=युद्ध द्वारा **नृभिः अमित्रान् सासह्वांसः**=वीर पुरुषों द्वारा शत्रुओं का पराजय करनेवाले हों।

भावार्थ–राजा प्रजा को प्रसन्न करनेवाला, शत्रु का नाश करनेवाला तथा प्रजाजनों के सन्मार्गदर्शन के लिए विद्वानों की सुव्यवस्था करनेवाला होकर अपने शासन को सुदृढ़ करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**वायुः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सैनिक व्यवस्था

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **वायो**=बलवान् वीर! तू **शतिनीभिः सहस्रिणीभिः**–सौ-सौ तथा सहस्र-सहस्र के भटों के नायकोंवाली **नियुद्भिः**=अश्व-सेनाओं सहित **नः यज्ञं उप याहि**=हमारे यज्ञ, राज्य को प्राप्त हो। **अस्मिन् सवने मादयस्व**=इस शासन में तू प्रसन्न हो, अन्यों को प्रसन्न कर।

वीर पुरुषो! आप लोग **स्वस्तिभिः नः सदा पात**=सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करें।

भावार्थ–सेनापति अपनी सेना में सौ–सौ व सहस्र–सहस्र सैनिकों के वर्ग व संघ बनाकर अलग–अलग सेनानायक नियुक्त करे। अश्वारोही सेना की भी ऐसी ही व्यवस्था कर सेना को सुदृढ़ बनाकर राष्ट्र की रक्षा करे।

अग्रिम सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता इन्द्राग्नी है।

[९३] त्रिनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

माता-पिता के समान प्रजापालक राजा

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम्।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा॥ १॥

पदार्थ–जैसे **वृत्र-हणा**=विघ्ननाशन करनेवाले माता–पिता **नव-जातं शुचिं**=नये उत्पन्न उत्तम शुद्ध बालक को **जुषेताम्**=प्रेम करते और **धेष्ठा वाजं उशते दत्तः**=पालक माता–पिता बुभुक्षित को अन्न देते हैं वैसे ही हे **इन्द्राग्नी**=ऐश्वर्यवन् और तेजस्विन् अग्रणी नायको! आप दोनों **वृत्र-हणा**=बढ़ते शत्रुओं के नाशक होकर **शुचिम्**=पवित्र व्यवहारवाले **नवजातम्**=नये ही प्राप्त, **स्तोमं**=स्तुतियोग्य प्रजा के अधिकार **अद्य**=आज के समान सदा **जुषेताम्**=प्रेम और उत्साह से प्राप्त करें। **ता**=वे दोनों **धेष्ठा**=प्रजा, सैन्य, सभादि के अधिकार को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होकर **सद्यः**–शीघ्र ही **उशते**=कामनावाले प्रजाजन को **वाजं**=अभिलषित धन, अन्न, बल, ज्ञान आदि दें। **उभाहि वां**=आप दोनों को ही मैं **सु हवा**=सुख से, आदर सहित बुलाने योग्य **जोहवीमि**=स्वीकार करता हूँ, आपको आदर से निमन्त्रित करूँ। माता–पिता दोनों ही इन्द्र और दोनों ही अग्नि हैं। वे सन्तान के बाधक कारणों का नाश करने से 'वृत्रहन्' हैं।

भावार्थ–राष्ट्रनायक तथा सेनानायक दोनों तेजस्वी होकर प्रजा को ऐश्वर्य सम्पन्न बनाकर रक्षा करें। प्रजा के साथ प्रेमपूर्वक मधुर व्यवहार करें। उन्हें सुखी बनाने के लिए इच्छित धन, अन्न, बल व ज्ञान प्रदान करावें। और प्रजा का उत्तम रीति से पुत्रवत् पालन करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्राग्नी**॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राष्ट्र की समृद्धि

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः॥ २॥

पदार्थ–**ता**=वे दोनों **सानसी**–सेवा योग्य, दानदाता और **शवसाना**=बलपूर्वक ऐश्वर्य भोगनेवाले, **साकं-वृधा**=एक साथ वृद्धि को प्राप्त और **शवसा**=बल से **शूशुवांसा भूतम्**=बढ़ते रहें और **भूरेः यवसस्य**=बहुत से अन्न और **रायः**=दान–योग्य धन पर **क्षयन्तौ**=प्रभुत्व करते हुए **भूरेः**=बहुत बड़े **स्थविरस्य**=चिरस्थायी **घृष्वेः**=शत्रुनाशक **वाजस्य**=बल को **पृक्तम्**=साथ मिलाये रक्खो।

भावार्थ–राष्ट्र को समृद्ध व सुदृढ़ बनाने के लिए सेवा करनेवाले, दान देनेवाले तथा ऐश्वर्य भोगनेवाले सभी जन राष्ट्र में वृद्धि को प्राप्त करें। राजा व सेनानायक पड़ौसी राष्ट्रों के साथ मित्रता बनाकर युद्ध काल व आपातकाल के लिए उनके बल को अपने साथ मिलावें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

संग्राम चतुर नायक

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥

पदार्थ-यत्=जो मनुष्य **वाजिनः**=संग्रामचतुर, ऐश्वर्यवान् और **प्रमतिम् इच्छमानाः**=बुद्धि को चाहनेवाले **विप्राः**=बुद्धिमान् पुरुष **धीभिः**=बुद्धियों, कर्मों द्वारा **विदथं उपो अगुः**=ज्ञान, ऐश्वर्य और संग्राम को प्राप्त करते हैं **ते**-वे **नरः**=जन **इन्द्राग्नी**=इन्द्र अग्नि, विद्युत् अग्नि, आचार्य और अध्यापक, सभापति और सेनापति इन-इन को **जोहुवतः**=प्रमुख स्वीकार करते हुए **काष्ठां अर्वन्तः**=दूर-दूर देश की सीमा की ओर अश्व के समान आगे बढ़ते हुए **काष्ठां**=काष्ठा, अर्थात् 'क' परम सुखमय 'आस्था' स्थिति को **नक्षमाणाः**=प्राप्त करते हुए **विदथं उपो गुः**=प्राप्तव्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं।

भावार्थ-संग्राम में चतुर राजा अपने बुद्धिबल से विद्वानों, अध्यापकों, आचार्यों, सभाप्रमुखों, सेनानायकों तथा गुप्तचरों को दूर-दूर देश की सीमाओं पर नियुक्त करके अपनी व्यवस्था को सुदृढ़ करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

वेदोपदेश

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

पदार्थ-विप्रः=विद्वान् पुरुष **गीर्भिः**=वेदवाणियों द्वारा **प्रमतिम्**=उत्तम ज्ञान **इच्छमानः**=चाहता हुआ, **पूर्व-भाजम्**=पूर्व विद्वानों से सेवित, **यशसं**=यशोजनक **रयिम्**=ज्ञानैश्वर्य की **ईट्टे**=याचना करे और **इन्द्राग्नी**=आचार्य एवं विद्वान् दोनों वीर नायकों के समान **वृत्रहणा**=विघ्नों के नाशक **सु-वज्रा**=पापादि के वर्जक उपदेश एवं ज्ञान-रूप वज्र से युक्त होकर **नव्येभिः देष्णैः**=नये-से-नये उपदेष्टव्य ज्ञानों द्वारा **नः प्र तिरतम्**-हमें बढ़ावें।

भावार्थ-विद्वान् पुरुष वेदवाणियों में वर्णित ज्ञान की प्राप्ति के लिए विद्वान् आचार्यों के समीप जाकर उनका संग करे। वे विद्वान् आचार्यगण इन अन्तेवासियों को विभिन्न विद्याओं का उपदेश करके ज्ञान ऐश्वर्य से पूर्ण करें जिससे वे पाप कर्मों से बचकर उत्तम कार्यों को कर यश के भागी बनें। और प्रजा में वेद-वाणी का प्रचार करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

कृतज्ञ नायक

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥

पदार्थ-यत्-जब **मही**=बड़ी-बड़ी **मिथती**=परस्पर ललकारती हुईं **तनू-रुचा**=शरीर के तेज से **स्पर्धमाने**=एक दूसरे से बढ़ने की दो स्त्रियों के समान स्पर्द्धालु दो सेनाएँ **शूर-साता**=वीरों के संग्राम में **सं-यतेते**=विजय का यत्न करती हैं उनमें, हे इन्द्र, अग्नि! वीरों और अग्रणी नायक जनो! आप दोनों **विदथे**=संग्राम में **देवयुभिः**=वृत्तिदाता राजा के पक्षवाले वीर पुरुषों के साथ

मिलकर **अदेवयुं**=राजा के अप्रिय, शत्रु जन को **सोमसुता जनेन**=अन्नादि के उत्पादक प्रजाजन के साथ मिलकर **वृत्रा हतम्**=विघ्नकारी शत्रुओं को मारो।

भावार्थ–जब युद्ध क्षेत्र में दो शत्रुसेनाएँ परस्पर विजय के लिए प्रयासरत हों उस समय सेनानायक जन तथा वीर सैनिक अपने राजा व राष्ट्र के प्रति कृतज्ञ होकर, प्रजाजनों के साथ मिलकर शत्रु सेना को हराने का प्रयत्न करें तथा शत्रु सेना को मारें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वान् यज्ञों में जावें

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम्।

नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्राग्नी**=ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! आप दोनों **नः**=हमारे **इमाम्**=इस **सोम-सुतिम्**=अन्न आदि द्वारा किये यज्ञ को **सौमनसाय**=उत्तम मन बनाये रखने के लिये **सु-आ-यातम्**=आदर पूर्वक आइये। **नू चित् हि**=आप कभी भी **अस्मान् परि मम्नाथे**=हमें त्यागकर अन्य को न मानें। मैं प्रजाजन **वां**=आप दोनों को **वाजैः शश्वद्भिः**=बहुत ऐश्वर्यों से **आ ववृतीय**=सम्मानित करूँ।

भावार्थ–विद्वान् जन प्रजा जनों द्वारा किए जानेवाले यज्ञों में जावें और अपने उपदेशों के द्वारा उनके अन्तःकरणों को पवित्र बनावें। प्रजाजन इन विद्वानों का अन्न-धन आदि से सम्मान करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

न्यायकारी राजा

सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः।

यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **अग्ने**=अग्रणी पुरुष! **सः**=वह तू **एना नमसा**=इस आदरयुक्त वचन और दुष्टों के नमानेवाले बल से **सम्-इद्धः**=खूब तेजस्वी होकर **मित्रं वरुणं इन्द्रं**=स्नेहवान्, श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान् पुरुष को **अच्छ वोचेः**=भली प्रकार कह कि **सीम्**=हम **यत्**=जो भी **आगः चकृम**=अपराध करें तू **तत्**=उसे **सु**=भली प्रकार **मृड**=न्याय पूर्वक देख। **तत्**=उसको **अर्यमा**=न्यायकारी पुरुष और **अदितिः**=सद्व्यवस्था को न टूटने देनेवाला, पुरुष हम प्रजाजनों के उस अपराध को **शिश्रथन्तु**=निर्मूल करें।

भावार्थ–राजा अपने न्याय के तेज से अपराध करनेवाले जनों को उचित दण्ड देकर राष्ट्र में सद्व्यवस्था बनाए रखे तथा उन लोगों को भविष्य में अपराध न करने की प्रेरणा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

समय पर कर दान करें

एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान्।

मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

पदार्थ–हे **अग्ने**=अग्रणी जन! हम लोग **एताः**=इन **इष्टीः**=दातव्य करादि अंशों को **आशुषाणासः**=शीघ्र देते हुए, **युवोः**=तुम दोनों के **वाजान्**=ऐश्वर्यों को **सचा अभि अश्याम**=एक साथ भोग करें। **इन्द्रः विष्णुः**=ऐश्वर्यवान् जन और व्यापक अधिकारवाले शासक तथा

मरुतः=बलवान् वीर पुरुष **नः परिख्यन्**=हमारी निन्दा न करें। **यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात**=आप लोग सदा ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–राष्ट्र में जो लोग कर देने के पात्र हैं वे कर दान समय पर किया करें। इस कर दान से ही राष्ट्र की प्रगति की समस्त कार्य योजनाएँ चलती हैं। प्रशासन को कठोरता वर्तने के लिए बाध्य न होना पड़े इसका ध्यान प्रजा जनों को रखना चाहिए।

आगामी सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता इन्द्राग्नी है।

[९४] चतुर्णवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

विनयशील शिष्य

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः। अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्राग्नी**=इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! हे **अग्ने**–अंग में झुकने हारे, विनयशील शिष्य जन! **इयं**=यह **पूर्व्य-स्तुतिः**=पूर्व पुरुषों से प्राप्त ज्ञानोपदेश **अस्य मन्मनः**=इस ज्ञानी पुरुष का **वाम्**=आप दोनों के प्रति **अभ्रात् वृष्टिः इव**=मेघ से वृष्टि तुल्य **अजनि**=प्रकट हो।

भावार्थ–शिष्य गण विनयशीलता व जिज्ञासु भाव से विद्वान् आचार्यों के सान्निध्य में रहकर इनके ज्ञानोपदेश का श्रवण करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

वेदवाणियों के प्रति श्रद्धा

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्राग्नी**=ऐश्वर्य और विनयशील पुरुषो! आप दोनों ही, **जरितुः**=उपदेष्टा जन के **हवम्**=उपदेश को सुनो। **गिरः**=वेद–वाणियों और **गिरः**=उपदेष्टा जनों की **वनतम्**=सेवा करो। **ईशाना**=अधिक समर्थ होकर **धियः**=सत्कर्मों और सद्बुद्धियों को **पिप्यतम्**=बढ़ाओ।

भावार्थ–शिष्य लोग विनयभाव से आचार्यों के उपदेशों को सुनें इससे वेदवाणियों व आचार्य गण के प्रति श्रद्धाभाव उत्पन्न होगा, सद्बुद्धि प्राप्त होगी और सत्कर्मों में रूचि हो जाएगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

पराधीन न रहें

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये। मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **नरा इन्द्राग्नी**–उत्तम नायको! हे इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्यवन्! विद्यावन्! नायक, नायिका जनो! आप **नः**=हमें **पापत्वाय**=पाप कर्म के लिये **मा रीरधतम्**=अपने अधीन मत रक्खो। **अभि शस्तये मा रीरधतम्**=शत्रु द्वारा पीड़ित करने के लिये भी मत रक्खो, **निदे**=निन्दित कर्म वा निन्दा करनेवाले के लाभ के लिये भी हमें किसी के अधीन मत रखो।

भावार्थ–राष्ट्रनायक या सेनानायक कभी भी किसी व्यक्ति को बन्धक बनाकर पापकर्म, निन्दित कर्म या निन्दित व्यक्ति के लाभ के लिए दबाव न दे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

शुभ प्रेरणा

इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे। धिया धेना अवस्यवः ॥ ४ ॥

पदार्थ–हम लोग **अवस्यवः**=ऐश्वर्यादि चाहते हुए, **इन्द्रे अग्नौ**=शत्रुहन्ता और अग्निवत् तेजस्वी वर्गों में **बृहत् नमः**=बड़ा आदर, बल और **सु-वृक्तिम्**=शुभ वर्त्ताव, शत्रु, पापादि को वर्जने का बल और **धिया**=बुद्धि और कर्म के द्वारा **धेनाः**=वाणियों को **आ ईरयामहे**=प्रेरित करें।

भावार्थ–मनुष्य अपनी बुद्धि एवं कर्मों तथा वचनों के द्वारा अन्यों को बड़ों का आदर, शुभ व्यवहार, पाप कर्मों से बचने तथा बल व पराक्रम प्राप्त करने की प्रेरणा किया करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

विद्वान् का कर्त्तव्य

ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये। सबाधो वाजसातये॥५॥

पदार्थ–**इत्था**=इस प्रकार **शश्वन्तः विप्रासः**=बहुत से विद्वान् पुरुष **सबाधः**=पीड़ित होकर दुःख पीड़ा आदि की चर्चा संदेशादि लेकर **उतये**=अपनी रक्षा और **वाजसातये**=संग्राम करने के लिये **ता हि ईडते**=उन दोनों इन्द्र, अग्नि को अध्यक्ष रूप से चाहते हैं।

भावार्थ–विद्वानों व प्रजा जनों को जब भी कोई पीड़ा या शत्रु सेना के आक्रमण की सूचना होवे तो उसके निवारण हेतु राजा व सेनानायक के पास जाकर विद्वान् लोग अपना सन्देश देवें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

राष्ट्र की समृद्धि

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे। मेधसाता सनिष्यवः॥६॥

पदार्थ–हम **वपन्यवः**=विविध व्यवहारोंवाले, **प्रयस्वन्तः**=प्रयास वा उद्योगशील और अन्यों को **सनिष्यवः**=वृत्तिदाता **ता वां**=उन आप दोनों इन्द्र, अग्नि जनों को ही **मेध-साता**=यज्ञ और संग्राम के लिये **गीर्भिः**=नाना वाणियों से **हवामहे**=बुलाते हैं।

भावार्थ–राजा अपने राष्ट्र में विविध प्रकार के उद्योगों व सरकारी सेवा के अवसरों को बढ़ावे। राष्ट्र में यज्ञों के आयोजन तथा सैनिक प्रशिक्षण भी बहुलता से कराए जावें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

जागरूक राजा

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा। मा नो दुःशंस ईशत॥७॥

पदार्थ–हे **चर्षणी-सहा**=मनुष्यों के बीच शत्रुओं को हरानेवाले **इन्द्राग्नी**=सूर्य और अग्नि के तुल्य नायको! आप **अस्मभ्यं**=हमारी **अवसा**=रक्षा के सहित **आ गतम्**=आओ। जिससे **नः**=हम पर **दुःशंसः**=दुष्ट वचन बोलनेवाला, पुरुष **मा ईशत**=अधिकार न करे।

भावार्थ–राजा का कर्त्तव्य है कि राष्ट्र में जागरूक रहे, यदि शत्रु राष्ट्र सीमावर्ती प्रजाओं को धमकावे या उनकी बस्तियों पर अधिकार करने का प्रयास करे तो तुरन्त उसको प्रत्युत्तर देकर पराजित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः–**आर्षीनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सुदृढ़ शासन व्यवस्था

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम्॥८॥

पदार्थ–हे **इन्द्राग्नी**=सूर्यवत्, अग्निवत् तेजस्विन्! आप दोनों **नः शर्म यच्छतम्**=हमें सुख

दो। **कस्य**=किसी भी **अररुषः मर्त्यस्य**=रोषकारी मनुष्य की **धूर्त्तिः**-हिंसा-चेष्टा **नः मा प्र णङ्**=हम तक न पहुँचे।

भावार्थ-राजा कठोर नियमों द्वारा शासन व्यवस्था को सुदृढ़ रखे। कोई भी उग्रवादी, आतंकवादी या शत्रु सैनिक प्रजा जनों पर हिंसा चेष्टा न कर सके।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

ऐश्वर्यशाली व्यवस्था

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे। इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥ ९ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्राग्नी**-सूर्य -अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो! हम **यत्**-जो और जैसा भी **वाम् ईमहे**= आप दोनों से माँगते हैं **तत्**-वह **गोमत्**-गौओं, **हिरण्यवत्**=सुवर्णादि बहुमूल्य पदार्थ और **अश्वावद्**=अश्वों से सम्पन्न **वसु**-धन **वनेमहि**=प्राप्त करें।

भावार्थ-राजा अपने राष्ट्र में व्यवस्था करे कि कोई भी निर्धन या दरिद्र न रहे। जब प्रजाजनों को गाय, अश्व, स्वर्ण, अन्न आदि की आवश्यकता होवे तो वे राजा से माँगें और राजा उन्हें आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**आर्षीनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

चिकित्सा व्यवस्था

यत्सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः। सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥ १० ॥

पदार्थ-हे **सप्तीवन्ता**=उत्तम अश्वों के स्वामी, **इन्द्राग्नी**-विद्युत्, अग्निवत् तेजस्वी, शत्रुसंतापक जनो! **यत्**=जब **सोमे सुते**=पुत्रवत् प्रिय 'सोम' अर्थात् ओषधि, अन्नादिवत् भोग्य राष्ट्र में **नरः**=नायक लोग **सपर्यवः**=शुश्रूषा करते हुए **आ अजोहवुः**-आदर से बुलाते हैं तब आप आइये।

भावार्थ-राजा अपनी प्रजा के लिए स्वास्थ्य व चिकित्सा की समस्त व्यवस्था उपलब्ध करावे। जब भी किसी को स्वास्थ्य सेवा की आवश्यकता होवे उसे तुरन्त सुविधा उपलब्ध हो।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

शिक्षा व्यवस्था

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा। आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥

पदार्थ-**या**=जो आप दोनों **वृत्रहन्तमा**=दुष्टों को खूब दण्ड देनेवाले, **उक्थेभिः**=उत्तम वेद-वचनों से **आमन्दाना**=सबको प्रसन्न करते हैं, वे **गिरा चित्**=वेद वाणी से और **आंगूषै**=उत्तम स्तुति-वचनों, उपदेशों से **आ विवासतः**=ज्ञानप्रकाश करते हैं।

भावार्थ-राजा अपनी प्रजाओं के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था करे। विद्वानों की नियुक्ति कर वेदवाणी तथा उत्तम ज्ञानोपदेशों के द्वारा विद्या के प्रचार की व्यवस्था करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राग्नी** ॥ छन्दः-**आर्षीनिचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः-**गान्धारः** ॥

न्याय व दण्ड व्यवस्था

ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम्। आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥

पदार्थ-**तौ इदद्वे दोनों** ही दुःशंसं=कठोर भाषणकर्ता **दुर्विद्वांसं**=दुर्गुणी -विद्वान्, **रक्षस्विनम्**-अन्यों के कार्यों में विघ्नकारी के सहायक, **आभोगं**=चारों तरफ से भोग विलास में मग्न, **मर्त्यं**=

मनुष्य को **हन्मना**=हननकारी हथियार से **हतम्**=दण्ड दो और **उद-धिम्**=जल धारक घट या तालाब के समान उसको भी **हन्मना हतम्**=शस्त्र द्वारा नाश करो। जैसे घट या जलाशय को तोड़ या खोदकर जल से खाली किया जाता है वैसे ही दुष्ट को दण्ड देकर उसका सर्वस्व हरना चाहिये।

भावार्थ–राजा अपने राष्ट्र में न्याय व दण्ड की व्यवस्था को सुदृढ़ करे। राष्ट्र में अशान्ति या अव्यवस्था फैलानेवालों को और राष्ट्रोन्नति के कार्यों में विघ्न उत्पन्न करनेवाले दुष्ट जनों को अपनी न्याय व्यवस्था से कठोर दण्ड देकर उसकी सम्पत्ति का भी हरण कर लेवे।

अग्रिम सूक्त का ऋषि वसिष्ठ एवं देवता सरस्वती, सरस्वान् है।

[९५] पञ्चनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**पादनिचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य-१

प्र क्षोद॑सा धाय॑सा सस्र ए॒षा सर॑स्वती ध॒रुण॒माय॑सी॒ पूः।
प्र॒बाब॑धाना र॒थ्ये॑व याति॒ विश्वा॑ अ॒पो म॑हि॒ना सिन्धु॑र॒न्याः॥ १ ॥

पदार्थ–पत्नी, स्त्री के कर्त्तव्य–जैसे **सिन्धुः**=बहनेवाली नदी **क्षोदसा सस्रे**=पानी से बहती है, **यायसीः पूः**=लोहे के प्रकोट के तुल्य नगर की रक्षा करती, **रथ्या इव**=रथ में लगे अश्वों के तुल्य **प्र बाबधाना**=मार्ग के वृक्ष, लतादि को उखाड़ती हुई, **अन्याः अपः च प्रबाबधाना**=अन्य सब जल–धाराओं को बाँधती हुई, मुख्य होकर **याति**=आगे बढ़ती है वैसे ही **सरस्वती**=ज्ञानयुक्त विदुषी की **धायसा**=बालक को पिलाने योग्य दूध **क्षोदसा**=और अन्न से **प्रसस्रे**=प्रेम से प्रवाहित होती है। वह **धरुणम्**=गृहस्थ–धारक और सबका आश्रय हो, वह **आयसी पूः**=लोहे के प्रकोट के तुल्य दृढ़ एवं **आ-यसी**=सब प्रकार से श्रमवाली और **पूः**=परिवार की पालक हो। वह **रथ्या इव**=रथ में लगे अश्वों के तुल्य दृढ़ और **महिना**=स्व सामर्थ्य से **विश्वाः अन्याः अपः**=अन्य आप्त जनों को **सिन्धुः**=महानद के समान **प्र बाबधाना**=दृढ़ सम्बन्ध से बाँधती हुई **याति**=जीवन–मार्ग पर चले।

भावार्थ–विदुषी स्त्री परिवार में सबको प्रेम के व्यवहार से जोड़कर रखे, पूर्ण परिश्रम करनेवाली हो, परिवार के पालन–पोषण की सुव्यवस्था करे तथा बड़े–बड़े विद्वानों से प्रेरणा पाकर जीवन को सन्मार्ग पर चलावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य-२

एका॑चेत॒त्सर॑स्वती न॒दीनां॒ शुचि॑र्य॒ती गि॒रिभ्य॒ आ स॑मु॒द्रात्।
रा॒यश्चेत॑न्ती॒ भुव॑नस्य॒ भूरे॑र्घृ॒तं पयो॑ दुदुहे॒ नाहु॑षाय॥ २ ॥

पदार्थ–जैसे **नदीनां एका सरस्वती शुचिः**=नदियों में से एक अधिक वेग व जलवाली नदी **गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती**=पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई **नाहुषाय**=मनुष्य वर्ग के लिये **घृतं पयः दुदुहे**=जल और अन्न प्रचुर मात्रा में देती है, वैसे ही **सरस्वती**=ज्ञानवाली स्त्री **नदीनाम्**=धनसम्पन्न स्त्रियों के बीच भी **शुचिः**=शुद्ध चरित्र, रूप और वाणीवाली होकर **एका चेतत्**=अकेली ही सर्व प्रशस्त जानी जाय। वह **गिरिभ्यः**=उपदेष्टा पिता आदि गुरुओं से **आ समुद्रात्**=कामना–योग्य पति–गृह को **यती**=प्राप्त होती हुई **भुवनस्य**=समस्त लोकों को **भूरेः**

रायः चेतन्ती=अपना बहुत ऐश्वर्य बतलाती हुई, **नाहुषाय**=सम्बन्ध में बाँधनेवाले पति के लिये **घृतं पयः**=स्नेह, दुग्ध, अन्न आदि की **दुदुहे**=वृद्धि करे।

भावार्थ–विदुषी स्त्री शुभ गुण, कर्म, स्वभाववाले पति के गृह में जाकर उत्तम व्यवहार व कार्यों से घर में घी, दूध, अन्न आदि की सुव्यवस्था करे तथा बहुत ऐश्वर्य में रहकर भी अपने शुभ चरित्र, लज्जा और प्रिय वाणी को न छोड़े।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वान्** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

श्रेष्ठ पुरुष

स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥

पदार्थ–नरश्रेष्ठ का वर्णन–**सः**=वह **नर्यः**=मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष **यज्ञियासु**=परस्पर संग, दान-प्रतिदान द्वारा प्राप्त **योषणासु**=स्त्रियों में **वृषा**=वीर्य सेचन में समर्थ, **वृषभः**=बलवान्, **शिशुः**=सहशायी होकर **वावृधे**=पुत्र, धन-धान्यादि से बढ़े। **सः**=वह **मघवद्भ्यः**=**मखवद्भ्यः**=याज्ञिकों और धनैश्वर्य-सम्पन्न राजादि के हितार्थ **वाजिनं**=धन, ज्ञानादि से सम्पन्न पुत्र को प्रजावत् **दधाति**=धारण करे। वह **सातये**=पुत्र, धन, अन्न, ज्ञानादि के लाभ एवं संग्राम के लिये भी **तन्वं**=शरीर वा आत्मा को **वि मामृजीत**=यज्ञ, दान, स्नान, उपदेश, तप आदि उपायों से शुद्ध करे।

भावार्थ–श्रेष्ठ पुरुष अपने पुरुषार्थ से पुत्र, धन-धान्यादि ऐश्वर्यों को बढ़ावे। राजा को राष्ट्र-समृद्धि हेतु कर दान करे, यज्ञादि कार्यों को बढ़ावे तथा विपरीत परिस्थितियों में भी यज्ञ, दान, स्नान, उपदेश व तप आदि को न छोड़े।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य-३

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ–**उत**=और **स्या**=वह **सरस्वती**=ज्ञानवाली विदुषी स्त्री, **जुषाणा**=स्नेह करती हुई **अस्मिन् यज्ञे**=इस यज्ञ में **सु-भगा**=सौभाग्यवती होकर **नः उप श्रवत्**=हमारी बात सुने। वह **नमस्यैः**=नमस्कार योग्य **मित-ज्ञुभिः**=परिमित-संकुचित जानुओंवाले, ज्ञातव्य पदार्थों के ज्ञाता पुरुषों के साथ **इयाना**=प्राप्त होती हुई **राया**=ऐश्वर्य **चित्**=और **युजा**=सहयोगी पति से तू **सखिभ्यः**=स्व सखियों से **उत्तरा**=अधिक उत्कृष्ट हो।

भावार्थ–विदुषी स्त्री ज्ञान व स्नेह से पति एवं परिजनों की बातों को सुना करे। यज्ञ कार्यों को नियमित करे तथा अपनी सखियों में भी उच्च स्थान प्राप्त करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य-४

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **सरस्वति**=ज्ञान-युक्त विदुषी! ज्ञानमय प्रभो! तू **स्तोमं प्रति जुषस्व**=स्तुत्यवचन

को प्रेम से स्वीकार कर। हम **नमोभिः**=विनय-वचनों सहित **युष्मत् आजुह्वाना**=तुमसे ग्राह्य पदार्थ लेते हुए **तव प्रियतमे शर्मन्**=तेरे प्रियतम गृह में स्वयं को **दधानाः**=रखते हुए **वृक्षं न शरणं**=वृक्ष तुल्य शरण दायक **उप रथेयाम**=तेरे पास आयें।

भावार्थ–विदुषी स्त्री परिजनों के वचनों को ध्यान से सुने। घर में आए हुए अतिथि या भिक्षुकों का मीठे वचनों से सत्कार करते हुए उनके लिए आवश्यक पदार्थों का दान करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

स्त्री के कर्त्तव्य-५

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **सरस्वति**=विदुषि! हे **सुभगे**=भाग्यशालिनि! **अयम् वसिष्ठः**=यह ब्रह्मचारी **ते**=तेरे लिये **ऋतस्य द्वारौ**=सत्य ज्ञान, अन्न और धन के दो द्वारों को **व्यावः**=प्रकट करता है। हे **शुभ्रे**=शुभ चरित्रवाली! तू **स्तुवते**=गुणप्रशंसक, गुणग्राही जन को **वाजान्**=ऐश्वर्यादि **रासि**=दे। हे विद्वान् लोगो! **यूयं स्वस्तिभिः न पात**=आप सदा ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें।

भावार्थ–विदुषी स्त्री द्वार पर भिक्षा के लिए आए हुए ब्रह्मचारी को सत्य, अन्न, धन व ज्ञान का दान करे। अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाकर अपने सौभाग्य को बढ़ावे।

अगले सूक्त का ऋषि देवता यही हैं।

[९६] षण्णवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**आर्चीभुरिग्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

ईश्वर की स्तुति वेद के सूक्तों से करें

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्। सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

पदार्थ–हे **वसिष्ठ**=विद्वन्! तू **रोदसी**=भूमि और सूर्य दोनों में नायक और **नदीनाम् असुर्या**=नदियों में बलवती नदी के तुल्य समृद्ध प्रजाओं में बलशाली, प्रभु की **बृहत् उ गायिषे**=बहुत स्तुति कर। **सुवृक्तिभिः**=स्तुति, **स्तोमैः**=वेद-सूक्तों और यज्ञादि से **सरस्वतीम् इत् महय**=जो अनादि काल से ज्ञान, सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह बहा रहा है उसे **महय**=पूज।

भावार्थ–विद्वान् पुरुष ईश्वर की स्तुति व यज्ञादि कार्य अनादिकाल से चली आ रही वेदवाणी के सूक्तों से किया करे। इससे ज्ञान, सुख और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सरस्वती** ॥ छन्दः–**आर्षीभुरिग्बृहती** ॥ स्वरः–**मध्यमः** ॥

वेद स्वाध्याय

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

पदार्थ–**यत्**=जिस **ते**=तेरे **महिना**=सामर्थ्य से **पूरवः**=मनुष्य **उभे**=दोनों को **अधि क्षियन्ति**=प्राप्त करते हैं हे **शुभ्रे**=उज्ज्वल रूपवाली सरस्वति! ज्ञानमयी! **सा**=वह तू **मरुत्सखा**=विद्वानों की मित्र **अवित्री**=संसार की रक्षक होकर **नः बोधि**=हमें ज्ञान दे और **मघोनां**=ऐश्वर्यवान् जनों को **राधः चोद**=धनादि दे।

भावार्थ–वेदवाणी के स्वाध्याय से मनुष्य विद्वानों के संसर्ग में आकर ज्ञान तथा ऐश्वर्य को

प्राप्त करे। ज्ञान प्राप्त करके ईश्वर की प्राप्ति भी करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सरस्वती** ॥ छन्दः-**निचृत्पङ्क्तिः** ॥ स्वरः-**पञ्चमः** ॥

कल्याणी वाणी

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत्॥ ३॥

पदार्थ-भद्रा सरस्वती=सबका कल्याण करनेवाली वह परमेश्वरी **वाजिनी-वती**=ऐश्वर्य, अन्नादि और सूर्यादि की स्वामिनी, विद्वानों की स्वामिनी और **अकव-अरी**=कुत्सित मार्ग में न जाने देनेवाली होकर सबके लिये **भद्रम् इत् कृणवत्**=कल्याण ही करती है। वही **चेतति**=सबको ज्ञान देती है। वह **जमदग्निवत्**-अग्नि के तुल्य **गृणाना**=स्तुति की जाती है और **वसिष्ठवत्**-सब में बसनेवाले के तुल्य **स्तुवाना**-स्तुति की जाती है।

भावार्थ-परमेश्वरी शक्ति वेदवाणी सबका कल्याण करती है। विद्वान् जन वेद स्वाध्याय को कभी नहीं छोड़ते इससे वे कुत्सित मार्ग पर जाने से बच जाते हैं तथा दूसरों को भी बचा लेते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सरस्वान्** ॥ छन्दः-**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

ईश्वर से याचना

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे॥ ४॥

पदार्थ-हम लोग **जनीयन्तः**=भार्या रूप संतति जनक क्षेत्र की कामनावाले, **पुत्रीयन्तः**=पुत्रों की कामनावाले, **अग्रवः नु**=आगे बढ़नेवाले और **सु-दानवः**=उत्तम दानशील पुरुष **सरस्वन्तं**=उत्तम ज्ञानवान् प्रभु को **हवामहे**-प्राप्त होते, पुकारते, उसी से याचना करते हैं।

भावार्थ-मनुष्य लोग ईश्वर को पुकारते हुए उत्तम ज्ञान द्वारा श्रेष्ठ गुणवाली पत्नी व उत्तम सन्तान की प्राप्ति करें। इस प्रकार उत्तम ऐश्वर्य को पाकर दानशील वृत्ति रखें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सरस्वान्** ॥ छन्दः-**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

रक्षक ईश्वर

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः। तेभिर्नोऽविता भव॥ ५॥

पदार्थ-हे **सरस्वः**=ज्ञान और बलशालिन्! **ते**-तेरे **ये**=जो **मधुमन्तः**-जल, अन्नादि युक्त, **घृतच्युतः**=स्नेह और जल प्रदाता **उर्मयः**=उत्तम तरङ्गवत् उत्कृष्ट मार्ग से जानेवाले विद्वान्, सूर्य, मेघादि हैं **तेभिः**=उनसे तू **नः**=हमारा **अविता**=रक्षक **भव**-हो।

भावार्थ-ईश्वर उत्तम ज्ञान, बल, अन्न, जल, नदी, सूर्य, मेघ आदि को रचकर हमारी रक्षा करता है। इनके बिना जीवों के जीवन नहीं चल सकते।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सरस्वान्** ॥ छन्दः-**आर्षीगायत्री** ॥ स्वरः-**षड्जः** ॥

दर्शनीय प्रभु

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः। भक्षीमहि प्रजामिषम्॥ ६॥

पदार्थ-यः-जो **विश्व-दर्शतः**=समस्त जीवों के लिए दर्शनीय, सूर्य समान तेजस्वी है, उस **सरस्वतः**-ज्ञानवान् प्रभु के **पीपिवांसं**=सबके पोषक, **स्तनं**-बालक का स्तन के समान पुष्टिदाता प्रभु का हम **भक्षीमहि**=सेवन करें और उसी की दी हुई **प्रजाम्, इषम्**=सन्तान, अन्न

आदि का सेवन करे।

भावार्थ–परमेश्वर समस्त जीवों के हित के लिए सृष्टि में सब पदार्थों की रचना करता है। वह सन्तान, अन्न तथा सभी पुष्टिकारक पदार्थों को बनाकर जीवों को सुखी करता है।

आगामी सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता इन्द्र, इन्द्राब्रह्मणस्पती तथा बृहस्पति हैं।

[९७] सप्तनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ईशोपासना

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च॥ १ ॥

पदार्थ–हे परमेश्वर इन्द्र! **यत्र**=जिस **यज्ञे**=सर्वप्रद प्रभु के आश्रय **देवयवः**=दिव्य शक्तियों की कामना करनेवाले जन **दिवः पृथिव्याः**=आकाश और भूमि पर के **नृ-सदने**=मनुष्यों के रहने के स्थान में **मदन्ति**=हर्ष लाभ करते हैं। **च**=और **वयः**=ज्ञानी पुरुष **मदाय**=मोक्षानन्द के लिये **यत्र**=जिस प्रभु के आश्रय स्थिर होकर **प्रथमं गमन्**=श्रेष्ठ पद को पाते हैं उस **इन्द्राय**=प्रभु के लिये मैं **सवनानि**=उपासनाएँ **सुन्वे**=करूँ।

भावार्थ–ज्ञानी पुरुष ईश्वर की उपासना किया करे इससे वह मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करेगा तथा संसार में रहकर ईश्वर की रचना आकाश, भूमि आदि को देखकर ईशानुभूति करते हुए प्रसन्नचित्त रहेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ईशानुभूति

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव॥ २ ॥

पदार्थ–**यः**=जो **नः**=हमें **पिता इव**=पिता तुल्य **परावतः**=दूर-दूर से, वा परम पद से **दाता**=सब सुख ऐश्वर्यादि दाता है वह **बृहस्पतिः**=ब्रह्माण्ड का पालक **नः**=हमें **आ महे**=सब प्रकार से देता है। हे **सखायः**=मित्रो! हम उस **मीढुषे**=ऐश्वर्य सुखों के वर्षक प्रभु के प्रति **यथा**=जैसे हो **अनागाः भवेम**=निरपराध हों, इसीलिये हम **दैव्यानि अवांसि**=सर्वप्रकाशक प्रभु के दिये बलों, ऐश्वर्यों और रक्षाओं को **आ वृणीमहे**=चाहते हैं।

भावार्थ–वह परमात्मा सब ऐश्वर्यों का दाता है उसकी उपासना से मनुष्य परमपद की प्राप्ति तथा दुःखों से निवृत्ति पा लेता है। ईश्वर के सान्निध्य की अनुभूति उसे अपराधों से बचाकर आत्मबल प्रदान करती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राब्रह्मणस्पती** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वेदवाणी से स्तुति

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा॥ ३ ॥

पदार्थ–**यः**=जो **देव-कृतस्य**=परमेश्वर रचित दिव्य पदार्थ, पृथिवी आदि **ब्रह्मणः**=महान् ब्रह्माण्ड का **राजा**=स्वामी है उस **महि**=महान् **इन्द्रं**-प्रभु को **दैव्यः**=विद्वानों की **श्लोकः**=स्तुति

और **दैव्यः श्लोकः**=प्रभु से प्राप्त 'श्लोक' अर्थात् वेदवाणी, **सिषक्तु**-प्राप्त होती है, वह उसी का वर्णन करती है। **तम् उ ज्येष्ठं**=उसी सर्वश्रेष्ठ, **सु-शेवं**=सुखदाता, आनन्दकन्द **ब्रह्मणः पतिम्**=ब्रह्माण्ड और वेद के पालक प्रभु की मैं **हविर्भिः**=उत्तम वचनों से **गृणीषे**=स्तुति करूँ।

भावार्थ–मनुष्य ईश्वर की स्तुति वेदवाणियों से किया करे। यह वेदवाणी प्रभु ने प्रदान की है इसमें ईश्वर के स्वरूप, उसकी महिमा तथा समस्त ब्रह्माण्ड के ज्ञान-विज्ञान का समावेश है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ईशमिलन हृदय-देश में

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति।

कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान्॥ ४ ॥

पदार्थ–यः=जो **विश्व-वारः**=सबसे वरणीय है और जो सब संकटों को दूर करता है **सः**=वह **प्रेष्ठः**=प्रियतम, **बृहस्पतिः**=ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह **नः**=हमारे **योनिं**=एकत्र मिलने के स्थान हृदय-देश में **आ सदतु**=अनुग्रह कर प्राप्त हो। वही परमेश्वर हमारी जो **सुवीर्यस्य रायः कामः**=उत्तम बलयुक्त ऐश्वर्य की अभिलाषा है **तं**=उसको **दात्**=पूर्ण करता और **सश्चतः**=प्राप्त होनेवाले **अरिष्टान्**=मृत्यु-लक्षणों से भी **अतिपर्षत्**=पार करता है।

भावार्थ–उपासक जन उस वरणीय प्रभु से अपने हृदय-देश में मिलते हैं। उसके अनुग्रह को प्राप्त कर संकटों से छूटते हैं तथा ऐश्वर्य को पाते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मोक्ष के लिए जीवन मिला है

तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः।

शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम॥ ५ ॥

पदार्थ–नः=हमारे **पुराजाः**=पूर्व काल में नाना जन्मों में उत्पन्न **इमे**=ये **अमृतासः**=अविनाशी जीवगण **अमृताय**=दीर्घ जीवन के लिये **अर्कम्**=अन्न के समान **अमृताय**=मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये **जुष्टं**=प्रेम से सेवनीय **अर्कं**=अर्चना-योग्य **तम्**–उस परमेश्वर को **धासुः**=धारण करें और **पस्त्यानां**–गृहस्थों के समान देह-रूप गृहों में रहनेवाले जीवों के **यजतम्**–उपासनीय, **शुचि-क्रन्द्रं**=न्यायकर्त्ता के समान शुद्ध, निर्दोष वचन कहनेवाले, **अनर्वाणम्**=अश्वादि की अपेक्षा न करनेवाले स्वयंगामी रथ तुल्य जगत्-सञ्चालक, **बृहस्पतिम्**=बड़े-बड़े सूर्यादि के भी पालक प्रभु की हम **हुवेम**=स्तुति करें।

भावार्थ–नाना जन्मों में किए गए कर्मों के आधार पर परमेश्वर दीर्घ जीवन, अन्नादि भोग तथा मानव देह प्रदान करता है। वह जीवों को मोक्ष-सुख देने के लिए ही मानव देह देता है इसलिए उस प्रभु की स्तुति नित्य किया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ईश्वर की भक्ति का बल

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति।

सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः॥ ६ ॥

पदार्थ–सहवाहः अश्वाः यथा बृहस्पतिं वहन्ति=एक साथ चलनेवाले अश्व जैसे बड़े

सैन्य के स्वामी को अपने ऊपर धारते हैं वैसे ही **यस्य**=जिस परमेश्वर का **सधस्थं**=साथ रहना ही **नीडवत्**=गृह के समान आश्रय देता और **सहः चित्**=सब दुःखों को सहन कराने में समर्थ बल है और जिसका **रूपं नभः न**=रूप आकाश वा सूर्य के समान व्यापक और **अरुषं**=तेजोमय है, **तं**-उस प्रभु को, **वसानाः**=उसकी भक्ति में रहनेवाले, **शग्मासः**=आनन्दमग्न, शक्तिमान्, **अरुषासः**=उज्ज्वल रूपयुक्त, सूर्यवत् प्रकाशमान **अश्वाः**=विद्या-विज्ञान में निष्णात पुरुष वा सूर्यादि लोक **सह-वाहः**=एक साथ मिलकर संसार यात्रा करते हुए **बृहस्पतिं वहन्ति**=महान् ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को अपने ऊपर धारण करते हैं।

भावार्थ-प्रभु की भक्ति में लीन रहनेवाले पुरुष हर समय परमात्मा को अपने अंग संग अनुभव करते हैं इससे उनका आत्मा इतना बलवान् हो जाता है कि सब दुःखों को सहन करने में समर्थ हो जाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

परम पवित्र परमात्मा

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।

बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥

पदार्थ-सः हि=वह प्रभु ही **शुचिः**=पवित्र, **शतपत्रः**=शतदल कमल के समान उज्ज्वल, निस्संङ्ग है **सः शुन्ध्युः**=वह सबको शुद्ध करनेवाला, **हिरण्य-वाशीः**=हित, रमणीय वेदवाणी से युक्त, **इषिरः**=सबके चाहने योग्य, **स्वः-साः**=सुखदाता है। **सः सु-आवेशः**=वह उत्तम रीति से विश्व में व्यापक, **ऋष्वः**=महान्, **सखिभ्यः**=अपने समान ख्याति, आत्मा नामवाले जीवों के लिये **पुरु आसुतिं**=बहुत-सा अन्न आदि ऐश्वर्य **करिष्ठः**=उत्पन्न करनेवाला है, वही **बृहस्पतिः**= जगत्-पालक बृहस्पति है। ऐसा ही राष्ट्र का स्वामी भी हो। वह **शुचिः**=ईमानदार, शुद्ध हो **शतपत्रः**=सैकड़ों रथों का स्वामी, **शुन्ध्युः**=राज्य के कण्टकों का शोधक, **हिरण्य-वाशीः**=लोह आदि के चमकते शस्त्रास्त्रोंवाला, **इषिरः**=सेना का सञ्चालक, **स्वर्षाः**=शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता, **सु-आवेशः**=सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट, **ऋष्वः**=महान् **सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः**=मित्रों के लिये ऐश्वर्य का उत्पादक हो।

भावार्थ-ईश्वर परम पवित्र है अतः उसकी उपासना करनेवाला उपासक भी पवित्र हो जाता है। वह प्रभु अपनी कल्याणमयी वेदवाणी प्रदान कर जीवों को परम सुख व सांसारिक ऐश्वर्य देता है।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**बृहस्पतिः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

परमेश्वर की महिमा

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।

दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

पदार्थ-देवी=ऐश्वर्यों के दाता **रोदसी**=भूमि और आकाश, **देवस्य महित्वा**=सर्वप्रकाशक प्रभु के सामर्थ्य से **जनित्री**=जगत् को उत्पन्न करते हैं। वे दोनों **बृहस्पतिं**=महान् जगत्-पालक प्रभु की महिमा को ही **ववृधतुः**=बढ़ा रहे हैं। हे **सखायः**=मित्रो! आप लोग **दक्षाय्याय**-महान् सामर्थ्य के स्वामी को **दक्षत**-बढ़ाओ और जैसे **सुतरा सुगाधा ब्रह्मणे करत्**=उत्तम, सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा अन्न उत्पत्ति की सहायक है वैसे ही **सुतरा**=दुःख-सागर से सुख

से तरा देनेवाली उत्तम, **सु-गाथा**=वेदवाणी **ब्रह्मणे**-सामर्थ्यवान् परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ज्ञानोपदेश **करत्**=करे।

भावार्थ-वेदवाणी के स्वाध्याय से मनुष्य लोग ज्ञानी होकर सृष्टि के रहस्यों व उसमें व्यापक परमेश्वर की महिमा को जानकर आनन्दमग्न रहते हैं। इस वेदवाणी के ज्ञान का उपदेश अधिकाधिक किया करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राब्रह्मणस्पती** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ईश्वर की स्तुति

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

पदार्थ-हे **ब्रह्मणस्पते**=वेद और राष्ट्र के पालक! हे **इन्द्र**-ऐश्वर्यवन्! जीव! **वां**=आप दोनों की **इन्द्राय वज्रिणे**-शक्तिशाली आत्मा की **इयं**=यह **सुवृक्तिः**=उत्तम स्तुति **अकारि**=की है। आप दोनों **धियः अविष्टं**=उत्तम बुद्धियों, कर्मों की रक्षा करो और **पुरन्धीः जिगृतम्**-देह के पुरवत् धारक जीवों को उपदेश करो। **वनुषां**=कर्मफल सेवन करनेवाले जीवों के **अरातीः**=सुखादि न देनेवाले, बाधक **अर्यः**=शत्रुओं को **जजस्तम्**=नष्ट करो।

भावार्थ-वेदवाणी के पालक विद्वान् ईश्वर की स्तुति करते हुए उत्तम बुद्धि एवं श्रेष्ठ कर्मों की रक्षा करते हैं। अन्यों को भी उपदेश करके उनको सुखी बनाते हैं।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्राबृहस्पती** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

ईश का ऐश्वर्य

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

पदार्थ-हे **बृहस्पते**=महान् विश्व-पालक! हे **इन्द्रः च**=जीवात्मन्! **युवम्**=आप दोनों, **दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः**-आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के **ईशाथे**-प्रभु हो। आप दोनों **स्तुवते कीरये चित्**=स्तुतिशील विद्वान् को **रयिं धत्तम्**=ऐश्वर्य दो। हे विद्वान् जनो! **यूयं स्वस्तभिः न सदा पात**=आप सदा ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ-ईश्वर उपासक पुरुष सृष्टि के रहस्यों को जानकर अन्यों को भी ईश्वर प्राप्ति तथा सृष्टि के रहस्यों को जानने की प्रेरणा देते हैं।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र, इन्द्राबृहस्पती हैं।

[९८] अष्टनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

प्रजा राजा को कर दान करे

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

पदार्थ-हे **अध्वर्यवः**=यज्ञ के इच्छुक दयाशील प्रजाजनो! आप लोग **क्षितीनाम्**=मनुष्यों में **वृषभाय**=श्रेष्ठ पुरुष के लिये **अरुणं**=कभी न रुकनेवाले, **दुग्धम्**=दूध के तुल्य, समस्त भूमि-भागों से प्राप्त **अंशुम्**=अन्नादि का अंशभाग करवत् **जुहोतन**=दो। **सुतसोमम् इच्छन्**-अभिषेक

द्वारा प्राप्ति योग्य ऐश्वर्य का इच्छुक, **इन्द्रः**=शत्रुहन्ता राजा, **गौरात्**=भूमि में रमण करनेवाले प्रजाजन से **अवपानं वेदीयान्**=प्रजा-पालन का वेतन प्राप्त करता हुआ **विश्वाहा इत् याति**=सदा प्राप्त हो।

भावार्थ–प्रजापालक राजा राष्ट्रभृत् यज्ञ करता है। राष्ट्र के भरण-पोषण, प्रजाहित के लिए राष्ट्रोन्नति की योजनाओं के लिए प्रजाजन धन तथा अन्न के रूप में राजा को कर दान करें। यह कर दान राष्ट्रोन्नति रूप यज्ञ में श्रद्धा के साथ दी गई आहुति ही मानें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राष्ट्र सेवक राजा

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।

उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान्॥ २॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **यत्**=जो तू **प्र-दिवि**=उत्तम तेज होने पर **चारुं अन्नं दधिषे**=उत्तम अन्न को पुष्ट करता है, **दिवेदिवे**=दिनों-दिन जलपान के समान **अस्य पीतिम् इत् वक्षि**=इस राष्ट्र के पालन और उपभोग की कामना कर। **उत**=और **हृदा उत मनसा**=हृदय और मन से राष्ट्र को **जुषाणः**=सेवन करता और **उशन्**=नित्य चाहता हुआ **प्रस्थितान् सोमान् पाहि**=प्राप्त ऐश्वर्यों और सोम्य वीरों की रक्षा कर।

भावार्थ–राजा राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपयोग प्रजा के लिए अन्न, जल की व्यवस्था व रक्षा साधनों में करे। राजा हृदय तथा मन से राष्ट्र की सेवा करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

राजा का कर्त्तव्य

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।

एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥ ३॥

पदार्थ–विजिगीषु राजा का कर्त्तव्य। हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू **जज्ञानः**=प्रकट होकर **सहसे**=शत्रुविजयी बल को बढ़ाने के लिये **सोमं**=ऐश्वर्यमय राष्ट्र को **पपाथ**=पालन कर और **माता**=जगत्-उत्पादक भूमि माता **ते महिमानम्**=तेरे सामर्थ्य को **प्र उवाच**=उत्तम रीति से कहे। हे **इन्द्र**=सेनानायक! तू **उरु अन्तरिक्षं**=विशाल अन्तरिक्ष को **युधा**=युद्ध-साधनों से **अ पप्राथ**=विस्तृत कर और **देवेभ्यः वरिवः चकर्थ**=विजयेच्छुक सैनिकों के लिये धन उत्पन्न कर।

भावार्थ–राष्ट्र की रक्षा को प्राथमिक सूची में रखकर राजा रक्षा-साधनों का विस्तार करे। उसका सेनापति भूमि तथा अन्तरिक्ष को भी युद्ध-साधनों से सुसज्जित तैनात करे। सैनिकों को उत्साहित रखते हुए उनकी वृत्ति-वेतन की वृद्धि करे। इससे राष्ट्र की भूमि की रक्षा होकर राष्ट्र सुदृढ़ बनेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सेना का कुशल नेतृत्व

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान्।

यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम॥ ४॥

पदार्थ–**यत्**=जब तू **महतः**=बड़े-बड़े **मन्यमानान्**–अभिमानी शत्रुओं को **योधयाः**=हमसे

लड़ा और हम **शाशदानान्**=मारते हुए **तान्**=उनको **बाहुभिः**=बाहुओं से **साक्षाम**=पराजित करें। **वा**=और **यत्**=जब हे **इन्द्र**=सेनापते! तू **नृभिः वृतः**=वीर नायकों से घिर कर **अभियुध्याः**=शत्रुओं का सामना करे तब हम **त्वया**=तेरे बल से **तं**=उस **सौश्रवसं आजिं**=कीर्त्ति-जनक संग्राम को जीतें।

भावार्थ–सेनापति युद्ध क्षेत्र में लड़ते हुए वीर सैनिकों के मध्य में जाकर उनका उत्साहवर्धन करे। उनके बीच में राष्ट्रभक्ति का उपदेश करके विजय की प्रेरणा करे। इससे सेना उत्साहित होकर संग्राम में अवश्य ही विजयी होगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

सेनापति के मुख्य कर्त्तव्य

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।

यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य॥ ५॥

पदार्थ–**इन्द्रस्य**=शत्रुहन्ता सेनापति के **प्रथमा**=मुख्य **कृतानि**=कर्त्तव्यों को मैं **प्र-वोचम्**=कहता हूँ। **मघवा**=ऐश्वर्यवान् **या**=जिन **नूतना**=नये नये कार्यों को **चकार**=करे, उनको **प्र वोचं**=अच्छी प्रकार कहूँ। **यत्**=जब वह **अदेवीः मात्राः**=दुष्ट पुरुषों के कपट कृत्यों को भी **असहिष्ट**=पराजित करे **अथ**=अनन्तर **सोमः**=यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र **केवलः**=केवल **अस्य अभवत्**=उसी के अधीन हो जाता है।

भावार्थ–सेनापति राष्ट्र को ऐश्वर्यशाली बनाने के लिए राष्ट्र रक्षा की नयी-नयी योजनाएँ बनावे। सेना को सदृढ़ बनाने तथा युद्ध-साधनों को तैयार एवं सुसज्जित करने के कार्य करे। राष्ट्र के अन्दर भी जो दुष्ट लोग राष्ट्र को दुर्बल करने के कपटपूर्ण कार्य करे या शत्रु राष्ट्र के गुप्तचर कोई छल करें तो उनको भी शक्ति के साथ विफल करे। इन सब कार्यों का वह स्वयं नियन्त्रण करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्रः**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

गौपालक राजा

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।

गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः॥ ६॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=प्रभो! राजन्! **यत्**–जो तू **सूर्यस्य चक्षसा**=सूर्य के प्रकाश से **पश्यसि**=देखता है, इसलिए **इदं विश्वन्**=यह समस्त विश्व **अभितः**=सब तरफ **तव**–तेरे ही **पशव्यं**–'पशव्य' अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य है। तू **गवाम् गोपतिः असि**=सब वाणियों, भूमियों और सूर्यादि लोकों का गो पालक के समान स्वामी है। **प्रयतस्य**=सर्वोत्कृष्ट सञ्चालक तेरे ही दिये **वस्वः**=ऐश्वर्य का हम **भक्षीमहि**=भोग करें।

भावार्थ–राजा राष्ट्र में गौ=गाय, भूमि तथा वेदवाणी की रक्षा एवं पालन के कार्य करे। राजा राष्ट्र के कल्याण की समस्त योजनाओं को स्वयं देखे और उन पर नियन्त्रण रखे।

ऋषिः–**वसिष्ठः**॥ देवता–**इन्द्राबृहस्पती**॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

राष्ट्र की रक्षा

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७॥

पदार्थ—हे **बृहस्पते**=महान् विश्व-पालक! हे **इन्द्रः च**=जीवात्मन्! **युवम्**=आप दोनों, **दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः**=आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के **ईशाथे**=प्रभु हो। आप दोनों **स्तुवते कीरये चित्**=स्तुतिशील विद्वान् को **रयिं धत्तम्**=ऐश्वर्य दो। हे विद्वान् जनो! **यूयं स्वस्तिभिः न सदा पात**=आप सदा ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ—राजा व सेनापति राष्ट्र की भूमि=सीमा की रक्षा, भूमि तथा आकाश दो स्थानों में सुरक्षा-तन्त्र को स्थापित करके करें, तभी राष्ट्र समृद्ध व ऐश्वर्यशाली होगा। प्रजाजन ऐसे राष्ट्र रक्षक राजा व सेनापति का आदर करती है।

अग्रिम सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता विष्णु तथा इन्द्राविष्णू हैं।

[९९] नवनवतितमं सूक्तम्

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ईश्वर की महिमा अपरम्पार है

प॒रो मात्र॑या त॒न्वा॑ वृधा॒न् न ते॑ महि॒त्वमन्व॑श्नुवन्ति।
उ॒भे ते॑ विद्म॒ रज॑सी पृथि॒व्या विष्णो॑ देव॒ त्वं प॑र॒मस्य॑ वित्से॥ १ ॥

पदार्थ—हे **वृधाना**=सबसे बढ़े! वा जगत् के बढ़ाने हारे! **विष्णो**=सर्वव्यापक! **तन्वा**=जगत् को फैलानेवाले, **मात्रया**=जगत् को बनानेवाली प्रकृति से भी **परः**=उत्कृष्ट **ते**=तेरी **महित्वम्**=महिमा को कोई भी **न अनु अश्नुवन्ति**=पा नहीं सकते। हे **देव**=सर्वप्रकाशक! **पृथिव्याः ते**=संसार के विस्तारक तेरे ही बनाये इन **उभे**=दोनों **रजसी**=सूर्य, पृथिवी, वा आकाश और भूमि लोकों को **विद्म**=जानते हैं। तू **अस्य**=इससे भी **परम्**=उत्कृष्ट तत्त्व को **वित्से**=जानता है।

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर इस समस्त जगत् को फैलाता है, सबको प्रकाशित करता है, सूर्य, भूमि व आकाश आदि लोकों को बनाता और समस्त पदार्थों को जानता है। वह प्रभु जड़ प्रकृति से उत्कृष्ट है। उसकी महिमा का कोई भी पार नहीं पा सकता।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**विष्णुः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

ईश्वर का अनन्त सामर्थ्य

न ते॑ विष्णो॒ जाय॑मानो॒ न जा॒तो देव॑ महि॒म्नः प॒रमन्त॑माप।
उद॑स्तभ्ना॒ नाक॑मृ॒ष्वं बृ॒हन्तं॑ दा॒धर्थ॒ प्राचीं॑ क॒कुभं॑ पृथि॒व्याः॥ २ ॥

पदार्थ—हे **विष्णो**=जगदीश्वर **न जायमानः**=न उत्पन्न होता हुआ और **जातः**=उत्पन्न हुआ कोई **ते महिम्नः**=तेरे महान् सामर्थ्य की **परम् अन्तम्**=परली सीमा को **न आप**=प्राप्त नहीं कर सका है। हे **देव**=सर्वप्रकाशक! तू **बृहन्तं**=बड़े भारी, **ऋष्वं**=महान् **नाकम्**=दुःख-रहित, मोक्ष धाम और आकाश को **उत् अस्तभ्नाः**=उठा रहा है और **पृथिव्याः**=पृथिवी की **प्राचीं ककुभं**=प्राची दिशा को जैसे सूर्य प्रकाशित करता है वैसे ही तू **पृथिव्याः**=जगत् को फैलानेवाली प्रकृति को **प्राचीं ककुभम्**=जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होनेवाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृति भाव को **दाधर्थ**=धारण कराता है।

भावार्थ—वह जगदीश्वर अजन्मा है। उसका सामर्थ्य अनन्त है। वह मोक्ष का अधिपति है तथा आकाश, भूमि व समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है। मूल प्रकृति में प्रेरणा करके विकृति उत्पन्न करता है, अर्थात् इस महान् सृष्टि को रचता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

जगद्धारक परमेश्वर

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ३ ॥

पदार्थ–हे **द्यावापृथिव्यौ**=आकाश और भूमि, सूर्य और भूमि! तुम दोनों **इरा-वती**=जलों, अन्नों से युक्त तथा **धेनुमती**=रसपान करानेवाली, गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त और **मनुषे**=मनुष्य के लिये **सु-यवसिनी**=उत्तम अन्नवाली और **दशस्या**-सुख देनेवाली **भूतम्**=होवो। हे **विष्णो**=प्रभो! तू **एते रोदसी**=इन पृथ्वी और आकाश को **वि अस्तभ्नाः**=विशेष रूप से थामे है, तू **पृथिवीम्**=पृथिवी को **अभितः**=सब ओर से **मयूखैः**=किरणों से **दाधर्थ**=धारण किये है।

भावार्थ–सूर्य, आकाश व भूमि ही अन्नों, जलों व रसों को उत्पन्न करते हैं। इनसे ही ऊर्जा प्राप्त करके समस्त प्राणी जीवन धारण करते हैं। वह व्यापक परमेश्वर इन सूर्य, आकाश व भूमि को भी धारण करता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वैज्ञानिकों के कर्त्तव्य

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

पदार्थ–हे **नरा**=नायको! हे स्त्री-पुरुषो! हे **इन्द्र-विष्णू**=विद्युत्, जल को वर्षाने हारे, सूर्य वा पवन के समान लोकोपकारक जनो! जैसे विद्युत् तथा मेघ को वर्षानेवाले तुम दोनों मिलकर **सूर्यम्**=सूर्य, **उषासम्**=और उसकी दाहिका ताप शक्ति को **जनयन्ता**=उत्पन्न करते हुए **यज्ञाय**=तत्त्वों के परस्पर मिलने के लिये **उरुं लोकं चक्रथुः**-विशाल स्थान अन्तरिक्ष को उपयोगी बनाते हो और **वृषशिप्रस्य दासस्य**=वर्षक जल-स्वरूप जलवाले मेघ की **मायाः**=नाना रचनाओं को **पृतनाज्येषु**=जलों के निमित्त आघात करते वैसे ही आप दोनों, **सूर्यम्**-सूर्य तुल्य तेजस्वी और **उषासम्**=उषा के तुल्य कान्तियुक्त विदुषी और **अग्निम्**-अग्नि तुल्य ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रकट करते हुए **यज्ञाय**=परस्पर दान, प्रतिदान, सत्संगादि के लिये **उरुं लोकं चक्रथुः उ**=विशाल गृहादि स्थान बनाओ और **पृतनाज्येषु**–संग्रामों में **वृष-शिप्रस्य**=बलवान् नेतावाले **दासस्य**=प्रजानाशक शत्रु जन की **मायाः**=कुटिल चालों का **जघ्नथुः**=नाश करो।

भावार्थ–लोकोपकार करनेवाले विद्वान् पुरुष व विदुषी स्त्रियाँ राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने के लिए सौर ऊर्जा, यज्ञ द्वारा वर्षा कराने की विद्या, उन्नत गृहों=भवनों के निर्माण की तकनीक तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए अस्त्र-शस्त्र निर्माण की कला आदि के वैज्ञानिक आविष्कार करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

अजेय शत्रुसेना पर विजय

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्राविष्णू**=ऐश्वर्यवन्! हे व्यापक शक्तिशालिन्! आप दोनों **शम्बरस्य**=शान्ति-सुख-नाशक शत्रु के **नव नवतिं च पुरः**=९९ नगरियों, प्रकारों को **श्नथिष्टम्**=नाश करो।

असुरस्य=बलवान् शत्रु के **अप्रति**=बेजोड़, **शतं सहस्रं च बर्चिनः वीरान्**=सौ हजार तेजस्वी वीरों को **साक हथः**=एक साथ दण्डित करो।

भावार्थ–राजा और सेनापति राष्ट्र में सुख और शान्ति स्थापना करने के लिए शत्रु के ९९ (निन्यानवे) प्रकार की नगरों को नष्ट करने की विद्या को जानकर शत्रु की अजेय सौ हजार सेना को भी परास्त करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्राविष्णू** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मन की प्रेरक शक्ति

इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥

पदार्थ–हे **विष्णो**=व्यापक वीर! हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! **इयं**=यह **बृहती**=बड़ी, **मनीषा**=मन की प्रेरक शक्ति, **उरुक्रमा**=बड़े पराक्रमी **बृहन्ता**=बड़े सामर्थ्यवान् **वां**=आप दोनों को **तवसा**=बल से **वर्धयन्ती**=बढ़ाती हुई **विदथेषु**=संग्रामों में **स्तोमं ररे**=उत्तम संघ–बल देती है। आप दोनों **वृजनेषु**=शत्रु नाशक प्रयाणकारी बलों में **इषः पिन्वतम्**=तीव्र प्रेरणाएँ दो।

भावार्थ–संग्रामों में विजय पाने के लिए मनोबल का सुदृढ़ होना आवश्यक है। राजा व सेनापति दृढ़ इच्छाशक्ति से संयुक्त होकर अपनी सेना का मनोबल बढ़ावें इससे सेनाएं संगठित होकर शत्रुओं पर विजय पाने के लिए तीव्रता से प्रेरित होंगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सेनापति का सत्कार

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **विष्णो**=व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे! नियमों में बद्ध! **ते**=तेरा **आसः**=स्थापन **वषट्**=सत्कार–पूर्वक **आकृणोमि**=करता हूँ। हे **शिपिविष्ट**=तेजों से युक्त! सूर्यवत् तेजस्विन्! तू **मे**=मुझ राष्ट्र जन का **तत् हव्यम् जुषस्व**=वह उपायन, भेंटादि स्वीकार कर **त्वा**=तुझे **मे**=मेरी **सु-स्तुतयः गिरः**=स्तुति में विद्वान् जन **वर्धन्तु**=बढ़ावें। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात**=आप सदा ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–राष्ट्रभक्त प्रजाएँ सेना को अनुशासित रखकर प्रशिक्षित करनेवाले सेनापति का वाणियों तथा भेंट उपहार आदि से सम्मान किया करें। समाज के सम्मानित जन विद्वानों की प्रेरणा से इन कार्यों को करें। इससे उत्साहित होकर वे सैनिक तथा सेनापति प्रजा की रक्षा के लिए और अधिक प्रयास करेंगे।

आगामी सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता विष्णु है।

[१००] शततमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

यशस्वी दान

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत्।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥

पदार्थ–**यः**=जो **मर्त्तः**–मनुष्य, **सनिष्यन्**=दान देने की इच्छा से **दयते**–दान देता, दया करता है वही **उरु-गायाय**=बहुतों से स्तुतियोग्य **विष्णवे**–परमेश्वर के निमित्त **दाशत्**–दान करे! **यः**=जो मनुष्य **सत्राचा मनसा**=सत्यनिष्ठ मन से **प्र यजाते**=दान करता वा देव पूजा करता है वह **एतावन्तं**=उतना ही **नर्यम्**=मनुष्यों के हित की **आ विवासत्**=सेवा करता है।

भावार्थ–जब मनुष्य दान देना चाहे तो मन में श्रद्धा रखकर ही देवें केवल दिखावे के लिए न देवे। वह अपने हृदय में यह भाव उत्पन्न करे कि ईश्वर सर्वव्यापक है, ये धन उसीका है अतः उसी को समर्पित है। उसी की प्रजाओं=जीवों के लिए मैं दे रहा हूँ। यह दान देवपूजा कहलाएगा। ऐसे निरभिमानी दानी की लोग प्रशंसा करेंगे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

ज्ञानयुक्त बुद्धि की याचना

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥

पदार्थ–हे **विष्णो**=व्यापक प्रभो! **त्वं**=तू **विश्वजन्या**–सब जनों की हितकारिणी, **अप्रयुताम्**=सबके साथ मिली हुई, **सुमतिं मतिम्**=उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि को **दाः**=दे। **यथा**=जिससे, **नः**=हमारे **सुवितस्य**=उत्तम रीति से प्राप्त **भूरेः अश्वावतः**=बहुत से अश्वों से युक्त, **पुरु-चन्द्रस्य**=बहुतों के आह्लादकारी **रायः**=ऐश्वर्य का **पर्चः**=सम्पर्क हो।

भावार्थ–मनुष्य परमात्मा से ज्ञानयुक्त बुद्धि की याचना किया करे। उत्तम बुद्धि के द्वारा श्रेष्ठ साधनों से उत्तम धन को प्राप्त करे। दान आदि से अन्य पात्रजनों को तृप्त व प्रसन्न करे। इससे स्वयं की अत्यन्त सन्तुष्टि मिलेगी।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तेजस्वी ईश्वर का शासन

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

पदार्थ–**देवः**=प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ने **महित्वा**=महान् सामर्थ्य से **एतां**=इस **पृथिवीम्**=पृथिवी को **त्रिः**=तीन प्रकार से **शत-अर्चसम्**–सैकड़ों दीप्ति युक्त पदार्थों से पूर्ण **वि चक्रमे**=बनाया है। सूर्य, विद्युत्, अग्नि से पृथ्वी को सहस्रों चमकते पदार्थों का भण्डार बनाया है। वह **तवसः तवीयान्**=बलवान् से बलवान् **विष्णुः**=प्रभु **प्र अस्तु**=सबसे उत्तम है। उस **स्थविरस्य**=नित्य प्रभु का **नाम**=नाम, स्वरूप और शासन सूर्य–प्रकाश के समान **त्वेषं हि**=तेजोमय और उज्ज्वल है।

भावार्थ–उस प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ने इस पृथ्वी लोक को कुशलता से बनाकर सूर्य, विद्युत् व अग्नि आदि से प्रकाशित कर दिया है। इसके गर्भ में अनेकों पदार्थों को भर दिया है। ये सब उसी के शासन में चल रहे हैं। ऐसे प्रभु के नाम–स्वरूप का स्मरण किया करो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

बसने योग्य भूमि का स्रष्टा

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥ ४ ॥

पदार्थ–एषः=वह **विष्णुः**=व्यापक परमेश्वर **एतां पृथिवीम्**=इस पृथिवी को **मनुषे दशस्यन्**=मनुष्यों को दान देता हुआ **क्षेत्राय**=निवास करने के लिये **वि चक्रमे**=विविध प्रकार का बनाता है। **अस्य**=इसकी **कीरयः**=स्तुति करनेवाले **जनासः**=जन्तु, आत्मगण **ध्रुवासः**=नित्य हैं। वह पृथ्वी को **उरु-क्षितिम्**=बहुत जीवों से बसने योग्य और **सुजनिम्**=उत्तम रीति से जन्तुओं, अन्नादि, वनस्पतियों को उत्पादक **आ चकार**=बनाता है।

भावार्थ–उस व्यापक परमेश्वर ने इस भूमि को बसने के योग्य बनाकर जीवों के लिए दान दी है। फिर सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्न, औषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तुओं को भी बनाता है। ऐसे दानी प्रभु की स्तुति किया करो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

महान् प्रभु

प्र तत्ते॑ अ॒द्य शि॑पिविष्ट॒ नामा॒र्यः शं॑सामि व॒युना॑नि वि॒द्वान्।

तं त्वा॑ गृणामि त॒वस॒मत॑व्या॒न्क्षय॑न्तम॒स्य रज॑सः परा॒के ॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **शिपिविष्ट**=सूर्य तुल्य रश्मियों से आवृत! तू **अर्यः**=सबका स्वामी, **वयुनानि**=सब कर्मों को **विद्वान्**=जानने हारा है। **तत्**=जो तेरे ही **नाम**=स्वरूप और **वयुनानि**=कर्मों की **अद्य**=आज मैं **शंसामि**=स्तुति करता हूँ। मैं **अतव्यान्**=अल्पशक्ति मनुष्य, **त्वा तवसं**=तुझ बलवान् की स्तुति करता हूँ और **अस्य रजसः पराके**=इस विश्व के परे विद्यमान, महान् से महान् **त्वा तं गृणामि**=उस तेरी मैं प्रार्थना करता हूँ।

भावार्थ–समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी व्यापक होता हुआ इस विश्व से परे भी है। वह सबके कर्मों को जानता है, सबसे बलवान् है। ऐसे महान् से महान् प्रभु की स्तुति किया करो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तेजोरूप परमेश्वर

किमित्ते॑ विष्णो परि॒चक्ष्यं॑ भूत्प्र यद्व॑व॒क्षे शि॑पिवि॒ष्टो अस्मि॑।

मा वर्पो॑ अ॒स्मदप॑ गूह ए॒तद्यद॒न्यरू॑पः समि॒थे ब॒भूथ॑ ॥ ६ ॥

पदार्थ–ते–तेरा **किम् इत्**=कौन सा रूप **परिचक्ष्यं भूत्**=कथन योग्य है **यत्**=जिसको तू **ववक्षे**=स्वयं बता रहा है कि मैं **शिपिविष्टः अस्मि**=रश्मियों में प्रविष्ट, उनसे घिरे सूर्य तुल्य तेजोमय हूँ। **अस्मत्**=हमसे अपने **एतत्**=उस तेजोमय **वर्पः**=रूप को **मा अप गूह**=मत छिपा। **यत्**=क्योंकि तू **समिथे**=मिलने पर **अन्यरूपः बभूथ**=दूसरे रूपों में प्रकट होता है।

भावार्थ–वह परमेश्वर अपने तेजोमय रूप के द्वारा विश्व के समस्त पदार्थों में बसा हुआ है। संसार के जिस भी पदार्थ को देखो ऊपर से तो वे भिन्न-भिन्न नजर आएँगे किन्तु उन सबके अन्दर वही एक प्रभु अपने तेजोमय रूप में समाया हुआ है। प्रत्येक पदार्थ में उस तेजस्वी के तेज को ही देखा करो।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**विष्णुः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

तेजोमय प्रभु

वष॑ट् ते विष्णवा॒स आ कृ॑णोमि॒ तन्मे॑ जुषस्व शिपिविष्ट ह॒व्यम्।

वर्ध॑न्तु त्वा सुष्टु॒तयो॒ गिरो॑ मे यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ७ ॥

पदार्थ–हे **विष्णो**=व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे! नियमों में बद्ध! **ते** तेरा **आसः**=स्थापन **वषट्**=सत्कार-पूर्वक **आकृणोमि**-करता हूँ। हे **शिपिविष्ट**=तेजों से युक्त! सूर्यवत् तेजस्विन्! तू **मे**=मुझ राष्ट्र जन का **तत् हव्यम् जुषस्व**-वह उपायन, भेंटादि स्वीकार कर **त्वा**=तुझे **मे**=मेरी **सु-स्तुतयः गिरः**=स्तुति में विद्वान् जन **वर्धन्तु**=बढ़ावें। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात**-आप सदैव ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ–उस व्यापक परमेश्वर का तेज उसके सृष्टि नियामक नियमों में बसा हुआ है। सभी तेजस्वी पदार्थों में उसी का तेज है। ऐसे तेजस्वी प्रभु की स्तुति करके अपनी वाणियों को पवित्र किया करो।

अगले सूक्त का ऋषि वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः तथा देवता पर्जन्य है।

अथ पञ्चमाष्टके सप्तमोऽध्यायः

[१०१] एकोत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः**॥ देवता–**पर्जन्यः**॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

तीन वेदवाणियाँ

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति॥ १॥

पदार्थ–जैसे **वृषभः**–बरसता मेघ **रोरवीति**–गर्जता है **ज्योतिरग्राः वाचः वदति**–प्रथम विद्युत् को चमका कर बाद में गर्जना करता है और **ऊधः मधुदोधम् दुह्रे**–अन्तरिक्ष से जल को दोहता है और **ओषधीनां गर्भं कृण्वन्**–ओषधियों को गर्भित करता है वैसे ही हे विद्वन्! तू **ज्योतिरग्रा**=ज्ञान–ज्योतियों से युक्त **तिस्रः वाचः**=तीनों वेदवाणियों–यजुष, ऋग् और साम को **प्र वद** उपदेश कर **याः**–जिनसे **वृषिभः**=मनुष्यों में श्रेष्ठ जन **एतत् ऊधः**=इस ऊर्ध्वस्थित ब्रह्म से **मधु-दोघम्**–ऋग्वेदमय ज्ञान–रस को **दुह्रे**=दोहन करता है **सः**–वह **ओषधीनां**=अन्नादि के ग्रहण करनेवाले **वत्सं**=छोटे बच्चे के समान बालक को अपना **वत्सं कृण्वन्**=शिष्य बनाकर **सद्यः**=शीघ्र ही **जातः**=स्वयं प्रकट होकर **रोरवीति**–उपदेश करता है।

भावार्थ–विद्वान् जन अपने शिष्यों को ऋग्, यजु और साम स्वरूपवाली ज्ञानज्योतियों से युक्त करे। उस सर्वोपरि ब्रह्म की प्राप्ति के लिए शिष्यों के मध्य में जाकर इस वेदवाणी के सारगर्भित रहस्यों का उपदेश करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः**॥ देवता–**पर्जन्यः**॥ छन्दः–**विराट् त्रिष्टुप्**॥ स्वरः–**धैवतः**॥

तीनों ऋतुओं में सुख का वर्धक

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे॥ २॥

पदार्थ–**ओषधीनां वर्धनः**=ओषधियों को बढ़ानेवाला, **अपां वर्धनः**–जलों को बढ़ानेवाला, मेघवत् सूर्यवत् **देवः**=प्रकाश, जल का दाता **विश्वस्य जगतः ईशे**=सब जगत् का स्वामी है। वह **त्रिवर्तु ज्योतिः यंसत्**=तीनों ऋतुओं में सुखप्रद प्रकाश देता है वैसे ही **यः**–जो **देवः**=प्रभु **ओषधीनां वर्धनः**=उष्णता के धारक जीवों को बढ़ानेवाला, **यः**=जो **अपां वर्धनः**–जलचारी जीवों को बढ़ानेवाला और **यः**=जो **विश्वस्य जगतः**–समस्त जगत् का **ईशे**=स्वामी है। **सः**=वह

परमेश्वर **अस्मे**=हमें **सु-अभिष्टिः**=सुख से चाहने योग्य **त्रिवर्तु ज्योतिः**=त्रिविध ज्ञानदाता वेदमय प्रकाश और **त्रि-धातु**=तीन धातु सुवर्णादि से बने **शरणं**=गृह और तीन धातु वात, पित्त, कफ से बने शरणयोग्य देह और **त्रिवर्तु**=तीनों कालों में वर्त्तनेवाला सुख **यंसत्**=दे।

भावार्थ–समस्त जगत् का स्वामी परमेश्वर वात, पित्त, कफ इन तीन धातुओं से बने देह प्रदान करके सुख के साधन त्रिवेदमय ऋग्, यजु, साम रूप वाणी देता है। गर्मी, सर्दी, वर्षा इन तीन ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के पदार्थ ऋतु के अनुकूल प्रदान करता है तथा जलचर, नभचर, थलचर तीनों प्रकार के जीवों को बढ़ने के साधन भी देता है।

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः** ॥ देवता–**पर्जन्यः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

प्रभु के दो रूप

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः।

पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ३ ॥

पदार्थ–त्वत्=मेघ का एकरूप **स्तरीः उ**=न प्रसवनेवाली गौ तुल्य होता है, **सूते त्वत्**=और उसका एक रूप प्रसवशील गौ के तुल्य जल-धाराएँ उत्पन्न करता है। **एषः यथावशं तन्वं चक्रे**=वह सूर्य-कान्ति के अनुसार अपना व्यापक रूप बना लेता है। वह **पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति**=सूर्य रूप पिता से जल ग्रहण करता और **तेन**=उससे **माता**=पृथिवी भी जल ग्रहण करती है। **तेन**=उस जल से **पिता वर्धते**=सूर्य महिमा से बढ़ता और **तेन पुत्रः वर्धते**=उसी जल से पुत्रवत् ओषधि, वनस्पति तथा जीवादि भी बढ़ते हैं। वैसे ही हे प्रभो! **त्वत्**=तेरा एक रूप **स्तरीः भवति उ**=सर्वाच्छादक होता है और **त्वत्**=दूसरा रूप **सूते उ**=जगत् को उत्पन्न करता है। **यथावशं**=जितनी इच्छा होती है उतना ही **एषः**=वह परमेश्वर **तन्वं**=अपना विस्तृत संसार **चक्रे**=बनाता है। **माता**=जैसे माता **पितुः**=पिता से **पयः प्रतिगृभ्णाति**=वीर्य ग्रहण कर गर्भ धारण करती है और उससे **पिता पुत्रः वर्धते**=पिता का वंश, पुत्र बढ़ता है। वैसे ही **पितुः**=सर्वपालक पिता से ही **माता**=सर्वनिर्मात्री प्रकृति **पयः**=वीर्य, शक्ति को **प्रति गृभ्णाति**=प्रति सर्ग ग्रहण करती है और **तेन**=उससे ही **पिता**=प्रभु-महिमा **वर्धते**=बढ़ती है।

भावार्थ–परमात्मा के दो रूप हैं पहला रूप है जो सृष्टि के सब पदार्थों को आच्छादित करता है और दूसरा रूप है जगत् की उत्पत्ति करना। जितना आवश्यक है उतना ही संसार प्रभु बनाते हैं। जड़ प्रकृति को वह अपनी शक्ति प्रदान करता है जिससे सृष्टि बनती है। इस सृष्टि-रचना से ही प्रभु की महिमा बढ़ती है।

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः** ॥ देवता–**पर्जन्यः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सर्वाधार परमेश्वर

यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः।

त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ४ ॥

पदार्थ–यस्मिन्=जिसके आधार पर **विश्वानि भुवनानि**=समस्त लोक, **तस्थुः**=स्थित हैं, **यस्मिन् तिस्रः द्यावः**=जिसके आश्रय तीनों लोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सूर्य स्थित हैं। **यस्मिन्**=जिसका आश्रय लेकर **आपः त्रेधा सस्रुः**=जल तीन प्रकार से गति करते हैं, पृथिवी से वाष्प बनकर ऊपर उठते हैं, मेघ से जल बनकर नीचे आते और समुद्र से वायु के बल पर भूमि पर आते हैं और **यस्मिन्**=जिसके आश्रय **त्रयः कोशासः**=तीन कोश **मध्वः उप-**

सेचनासः=जल वर्षक मेघों के समान मधुर आनन्द की वर्षा करनेवाले होकर **विरप्शम् अभितः**=उस महान् के चारों ओर **श्चोतन्ति**=गति करते हैं। अध्यात्म में तीन कोश -विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय। सूर्य में तीन कोश वर्णमण्डल (Chromosfhere) प्रकाशमण्डल (Photosfhere) और उद्रजन। यह सब कर्म उस महान् प्रभु के ही अधीन हो रहे हैं।

भावार्थ—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनों लोकों का आश्रय, जलों की तीनों गतियों का प्रेरक तथा तीनों कोश=ज्ञानकोश ऋग्, यजु, साम से जिस के आनन्द की वर्षा होती है वह सर्वाधार प्रभु ही है। उसकी महिमा को देखो।

ऋषिः—**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः**॥ देवता—**पर्जन्यः**॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

प्रभु की स्तुति हृदय से करें

इ॒दं वचः॑ प॒र्जन्या॑य स्व॒राजे॑ हृ॒दो अ॒स्त्वन्त॑रं॒ तज्जु॑जोषत्।
म॒यो॒भुवो॑ वृ॒ष्टयः॑ सन्त्व॒स्मे सु॑पिप्प॒ला ओष॑धीर्दे॒वगो॑पाः॥ ५॥

पदार्थ—**इदं वचः**—यह वचन **स्वराजे**=स्वप्रकाशस्वरूप, **पर्जन्याय**=सब रसों के दाता प्रभु के लिये **हृदः अन्तरं अस्तु**=हृदय के भीतर हो। **तत्**=उस स्तुति-वचन को प्रभु **जुजोषत्**=स्वीकार करे **अस्मे**=हमारे सुख के लिये **मयः-भुवः वृष्टयः शन्तु**=सुखदात्री वृष्टियाँ सदा हों और **सुपिप्पलाः**=उत्तम फलयुक्त **देव-गोपाः**=मेघ द्वारा रक्षित **ओषधीः**=ओषधियें भी **मयः-भुव सन्तु**=सुखकारी हों।

भावार्थ—जिस परमेश्वर की कृपा से ये बादल बरसकर हमें सुखी करते हैं। औषधियों से रोग निवारण तथा फलों से स्वास्थ्यवर्द्धन होकर हमें सुख मिलता है ऐसे सुखदाता प्रभु के लिए हृदय से स्तुति किया करें। हृदय के श्रेष्ठ भावों से की गई स्तुति को ही प्रभु स्वीकार करते हैं।

ऋषिः—**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः**॥ देवता—**पर्जन्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥ स्वरः—**धैवतः**॥

ज्ञानमय परमेश्वर

स रे॑तो॒धा वृ॑ष॒भः शश्व॑तीनां॒ तस्मि॑न्ना॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च।
तन्म॑ ऋ॒तं पा॑तु श॒तशा॑रदाय यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥ ६॥

पदार्थ—**सः**—वह परमेश्वर **रेतोधाः**=प्रकृति देवी में विश्व के उत्पादक परम बीज, तेज को आधान करनेवाला **शश्वतीनां वृषभः**=मेघ तुल्य सुखों का वर्षक, गौओं में साण्ड के समान पृथिवियों में जीवों का बीज बोनेवाला है, **तिस्मन्**=उसके ही आश्रय **जगतः तस्थुषः च आत्मा**=जंगम और स्थावर संसार का आत्मा या सत्ता विद्यमान है। **तत् ऋतं**=वह ज्ञानमय परमेश्वर **मे शतशारदाय पातु**=मेरे जीवन को सौ वर्षों तक पालन करे। हे विद्वान् पुरुषो! **यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात**=आप सदैव ही उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें।

भावार्थ—वह परमात्मा प्रकृति में अपना तेज भरकर सृष्टि के योग्य बनाता है। जीवों के बीज=वीर्य के परमाणु पृथिवी में भरता है। जड़ और चेतन समस्त सृष्टि का आश्रय है। उस ज्ञानमय परमेश्वर से सौ वर्ष तक जीवन धारण करने का सामर्थ्य प्राप्त करो।

अग्रिम सूक्त के ऋषि देवता यही हैं।

[१०२] द्व्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः** ॥ देवता–**पर्जन्यः** ॥ छन्दः–**गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सर्वोत्पादक परमेश्वर-१

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे। स नो यवसमिच्छतु॥ १ ॥

पदार्थ–हे विद्वान् लोगो! **दिवः पुत्राय**=सूर्य से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र व **मीढुषे**=सेचन करने में समर्थ, **पर्जन्याय**=जल दाता मेघ सदृश ज्ञान–प्रकाश से बहुतों के रक्षक और हृदय में आनन्द के सेचक, **पर्जन्याय**=सब रसों के दाता, सबके उत्पादक, परमेश्वर के लिये **प्र गायत**=अच्छी प्रकार स्तुति करो। **सः**=वह **नः**=हमें **यवसम्**=अन्नादि देना **इच्छतु**=चाहे।

भावार्थ–ज्ञान के प्रकाश से हृदय को आनन्द देनेवाले, बादलों से जल बरसाकर प्रसन्नता देनेवाले तथा समस्त रसों व अन्नादि को बनाकर जीवन देनेवाले सर्वोत्पादक परमेश्वर की स्तुति करने की विधि विद्वान् लोग सब मनुष्यों को बताया करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः** ॥ देवता–**पर्जन्यः** ॥ छन्दः–**पादनिचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

सर्वोत्पादक परमेश्वर-२

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम्॥ २ ॥

पदार्थ–यः=जो **ओषधीनाम्**=मेघ तुल्य ओषधियों, **गवाम्**=गौओं, **अर्वताम्**=अश्वों और **पुरुषीणाम्**=मानव स्त्रियों के **गर्भम् कृण्णोति**=गर्भ उत्पन्न करता है, वही **पर्जन्यः**=सर्वोत्पादक प्रभु है।

भावार्थ–औषधियों, गाय व घोड़े आदि पशुओं व मनुष्यों को उत्पन्न करनेवाला वह सर्वोत्पादक परमेश्वर ही है इस रहस्य को जानें।

ऋषिः–**वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः** ॥ देवता–**पर्जन्यः** ॥ छन्दः–**निचृद्गायत्री** ॥ स्वरः–**षड्जः** ॥

यज्ञ

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम्। इळां नः संयतं करत्॥ ३ ॥

पदार्थ–जो परमेश्वर वा गुरु **नः**=हमारे **आस्ये**=मुख में **इडाम्**=वाणी को **संयतं**=सुनियन्त्रित **करत्**=करता है **तस्मै इत्**=उसी के गुणगान के लिये **आस्ये**=मुख में **मधुमत्-तमम्**=अत्यन्त मधुर गुण युक्त **हविः**=वचन **जुहोत**=धारण करो। ऐसे ही जो प्रभु मेघ तुल्य **नः इडां संयतं करत्**=हमें नियम से अन्न देता है उसके लिये मधुर हवि को **आस्ये**=छिन्न–भिन्न करके दूर तक फैला देनेवाले अग्नि में **हविः**=मधुर अन्नादि चरु प्रदान करो।

भावार्थ–मनुष्य लोग परमेश्वर द्वारा प्रदान की गई वाणी से उसकी ही महिमा का गान=स्तुति करे और उसके द्वारा प्रदत्त अन्न–औषध आदि को अग्नि में आहुति देकर यज्ञ किया करें। इससे जीवन में सुख–शान्ति की वृद्धि होगी।

आगामी सूक्त का ऋषि वसिष्ठ व देवता मण्डूका है।

[१०३] त्र्युत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मण्डूकाः** ॥ छन्दः–**आर्ष्यनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धारः** ॥

वेदवाणी का प्रवचन

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः॥ १ ॥

पदार्थ–जैसे **संवत्सरं शशयाना:** वर्ष भर पड़े रहनेवाले **मण्डूका:**–जलवासी मेंढक **पर्जन्य-जिन्वितां वाचं प्र अवादिषु:**–मेघ से दी हुई वाणी को खूब ऊँचे-ऊँचे बोलते हैं वैसे ही **व्रत-चारिण:**–व्रत का आचरण करनेवाले **संवत्सरं शशयाना:**=वर्षभर तप करते हुए **ब्राह्मणा:**–'ब्रह्म', वेद के जाननेवाले, वेदज्ञ, विद्वान् जन **मण्डूका:**–ज्ञान, आनन्द में मग्न होकर **पर्जन्य-जिन्वितां**=प्रभु की दी हुई **वाचं**=वेद वाणी का **प्र अवादिषु:**–उत्तम रीति से प्रवचन किया करें।

भावार्थ–व्रतों को धारण करनेवाले विद्वान् जन आनन्द में भरकर अपने तपस्वी ब्रह्मचारियों के लिए वेदवाणी के रहस्यों को उत्तम प्रवचनों के द्वारा प्रदान किया करें।

ऋषि:–**वसिष्ठ:** ॥ देवता–**मण्डूका:** ॥ छन्द:–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वर:–**धैवत:** ॥

वेद का गान

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥

पदार्थ–दृतिं शुष्कं न–सूखे चर्म-पात्र के तुल्य **सरसि शयानं**–तालाब में पड़े **एनम्**=इस मण्डूक को **दिव्या आप:**=आकाश के जल **यद् अभि आयन्**–जब प्राप्त होते हैं तब **मण्डूकानां वग्नु:**–मेंढकों का शब्द **वत्सिनीनां गवां मायु: न**–बछड़े वाली गौओं के शब्द के तुल्य ही **सम् एति**=आता है वैसे ही **शुष्कं दृतिं न**–सूखे चर्मपात्र के तुल्य **सरसि**–ज्ञानमार्ग में **शयानम्**–तप करते हुए **एनम् प्रति अभि**=इस ब्राह्मण वर्ग को **दिव्या: आप:**=परमेश्वर से प्राप्त होनेवाली ज्ञान–वाणियाँ वर्षा-जल के तुल्य ही **आयन्**–प्राप्त होते हैं तब **मण्डूकानां**–ज्ञान में मग्न विद्वानों का **वग्नु:**–उपदेश और **वत्सिनीनाम्**=नियम से ब्रह्मचर्यवास करनेवाले शिष्यों से युक्त **गवाम् मायु:**–वेद–वाणियों की ध्वनि भी **अत्र**=इस लोक में **सम् एति**–अच्छी प्रकार सुनाई देती है।

भावार्थ–तपस्वी ब्राह्मण वर्ग को ईश्वर के द्वारा प्रदत्त अमृतमयी वेदवाणियों की प्राप्ति होती है। ये ज्ञानी विद्वान् ब्रह्मचर्य के तप से तपते हुए अपने अनुशासन प्रिय शिष्यों को इस वेदवाणी का उपदेश करें। तब इन गुरु और शिष्यों के द्वारा सस्वर छन्दों में गाई जानेवाली वेदवाणी लोगों को आकर्षित व प्रेरित करेगी।

ऋषि:–**वसिष्ठ:** ॥ देवता–**मण्डूका:** ॥ छन्द:–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वर:–**धैवत:** ॥

वेद-प्रचार

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावत: प्रावृष्यागतायाम्।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥

पदार्थ–उशत:=वर्षा को चाहनेवाले और **तृष्यावत: एनान्**=प्यासे इनके प्रति **प्रावृषि आगतायाम्**–वर्षा काल आ जाने पर **अभि अवर्षीत्**=मेघ वर्षता है, **पुत्र: पितरं न**=पिता के प्रति पुत्र के तुल्य **वदन्तम् अन्यम् अन्य: उप एति**–बोलते एक मेंढक के पास दूसरा जैसे आ जाता है वैसे ही **आगतायां प्रावृषि**–वर्षाकाल आने पर **यद्-ईम्**=जब भी **उशत:**=विद्या के इच्छुक और **तृष्यावत: एनान्**=ज्ञान–पिपासा से युक्त इन शिष्यों के प्रति विद्वान् पुरुष मेघ के तुल्य **अभि अवर्षीत्**=ज्ञान–वर्षा करता है तब **वदन्तम् अन्यम् उप**=उपदेश करते हुए एक के पास **अन्य:**=दूसरा शिष्य **पुत्र: पितरं न**–पिता के पास पुत्र के तुल्य ही **अक्खलीकृत्य**=विनम्र होकर **उप एति**=आता है और ज्ञान प्राप्त करता है।

भावार्थ–वर्षा ऋतु के आने पर विद्वान् लोग बस्तियों के समीप आकर वेदवाणी का उपदेश किया करें। इससे एक-एक करके अनेकों श्रोता शिष्यगण उन विद्वानों के समीप पहुँचकर ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मण्डूकाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्या का दान

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम्।

मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम्॥ ४॥

पदार्थ-जैसे **अपां प्रसर्गे**=जलों के खूब हो जाने पर **यत् अमन्दिषाताम्**–जब दो मेंढक प्रसन्न हो जाते हैं **अन्यः अन्यम् अनुगृभ्णाति**=एक दूसरे को पकड़ लेता है, **कनिष्कन् मंडूकः पृश्निः हरितेन वाचं सम्पृङ्क्ते**=पीला, कूदता मेंढक हरे मेंढक से अपनी आवाज मिलाता है वैसे ही **यत्**=जब **अपां प्रसर्गे**=आप्त वेदज्ञानों के देने के लिये गुरु-शिष्य दोनों **अमन्दिषाताम्**= प्रसन्न हो जाते हैं **एनोः**=इन गुरु और शिष्य में से **अन्यः**–एक गुरु, **अन्यम्**=दूसरे को **अनुगृभ्णाति**= अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करता है और **यत्**=जो **अभिवृष्टः**=अभिषेचित विद्याव्रत-स्नातक **मण्डूकः**= हर्षवान् होकर **कनिष्कन्**=विद्या प्रदान करता है तब **पृश्निः**=वेद का विद्वान् **हरितेन**=ज्ञान-ग्राहक शिष्य से **वाचम् संपृक्ते**=अपनी वाणी का सम्पर्क कराता है, उसे ज्ञान देता है।

भावार्थ–गुरुजन अपने ब्रह्मचारी शिष्यों के साथ मिलकर अनुग्रहपूर्वक विद्या प्रदान करते हैं। तब ये शिष्य विद्याव्रत-स्नातक होकर प्रसन्नतापूर्वक समावर्त्तित होकर जाते हैं। अब ये विद्वान् भी अपने समीप आनेवाले शिष्यों को विद्या का दान करें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मण्डूकाः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

वेद-प्रचार

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।

सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु॥ ५॥

पदार्थ–**यत्**=जब **एषाम्**=इन विद्वानों में से **अन्यः**=एक विद्वान् शिष्य **शिक्षमाणः**=शिक्षा पाकर **अन्यस्य शाक्तस्य**–दूसरे विद्या आदि से सम्पन्न गुरु की **वाचम् वदति**–वाणी को कहता है और **यत्**=जब **अप्सु अधि**=प्राप्त शिष्यों वा प्रजाओं के बीच, इन विद्वानों में **सुवाचः**=उत्तम वाणीवाले आप लोग **वदथन**=उपदेश करते हैं **तत्**=तब **एषां**=इनका **सर्वं**=समस्त **पर्व**=पालन योग्य व्रत, वेदादि-अध्ययन **समिधा इव**=समृद्ध उत्सवादि के समान हो जाता है।

भावार्थ–गुरुजनों के सान्निध्य में रहकर ब्रह्मचारी शिष्य जब विद्वान् हो जावे तो वह अपने वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त ज्ञान को हजारों लोगों के समूह में प्रवचन के द्वारा तथा अपने समीप आए शिष्यों को उपदेश के द्वारा प्रदान करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मण्डूकाः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विद्वानों की विभिन्न श्रेणियाँ

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।

समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः॥ ६॥

पदार्थ–**एषाम्**=इन विद्वानों में से **एकः**=एक **गो-मायुः**=वेदवाणियों के प्रवचन में समर्थ

होता है। **एकः अज-मायुः**=एक विद्वान् अजन्मा, परमेश्वर के प्रवचन में समर्थ है। **एक पृश्निः**=एक प्रश्नोत्तर करने में कुशल है। **एक हरितः**=एक ज्ञानों को ग्रहण करने में कुशल है। ये सब **समानं**=एक समान **नाम**-'ब्राह्मण' 'विद्वान्' नाम धारण करते हुए भी **वि-रूपाः**=विविध विद्याओं को धारण करते हैं। वे **वदन्तः**=प्रवचन करते हुए **पुरुत्रा वाचं पिपिशुः**=नाना प्रकार से वाणी को प्रकट करते हैं।

भावार्थ-राष्ट्र में कुछ विद्वान् वेदवाणी का प्रवचन करें, कुछ योगी बनकर योग सिखावें तथा परमात्मा का साक्षात्कार करावें, कुछ शोध करें, कुछ ज्ञान ग्रहण करके विभिन्न विद्याओं पर प्रयोग करें। इस प्रकार राष्ट्र में विविध विद्याओं का प्रचार होकर राष्ट्र समृद्ध बनेगा।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**मण्डूकाः**॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

पूर्ण ब्रह्म का उपदेश

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्त।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव॥ ७॥

पदार्थ-जैसे **यत्**=जब **संवत्सरस्य**=वर्ष के बीच **प्रावृषीणं अहः बभूव**=वर्षा का दिन होता है, **तत् अहः**=उस दिन **मण्डूकाः**=मेंढक **पूर्ण सरः अभितो वन्दतः परि तिष्ठन्ति**-भरे तालाब के चारों ओर बोलते हुए विराजते हैं। वैसे ही **अति-रात्रे**=अति रात्र सोमयाग की रात्रि को अतिक्रमण कर व्रतधारी विद्वान् **सोमे**=सोम अर्थात् शिष्य के निमित्त **न**=भी, हे **ब्राह्मणासः**=वेदज्ञ लोगो! आप **पूर्णं सरः अभितः वदन्तः**-पूर्ण ब्रह्म का उपदेश करते हुए **संवत्सरस्य तत् अहः**-वर्ष के उस दिन **परि स्थ**=सब एक घर-सा बनाकर बैठा करो।

भावार्थ-सोमयाग की रात्रि व्यतीत होने पर सभी व्रतधारी विद्वान् एक होकर अपने शिष्यों के लिए उस पूर्ण ब्रह्म का उपदेश करें। वर्ष के उस दिन सभी विद्वान् व शिष्य लोग एक घर जैसा बनाकर बैठा करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**मण्डूकाः**॥ छन्दः-**आर्षीत्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

वर्षभर वेदोपदेश

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित्॥ ८॥

पदार्थ-**सोमिनः ब्राह्मणासः**=सोमयाग करनेवाले, वा ब्रह्मचारियों को शिक्षा देनेवाले विद्वान् लोग **परि वत्सरीणम्**=वर्ष भर **ब्रह्म कृण्वन्तः**=वेदोपदेश करते हुए **वाचम् अक्रत**=प्रवचन करें। **अध्वर्यवः**=यज्ञकर्त्ता **घर्मिणः**=सूर्यवत् तेजस्वी, **सिष्विदानाः**=स्वेदयुक्त होकर भी **केचित्**=कुछ विद्वान् लोग **गुह्याः न**-गुहा में बैठे तपस्वियों के तुल्य **गुह्याः**-बुद्धि, ज्ञान या हृदय-गुहा में रमण करते हुए **आविर्भवन्ति**=प्रकट होते हैं।

भावार्थ-विद्वान् लोग अपने ब्रह्मचारी शिष्यों को वर्षभर वेदोपदेश करते रहें। यज्ञ कराते रहें तथा गुफाओं में बैठकर तपस्या करते हुए ब्रह्म को भी जानें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**मण्डूकाः**॥ छन्दः-**विराट्त्रिष्टुप्**॥ स्वरः-**धैवतः**॥

वेद की रक्षा

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥ ९॥

पदार्थ–**संवत्सरे**=वर्ष में **तप्ताः घर्माः**=तपे घाम अर्थात् सूर्य के तेज **प्रावृषि आगतायां**=वर्षाकाल आने पर **विसर्गम् अश्नुवते**=विविध प्रकार से जलों को व्याप लेते हैं, मेघ रूप से प्रकट करते हैं, वे **द्वादशस्य**=बारह मास के बने वर्ष के **देव-हितिं**=जलप्रद मेघ की **जुगुपुः**=रक्षा करते और **नरः**=नायक वायुगण **ऋतं न प्रमिनन्ति**=वर्षा ऋतु को नष्ट नहीं होने देते वैसे ही **संवत्सरे**=एक वर्ष में **प्रावृषि आगतायाम्**=वर्षा के आने पर **तप्ताः**=तप से संतप्त, **घर्माः**=तेजस्वी पुरुष भी **विसर्गम् अश्नुवते**=विविध अध्याय, काण्डादि से युक्त वेद का अभ्यास करते हैं। वे **द्वादशस्य**=बारहों मास **देव-हितिं जुगुपुः**=परमेश्वरदत्त ज्ञान की रक्षा करते हैं और **एते**=वे **नरः**=उत्तम पुरुष **ऋतुं न प्र मिनन्ति**='ऋतु' अर्थात् ज्ञानयुक्त वेद को वैसे ही नष्ट नहीं होने देते जैसे नर-जीव अपने जातिवर्ग में ऋतु का व्यर्थ नाश नहीं होने देते।

भावार्थ–तेजस्वी विद्वान् व ब्रह्मचारीगण विविध अध्याय, काण्ड आदि से युक्त वेद का अभ्यास वर्षभर किया करें। इस प्रकार ईश्वरप्रदत्त वेद ज्ञान की रक्षा निरन्तर करते रहें। उत्तम विद्वान् पुरुष कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी ईश्वर की ज्ञानमयी वेदवाणी को नष्ट नहीं होने दें।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मण्डूकाः** ॥ छन्दः–**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

विविध विद्याओं का उपदेश

गोमा॑युरदाद॒जमा॑युरदा॒त्पृश्नि॑रदा॒द्धरि॑तो नो॒ वसू॑नि ।
गवां॑ म॒ण्डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥ १० ॥

पदार्थ–**गो-मायुः**=वाणियों का उपदेष्टा **नः वसूनि अदात्**=हमें ऐश्वर्य दे। **अज-मायुः नः वसूनि अदात्**=नित्य पदार्थ जीव, आत्मा और प्रकृति का उपदेशक हमें ऐश्वर्य दे। **हरितः**=ज्ञान-संग्रही विद्वान् **नः वसूनि अदात्**=हमें ऐश्वर्य दे। **मंडूकाः**=मोक्षादि आनन्द में मग्न और अन्यों को आनन्दित करनेवाले विद्वान् **सहस्रसावे**=सहस्रों के ऐश्वर्यों और सुखों के देने के निमित्त **गवां शतानि**=सैकड़ों वाणियों का **ददतः**=उपदेश करते हुए **आयुः प्र तिरन्ते**=आयु की वृद्धि करें।

भावार्थ–विद्वान् जन लोगों के मध्य में वेद का उपदेश करें। ईश्वर, जीव, प्रकृति इन नित्य पदार्थों का उपदेश करें। विविध भौतिक ज्ञान का उपदेश करें। मोक्ष तथा मोक्षानन्द की प्राप्ति के साधन बतावें। सांसारिक पदार्थों की समृद्धि हेतु शिल्प विद्या आदि सिखावें। इस प्रकार राष्ट्र में भौतिक तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य की वृद्धि करें।

अग्रिम सूक्त का ऋषि वसिष्ठ तथा देवता इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ, इन्द्र, सोम, अग्नि, देवाः, ग्रावणः, मरुत, वसिष्ठ, पृथिव्यन्तरिक्षे हैं।

[१०४] चतुरुत्तरशततमं सूक्तम्

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ** ॥ छन्दः–**विराड्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

दुष्टों का दमन

इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं वृषणा तमो॒वृधः॑ ।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्रिणः॑ ॥ १ ॥

पदार्थ–दुष्टों का दमन। हे **इन्द्रा सोमा**='इन्द्र' ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे सोम, शासक जन! आप दोनों मिलकर **रक्षः तपतम्**=दुष्टों को इतना पीड़ित करो कि वे पश्चात्ताप करें। **उब्जतम्**=उनको झुकाओ। हे **वृषणा**=प्रबन्धक, बलवान् जनो! **तमः-वृधः**=अज्ञान, अन्धकार बढ़ानेवालों को **नि अर्पयतम्**=नीचे दबाओ। उन **अचितः**=मूर्ख लोगों को **परा शृणीतम्**=पीड़ित करो कि वे बुरे

पथ से हट जाएँ। उनको **नि ओषतं**=सन्तापित करो, **हतं**-दण्डित करो, **नुदेथाम्**-उनको भगाते रहो। **अत्रिणः**-प्रजा का सर्वस्व खा जानेवालों को भी **नि शिशीतम्**-तीक्ष्ण दण्ड दो।

भावार्थ-शासक जनों को योग्य है कि वह प्रजा को कष्ट देनेवाले दुष्टों को दबाए, मारे, पीड़ा पहुँचावे तथा दण्डित करे। राष्ट्र घातकों को कठोर दण्ड देवे। इससे वे दुष्ट पश्चात्ताप करेंगे तथा बुरे पथ को छोड़कर राष्ट्र की मुख्यधारा में जुड़ जावेंगे।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ**॥ छन्दः-**आर्षीजगती**॥ स्वरः-**निषादः**॥

पापी को पीड़ा दें

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँइव।

ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने॥ २॥

पदार्थ-हे **इन्द्रासोमा**=ऐश्वर्यवन्! हे शासक जनो! आप दोनों **अघ-शंसं**=पाप-चर्चा करनेवाले **अघं**=पापी पुरुष को **सम् अभि धत्तम्**=अच्छी प्रकार बाँधो, वह **तपुः**=संतप्त होकर, **अग्निवान् चरुः इव**=अग्नि-युक्त पात्र के समान सन्तप्त होकर **ययस्तु**=पीड़ित हो। आप दोनों **ब्रह्म-द्विषे**-वेद और वेदज्ञ के द्वेषी **क्रव्यादे**-कच्चे मांस खोर और **किमीदिने** अब क्या, अब क्या इस प्रकार मूढ़ और **घोरचक्षसे**=क्रूर-दृष्टि पुरुष को **अनवायं**-निरन्तर **द्वेषः धत्तम्**=अप्रीति करो।

भावार्थ-शासक जन राष्ट्र में पाप कर्मों को फैलानेवाले पापियों को बन्धन में डालकर पीड़ित करें। वेद के विद्वानों के विरोधी, कच्चा मांस खानेवालों को भी दण्डित करें तथा पूर्वाग्रही मूर्ख लोगों का तिरस्कार करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ**॥ छन्दः-**निचृज्जगती**॥ स्वरः-**निषादः**॥

आततायी को दण्ड

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।

यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः॥ ३॥

पदार्थ-हे **इन्द्रोसोमा**-ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे **सोम**-विद्वान् जनो! आप लोग **दुष्कृतः**=दुष्ट और दुःखदायी कामनावाले पुरुषों को **वव्रे अन्तः**=चारों ओर से घिरे कृष्णागार स्थान के भीतर और **अनारम्भणे तमसि**-अवलम्बन-रहित, ऐसे अन्धेरों में जहाँ कार्य न किया जा सके **प्र विध्यतम्**=रखकर दण्डित करो। **यथा**=जिससे **अतः**=वहाँ से **पुनः एकः चन**=फिर एक भी कोई **न उद् अयत्**=उठ के ऊपर न आवे। **वाम्**=आप दोनों का **तत्**=वह अद्भुत **मन्युमत् शवः**=क्रोध से पूर्ण पराक्रम **सहसे अस्तु**=दुष्ट की पराजय के लिये हो।

भावार्थ-प्रजा को दुःख देनेवाले दुष्ट आततायी को शासक जन कारावास में डालकर अन्धेरी कालकोठरी में रखकर दण्डित करें जिससे वह आततायी पुनः दुष्ट आचरण करने का साहस न कर सके।

ऋषिः-**वसिष्ठः**॥ देवता-**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ**॥ छन्दः-**विराड्जगती**॥ स्वरः-**निषादः**॥

दुष्ट-पापियों को सन्ताप दें

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।

अत्तक्षतं स्वर्य१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः॥ ४॥

पदार्थ–हे **इन्द्रासोमा**=ऐश्वर्यवन्, हे विद्यावान् दोनों जनो! आप **अघ-शंसाय**=पाप-चर्चाकारी पुरुष को दण्ड देने के लिये **दिवः**=सूर्य और **पृथिव्याः**=पृथिवी से **वधं वर्तयतम्**=दण्ड किया करो और उसके लिये **तर्हणम्**=नाशकारी **स्वर्यं**=सन्तापजनक, नादकारी **पर्वतेभ्यः**=मेघों से आनेवाले विद्युत् को **उत् तक्षम्**=उत्तम रीति से प्राप्त करो। **येन**=जिससे **वावृधानं रक्षः**=बढ़ते दुष्ट जन को **निजूर्वथः**=दण्डित कर सको।

भावार्थ–राष्ट्र में पाप को फैलानेवाले पापी पुरुष को शासक वर्ग सूर्य का तेज धूप, गले तक भूमि में दबाकर तथा विद्युत् का प्रहार करके बहुत सन्ताप दे। इससे राष्ट्र में बढ़ते अपराध तथा दुष्टजनों को रोका जा सकेगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

आकाश से दुष्टों पर अस्त्र प्रहार

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्पर्य॑ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः।
तपु॑र्वधेभिर॒जरे॑भिर॒त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने विध्यतं॒ यन्तु॑ निस्व॒रम्॥ ५ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्रासोमा**=राजन्! शासक जन! **युवम्**=आप दोनों **अग्नि-तप्तेभिः**=अग्नि से तपे हुए, **अश्म-हन्मभिः**=मेघ से विद्युत् तुल्य आघात करनेवाले **तपुर्वधेभिः**=दुष्ट नाशक अस्त्रों से **दिवः परि**=आकाश से दूर से ही मार कर **अत्रिणः**=प्रजा नाशक दुष्ट पुरुष के **पर्शाने**=दोनों पासों के बल समुदाय को **नि विध्यतम्**=छिन्न-भिन्न करो। जिससे वह **निः-स्वरम्**=बिना आवाज किये, बिना कष्ट पहुँचाये **यन्तु**=चला जावे।

भावार्थ–राजा दुष्ट-नाशक अस्त्रों को वायुसेना में सम्मिलित करे। इससे दुष्ट व शत्रुओं पर आकाश से ही अस्त्रों का प्रहार करके दुष्ट पुरुषों की शक्ति का नाश कर दे। तब वह दुष्ट शक्तिहीन होकर स्वयं ही भाग जाएगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ** ॥ छन्दः–**विराड्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

वेदवाणी का अवगाहन

इन्द्रा॑सोमा॒ परि॑ वां भूतु वि॒श्वत॑ इ॒यं म॒तिः क॒क्ष्याश्वे॑व वा॒जिना॑।
यां वा॒ं होत्रां॑ परिहि॒नोमि॑ मे॒धये॒मा ब्रह्मा॑णि नृ॒पती॑व जिन्वतम्॥ ६ ॥

पदार्थ–**कक्ष्या वाजिना अश्वा-इव**=जैसे वेगवाले, अश्वों को बगलबन्द की रस्सी चारों ओर से बाँधती है हे **इन्द्रासोमा**=ऐश्वर्यवन् वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य! हे सोम! सौम्य भावयुक्त शिष्य! **वां**=आप दोनों को **इयं मतिः**=यह ज्ञान वा वाणी **कक्ष्या**=अवगाहन-योग्य गम्भीर, **विश्वतः परि भूतु**=सब ओर से प्राप्त हो। **वां**=आप दोनों की **यां**=जिस **होत्रां**=ग्रहण योग्य उत्तम वाणी को **मेधया**=धारणावती बुद्धि द्वारा **परि हिनोमि**=मैं प्राप्त करूँ, **इमा ब्रह्माणि**=इन वेद-वचनों को **नृपती इव**=राजाओं के समान तुम दोनों **जिन्वतम्**=प्राप्त करो।

भावार्थ–ज्ञानी आचार्य और ब्रह्मचारी शिष्य दोनों मिलकर वेदवाणी का गम्भीर मन्थन करें। जो तथ्य व रहस्य निष्कर्ष रूप में प्राप्त हों उन्हें अपनी मेधा बुद्धि के द्वारा धारण करें तथा उनका उपदेशों द्वारा प्रचार करें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥ स्वरः—**निषादः** ॥

कठोरतम दण्ड व्यवस्था

प्रति॑ स्मरेथां तु॒जय॑द्भि॒रेवै॒र्ह॒तं द्रु॒हो र॒क्षसो॑ भङ्गु॒राव॑तः।

इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृ॒ते मा सु॒गं भू॒द्यो नः॑ क॒दा चि॑दभि॒दास॑ति द्रु॒हा ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे **इन्द्रासोमा**=ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् पुरुषो! आप दोनों **तुजयद्भिः**=शत्रुनाशक **एवैः**=प्रयाणशील, सैन्यों तथा अज्ञाननाशक ज्ञानों में **प्रति स्मरेथाम्**=प्रत्येक वस्तु का स्मरण करो। **भङ्गुरावतः**=गृहादि को तोड़नेवाले तथा व्रतादि के नाशक, **द्रुहः रक्षसः**=विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और दुष्ट भावों को **हतम्**=दण्ड दो, नष्ट करो। **यः**—जो **नः**—हमें **कदाचित्**=कभी भी **द्रुहा**=द्वेष से **अभिदासति**=नाश करता, वा हमें अपना दास बना लेता है, ऐसे **दुष्कृते**=दुराचारी को **सुगं मा भूत्**=कभी सुख न हो।

भावार्थ—शासकवर्ग शत्रु तथा दुष्टों के नाश की नीति तैयार करते समय प्रत्येक पहलू पर विचार करे। फिर उसे कठोरता से लागू करे। घरों-भवनों को हानि पहुँचानेवाले व अपहरण करनेवाले दुष्टों को कठोरतम दण्ड दें।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**इन्द्रः** ॥ छन्दः—**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

असत्यभाषी विद्वान् को दण्ड

यो मा॒ पाके॑न॒ मन॑सा॒ चर॑न्तमभि॒चष्टे॒ अनृ॑तेभि॒र्वचो॑भिः।

आप॑इव का॒शिना॒ संगृ॑भीता॒ अस॑न्न॒स्त्वास॑त इन्द्र व॒क्ता ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे **इन्द्र**—ऐश्वर्यवन्! **यः**=जो **पाकेन मनसा**=परिपक्व=दढ़, ज्ञान वा चित्त से अथवा **पाकेन=वाकेन**=सत्य वचन और **मनसा**—उत्तम ज्ञान-सहित **चरन्तम्**=आचरण करनेवाले **मा**—मुझ पर **अनृतेभिः वचोभि**—असत्य वचनों द्वारा **अभि-चष्टे**=आक्षेप करता है वह **असन्**=असत्य का **वक्ता**—कहनेवाला **काशिना संगृभीताः अपः इव**=मुट्ठी में लिये जलों के समान **असन् अस्तु**=नहीं-सा होकर नष्ट हो।

भावार्थ—यदि कोई विद्वान् किसी निर्दोष व्यक्ति पर झूठे आरोप लगावे तो ऐसे असत्यभाषी विद्वान् को भी राजा दण्ड दे।

ऋषिः—**वसिष्ठः** ॥ देवता—**सोमः** ॥ छन्दः—**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥ स्वरः—**धैवतः** ॥

असत्य के प्रति प्रेरणा करनेवाले को दण्ड

ये पा॑कशं॒सं वि॒हर॑न्त॒ एवै॒र्ये वा॑ भ॒द्रं दू॒षय॑न्ति स्व॒धाभिः॑।

अह॑ये वा॒ तान्प्र॒ददा॑तु सोम॒ आ वा॑ दधातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्थे॑ ॥ ९ ॥

पदार्थ—**ये**=जो लोग **एवैः**—बुरे अभिप्रायों से **पाक-शंसं**=परिपक्व, सत्य वचन कहनेवाले को **विहरन्ते**=विरुद्ध मार्ग में ले जाते हैं **वा**=अथवा जो **स्वधाभिः**—अपने बल, अन्न, गृह के बल से वा वेतन भोगी पुरुषों द्वारा **भद्रं दूषयन्ति**—भले आदमी को दूषित करते हैं, **सोमः**=शासक राजा, न्यायाधीश **तान्**=उनको **वा**—भी **अहये प्र ददातु**=सर्पादि जन्तु के काटने, वा सर्पवत् कुटिलाचार करने के लिये दण्ड दे। **वा**=अथवा **तान्**—ऐसे पुरुषों को **निः ऋतेः**=दुःखदायी जन्तु, सिंह, रीछ आदि वा पीड़क के **उपस्थे**=समीप **आ दधातु**=रक्खें।

भावार्थ—यदि कोई व्यक्ति सदाचारी विद्वान् को या अपने अधीन वेतनभोगी पुरुषों को किसी

निर्दोष के ऊपर झूठे आरोप या उसके विरुद्ध झूठी गवाही देने के लिए दबाव डाले या प्रेरित करे तो ऐसे असत्य के प्रति प्रेरक को भी राजा कठोरतम दण्ड देवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**अग्निः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

मृत्युदण्ड की व्यवस्था

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्।

रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥

पदार्थ–हे **अग्ने**=अग्निवत् तेजस्विन्! **यः**=जो दुष्ट पुरुष **नः**=हमारे **पित्वः रसं**=अन्न के रस, सारभाग को **दिप्सति**=नष्ट करना चाहता है और **यः**=जो हमारे **अश्वनां**=घोड़ों, **गवां**=गौओं, और **तनूनां**=शरीरों के **रसं**=सारवान् बलयुक्त अंश को नाश करता है वह **रिपुः**=शत्रु, **स्तेनः**=चोर **स्तेयकृत्**=चोरी करनेवाला, पुरुष **दभ्रम् एतु**=पीड़ा वा मृत्युदण्ड को प्राप्त हो और **सः**=वह **तन्वा**=शरीर और **तना च**=पुत्रादि से **नि हीयताम्**=वञ्चित रहे।

भावार्थ–जो दुष्ट प्रजाजनों के अन्नादि खाद्य पदार्थों को नष्ट करे, उनके पशुओं को मारे, उनके परिजनों को मारे या व्यभिचार करे ऐसे दुष्ट को राजा मृत्युदण्ड देवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**देवाः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दुष्ट का सामाजिक बहिष्कार

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।

प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥ ११ ॥

पदार्थ–हे **देवाः**=विद्वान् मनुष्यो! **यः च**=और जो **नः**=हमें **दिवाः**=दिन में या **नक्तम्**=रात में **दिप्सति**=हानि पहुँचाता, **सः**=वह **तन्वा तना च**=शरीर और पुत्रादि से भी **परः अस्तु**=दूर हो। वह **विश्वाः**=समस्त **तिस्रः**=तीनों **पृथिवीः**=भूमियों, लोकों से **अधः अस्तु**=नीचे रहे, वह गढ़े में, या नीची कोटि में रक्खा जावे। **अस्य यशः**=उसका यश, बल **प्रति शुष्यतु**=प्रतिदिन सूखता जाय।

भावार्थ–जो दुष्ट प्रजाजनों को दिन में या रात में हानि पहुँचाता है उसका सामाजिक बहिष्कार किया जावे जिससे उसका यश और बल दोनों नष्ट हो जाएगा।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**सोमः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

सत्य की रक्षा असत्य का नाश करें

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

पदार्थ–**चिकितुषे**=जाननेवाले **जनाय**=मनुष्य के लिये **सत् च असत् च**=सत्य और असत्य दोनों **सुविज्ञानं**=अच्छी प्रकार जानने योग्य हैं, क्योंकि **सत् च असत् च वचसी**=सत्य और असत्य दोनों वचन **पस्पृधाते**=परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। दोनों विरोधी होते हैं **तयोः**=उन दोनों में **यत् सत्यं**=जो सत्य है और **यतरत् ऋजीयः**=जो अधिक ऋजु, धर्मानुकूल है **तद् इत्**=उसकी ही, **सोमः**=उत्तम शासक विद्वान् **अवति**=रक्षा करता है और **असत् हन्ति**=असत् को विनष्ट करता है।

भावार्थ–विद्वान् जन अपने विवेक से सत्य और असत्य का निर्णय अच्छी प्रकार से करें।

सत्य को भी जानें और असत्य को भी जानें तब सत्य की रक्षा और असत्य का नाश पुरुषार्थपूर्वक करें।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**सोमः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

असत्यवादी को कारावास

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।

हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥ १३ ॥

पदार्थ-सोमः-उत्तम शासक **वृजिनं**-असत्य को **न वै उ हिनोति**-कभी वृद्धि न दे और **मिथुया धारयन्तं**=असत्य के धारक **क्षत्रियम्**=बलशाली पुरुष को भी **न हिनोति**=न बढ़ने दे। **रक्षः**=दुष्ट पुरुष को **हन्ति**=दण्ड दे, और **असद् वदन्तम् हन्ति**=असत्यवादी को दण्ड दे। **उभौ**=वे दोनों भी **इन्द्रस्य प्रसितौ**=दुष्टों के भयकारी पुरुष के उत्तम बन्धन में **शयाते**=डाले जाएँ।

भावार्थ-उत्तम शासक कभी भी झूठ को आश्रय न दे। झूठे सामर्थ्यवान् पुरुष को भी दण्ड दे तथा कारावास में बन्द करे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**अग्निः** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

विद्वानों के द्वेषी को दण्ड

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।

किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्॥ १४ ॥

पदार्थ-यदि वा=और यदि **अहम्**=मैं **अनृतदेवः**-असत्य बात का प्रकाश करनेवाला हूँ, हे **अग्ने**=तेजस्विन्! अथवा मैं **देवान् अपि**=विद्वान् पुरुषों से भी **मोघं**-झूठ-मूठ, **ऊहे**-नाना तर्क वितर्क करता हूँ, हे **जातवेदः**-विद्वन्! ज्ञानवन्! **अस्मभ्यम्**=विचार करो कि हमारे सुधार के लिये **किम् हृणीषे**=क्या-क्या क्रोध कर हमें किस प्रकार दण्डित करो। क्योंकि **द्रोघ-वाचः**=द्वेष की बात कहनेवाले **ते**-वे लोग **निर्ऋथं**-अति दुःखी और सत्य, ऐश्वर्यादि से रहित, कष्टमय जीवन को **सचन्ताम्**=प्राप्त हों।

भावार्थ-यदि कोई व्यक्ति झूठ का सहारा लेता है अथवा विद्वानों से व्यर्थ में तर्क-वितर्क या कुतर्क करके उन्हें कष्ट पहुँचाता है तो ऐसे द्वेषी को भी उत्तम शासक उचित दण्ड अवश्य देवे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ** ॥ छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

अंग-भंग द्वारा दण्ड

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।

अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥ १५ ॥

पदार्थ-यदि=यदि मैं **यातुधानः**-अन्यों का पीड़क **अस्मि**=होऊँ और **यदि वा**=जो मैं **पूरुषस्य**=मनुष्य के **आयुः**=जीवन को **ततप**=पीड़ित करूँ, तो मैं **अद्य मुरीय**=आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊँ। अन्य को पीड़ा देने और मनुष्य को हानि पहुँचानेवाले को मृत्युदण्ड हो। **अद्य**=और **यः**=जो **मोघं**=व्यर्थ, **मा**=मुझे **यातुधान इति आह**-पीड़ादायक कहे **सः**=वह तू **दशभिः वीरैः**=दशों प्रकार के प्राणों या दशों अंगुलियों, दोनों हाथों से **वि यूयाः**=वियुक्त हो।

भावार्थ–यदि कोई दुष्ट अन्धे लोगों को दुःखी करे या अन्य लोगों को कष्ट पहुँचावे ऐसे दुष्ट को राजा कठोर दण्ड दे। और यदि कोई व्यक्ति पीड़ित करने का झूठा आरोप लगावे तो उसे अंग-भंग करके दण्डित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**विराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

असत्य आरोप लगानेवाले को दण्ड

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह।

इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट॥ १६ ॥

पदार्थ–**यः**=जो **अयातुं मा**=अन्य को पीड़ा न देनेवाले मुझको **यातुधान इति आह**='पीड़ा देनेवाला' ऐसा कहे **वा**=और **यः**=जो **रक्षाः**=स्वयं दुष्ट पुरुष होकर **शुचिः अस्मि इति आह**=मैं निर्दोष हूँ, ऐसा कहे **इन्द्रः**=राजा **तं**=उसको **महता वधेन**=बड़े भारी शस्त्र से **हन्तु**=मारे और वह **विश्वस्य जन्तोः**=समस्त पापियों से **अधमः**=नीचा **पदीष्ट**=समझा जावे।

भावार्थ–यदि कोई दुष्ट निर्दोष लोगों पर पीड़ित करने का झूठा दोष लगावे या दोषी होकर भी स्वयं को निर्दोष बतावे ऐसे धूर्त को शस्त्र के प्रहार से (कोड़े आदि लगाकर) शासकवर्ग दण्डित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**ग्रावाणः** ॥ छन्दः–**निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

दुराचारिणी स्त्री को दण्ड

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना।

वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

पदार्थ–**या**=जो स्त्री, **खर्गला इव**=उल्लूनी के समान **द्रुहा**=पति-द्रोह करके **तन्वं गूहमाना**=शरीर को छिपाकर **नक्तम्**=रात के समय **प्र अप जिगाति**=घर छोड़कर जाती है **सा**=वह **अनन्तां वव्रान्**=खूब गहरे गढ़ों को **अव पदीष्ट**=प्राप्त हो। **ग्रावाणः**=क्षत्रिय लोग **उपब्दैः**=घोषणाओं सहित **रक्षसः घ्नन्तु**=दुष्ट पुरुषों को विनष्ट करें।

भावार्थ–यदि कोई दुश्चरित्र स्त्री अपने पति से झगड़कर या छुपकर रात को घर से किसी अन्य पुरुष के पास चली जावे तो उस स्त्री तथा दुश्चरित्र पुरुष को भूमि में गड्ढा खोदकर दबा दिया जावे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**मरुतः** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

कर्त्तव्यपराण कर्मचारी को पुरस्कार

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन।

वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे॥ १८ ॥

पदार्थ–हे **मरुतः**=वायुवत् बलवान् पुरुषो! **ये**=जो **नक्तभिः**=रातों के समय आप लोग **वयः भूत्वी**=प्रकाशयुक्त होकर **पतयन्ति**=नगर स्वामी के समान रक्षा करते हैं **ये वा**=और जो आप लोग **अध्वरे**=हिंसारहित **देवे**=तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर **रिपः**=दुष्ट पुरुषों को **दधिरे**=पकड़ते हो वे आप लोग **विक्षु**=प्रजाओं में **वि तिष्ठध्वम्**=विशेष-विशेष पदों पर विराजें और **वि इच्छत**=विविध ऐश्वर्यों की कामना करें। **रक्षसः वि गृभायस**=दुष्ट पुरुषों को विविध प्रकार से पकड़ो और उनको **सं पिनष्टन**=खूब पीसो, दण्डित करो, कुचलो।

भावार्थ–जो कर्त्तव्यपरायण वीर राज पुरुष रात्रि में नगर तथा प्रजाजनों की रक्षा करते हैं, दुष्टों को पकड़कर दण्डित करते ऐसे राजभक्त कर्मचारियों को राजा पदोन्नति करके प्रोत्साहित करे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

आग्नेयास्त्र तथा गोली से शत्रुनाश

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=शत्रुहन्तः! तू **दिवः अश्मानम्**=आकाश से गिरे ओलों के तुल्य **दिवः**=आग्नेय अस्त्र से **अश्मानम्**=शत्रुनाशक गोली आदि कठिन वस्तु **प्र वर्त्तय**=फेंक। हे **मघवन्**=ऐश्वर्यवन्! तू **सोम-शितम्**=ऐश्वर्य और उत्तम शासक से तीव्र हुए शत्रु और प्रजाजन दोनों का **सं शिशाधि**=अच्छी प्रकार शासन कर। **प्राक्तात्, अपाक्तात्, उदक्तात्, अधरात्**=पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे, दक्षिण से भी **पर्वतेन**=दृढ़ पोरुवाले दण्ड से, पशु तुल्य **रक्षसः जहि**=दुष्ट पुरुषों को दण्ड दे।

भावार्थ–राजा शत्रु का नाश करने के लिए वायुसेना को सुदृढ़ करे, शत्रुओं पर हवाई हमले करके आग्नेयास्त्र तथा गोलियों की बौछार करे। शत्रु को बन्दी बनाकर कठोर दण्ड दे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः–**धैवतः** ॥

चापलूसों से सावधान

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥

पदार्थ–**एते उ त्ये**=ये वे बहुत से **श्व-यातवः**=कुत्ते के समान चाल चलने और अन्यों को पागल कुत्ते के समान बिना प्रयोजन काटने और गुर्रा-गुर्रा कर डरानेवाले लोग ही **पतयन्ति**=मालिक से बनना चाहते और प्रजा के धन को हरना चाहा करते हैं **दिप्सवः**=हिंसाकारी लोग ही **अदाभ्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति**=अहिंसनीय, राजा को मारना चाहा करते हैं। **शक्रः**=शक्तिशाली राजा **पिशुनेभ्यः**=क्षुद्र पुरुषों का दमन करने के लिये **वधं शिशीते**=शस्त्र-बल को तेज करे। **नूनं**=अवश्य ही वह **यातुमद्भ्यः**=प्रजापीड़क पुरुषों के दमन के लिये **अशनिं**=विद्युत्वत् आघातकारी अस्त्र **सृजत्**=बनावे।

भावार्थ–राजा को ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिये जो सामने तो झूठी प्रशंसा करे और पीछे राजा को मारने की योजना बनावे अथवा जो राजा की झूठी प्रशंसा=चापलूसी करके प्रजा का धन हरण करें। ऐसे दुष्टों को राजा दण्ड अवश्य देवे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रः** ॥ छन्दः–**निचृज्जगती** ॥ स्वरः–**निषादः** ॥

आक्रमणकारी को दण्ड

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः ॥ २१ ॥

पदार्थ–**इन्द्रः**=ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता **पुरुष हविर्मथीनां**=प्रजाओं के अन्न, यज्ञों के चरु आदि को हरनेवाले **यातूनां**=प्रजापीड़ादायी मनुष्यों और **अभि आ विवासताम्**=सामने से आक्रमण करनेवाले पुरुषों को **परा-शरः**=दूर तक मार मारनेवाला **आ भवत्**=हो। **परशुः यथा**

वनं=जैसे फरसा, वन को काट गिराता है, **पात्रा इव**=जैसे पत्थर वर्त्तनों को तोड़ डालता है वैसे ही **शक्रः**=शक्तिशाली राजा **रक्षसः**=दुष्ट पुरुषों को **परशुः**=कुल्हाड़ा-सा होकर **अभि एति**=प्राप्त हो और **रक्षसः सतः भिन्दन् एति**=उन दुष्टों को भेद-नीति से तोड़ता-फोड़ता हुआ प्राप्त हो।

भावार्थ-जो दुष्ट प्रजा के अन्नादि खाद्य पदार्थों व यज्ञ की सामग्री का हरण करे और जो शत्रु सामने से आक्रमण करे राजा उनको कठोरतम दण्ड देकर पीड़ा पहुँचावे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

दुष्टों को पत्थर से पीस दे

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥ २२ ॥

पदार्थ-हे **इन्द्र**=शत्रुनाशक! राजन्! **उलूक-यातुम्**=बड़े उल्लू के समान चाल चलने और छिपकर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करनेवाले को, **शुशुलूकयातुम्**=छोटे उल्लू के समान कर्कश बोलकर डराने और गरीब जनों को पीड़ित करनेवाले को, **श्व-यातुम्**=कुत्ते के समान भौंककर, कठोर वचन कहकर प्रजाजनों को पीड़ा देनेवाले, **कोक-यातुम्**=उलूक की तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देनेवाले **सुपर्ण-यातुम्**=बाज़ के समान झपटनेवाले **उत**=और **गृध्रयातुम्**=गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोचकर खा जानेवाले, **रक्षः**=दुष्ट जनों को **दृषदा इव**=सिलबट्टे या चक्की के पाटों के समान पीस डालनेवाले **प्र मृण**=दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल।

भावार्थ-जो दुष्ट लोग छिपकर प्रजा का धन हरण करें, जो कठोर बोलकर डरावें, जो गरीबों को पीड़ित करें, जो चलते फिरते सामान झपटें, और जो गिरोह बनाकर प्रजा को नोचें उन सब दुष्ट जनों को राजा कठोर दण्ड दे।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**वसिष्ठः, पृथिव्यन्तरिक्षे** ॥ छन्दः-**आर्चीभुरिग्जगती** ॥ स्वरः-**निषादः** ॥

आकाश व भूमि मार्गों से राष्ट्र की सुरक्षा

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान्॥ २३ ॥

पदार्थ-**रक्षः**=दुष्ट पुरुष **नः**=हम तक **मा अभिनड्**=न पहुँचे। **यातुमा-वताम्**=पीड़ा देनेवाले जनों के **मिथुना**=जोड़े, स्त्री-पुरुष **या किमीदिना**=जो क्षुद्र कोटि का स्वार्थमय स्नेह करते हैं वे **अप उच्छतु**=दूर हों। **पृथिवी**=पृथिवीवत् सर्वाश्रय, विस्तृत शक्ति **नः पार्थिवात् अहंसः पातु**=हमें पृथिवी से होनेवाले कष्ट से बचावे और **अन्तरिक्षं**=अन्तरिक्ष **अस्मान्**=हमें **दिव्यात् अंहसः पातु**=आकाश की ओर से आनेवाले कष्ट से बचावे।

भावार्थ-राजा कठोर राजनियम तथा सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ करे जिससे दुष्ट लोग प्रजा तक न जा सकें। अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिए भूमि तथा आकाश दोनों ओर से होनेवाले आक्रमण को रोकने में समर्थ हो।

ऋषिः-**वसिष्ठः** ॥ देवता-**इन्द्रः** ॥ छन्दः-**याजुषीविराट्त्रिष्टुप्** ॥ स्वरः-**धैवतः** ॥

व्यभिचारियों को मृत्युदण्ड

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ २४ ॥

पदार्थ–हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यवन्! तू **यातुधानं पुमांसं**=पीड़क पुरुष को और **मायया शाशदानाम्**=माया से प्रजा की नाशक **स्त्रियं उत**=स्त्री को भी **जहि**=दण्डित कर। **मूर-देवाः**=मूढ़ होकर विषयों में क्रीड़ा करनेवाले दुष्ट लोग **वि-ग्रीवासः**=बिना गर्दन के होकर **ऋदन्तु**=नष्ट हों। **ते**=वे **उत्चरन्तं**=उगते हुए **सूर्यं मा दृशन्**=सूर्य को भी न देख पावें।

भावार्थ–राष्ट्र में व्यभिचार फैलानेवाले व्यभिचारी स्त्री पुरुषों को राजा मृत्युदण्ड देवे तथा प्रजा को पीड़ित करनेवाले व ठगनेवाले स्त्री पुरुषों को भी कठोर दण्ड दे।

ऋषिः–**वसिष्ठः** ॥ देवता–**इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ** ॥ छन्दः–**पादनिचृदनुष्टुप्** ॥ स्वरः–**गान्धार** ॥

राजा व सेनापति सावधान रहें

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम्।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥

पदार्थ–हे **सोम**=ऐश्वर्यवन्! हे शासक! तुम और **इन्द्रः च**=शत्रुहन्ता सेनापति दोनों ही **प्रति चक्ष्व**=प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को देखो और **वि-चक्ष्व**=विविध प्रकार से देखो **जागृतम्**=तुम दोनों सावधान रहो। **रक्षोभ्यः वधम् अस्यत**=दुष्टों के नाश के लिये शस्त्र प्रहार करो और **यातुमद्भ्यः अशनिम् अस्यत**=पीड़ा देनेवाले पर विद्युत् के तुल्य अस्त्र का प्रयोग करो।

भावार्थ–राजा और सेनापति दोनों राष्ट्र में होनेवाली प्रत्येक गतिविधि पर सूक्ष्म दृष्टि रखें। राष्ट्र में दुष्टों, राजद्रोहियों तथा देशद्रोहियों को यथोचित कठोरतम दण्ड देवें।

इति सप्तमं मण्डलम्